Dedicated

to

My Students whose

Appreciation has been

My highest reward

and

Whose service has been

My most cherished privilege.

जननीजन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी

If I were to look over the whole world to find out the country most richly endowed with all the wealth, power, and beauty that nature can bestow—in some parts a very paradise on earth—I should point to India. If I were asked under what sky the human mind has most fully developed some of its choicest gifts, has most deeply pondered on the greatest problems of life, and has found solutions of some of them which well deserve the attention even of those who have studied Plato and Kant—I should point to India. And if I were to ask myself from what literature we, here in Europe, we who have been nurtured almost exclusively on the thoughts of Greeks and Romans, and of one Semitic race, the Jewish, may draw that corrective which is most wanted in order to make our inner life more perfect more comprehensive, more universal, in fact more truly human, a life, not for this life only, but a transfigured and eternal life—again I should point to India.

—*Maxmüller*

# PREFACE

A modern history text-book is expected to contain much information which was not generally included in such books in the past and to present facts clearly and fully in their relation to the life of the people. A mere chronicle of battles and sieges is no longer found interesting and the common experience of all teachers is that the old method of dealing with history is likely to kill interest in its study. Though the real subject of history is still the political activity of man, the tendency in our times is to widen its scope so as to include within its range facts relating to the social and economic life of the country. All aspects of life are inter-related and no one aspect can be fully understood by rigidly excluding the rest. This book is different from others inasmuch as it gives in a short compass the entire story of India's development throughout the ages. It describes not merely the battles and sieges and the activities of kings and statesmen but also portrays the life of man in all its essential particulars. This plan is wholly new and, so far as I know, no other short book on Indian history fulfils the purpose which I have in view.

An attempt has been made to include in this book new facts and to interpret them correctly and sympathetically. Original research in Indian history has been carried out by many scholars in Europe and India and, within my limits, I have utilised its results. It has been found impossible to make detailed references in the limited space at my disposal, but, I trust, the reader, who is acquainted with the subject, will at once find out what a great improvement has been made on the existing books on Indian history. The history of institutions is a fascinating study and in each period ade-

quate attention has been paid to their development Details which seemed to be tedious and unnecessary have been omitted and the political history of each epoch is closed with a survey of civilisation and social progress In doing so I have acted without partiality or prejudice for I recognise that truth is the first duty of the historian and he should not sacrifice it for any advantage or gain In expressing opinions I have refrained from being dogmatic and have tried to base my conclusions on careful study and research Behind the manifold diversity of Indian history there is a unity which no thoughtful enquirer can fail to discover Through the centuries one can trace the law of continuity working in spite of the vicissitudes of fortune and the unseen hand of Time bringing into play new forces which have determined the destinies of countless millions

The chronological method has not been abandoned, for many readers find it difficult to follow history without it. I have tried to combine the chronological and topical methods and this, I hope, will facilitate the understanding of the subject without creating any confusion The chapter dealing with the post-mutiny period has been written according to this plan A connected account has been given of the rise and growth of the British Power and of the growth and decline of the Muslims, Rajputs, Marathas and Sikhs. Lovers of romance will fail to find in this sober narrative remarks flattering to their pride but they must remember that any attempt to do violence to the conscience of history will be fatal to the traditions of sound scholarship

Numerous maps and sketches have been provided to illustrate historical events and pictures have been added to give the reader an idea of Indian architecture sculpture,

painting and other arts No other book so far as I know, does this on the same scale.

Despite the care I have taken the book is not entirely free from defects and I shall be grateful to receive suggestions from those who are engaged in the study and teaching of Indian history

The University,
Allahabad.
Agust 24, 1936

ISHWARI PRASAD

# विषय-सूची

## भूमिका

विषय पृष्ठ

विषय पृष्ठ

विषय पृष्ठ

विषय पृष्ठ

अध्याय २९



अध्याय ३०



अध्याय ३१

विषय पृष्ठ

विषय पृष्ठ



अध्याय २८



---

भगवान् बुद्ध प्रश्नों का उत्तर दे रहे हैं—अजन्ता की कारीगरी

# प्राक्कथन

## इतिहास और भूगोल का सम्बन्ध

भूमि और मनुष्य प्रत्येक देश के इतिहास के वास्तविक आधार है। मनुष्य के कार्य्यों का मूल कारण, उस देश की प्राकृतिक अवस्था है जिसमें वह रहता है और इतिहास उन प्रयत्नो का विवरण प्रस्तुत करता है जो मनुष्य, भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनो जगत् में, अपनी दिन-प्रतिदिन बढती हुई आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए करते है। देश की प्राकृतिक अवस्था का—उसके पहाडो, नदियो, रेगिस्तानो, जगलो तथा जलवायु का—मनुष्य के स्वभाव और चरित्र पर बडा प्रभाव पडता है। मनुष्य का कार्य प्राय उस अवस्था के अनुरूप ही होता है। ऐतिहासिक भूगोल में इस बात की विवेचना करने का प्रयत्न किया जाता है कि किस प्रकार मनुष्य के कार्य उसकी परिस्थितियो से प्रभावित होते है। भारत का भाग्य बहुधा पहाडो, नदियो और मैदानो की स्थिति पर निर्भर रहा है, केवल उसके सैनिको की वीरता और राजनीतिज्ञो की नीति पर नही। हिमालय-पर्वत-माला और हिन्दूकुश के दर्रों ने उसके इतिहास के प्रवाह पर बडा प्रभाव डाला है। हमारे रीति रिवाजो को रूढिबद्ध करने में और हमको अनेक जातियो तथा उपजातियो में विभक्त करने में—जिनमें से प्रत्येक के अलग-अलग काम और अधिकार है—केवल हमारे भाग्य ही का हाथ नही रहा है। मौसमी हवाओ तथा मानसूनो ने भारत को एक कृषिप्रधान देश बना दिया है और उसकी सम्पत्ति को बहुत बढ़ा दिया है। देश की स्थिति, नदियो के बदलते हुए प्रवाह तथा दूरी ने राजनीतिक इतिहास को बहुत प्राचीन काल से प्रभावित कर रक्खा है और बडे-बडे साम्राज्यो को बनाया और बिगाडा है।

भारत का अर्थ—'हिन्दुस्तान' हमारे देश का प्राचीन नाम नही है। यह नाम विदेशियो का रक्खा हुआ है। ईरानियो ने सिन्धु नदी का नाम वदलकर 'हिन्दु' रख दिया, इसी कारण इस देश का नाम हिन्दुस्तान पडा। यूनानियो ने उसका नाम 'इडोस' रक्खा इसलिए हमारे देश का नाम 'इडिया' पड गया। वहुत प्राचीन काल में इस देश का नाम जम्बूद्वीप था। बौद्ध-ग्रन्थो तथा कतिपय मन्त्रो में—जो विवाह आदि के अवसर पर अव भी पढे जाते हैं—इस नाम का उल्लेख मिलता है। यह नाम सम्पूर्ण देश के लिए प्रयुक्त होता है। केवल देश की सीमा का निर्देश करने के लिए ही 'जम्बूद्वीप' शब्द का प्रयोग होता था। हिन्दुस्तान का असली नाम, जो प्राचीन काल के हिन्दुओ को ज्ञात था, भारतवर्ष अथवा भरत का देश था। भरत वैदिक काल के एक वीर पुरुष थे। उन्होने जातीय युद्धो मे वडा भारी भाग लिया और अपने लिए एक साम्राज्य स्थापित किया। जव मुसलमान लोग इस देश मे आये तव वे इसे हिन्दुस्तान अथवा हिन्दुओ का देश कहने लगे। हिन्दुस्तान से उनका तात्पर्य, दक्षिण मे विन्ध्याचल तक विस्तृत, सम्पूर्ण उत्तरी भारत से था।

सीमा, क्षेत्रफल तथा जन-सख्या—प्रकृति द्वारा भारत की खूब अच्छी तरह से किलेवन्दी हुई है। एक भूतपूर्व वायसराय के शब्दो में भारत एक "दुर्ग के समान है जिसके दो तरफ समुद्र खाईस्वरूप है और तीसरी तरफ पर्वतमालाएँ हैं।" उसका क्षेत्रफल १७,६६,५७९ वर्गमील है और जन-सख्या, १९३१ ई० की मनुष्य-गणना के अनुसार, ३५,२८,३७,७७८ है। जनसंख्या के दो वहुत वडे भाग हिन्दू और मुसलमानो के हैं। इन दो वडी जातियो मे से प्रत्येक की आवादी क्रम से २३,९१,९५,००० और ७,७६,-७८,००० है। भारत के उत्तर मे हिमालय पर्वत की श्रेणी है जो १,५०० मील तक फैली हुई है। सम्पूर्ण पर्वतमाला में वहुसख्यक चोटियाँ हैं—जैसे नागा पर्वत, नन्दादेवी, किन्चिन्चिगा। सवसे ऊँचा माउन्ट एवरेस्ट है जो कि समुद्र की सतह से २९,००२ फुट ऊँचा है। उत्तर-पश्चिम में, उस पर्वतमाला की पश्चिमी श्रेणियाँ—किर्थर, सुलेमान तथा सफेद कोह—
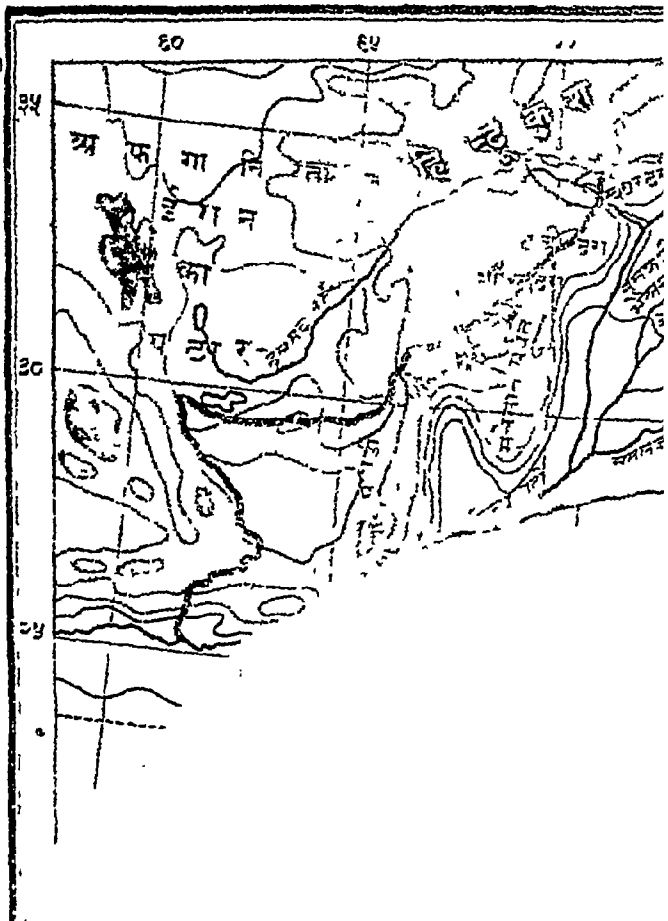
के बीच निम्नस्थ प्रदेश स्थित हैं। इसमें हिन्दुस्तान के बहुत उपजाऊ तथा घने आबाद ज़िले शामिल है। सिन्ध और गगा का मैदान, जो बड़ी-बड़ी नदियो द्वारा लाई हुई मिट्टी से बना है, इस प्रदेश का महत्त्वपूर्ण भाग है। यह वही 'मध्यदेश' है जिसका उल्लेख हिन्दुओ के धर्म-ग्रन्थो में मिलता है। यह प्राचीन काल के ऋषि-मुनियो, सूर्यवशी तथा चन्द्रवशी क्षत्रियो, देवताओ और रामायण एव महाभारत के योधाओ का निवास-स्थान था। इस भाग में काशी, अयोध्या, मथुरा, कन्नौज, हरिद्वार, आदि पवित्रतम तीर्थस्थान स्थित है। यही पर बुद्ध भगवान् ने अपने शान्ति-धर्म का उपदेश किया था, यही से धर्म-प्रचारको के दल उनके सन्देश को दूर-दूर के देशो में ले गये थे। यह विस्तृत मैदान सिन्धु, गगा, यमुना तथा ब्रह्मपुत्र के जल से सीचा जाता है। सिन्धु नदी तिब्बत के भील प्रदेश मे, हिमालय से निकलकर १८०० मील तक बहती है और पजाब की नदियो का पानी लेकर अरबसागर में गिरती है। गगा गढ़वाल-श्रेणी के गगोत्री ग्लेशियर से निकलकर हरिद्वार के पास मैदान में उतरती है और १५०० मील बहकर बगाल की खाडी में गिरती है। उसकी बडी-बडी सहायक नदियाँ यमुना, सोन तथा गडक है। ब्रह्मपुत्र मानसरोवर भील के पास कैलाश पहाड की ढाल से निकलकर पूर्व की ओर बहती है। लगभग ९०० मील बहने के बाद वह मुडकर लोअर बगाल के मैदानो में प्रवेश करती है।

सारा देश बडा समतल है। सर रिचर्ड स्ट्रेची का कथन है कि "यह असम्भव है कि कोई बगाल की खाडी से गगा के मुहाने तक जाय, और फिर पजाब होकर सिन्धु नदी के मार्ग से समुद्र तक जाय—इस प्रकार २,००० मील से अधिक रास्ता तय करे—और उसे पत्थर का एक टुकडा या ककड भी मिल जाय।"

इस मध्यदेश की उर्वरता ने विदेशी आक्रमणकारियो को सदैव प्रलोभन दिया है। पहले-पहल यहाँ आर्य लोग आये और उन्होने अपनी बस्तियाँ स्थापित की। बाद के सभी विजेतागण यहाँ आकर बसे और उन्होने बडे-

वडे साम्राज्य स्थापित किये। दोआबा में हिन्दू, मुसलमान और अँगरेज़ सभी ने अपना राज्य स्थापित किया। दोआबा की सम्पत्ति ने उन्हें देश के शेष भाग को जीतने के लिए प्रोत्साहित किया। यह बात आज उतनी ही सत्य है जितनी कि मध्ययुग में कि जो कोई दोआबा को जीत ले वह आसानी के साथ सम्पूर्ण भारत को अपने अधिकार में कर सकता है। नदियो में जहाज आ-जा सकते थे इस कारण वे अतीत काल मे आने-जाने का साधन वनी रही। व्यापार तथा भारत के जहाजी व्यवसाय को उनसे वडी सहायता मिली।

इस सुविस्तृत मैदान का पूर्वी भाग सम्पन्न तथा उर्वर है, किन्तु जलवायु मलेरिया वुखार को फैलानेवाला है। इसकी सम्पत्ति ने विदेशी आक्रमणकारियो को आकृष्ट किया किन्तु जलवायु ने उन्हे आगे वढने से रोक दिया। मध्ययुग में, दिल्ली की केन्द्रीय शक्ति कभी भी पूर्ण रूप से उसे अपने अधिकार मे नही रख सकी। किन्तु वह वहिःस्थ प्रान्त था और वहाँ का जलवायु भी खराव था इस कारण उसकी उपेक्षा की जाती थी। विद्रोह करने की प्रवृत्ति भी उसमें थी। चौदहवी शताब्दी मे अफ्रीका का मुसलमान यात्री इब्नवतूता भारत मे आया। उसने वगाल का भ्रमण किया। इस प्रान्त के सम्वन्ध में उसने लिखा है "यह एक नरक है जो ससार की सभी अच्छी वस्तुओ से ठसाठस भरा हुआ है।"

भारतीय सभ्यता के विकास में गगा नदी ने वडा भारी योग प्रदान किया है। उसके तटो पर हिन्दुओ के सर्वश्रेष्ठ दर्शनो का उदय और विकास हुआ। उसके किनारे हिन्दुस्तान के वडे रमणीक और आवाद नगर स्थित है। यदि हम उसके किनारे किनारे चलें तो हमें एक ऐसे प्रदेश में होकर जाना पडेगा जो सुन्दर-सुन्दर दृश्यो, अधिकता के साथ उगे हुए पेड-पौधो तथा मीलो तक फैले हुए और प्रचुर फसलो से लदे हुए हरे-हरे खेतो से—जो लाखो आदमियो को भोजन और जीवन प्रदान करते है—भरा होगा। यही कारण है कि भारत के लोग—हिमालय से लेकर कुमारी अन्तरीप

तक—इसे एक पवित्र नदी मानकर पूजते हैं और उसके जल में स्नान करने को स्वर्ग-प्राप्ति का साधन समझते है।

**भारत का रेगिस्तान**—भारत का मरुप्रदेश उत्तर-पूर्व में पजाव तथा युक्त-प्रान्त से, दक्षिण-पूर्व में मध्य भारत से, पश्चिम में गुजरात एव सिन्ध से घिरा हुआ है। इसका नाम राजपूताना है। कर्नल टॉड इसे राजस्थान कहते हैं। किन्तु 'राजस्थान' भी प्राचीन शब्द नही प्रतीत होता। राजपूताना को हम दो भागो में विभक्त कर सकते है। अर्वली पहाड के उत्तर का भाग रेतीला और ऊसर है, उसमें फसल नही उग सकती। किन्तु अर्वली के दक्षिण-पूर्व का भाग उपजाऊ है। वहाँ कभी वर्षा की कमी नही होती। इसके अदर मालवा का प्रदेश है जो सदा हरा-भरा रहता है। आज-कल यह ग्वालियर राज्य में सम्मिलित है। अर्वली पहाड की सवसे ऊँची चोटी माउन्ट आबू सिरोही राज्य में है। यह चोटी समुद्र की सतह से ५,६५० फुट ऊँची है। इस मरुप्रदेश की प्राकृतिक अवस्था ने इसके इतिहास पर वडा प्रभाव डाला है। राजपूत राजा अपने किलो में, मरु-प्रदेश द्वारा, विदेशी आक्रमणकारियो से सुरक्षित रहते थे। दिल्ली के मुसलमान बादशाहो द्वारा जीते जाने पर भी वे अपना शासन-प्रवन्ध करने के लिए स्वतन्त्र वन रहे। यद्यपि राजपूत लोग सदा आपस ही मे लडा-झगडा करते थे तथापि दिल्ली के शासक राजपूताना के राज्यो पर अपनी दृढ प्रभुता कभी भी नही स्थापित कर सके।

राजपूताना के पश्चिम में सिन्ध का प्रदेश है। यह दक्षिण मे अरव-सागर तथा कच्छ की खाडी से घिरा हुआ है। इसके तीन भाग हैं—कराची और सेहवान के वीच का कोहिस्तान अथवा पहाडी देश, मुख्य सिन्ध तथा पूर्वी सीमा पर स्थित मरुस्थल। दक्षिण-पूर्व में कच्छ की खाडी जो खारी पानी से भरी हुई है। इसका क्षेत्रफल लगभग ९,००० वर्गमील है।

**दक्षिण**—दक्षिण का प्रदेश, जिसका नाम प्राचीन काल में दक्षिणापथ था, विन्ध्याचल पर्वत के दक्षिण में स्थित है और प्रायद्वीप के आकार का है। यह एक पठार है जो २,००० फुट ऊँचा है और पूरव से पश्चिम की ओर ढालू

है। यह तीन तरफ पहाडो से घिरा हुआ है। पूर्व में पूर्वीघाट, पश्चिम में पश्चिमीघाट और उत्तर मे विन्ध्य तथा सतपुडा पहाडो की दोहरी श्रेणियाँ है। ये दोनो श्रेणियाँ दक्षिणी भारत को उत्तरी भारत से अलग करती हैं। दक्षिण के बिलकुल छोर पर स्थित भू-भाग को कभी-कभी सुदूर दक्षिण कहा जाता है। उसका अपना अलग इतिहास है। चूंकि दक्षिण की ढाल पश्चिम से पूर्व की ओर है, इसलिए इस प्रदेश की अधिकाश नदियाँ—जैसे महानदी, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी तथा तुङ्गभद्रा—पूर्व की ओर बहती हैं और बगाल की खाडी मे गिरती है। नर्मदा और ताप्ती पश्चिम की तरफ बहती है और अरबसागर में गिरती है। त्रिभुजाकार पठार के दोनो तरफ पर्वत-श्रेणियाँ है जो पूर्वी और पश्चिमी समुद्र-तट के समानान्तर चली गई है। सह्याद्रि पर्वत अथवा पश्चिमी घाट खम्भात की खाडी के दक्षिण से समुद्र-तट के साथ साथ नीचे चला गया है। इसमे मराठा लोग बसते है। इस सकीर्ण भू-भाग का उत्तरी भाग कोकण तथा दक्षिणी भाग मलाबार का तट कहलाता है। महाराष्ट्र अथवा मराठो का देश डामन से नागपुर तक लम्ब रूप में फैला हुआ है और नागपुर से दक्षिण-पश्चिम की ओर कर-वार तक चला गया है। इस देश के ये तीन भाग है—(१) कोङ्कण, (२) 'मावलों' का देश, (३) पूर्व का चौडा प्रदेश जिसे 'देश' कहते है।

पूर्व का समुद्र-तटवाला मैदान, जो पूर्वीघाट तथा बगाल की खाडी के बीच स्थित है, तीन भागो में विभक्त किया जा सकता है—(१) उत्तरी भाग जिसमें महानदी का डेल्टा सम्मिलित है, (२) मध्यभाग जो गोदावरी तथा कृष्णा नदी के डेल्टाओ से बना हुआ है, (३) दक्षिणी भाग जो कर्नाटक कहलाता है। दक्षिण का ऊँचा पठार तामिल देश है जिसमें द्रविड जाति के लोग निवास करते है।

दक्षिण भारत की प्राकृतिक अवस्था ने उसके इतिहास पर बडा प्रभाव डाला है। विन्ध्य तथा सतपुडा पर्वत की श्रणियो ने आर्यों की सभ्यता को दक्षिण की ओर बढने से रोक दिया। यही कारण है कि दक्षिण के सामाजिक विचार, रीति-रवाज और रहन-सहन, उत्तरी भारत से बिलकुल भिन्न हैं।

भारतवर्ष में निवास
करनेवाली जातियाँ
मंगोलियन
भारतीय आर्य्य
द्रविड़
मगोलीय- द्रविड़
आर्य्य-द्रविड
सीदियन द्रविड़
तुर्क-ईरानी
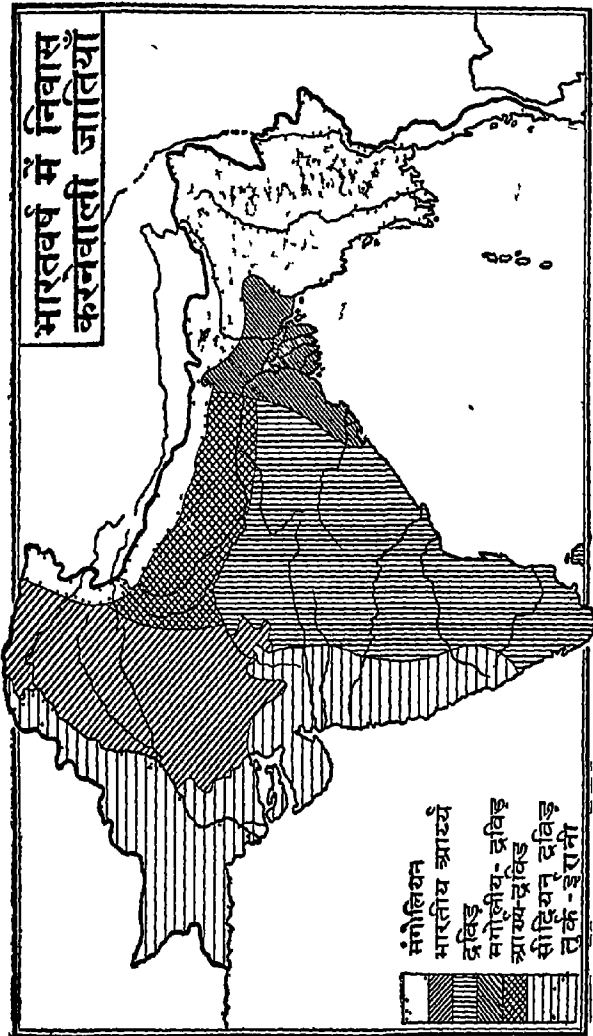
पश्चिमी घाट के सघन जगलो, टेढे-मेढे रास्तो और खड्डो ने मराठा देश को दुर्जेय वना दिया। ऊँची-नीची पहाडियो के कारण मराठो के लिए एक विशेष (guerilla) युद्ध-प्रणाली का आश्रय लेना अनिवार्य हो गया। इस युद्ध-प्रणाली की वदौलत मराठा लोग सफलतापूर्वक मुसलमान आक्रमण-कारियो को परास्त कर सके। जलवृष्टि की न्यूनता तथा पहाडी देश की अनर्वरता का लोगो के चरित्र व स्वभाव पर वडा प्रभाव पडा। वे अधि-कतर जौ और वाजरा खाते थे, इस कारण मजवूत और परिश्रमी वन गये। इन्ही लोगो की सहायता से शिवाजी ने दक्षिण में शक्तिशाली शासन स्थापित किया। उसकी मृत्यु के पश्चात् भी उसके उत्तराधिकारियो ने औरगजेब के सेनापतियो को हैरान कर दिया और अपनी शक्ति को कायम रक्खा।

दक्षिण के द्रविड लोगो पर उत्तरी भारत के रीति-रवाज और रहन-सहन का कुछ भी प्रभाव नही पडा। उन्होने एक निराले आचार-विचार का पालन किया जिसने समाज के भिन्न-भिन्न समुदायो मे वडा भेद-भाव पैदा कर दिया।

**ब्रह्मा**—ऊँचे-ऊँचे पहाड और घने-घने जगल ब्रह्मा को भारत से पृथक् करते है। ये पर्वत इन दोनो देशो के वीच में एक दीवाल की तरह खडे हुए है। इन्होने दोनो देशो के लोगो को एक दूसरे से अलग कर रक्खा है—दोनो की जाति, भाषा, धर्म तथा रीति-रवाज में विभिन्नता पैदा कर दी है। ब्रह्मा की मुख्य नदियाँ इरावदी तथा सालवीन है। सम्पूर्ण देश तीन प्रदेशो में विभक्त किया जा सकता है—(क) समुद्र-तट का सकीर्ण भू-भाग, (ख) मध्य ब्रह्मा जिसमें इरावदी तथा सीताग के डेल्टा सम्मिलित हैं, (ग) पठार का प्रदेश। रगून अव एक अच्छा वन्दरगाह है। इससे होकर व्यापार का माल अधिक परिमाण मे आता-जाता है।

**भारतनिवासियो की मौलिक एकता**—कभी कभी कहा जाता है कि भारत केवल भौगोलिक दृष्टि से एक है, किन्तु वास्तव में यह वात सत्य नही है। इस देश में विभिन्न वश, जाति और धर्म के लोग रहते हैं, यह बात स्पष्ट हैं किन्तु इन सव विभिन्नताओ के होते हुए भी एक मौलिक एकता है

जिसे कोई इतिहासकार अस्वीकार नही कर सकता। प्राचीन काल में सारा देश भारतवर्ष के नाम से प्रसिद्ध था और हमारे पूर्वज उसके प्रत्येक भाग से परिचित थे। महाकवि कालिदास के ग्रन्थो में नदियो, पहाडो तथा विभिन्न देशो का जो वर्णन मिलता है उससे यह विदित होता है कि उन्हे सारे देश तथा उसकी प्राकृतिक अवस्था का ज्ञान था। भारत के विभिन्न भागो में अशोक के जो आज्ञापत्र उपलब्ध हुए है, उनसे यह प्रकट होता है कि सम्पूर्ण देश एक समझा जाता था, और उसके करद राज्यो में एक ही साथ उत्तर के कम्बोज तथा दक्षिण के चोल, आन्ध्र और पुलिन लोगो के देशो का उल्लेख है। अतीतकाल मे धर्म ने इस एकता में योग दिया। पुराणो में उल्लिखित निम्न-लिखित प्रार्थना सारे भारत में अब तक कही जाती है—

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥

शकराचार्य के चारो मठ देश के चारो कोनो मे स्थापित किये गये थे। इससे यात्री को सब दिशाओ मे देश के विपुल विस्तार का ज्ञान हो जाता है। बद्रीनाथ, द्वारका, रामेश्वरम् तथा जगन्नाथ आदि पवित्रतम तीर्थ-स्थानो के अन्तर्गत प्राय सारा देश आ जाता है। हमार धर्मग्रन्थो में इन तीर्थों का जाकर दर्शन करना पवित्र कर्त्तव्य बतलाया गया है।

इसी प्रकार राजनीतिक एकता का भाव भी प्राचीन भारत मे अज्ञात नही था। यद्यपि देश मे अनेक राज्य थे तो भी सार्वभौमिकता का भाव विद्यमान था। गुप्त राजाओ की उपाधियो से प्रकट होता है कि बहुसख्यक राजा और सरदार उनकी प्रभुता को स्वीकार करते थे। लेखो मे उन्हें 'महाराजाधिराज' कहा गया है। महाराजाधिराज वह है जिसका राज्य देश के चारो कोनो तक विस्तृत हो। बौद्धकाल में सम्पूर्ण देश एक समझा जाता था। अशोक के समय में भी यही बात थी। आवश्यक मामलो में सारे देश के हिन्दू आज भी एक ही तरह का आचरण करते है। उनके उपवास, उत्सव और धार्मिक तथा सामाजिक रीति-रवाज यह सिद्ध करते हैं कि वे सब एक ही हैं। उनमें बडी एकता है। मध्ययुग में मुसलमानो ने

एकता के भाव को बढाया। अकबर, शाहजहाँ तथा औरंगज़ेब ने सारे देश को जीत कर उसके सभी भागो में एक ही प्रकार की शासन-प्रणाली स्थापित करने की चेष्टा की। उन्होंने सारे देश को एक समझा और उसके विभिन्न भागो को अपने अधिकार में लाने की चेष्टा की।

इतिहास के काल—भारत का इतिहास तीन कालो में विभक्त है—प्राचीनकाल, मध्यकाल तथा आधुनिककाल। प्राचीनकाल, आदिम समय से १२०० ई० तक, मध्यकाल १२०० ई० से लेकर १७६१ ई० तक और आधुनिककाल ब्रिटिश शासन की स्थापना से आज तक माना जाता है।

इतिहास के साधन—प्राचीन भारत के इतिहास के लिए हमारे पास ये साधन है—साहित्य, पुरातत्त्व के स्मारक चिह्न, मुद्रा, लेख तथा विदेशियो के यात्रा-विवरण। वैदिक साहित्य, रामायण, महाभारत, जातक तथा बहुसख्यक साहित्यिक ग्रन्थो में हमें प्रारम्भिक काल से भारत का इतिहास लिखने के लिए बहुमूल्य सामग्री मिलती है। लेखो तथा मुद्राओ से हमें राजवशो का कालक्रम निश्चित करने में सहायता प्राप्त होती है। प्राचीन नगरो का विवरण उपस्थित करने में स्मारको के ध्वसावशेष बडी मदद करते है। यूनानी तथा रोम के लेखको के विवरण भी महत्त्वपूर्ण है किन्तु फाह्यान् तथा ह्वेनसाग नामक चीनी यात्रियो के भ्रमण-वृत्तान्त अधिक मूल्यवान् है। इन दोनो यात्रियो ने देश की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक जीवन के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें लिखी है।

मुसलमान बडे इतिहास-लेखक थे। वे अनेक इतिहास, रोज़नामचे, पत्र और अन्य प्रकार के लिखित विवरण छोड गये है जो उनका इतिहास लिखने में हमारी सहायता करते है। प्राय सभी मुसलमान राजाओ के यहाँ सरकारी इतिहास-लेखक रहते थे। वे जिन घटनाओ को देखते थे उन्हें लिख लेते थे। उनकी लेखन-शैली बहुधा शब्दाडम्बरपूर्ण है और वे अपने आश्रयदाताओ के कार्यों का बहुत अत्युक्तिपूर्ण वर्णन करते हैं। इतना होने पर भी उनका ऐतिहासिक मूल्य बहुत है। आईन-अकबरी जैसे सरकारी ग्रन्थो और कागज़ो में ऐसी बहुमूल्य बातो का उल्लेख है जिनसे

हमें यह पता चलता है कि शासन का सचालन किस प्रकार होता था। मुसल-मानकाल के लेख, मुद्राएँ तथा स्मारक ऐसी वस्तुएँ है जिन्हें देखकर आज भी हमारे मन में कौतूहल उत्पन्न होता है। उनकी सहायता से हमारा ऐतिहासिक ज्ञान और स्पष्ट हो जाता है। अलबेरूनी, इब्नबतूता, अब्दुर्रज्ज़ाक, वर्नियर, टैवर्नियर तथा मनूची आदि विदेशी लेखकों के विवरण भारत और उसके निवासियो के सम्बन्ध मे बहुमूल्य बातें बतलाते हैं।

ब्रिटिश काल के इतिहास के लिए हमारे पास प्रचुर सामग्री है। बहुत-से सरकारी कागज, पत्र-पत्रिकाएँ, सरकारी रिपोर्ट और स्वतत्र व्यक्तियो के लिखे हुए ग्रन्थादि मौजूद है जो आधुनिक भारत का इतिहास लिखने के लिए बहुत उपयोगी हैं।

# अध्याय १

## पूर्वैतिहासिक भारत

भारत का प्राचीन इतिहास ई० पू० ३५०० के लगभग से प्रारम्भ होता है, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उस समय के बहुत पहले भी हमारा देश आबाद था। उस काल को, जिसके इतिहास का हमें कुछ पता नहीं है, पूर्वैतिहासिक काल कहते हैं। शिकार खेलने के लिए विभिन्न अवस्थाओं में जो औज़ार काम में लाये जाते थे, उनके आधार पर पुरातत्त्व के विद्वानों ने इस अज्ञात-काल को निम्नलिखित चार भागों में विभाजित किया है—

(१) पूर्व पाषाण-काल।

(२) उत्तर पाषाण-काल।

(३) ताम्र-काल।

(४) लौह-काल।

पूर्व पाषाण-काल—यह बताना बहुत कठिन है कि भारत का आदिमनिवासी व्यक्ति कौन था और उसके वंशधर किस नाम से प्रसिद्ध हुए। हाँ, इतना अवश्य मालूम होता है कि यहाँ के मूल निवासियों का रंग काला, कद छोटा और बाल घने थे। वे मछलियों और जानवरों का शिकार कर अपना पेट पालते थे अथवा जंगल के कन्द-मूल-फल खाकर जीवन व्यतीत करते थे। कुछ विद्वानों का मत है कि उन लोगों का सम्बन्ध उसी जाति से था जिसके वंशधर अफ्रीका के हब्शी लोग हैं। वे धातु का उपयोग करना नहीं जानते थे और न उन्हें कृषि का ही कुछ ज्ञान था। वे लोग पत्थर के कुल्हाड़ी और भाले इत्यादि औज़ार बनाते थे और उनकी सहायता से शिकार मारकर अपनी जीविका चलाते थे। वे गुफाओं में रहते थे। उन्हें अग्नि के प्रयोग करने का ज्ञान था। पत्थर अथवा लकड़ी को पत्थर पर रगड़कर वे अपने लिए आग पैदा कर लेते थे। उनकी पोशाक बहुत सादी थी। वृक्ष की पत्तियों या जानवरों के चमड़े से वे अपने शरीर को ढकते थे।

इन लोगो के वशधर अभी तक अण्डमन द्वीप-समूह, मलाया प्रायद्वीप और फिलिपाइन्स में पाये जाते है। पहले विद्वानो का मत था कि द्रविड जाति के लोग भारत के मूल-निवासी थे। परन्तु ऐतिहासिक खोज से अब इस मत का खण्डन हो चुका है। अब विद्वानो की राय है कि पूर्व पाषाण-काल के ही लोग भारत के आदिम-निवासी थे और वे द्रविड जाति के लोगो से पहले इस देश में रहते थे।
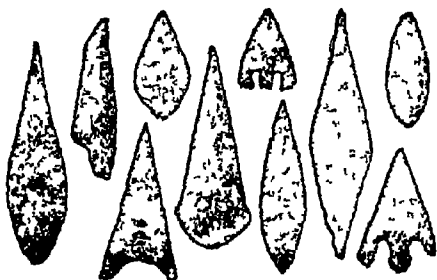
उत्तर पाषाण-काल के अस्त्र

**उत्तर पाषाण-काल**—कुछ समय के बाद पूर्व पाषाण-काल के लोगो को एक दूसरी जाति ने आकर पराजित किया। ये लोग उनकी अपेक्षा अधिक सभ्य थे। यद्यपि उनके हथियार भी पत्थर के बने होते थे, किन्तु वे अधिक तेज और चमकीले थे और कांट-छांटकर खूब सुडौल बनाये जाते थे। ये लोग धनुष-बाण चलाना भी जानते थे। भाला आदि अस्त्रो को फेंककर मारना भी उन्हें आता था। वे घरो में रहते थे, पशु पालते थे और खेती भी करते थे। चाक को चलाकर वे मिट्टी के बर्तन बनाते थे। धातुओ का प्रयोग करना भी जानते थे। मालूम होता है कि किसी रूप में उन्हें चित्रण-कला का भी कुछ ज्ञान था। चट्टानो और गुफाओ पर उन्होने जो चित्र अंकित किये थे और जो आज तक मौजूद है, उनसे इस बात का पूरा प्रमाण मिलता है। मध्य प्रदेश के सथाल, कोल और मुण्ड जातियो के लोग, आसाम के खासी तथा नीकोबार द्वीपसमूह के निवासी उन्ही लोगो के वश-

घर हैं और अभी तक जगली दशा में रहते है। वे लोग इस देश में दो जत्थो में आये थे। पहला दल सारे देश मे फैल गया किन्तु दूसरे दल के लोग, दक्षिण की ओर नही वढ सके। पहला दल कोल, मथाल तथा होस जाति के लोगो का था। दूसरे जत्थे के वे लोग थे जिनके वशज नीकोवार द्वीप-

पूर्व पापाण-काल के हथियार
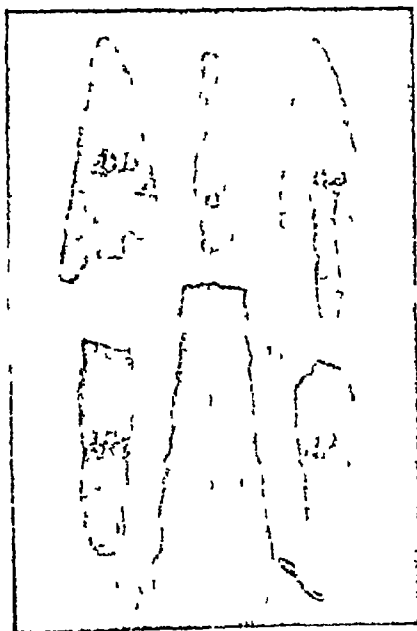
समूह के निवासी, आसाम के खासी और ब्रह्मा की कुछ आदिम जातियो के लोग हैं।

ताम्र-काल—उत्तर पापाण-काल के लोगो को दूसरे लोगो ने आकर हरा दिया जिन्हें हम ताम्र-काल के लोग कह सकते है। उनके पास तांबे के वने हुए औजार थे जो अधिक उपयोगी थे।

कुछ विद्वानो का मत है कि ये उसी जाति के लोग थे जिनके वशज मेसो-पोटामिया के सुमेरियन तथा दक्षिण भारत के द्रविड लोग हैं। सम्भवत ये लोग ई० पू० ४००० से भी पहले उत्तर-पश्चिम के दर्रों से या मेकरान और विलोचिस्तान के रास्ते से भारत मे आये और सिन्धु नदी की तलहटी में वस गये। दूसरा मत यह है कि वे दक्षिण की ओर से आये और धीरे-धीरे उत्तर की ओर फैल गये। कुछ भी हो, इसमें सन्देह नही कि आर्यों की
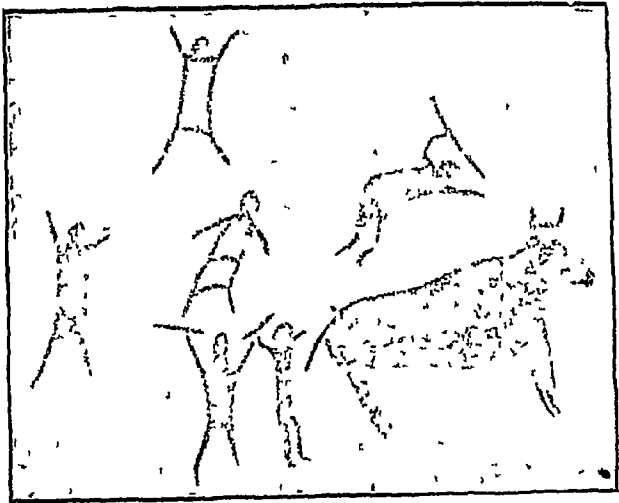
गुफाओ की चित्रकारी

विजय के पूर्व द्रविड लोग उत्तरी तथा दक्षिणी भारत में वसे हुए थे। वे धातुओ का प्रयोग करना जानते थे और ताँवे के हथियार वनाते थे। उनके आभूषण सोने और चाँदी के होते थे। उनके यहाँ ताँव का एक सिक्का भी प्रचलित था। अपने रहने के लिए उन्होने घर और किले वनवाये थे। नदी और समुद्र के द्वारा वाणिज्य-व्यापार करने के लिए उन्होने नाव और जहाज भी तैयार किये थे। वे लिखना भी जानते थे। उनकी भाषा और

साहित्य काफी उन्नत दशा में थे और बाद को आर्यों की भाषा पर उनका बडा प्रभाव पडा। उनका धर्म भी आदिम अवस्था में नही था। वे देवताओ की पूजा करते थे। उनके कुछ देवताओ को पीछे आर्यों ने भी स्वीकार कर लिया था।

जब वे लोग देश भर में फैल गये तब उन्हें दक्षिण के आदिम निवासियो के साथ भी मेल करना पडा। उनके साथ उन्होंने विवाह आदि करना प्रारम्भ कर दिया और इस प्रकार दोनो खूब हिलमिल गये। सूर्य की तेज़ गरमी से धीरे-धीरे उनका रग भी काला पड गया। आर्यो की भाँति वे अपने मुर्दो को जलाते नहीं थे बल्कि ताबूत मे रखकर ज़मीन में गाड देते थे। इस प्रथा को वे शायद अपने साथ अपनी जन्मभूमि से लाये थे। जब तक उन्होने आर्यो के धर्म को स्वीकार नही किया तब तक उस प्रथा को जारी रक्खा।

द्रविड लोगो ने यहाँ के आदिम निवासियो पर अपनी भाषा, धर्म तथा रहन-सहन की प्रभुता स्थापित कर दी। उत्तरी भारत के द्रविड लोग जो भाषा बोलते थे वह मध्य बिलोचिस्तान की आधुनिक भाषा ब्राह्मी से बहुत कुछ मिलती-जुलती थी। मध्यभारत के द्रविड लोग एक ऐसी भाषा बोलते थे जो आधुनिक तेलगू से मिलती थी। दक्षिण की प्रचलित भाषाएँ—तामिल, कनाडी तथा मलायलम सब—द्रविड भाषा की शाखाएँ हैं। द्रविड लोगो की सभ्यता का प्रभाव इतना अधिक पडा कि आदिम निवासियो ने अपनी मातृभाषा को छोड दिया और हर प्रकार से अपने विजेताओ के रीति-रवाज तथा रहन-सहन को अपना लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि आज ऐसे लोग द्रविड-भाषाओ को बोल रहे है जो उस जाति के नही है।

लौह-काल—इसके बाद एक दूसरी जाति के लोग पामीर पर्वत की ओर से आये। ये लोग लोहे के औज़ारो का इस्तेमाल करते थे और धीरे-धीरे महाराष्ट्र मे फैल गये और मध्यप्रदेश के जगलो मे हो कर बगाल की ओर बढ गये। उनकी विजय थोड ही दिन की थी और उसका अधिक प्रभाव

नही पडा। मेसोपोटामिया से सुमेर जाति के लोगो को सैमाइट जाति के लोगो ने निकाल दिया और इस प्रकार वहाँ द्रविड सभ्यता का अन्त हो गया। परन्तु भारत मे द्रविडो ने अपने विजेताओ का सामना किया और बौद्ध-धर्म के उत्कर्ष के समय तक अपनी सभ्यता तथा सस्कृति की रक्षा की।

मोहेन्जोदडो—अभी हाल मे सिन्ध प्रदेश के लरकाना जिले में मोहेन्जोदडो नामक स्थान पर खुदाई हुई है और उसमें वहुत-सी चीजें मिली
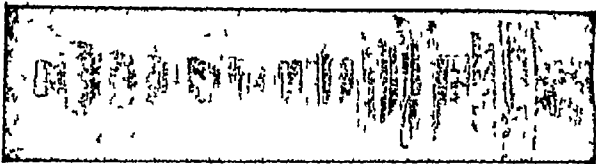
शीशे की चूडियाँ

है। इस खुदाई में जो कुछ मिला है उससे यह साफ जाहिर होता है कि सिन्धु नदी की घाटी में जो अनार्य लोग वसे थे उनकी सभ्यता उच्च कोटि की थी। जिस स्थान पर यह खुदाई हुई है वहाँ पर किसी समय एक विशाल नगर आवाद था। वडे-वडे सुन्दर मकानो, सार्वजनिक स्थानो, नालियो तथा स्नानागारो के खडहर वहाँ पर पाये गये हैं।

इनके अतिरिक्त और भी वहुत-सी चीजें वहाँ मिली हैं। मनुष्यो और देवताओ की मूर्तियाँ, सोने तथा अन्य धातुओ के गहने, दैनिक व्यवहार के वहुत-से सामान और औज़ार खुदाई से निकले हैं। इन चीजो को देखने से मालूम होता है कि वहाँ के लोग धातुओ और खनिज पदार्थों का उपयोग

करना जानते थे, सुन्दर मकान वनाते थे, ऊनी और सूती कपडे तैयार करते थे तथा पशुओ का पालन करते थे। मालूम होता है कि उस समय सिन्धु नदी की घाटी मे अच्छी नस्ल के पशु अधिकता से होते थे। मुहरो पर इन पशुओ के जो सजीव चित्र खुदे हुए है उनसे यह वात प्रमाणित होती है।
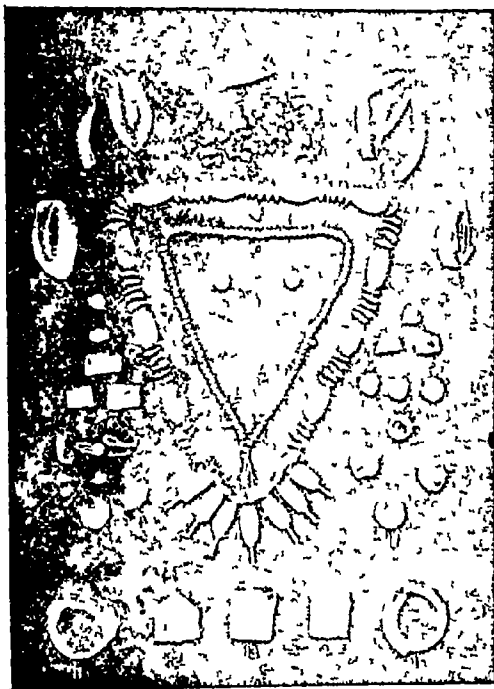
सोने के गहने (मोहेञ्जोदडो)

लोगो का पहनावा वहुत सादा था। उच्च श्रेणी के पुरुप दो कपडे पहनते थे। ऊपर एक शाल या दुपट्टा रहता था जो कि दाहने कन्धे के नीचे से होता हुआ वायें कन्धे और भुजा के ऊपर पडा रहता था। दूसरा वस्त्र

कमर मे पहनने के लिए होता था। पुरुष छोटी-छोटी दाढियाँ और गलगुच्छियाँ रखते थे और कभी-कभी मूँछो को मुडा भी डालते थे। छोटी श्रेणी के पुरुष नगे रहते थे और स्त्रियाँ केवल एक धोती पहनती थी। गहने सब श्रेणियो के लोग पहनते थे। अँगूठी, हार तथा कान मे वालियाँ स्त्री-पुरुष दोनो पहनते थे। हाथ मे ककण, पैर में कडे तथा कमर में करधनी केवल स्त्रियाँ ही पहनती थी। वे वृक्ष, दुर्गा तथा शिवलिग की पूजा करते थे। मुहरो में खुदे हुए चित्रो से प्रतीत होता है कि वे पशुओ की भी पूजा करते थे। स्नान एक धार्मिक कृत्य समझा जाता था। स्नानागारो के निर्माण पर बहुत
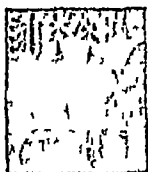
मुहरें (मोहेञ्जोदडो)

मोहेञ्जोदडो लिपि

ध्यान दिया जाता था। वे लिखना भी जानते थे। मोहेञ्जोदडो तथा हरप्पा दोनो स्थानो पर बहुत-सी ऐसी मुहरें पाई गई है जिन पर कुछ लेख भी मिलते है। ये लेख प्राचीन मिस्र के लेखो से मिलते-जुलते है।

यह ठीक-ठीक नही कहा जा सकता कि सिन्धु नदी की तलहटी में रहनेवाले लोग अपने मुर्दो का क्या करते थे। वे इस विषय में किसी खास रवाज को नही मानते थे। सम्भव है कि उनके यहाँ मुर्दों को गाड़ने तथा जलाने की दोनो प्रथाएँ प्रचलित रही हो।

इस प्रकार की सभ्यता को जन्म देनेवाले ये लोग द्रविड़ थे अथवा नही, यह भी एक विवाद-ग्रस्त विषय है। इतना निश्चय है कि बेबीलोनिया
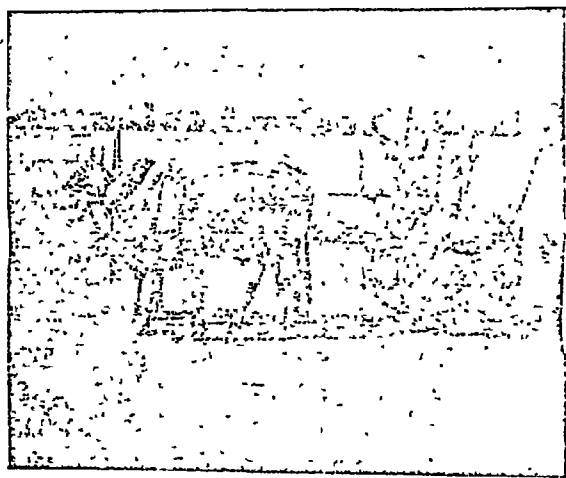
मोहेञ्जोदड़ो की बैलगाड़ी का नमूना

के सुमेरियन लोगों के साथ इनका सम्बन्ध था। विशेषज्ञों का कहना है कि मोहेञ्जोदड़ो के खँडहर ई० पू० ३२५० के लगभग के हैं। जिस सभ्यता और संस्कृति के चिह्न वहाँ पर मिले हैं वह कई शताब्दियों तक जीवित रही होगी। खुदाई करने से ऐसी ही चीज़े पंजाब के (मोंटगोमरी ज़िले में स्थित) हरप्पा तथा अन्य स्थानों में पाई गई हैं। सिन्ध और बिलोचिस्तान में भी ऐसी बहुत-सी चीज़ें मिली हैं। इससे मालूम होता है कि यह सभ्यता बहुत दूर तक विस्तृत थी। परन्तु भारत की अन्य जातियों की तरह इस जाति को भी आर्यो के हाथ से हार खानी पड़ी। आर्य लोग मध्य एशिया से पूर्व तथा दक्षिण की ओर फैलने लगे और पंजाब में घुस आये।

---

# अध्याय २

## आर्यों का आगमन—उनकी विजय और प्रसार

आर्य लोग—आर्यों की जन्मभूमि कहाँ पर थी, इस विषय म इतिहास के विद्वानो में बडा मतभेद है। कुछ विद्वानो का मत है कि वे डैन्यूब नदी के पास आस्ट्रिया-हगरी के विस्तृत मैदानो में रहते थे। कुछ लोगो का विचार है कि उनका आदिम निवास-स्थान दक्षिण रूस मे था। कतिपय विद्वान्, श्रीयुत बाल गगाधर तिलक की तरह, यह कहते है कि आर्यों का मूल-स्थान उत्तरी ध्रुव प्रदेश में था। बहुत-से विद्वानो की राय पहले यह थी कि वे मध्य एशिया के मैदानो में रहते थे। वहाँ से अन्य देशो में गये। कुछ ऐसे लोग भी है जिनका मत है कि आर्य लोग भारत के आदिम निवासी थे और यही से वे ससार के अन्य भागो में फैले थे।

कुछ भी हो, अधिकाश विद्वानो का मत है कि आर्य लोग मध्य एशिया के मैदानो में रहते थे। अपने पशुओ के लिए अच्छे चरागाहो की तलाश में वे लोग वहाँ से बाहर निकले। उनका डील-डौल ऊँचा, रग गोरा और नाक लम्बी थी। वे एक घूमनेवाली जाति के लोग थे। उनकी भाषा लैटिन, यूनानी आदि प्राचीन यूरोपीय भाषाओ तथा आज-कल की अँगरेजी, फ्रांसीसी, रूसी तथा जर्मन भाषाओ से मिलती-जुलती थी। शब्दो के सादृश्य से प्रतीत होता है कि यूरोप और भारत के आधुनिक निवासियो के पूर्वज एक ही स्थान में रहते थे और वह स्थान कही पर मध्य एशिया में था।

एशिया में उनका उल्लेख सबसे पहले एक खुदे हुए लेख मे पाया जाता है जो ई० पू० २५०० के लगभग का है। घोडो की सौदागरी करने के लिए वे मध्य एशिया से एशियाई कोचक में आये। यहाँ एशियाई कोचक तथा मेसोपोटामिया को जीतकर उन्होने अपना राज्य स्थापित कर लिया।

बेबीलोनिया के इतिहास में वे 'मिटन्नी' नाम से प्रसिद्ध है। उनके राजाओ के नाम आर्यों के नामो से मिलते-जुलते है जैसे 'दुशरत्त' (दु क्षत्र) और 'सुवरदत्त' (स्वर्दत्त)। बोगाज-कोई (Bogl as-Koı) मे पाये हुए और तेल्-यल-अमर्ना (Tell-al-Amarna) के लेखो से यह सिद्ध होता है कि ये लोग भी आर्यो की भाँति सूर्य, वरुण, इन्द्र तथा मरुत् की पूजा करते थे। उनके देवताओ के 'शुरियस' और 'मरुत्तश' सस्कृत के शब्द सूर्य तथा मरुत् ही है। 'सिमलिया' भी हिमालय पर्वत है। मालूम होता है कि ई० पू० १५०० के लगभग मेसोपोटामिया की सभ्यता को नष्ट करनेवाले लोग उन्ही आर्यो के पूर्वज थे जिन्होने भारत के द्रविडो को पराजित किया और वेदो की रचना की।

आर्यो की एक दूसरी शाखा फारस के उपजाऊ मैदानो मे जा बसी। उनका नाम इडो-ईरानियन पडा। पहले इन दोनो दलो मे कोई स्पष्ट भेद नही था। वे एक ही देवताओ की पूजा करते थे। पूजा करने का ढग भी उनका एक ही था। कुछ समय के बाद ईरानी दल बदल गया। उनके नामो में जो समानता रही वह भी धीरे-धीरे जाती रही। ई० पू० छठी शताब्दी के पहले ही उन्होने अपने धर्म को बदल दिया और वे सूर्य और अग्नि की पूजा करने लगे।

**आर्यो का बाहर जाना**—आर्य लोग अपनी जन्म-भूमि को छोडकर किसी निर्जन प्रदेश म नही गये, बल्कि वे ऐसे स्थानो म पहुँचे जहाँ लोग पहले से बसे हुए थे। ऐसी दशा में उन्हे पहले से बसे हुए लोगो के साथ लडना पडा। आर्य लोग आक्रमण करनेवाली सेना की तरह बहुत बडी सख्या में कभी अपने जन्म-स्थान से नही निकले। वे जत्थे बना-बनाकर कई गरोहो में गये और बसने के पहले उन्हे हमेशा युद्ध करना पडा। कही-कही तो अनार्यों ने आर्यों की भाषा और सस्कृति ही नही वरन् उनके देवताओ तक को अपना लिया। परन्तु अधिकतर ऐसा हुआ कि उनकी जमीन और सम्पत्ति छीन ली गई और उन्हें आर्यो ने अपनी रिआया (प्रजा) बना लिया। आर्यों के बाहर निकलने का समय ठीक तौर पर निश्चित नही

किया जा सकता। परन्तु विद्वानो का अनुमान है कि यह घटना ३००० ई० पू० से पहले की नही है।

**पंजाब पर आर्यों की विजय**—आर्य लोग अफगानिस्तान और खैबर के दर्रे से होकर हिन्दुस्तान आये। ऋग्वेद में हमें इसका प्रमाण मिलता है। उसमें कुभा (काबुल), सुवस्तु (स्वात), क्रुमु (कुर्रम) और गोमती (गोमल) नदियो का उल्लेख मिलता है। इससे साफ मालूम होता है कि आर्यों का अधिकार अफगानिस्तान पर था। अनार्यों पर अपनी प्रभुता स्थापित करने में उनको बहुत समय लगा। निस्सन्देह सैकडो वर्षों तक उनका युद्ध चलता रहा होगा। अन्त में आर्यों की विजय हुई और पंजाब में उनका पैर जम गया। वैदिक काल के भारतवासी पंजाब को सप्तसिन्धु* कहते थे। उनकी पहली बस्ती इस देश मे थी और यहाँ वे अधिक काल तक रहे। जब आर्य लोग भारत में आये उस समय वे छोटे दलो मे विभक्त थे। प्रत्येक दल का शासन करने के लिए एक सरदार अथवा राजा होता था। अपने बल के कारण ही उन्हें विजय प्राप्त हुई थी। वे सभ्य नही थे। उनका धर्म बिलकुल प्रारम्भिक अवस्था में था। प्रकृति की शक्तियो से वे डरते थे और उन्ही की पूजा करते थे। वे व्यापार करना नही जानते थे। अदला-बदली से अपना काम चलाते थे। रुपये-पैसे के स्थान में गायो के द्वारा ही लेन-देन या क्रय-विक्रय का काम होता था। जन-समूह के सरदार का धन उसके पशु ही थे। आर्य अपने मुर्दों को जलाते थे और राख तथा हड्डियो को बर्तन में रखकर जमीन में गाड देते थे। प्रारम्भ में आर्यो के यहाँ वर्ण-व्यवस्था नही थी।

---

* ऋग्वेद में लिखित पंजाब की सात नदियो के नाम ये हैं—(१) सिन्धु (सिन्ध), (२) वितस्ता (झेलम), (३) असिक्नी (चेनाब), (४) परुष्णी (रावी); (५) विपाक (व्यास); (६) शुतुद्री (सतलज) और (७) सरस्वती। इन नदियों में सरस्वती सबसे प्रसिद्ध थी और वह सतलज तथा यमुना के बीच में बहती थी।

दस राजाओ का युद्ध—आर्य लोग अनक दलो मे विभक्त थे और अधिक समय तक वे एक दूसरे से पृथक् रहे। वैदिक साहित्य में इन दलो के नाम पाय जाते हैं और उन्ही के नामो पर अफगानिस्तान के अनेक ज़िलो के नाम पडे है। ऋग्वेद में जिन दलो का वर्णन है उनमें अधिक प्रसिद्ध ये थे—भरत—जो उस देश मे रहते थे जो पीछे से ब्रह्मावर्त के नाम से प्रसिद्ध हुआ। मत्स्य उस प्रदेश में थे जहाँ अब अलवर, जयपुर तथा भरतपुर राज्य हैं, अनुस और द्रुह्य पजाब मे थे, तुर्वसु दक्षिण-पूर्व में, यदु पश्चिम में और पुरु सरस्वती नदी के चारो ओर के देश में बसे थ। अन्तिम पाँच दलो का उल्लेख ऋग्वेद मे स्थान-स्थान पर पाया जाता है। पुरुदल के लोग बडे बलशाली थे। इनके अतिरिक्त और भी अनेक दल थे जिनका वर्णन आगे किया जायगा। ये दल बहुधा परस्पर लडा करते थे। ऋग्वेद में लिखा है कि भरत दल के त्रिस्तु वश का राजा सुदास था। उसने पजाब पर अधिकार स्थापित करने के लिए उत्तर-पश्चिम के दस दलो के साथ युद्ध किया। भरत दलवालो और दस दलो के युद्ध का कारण पुरोहित का निर्वाचन था। पहले कुशिक वश का राजा विश्वामित्र भरत दल का पुरोहित था। उसके नेतृत्व में वे लोग सफलतापूर्वक अपने वैरियो से लडे। किन्तु कुछ सम्य के बाद विश्वामित्र पुरोहित के पद से हटा दिया गया और उस पद के लिए वशिष्ठ वश का एक ब्राह्मण निर्वाचित किया गया। इस अपमान से क्रुद्ध हो कर विश्वामित्र ने भरत लोगो से लडने के लिए पश्चिमी पजाब के दस दलो का एक सघ बनाया। परुष्णी (रावी) नदी के तट पर युद्ध हुआ। सुदास राजा ने विश्वामित्र के सयुक्त दल को पराजित किया। अनेक सरदार और ६ हज़ार से अधिक योधा इस लडाई में मारे गये। इस विजय से भरतो की प्रतिष्ठा पजाब मे बढ गई। वे बडे प्रभावशाली हो गये। पूर्व की ओर यमुना नदी तक उनके विस्तार को कोई रोकनेवाला नही रहा। किन्तु कुछ काल के पश्चात् उनकी शक्ति क्षीण हो गई और उनके स्थान में पुरु तथा कुरु लोग शक्तिशाली बन गये। अन्त में ये दोनो दल मिल कर एक हो गये। उनका नाम कुरु रक्खा गया। ये लोग पीछे संहिताओ और ब्राह्मण

ग्रन्थो में वैदिक सभ्यता के मुख्य प्रचारक माने गये। धीरे-धीरे सारा पजाब आर्यों के अधिकार मे आ गया और आर्य-सभ्यता का केन्द्र बन गया। वही से आर्य-सभ्यता शेप उत्तरी भारत में फैली।

**आर्यों में वर्ण-व्यवस्था**—ज्यो ज्यो आर्यों का विस्तार वढता गया उनका समाज, व्यवसायो के अनुसार, कई वर्णों में विभक्त हो गया। जब वे यहाँ स्थायी रूप से बस गये तब भी उन्हे जगली जातियो और द्रविडो से लडना पडता था। आर्य उन्हें निषाद, दास, दस्यु, दैत्य, असुर अथवा राक्षस कहते थे। दास और आर्य लोगो में मुख्य भेद वर्ण अथवा रग का था। निस्सन्देह काला रग वर्ण-व्यवस्था का एक मुख्य कारण था। दूसरी बात यह थी कि जो व्यक्ति आर्यों के देवताओ को नही मानता था उसको वे घृणा की दृष्टि से देखते थे। जो लोग युद्ध में भाग लेते थे वे क्षात्र कहलाये। जो घर पर रह कर खेत जोतते बोते थे उनका नाम विस पड गया। पीछे से पुरोहितो का काम विस तथा क्षात्र लोगो के काम से अलग कर दिया गया। किन्तु इस बात का कोई प्रमाण नही है कि ऋग्वेद के समय में वर्ण जन्म से माने जाते थे। पुरोहित ब्राह्मण वर्ण ही का हो यह आवश्यक नही था। किसी भी बुद्धिमान् तथा सच्चरित्र व्यक्ति को ब्राह्मण कह सकते थे। पुरोहित बडे प्रभावशाली हो गये। उनका दावा था कि हम अपने जादू और मन्त्रो के प्रभाव से शत्रुओ को युद्ध में हरा सकते है। कुछ समय बीतने पर एक चौथा वर्ण बना, इसका नाम शूद्र पडा। इसमें वे लोग थे जिन्हें दास समझकर आर्य उनसे घृणा करते थे। परन्तु बाद को उनकी उपयोगिता स्वीकार कर ली गई और वे समाज के कारीगर तथा मजदूर बन गये। उन्हें कुछ अधिकार दिये गये और क्षात्र वर्ण के लोग उनके सुख का ध्यान रखने लगे।

**आर्यों का विस्तार**—भारतीय आर्यों ने यहाँ के मूल-निवासियो के साथ विवाह किया और अनेक विदेशी जातियो को अपने समाज में मिला लिया। इस प्रकार अनेक दलो के मिला लेने से उनकी शक्ति वढ गई और वे पूर्व तथा दक्षिण की ओर फैलने लगे। धीरे-धीरे वे उस प्रदेश में भी

आकर वस गये जिसे आज-कल सयुक्त-प्रान्त कहते हैं। उत्तर वैदिक काल में मध्य देश* म कई वडे राज्य स्थापित हुए। इनम प्रसिद्ध राज्य ये है—थानेश्वर मे कुरु राज्य, पाञ्चाल राज्य रुहेलखण्ड तथा दोआव के भीतरी भाग में, मत्स्य राज्य जयपुर तथा अलवर में, कोशल का राज्य अवध में, काशी बनारस म, तथा विदेह राज्य आधुनिक मिथिला और दरभगा के जिलो म। सरस्वती और दशद्वती (चौतङ्ग) के बीच का भू-भाग ब्रह्मावर्त्त अथवा कुरुक्षत्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ। पश्चिमी भारत में भी आर्यों का प्रभाव पहुँचा। हमें इस बात का उल्लेख मिलता है कि मालवा, सौराष्ट्र तथा सिन्धु नदी की तलहटी के राजा आर्यों की धार्मिक क्रियाओ का अनुसरण करते थे। विहार और बगाल का दक्षिण-पूर्व का भाग वहुत दिनो तक आर्यो की सभ्यता से बाहर रहा। किन्तु यहाँ के आदिम निवासियो को भी उनकी प्रभुता स्वीकार करनी पडी। आर्य लोगो ने यहाँ अङ्ग (विहार), वङ्ग (बगाल), पुण्ड (उत्तर बगाल), सुह्म (दक्षिण बगाल) और कलिङ्ग के राज्य स्थापित किये। दक्षिण भारत अथवा दक्षिणापथ मे विजयी आर्य सबसे अन्त में पहुँचे। उत्तर वैदिक-काल में उन्होने विन्ध्य पर्वत को पार कर उस देश में प्रवेश किया। वहाँ पहुँचकर उन्होने अपनी बस्तियाँ बनाईं और फिर कुछ समय के बाद शक्तिशाली राज्यो की नीव डाली। दक्षिण भारत का अधिक भाग इस समय भी जगलो से ढका हुआ था और उसमें जगली जातियाँ निवास करती थी। रामायण से हमें यह ज्ञात होता है कि इस भाग मे आर्य-सभ्यता फैलाने का उद्योग किया गया। इन प्रदेशों को जीतने मे आर्यों को अनार्य लोगो के सम्पर्क में आना पडा। परस्पर विवाह होने लगे और इसके फल-स्वरूप एक नई सभ्यता का जन्म हुआ। इस नवीन सभ्यता में अनार्य लोगो की सभ्यता के चिह्न भी मौजूद थे। द्रविड लोगो ने धीरे-धीरे आर्यों के नाम, रीति-रवाज तथा धर्म को स्वीकार

---

* मध्य देश उत्तर में सरस्वती से लेकर पूर्व में प्रयाग तथा विहार के कुछ भाग तक फैला हुआ था।

कर लिया। आर्य पुरोहितो ने भी उनके कुछ देवताओ को अपनाया। वर्ण-व्यवस्था की जटिलता कुछ कम हो गई और धीरे-धीरे कई नई जातियाँ बन गईं।

भारत की जन-सख्या—भारत में कोई ऐसी जाति नही आई जो फिर अपने मूल-स्थान को लौटकर वापस गई हो। यही कारण है कि यहाँ की जन-सख्या में कई तरह के लोग सम्मिलित है। पहले कह चुके है कि बिहार, उडीसा तथा बगाल के भील एव सथाल और सुदूर दक्षिण के तामिल तथा तेलगू उन जातियो के वशज है जो आर्यों के आने के पहले यहाँ बसी हुई थी। पजाब और काश्मीर में आर्यों का रक्त अधिक मात्रा मे है। इसके विपरीत बगाल तथा दक्षिण भारत मे उसका एकदम अभाव-सा है। बगाल के उत्तर-पूर्वी भाग तथा आसाम के लोगो मे मगोल जाति का रक्त दिखाई पडता है। इससे जान पडता है कि प्राचीन काल में वहाँ मगोल जाति के लोग रहते थे।

यूनानी, शक, कुशान तथा हूण लोगो का हाल, जिन्होंने ई० पू० दूसरी शताब्दी से भारत में आना आरम्भ किया, हम आगे पढेंगे। हिन्दू-सस्कृति पर उनका अधिक प्रभाव नही पडा, बल्कि इसके विपरीत वे स्वय थोडे ही काल म भारतीय बन गये। आठवी शताब्दी में धार्मिक अत्याचार से बचने के लिए बहुत-से ईरानी अपना देश छोड कर यहाँ आये और बबई तथा गुजरात में बस गये। ये लोग पारसी कहलाते है और अधिकाश धनाढ्य तथा सम्पत्तिशाली है। ये जरथुस्त्र के धर्म को मानते हैं और अग्नि की पूजा करते है।

# अध्याय ३

## वैदिक काल की सभ्यता और संस्कृति

**वेदो की प्राचीनता**—वेद भारतीय आर्यों के सबसे प्राचीन ग्रथ हैं। अधिकाश हिन्दुओ की धारणा है कि वेद सृष्टि के आदि से वर्तमान है और ब्रह्मा के द्वारा कहे गये है। वेद का अर्थ है 'ज्ञान'। कुरान और बाइबिल की तरह वेद कोई एक ग्रथ नही है। यह अनेक शताब्दियो में रचे हुए साहित्य का एक सामूहिक नाम है। यूरोपीय विद्वानो का मत है कि वेदो के कुछ भाग ऐसे है जिन्हे आर्यों ने उस समय रचा था जब कि वे अलग-अलग नही हुए थे। परन्तु इसका कोई प्रमाण नही है। वेदो की रचना भारतवर्ष में ही हुई और पाश्चात्य विद्वानो की राय है कि ई० पू० ८०० के लगभग तक समस्त वैदिक साहित्य समाप्त हो गया था।

**वैदिक साहित्य**—वेद चार है—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। प्रत्येक वेद के तीन भाग है—(१) सहिता जिसमें वैदिक ऋचाओ का सकलन है। (२) ब्राह्मण-ग्रन्थ—ये गद्य मे है और इनमें कर्मकाण्ड की विधियो तथा नियमो का वर्णन है। इनमे ऋचाओ की टीका की गई है। ब्राह्मणो मे हमें भारतीय आर्यों के उपनिवेशो के विस्तार का प्रमाण मिलता है। उनसे हमें यह भी ज्ञात होता है कि भारतीय आर्यों की सभ्यता धीरे-धीरे गगा और यमुना की तलहटी में होती हुई बनारस तक फैल गई थी। (३) आरण्यक और उपनिषद् दार्शनिक ग्रथ हैं। इनके अनुसार सारी सृष्टि उस महान् सत्ता अर्थात् ईश्वर का ही रूप है जो प्रत्येक परमाणु में मौजूद है। 'अरण्य' शब्द का अर्थ वन है। आरण्यक इतने पवित्र माने गये हैं कि वे वनो में ही पढे जा सकते है। उपनिषदो की भाषा साफ और शैली सरल है। सारे ससार में उनका बडा सम्मान है। जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक शापेन-

हावर ने उनके सम्बन्ध में लिखा है कि "उपनिषदो का अध्ययन जितना हितकारी और आत्मा को ऊँचा उठानेवाला है उतना दूसरे ग्रथो का नही। उनसे मुझे अपने जीवन में शान्ति मिली है और अन्तकाल में भी मुझे उन्ही के द्वारा शान्ति मिलगी।" उपनिषदो के पढने से प्रतीत होता है कि जिस समय उनकी रचना हुई, भारतीय आर्यों ने अपनी सभ्यता में बहुत उन्नति कर ली थी और उनके पुरोहितो ने अपन पूर्वजो के धर्म में अदल-बदल करना प्रारम्भ कर दिया था। वैदिक ऋचाओ की रचना वशिष्ठ, विश्वामित्र, जमदग्नि, अत्रि, अगस्त्य आदि ऋषियो द्वारा हुई। साधारणत हिन्दुओ की यह धारणा है कि वेद ईश्वरोक्त हैं। किसी अलौकिक शक्ति के प्रकाश से इनका ज्ञान ऋषियो को हुआ। इसी लिए वेदो को श्रुति भी कहते है। श्रुति का अर्थ है 'सुना हुआ'।

सहिता—ऋग्वेद महिता वैदिक साहित्य का सबसे प्राचीन भाग है। इसमें कुल १०२८ सूक्त है और प्रत्येक सूक्त में अनेक मन्त्र है। ये सूक्त विविध देवताओ को प्रसन्न करने के लिए उन्ही को सम्बोधित करके लिखे गये है। सहिता दस मण्डलो में विभक्त है। यजुर्वेद सहिता में बहुत से मन्त्र ऋग्वेद के है। इसके अतिरिक्त यज्ञो की विधियाँ बताने के लिए इनमें अनेक गद्याश भी हैं। सामवेद सहिता ऐसे मत्रो का सग्रह है जिन्हें सोमयज्ञ के अवसर पर पुरोहित लोग गाते थे। ये मत्र ऋग्वेद से ही लिये गये हैं और केवल इनका क्रम बदल दिया गया है। यद्यपि साहित्यिक दृष्टिकोण से इनका मूल्य बहुत ही कम है तथापि भारतीय सगीत के इतिहास के लिए ये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इनसे यज्ञ की विधियो पर भी काफी प्रकाश पडता है। अथर्ववेद सहिता में कुछ मत्र ऋग्वेद के है और कुछ सामवेद के। इसमें गद्य और पद्य दोनो का सम्मिश्रण है। इसमें उन मत्रो और जादू का वर्णन है जिनके द्वारा दैत्यो और शत्रुओ का सर्वनाश किया जा सकता था और सफलता तथा समृद्धि की प्राप्ति हो सकती थी। बहुत काल तक इसको लोगो ने वैदिक साहित्य में स्थान नही दिया और अभी तक भी इसका पूर्ण रूप से अध्ययन नही किया गया है।

**वेदों का समय**—वेदो में ऋग्वेद सवसे प्राचीन है। किन्तु यह बताना असम्भव है कि इसकी रचना किस समय हुई। इसके प्रारम्भिक भाग ई० पू० २५०० के करीब के रचे हुए मालूम होते हैं, यद्यपि कुछ अश ऐसे भी हैं जो ई० पू० ८०० के हो सकते हैं। अन्य वेद ई० पू० १५०० से लेकर ई० पू० ८०० के वीच में रचे गये होगे। इस दीर्घकाल में धर्म और समाज में वहुत से परिवर्तन हुए। इसलिए वैदिक काल के प्रारम्भिक भाग के विषय में जो वात सत्य है वह उत्तरकाल के लिए ठीक नही मानी जा सकती। यह आवश्यक नही है कि पूर्व वैदिक काल में जो रीति-रवाज प्रचलित थे वे उत्तर वैदिक काल में भी प्रचलित रहे हो।

**सामाजिक सगठन**—वैदिक काल में समाज का सगठन प्रारम्भिक अवस्था में था। भिन्न-भिन्न वश तथा जन देश में स्थिर रूप से बस गये और उन्होने खानावदोशो की तरह घूमना-फिरना छोड दिया। सामाजिक सगठन का आधार सयुक्त परिवार था। वहुत-से परिवारो का मिलकर कुटुम्ब वनता था। कुटुम्बो के समूह को 'ग्राम' और ग्रामो के समूह को 'विस' कहते थे। कई विसो के सयोग से 'जन' वनता था और प्रत्येक 'जन' का एक राजा होता था। जन कई श्रेणियो में विभक्त थे जिनमें से मुख्य ब्राह्मण, क्षात्र और विस थे। इन जातियो में परस्पर कोई विभिन्नता न थी। ब्राह्मण क्षत्रिय और क्षत्रिय ब्राह्मण हो सकता था। आर्यों की विजय के वाद समाज में 'दस्यु' नामक एक चौथी जाति वन गई। दस्यु लोग जगली नही थे। वे नगरो में रहते थे। गाय, घोडे और रथ ही उनकी सम्पत्ति थे। उनके पास क़िले थे। शासन करने के लिए उनके यहाँ राजा होते थे जिनमें से कुछ वडे शक्तिशाली थे। आर्यों की भाँति वे युद्ध करते थे और उनके पास वैसे ही हथियार थे। कालान्तर में उनमें से कुछ लोग आर्यों के साथ मिल-जुल गये और उन्होने उनकी सभ्यता ग्रहण कर ली।

**वैदिक धर्म**—पूर्व वैदिक काल का धर्म अत्यन्त सरल था। आर्य लोग धन-धान्य और पशुओ की प्राप्ति के लिए देवताओ की स्तुति करते थे और यज्ञ करते थे। देवता सख्या में तेंतीस थे जिनमें से मुख्य वरुण,

सविता (सूर्य), वायु, अश्विन (दैवी चिकित्सक), मरुत्, इन्द्र, अग्नि और सोम थे। सोम एक पौधा होता था जिसका रस पवित्र अवसरो पर पिया जाता था। उषा की भी उपासना की जाती थी। इस काल में यही एक देवी थी। न तो मूर्त्तिपूजा का प्रचार था और न कोई मन्दिर थे। स्तुति और यज्ञ पर वडा जोर दिया जाता था। देवताओ को प्रसन्न करने के लिए खाने-पीने की चीजो का भोग और पशुओ का वलिदान किया जाता था। लोगो का विश्वास था कि यज्ञ न किये जायँगे तो न दिन होगा न रात होगी, न फसल तैयार होगी और न पानी वरसेगा। यज्ञ के विना इन सब चीज़ो के देने की शक्ति देवताओ में न रहेगी।

देवताओ की कल्पना मनुष्य के रूप में की गई है। वे दयालु और उदार होते है। वे साधु अथवा धर्मात्मा पुरुषो की रक्षा करते और पापियो को दण्ड देते है। इन्द्र और मरुत् की तरह उनमे से कुछ तो योद्धाओ के रूप में हमारे सामने आते है और कुछ अग्नि और वृहस्पति की भाँति पुरोहित के रूप में। वे सब स्वर्गीय रथो में चलते है जिनको प्राय दो घोडे खीचते है। उनका भोजन मनुष्यो का-सा है। वे सोम-रस का पान करते है और स्वर्ग में वडे आनन्द के साथ अपना जीवन व्यतीत करते है। ऋग्वेद के देवता मनुष्यो को भोजन देते हैं। वे पाप का नाश करते है और मनुष्य की कामनाओ को पूरी करते है। उनमें अनेक दैवी गुण है, जैसे—ज्ञान, प्रतिभा और परोपकार। उनकी सन्तुष्टि के लिए ही स्तुतियो द्वारा उनका गुणानुवाद किया जाता था।

उत्तर वैदिक काल में धर्म में अनेक परिवर्त्तन हुए। देवताओ की सख्या बढ गई और यज्ञो की अपेक्षा उनका महत्त्व कम हो गया। यज्ञो ने बडा जटिल रूप धारण कर लिया। महत्त्व और स्वरूप के अनुसार उनके कई भेद हो गये। यज्ञो को ठीक प्रकार से करने के लिए ब्राह्मण-ग्रथो में सविस्तर नियम बनाये गये। इन नियमो का जरा-सा भी उल्लघन पाप समझा जाता था।

ऋग्वेद के अन्तिम मण्डल में हम ईश्वर की भावना का आभास मिलता

है। उसमें लिखा है कि सारे जगत् की आत्मा एक है जो प्रकृति तथा देवताओं में निवास करती है और अन्य सब देवताओं से बढकर है। इस भावना
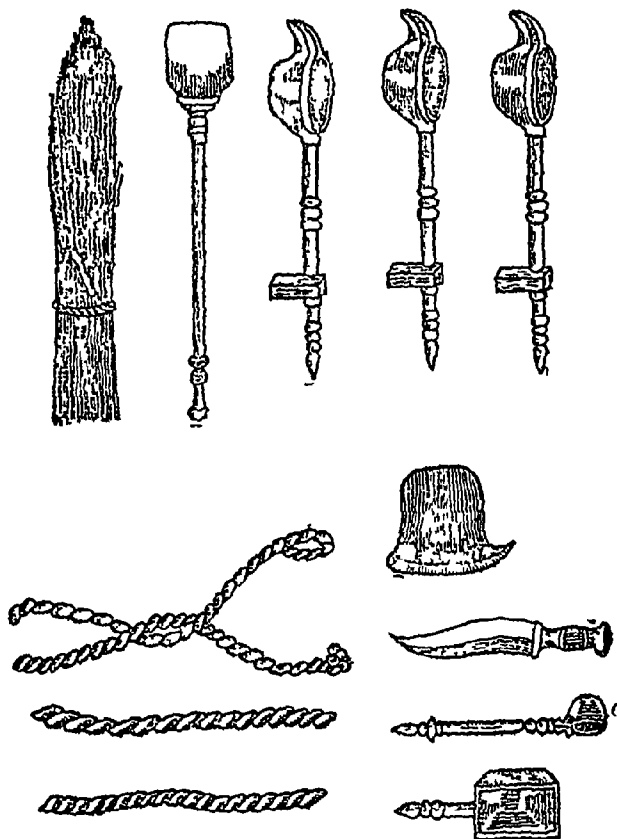
यज्ञकरण-सामग्री

का पूर्ण विकास उपनिषदों में मिलता है। कर्मकाण्डियों को इन सब बातों से कुछ मतलब न था। वे केवल अपने यज्ञों से ही सन्तुष्ट थे।

शासन-पद्धति—ऋग्वेद के समय के लोग कई जन-समूहो में विभक्त थे। प्रत्येक जन-समुदाय का एक राजा होता था। कभी-कभी राजा का चुनाव होता था परन्तु बहुधा राजगद्दी का हक राजकुल में ही रहता था। युद्ध में राजा अपने 'जन' का नेता होता था। मुकदमो का फैसला भी वही करता था। राज्याभिषेक के समय उसे प्रतिज्ञा करनी पडती थी कि मैं प्रजा के साथ दया का वर्ताव करूँगा। बडे-बडे मामलो में राजा को परामर्श देने के लिए 'सभा' और 'समिति' नाम की दो परिषदें थी। ऐसा मालूम पडता है कि आवश्यकता पडने पर इन्ही परिषदो द्वारा राजा का निर्वाचन भी होता था। राज्य की आमदनी के दो मुख्य ज़रिये थे—एक तो पराजित जातियो से वसूल होनेवाला कर और दूसरा प्रजा की भेंट। इनके अतिरिक्त आय के और भी ज़रिये थे जैसे युद्ध के समय लूटा हुआ माल, ज़मीन और गुलाम। फौजदारी के मामलो को राजा ही तय करता था। कानून कठोर था और छोटे-छोटे अपराधो के लिए कठिन दण्ड दिया जाता था। ब्राह्मण की हत्या करना भारी अपराध समझा जाता था। विश्वासघात करने-वालो को फाँसी की सज़ा दी जाती थी। चोरी करते हुए पकडा जाने पर चोर सूली पर लटका दिया जाता था। राजा दीवानी के मामलो का भी फैसला करता था। इस कार्य मे जन-समूह के वडे-बूढे लोग उसकी सहायता करते थे।

स्थानीय शासन की पद्धति सरल थी। गाँव का मुखिया 'ग्रामणी' कहलाता था। उसे राजा नियुक्त करता था और कभी-कभी उसका पद मौरूसी भी होता था। भूमि के क्रय-विक्रय का किसी को अधिकार नही था। केवल चल-सम्पत्ति ही दूसरे को दी जा सकती थी। ऋण लेने की प्रथा थी पर यह नही कहा जा सकता कि सूद की दर क्या थी। ऋण के नियम कठिन थे। कभी-कभी ऋणी मनुष्य गुलाम वनाकर वेच दिये जाते थे।

सैनिक सगठन—सेना का प्रवन्ध साधारण और पुराने ढग का था। राजा और उसके सरदार रथो पर चढकर युद्ध करते थे और साधारण लोग पैदल। तीर, कमान और भाले ही इस समय के मुख्य हथियार थे। तल-

वारो का प्रयोग नही होता था। पैदल सैनिक कवच नही पहनते थे परन्तु योघा लोग पहनते थे। युद्ध में घोडो से काम नही लिया जाता था। इसका कारण यह था कि घोडे पर से धनुप-वाण चलाने मे दिक्कत होती थी।

आर्थिक स्थिति—खेती लोगो का प्रधान व्यवसाय था और उनके पशु ही उनकी सम्पत्ति थे। गेहूँ और जौ खास फसलें थी। खेती का तरीका प्राय आज-कल का सा ही था। हल को खीचने के लिए दो वैल होते थे जो कि रस्सी या तस्मे से जुए में वँधे रहते थे। हल का फल लोहे का होता था। सिंचाई के लिए काफी सुविधाएँ थी। कुओ और नहरो से खेत सीचे जाते थे। अथर्ववेद में अनेक ऐसे मन्त्र दिये गये है जिनके द्वारा फसल को नष्ट करनेवाले कीडे और दैत्य भगाये जा सकते थे। इनके साथ-साथ ऐसे भी मन्त्र हैं जिनके प्रयोग से सूखा अथवा अतिवृष्टि से किसान वच सकते थे। कुछ लोग सूत कातना, कपडा बुनना, रथ बनाना, मिट्टी के बर्तन तैयार करना, चमडे को कमाना, वढई, लोहार या सोनार का काम करना आदि व्यवसाय करते थे। स्त्रियाँ भी कपडा वुनना जानती थी। दूल्हे के जामे के कपडे को स्वय दुलहिन ही वुनती थी। पीछे से इन व्यवसायो की इतनी उन्नति हुई कि विभिन्न श्रेणियो के कारीगरो ने अपने अलग-अलग सघ वना लिये। प्रत्येक सघ का एक शासक होता था। व्यापार अदला-वदली से होता था। सम्भव है कि किसी प्रकार का सिक्का भी उस समय प्रचलित रहा हो।

विवाह—आर्यों ने अपने कौटुम्विक तथा सामाजिक जीवन में भी काफी उन्नति की थी। साधारणत पुरुप एक स्त्री के साथ विवाह करता था। स्त्रियो का आचरण पवित्र होता था। उस समय वाल-विवाह की प्रथा नही थी। स्त्री-पुरुपो को यह निर्णय करने की स्वतन्त्रता थी कि वे किसके साथ अपना विवाह करें। विवाह में वर्ण का कोई वन्धन नही था। ब्राह्मण अपने से छोटे वर्ण के साथ विवाह कर सकते थे, यद्यपि वाद को शूद्र-स्त्री के साथ विवाह करना अनुचित समझा जाने लगा। इस वात का हमें कोई प्रमाण नही मिलता कि विधवा-विवाह की प्रथा सर्व-साधारण

में प्रचलित थी या नहीं। विवाह एक धार्मिक कृत्य समझा जाता था और सदाचार पर बहुत जोर दिया जाता था। लडकी बेचना बुरा समझा जाता था। दहेज उसी दशा में दिया जाता था जब कि लडकी के शरीर में कोई दोष होता था।

**भोजन, पान, पोशाक तथा आमोद-प्रमोद**—वैदिक काल के लोग रोटी, तरकारी और फल खाते थे। वे दूध और घी को भी काम में लाते थे। मास खाने का भी रवाज था परन्तु कुछ अवसरो पर उसे बुरा समझा जाता था और शराब के समान घृणित माना जाता था। आर्य सोमरस का पान करते थे। यह एक प्रकार के पौधे से निकाला जाता था और यज्ञ के समय काम में लाया जाता था। सुरा अर्थात् शराब इससे भिन्न थी। यह अनाज से बनाई जाती थी। यह बडी नशीली होती थी और पुरोहित लोग इसे बुरी समझते थे। लोगो की पोशाक सादी थी। पगडी के अतिरिक्त उनके पहनने के तीन और कपडे होते थे। कभी कभी कपडो पर सोने का काम होता था। सोने का हार, कर्णफूल, हाथ-पैर के कडे आदि जेवर, स्त्री-पुरुष दोनो पहनते थे। पुरुष अपने बालो में तेल लगाते थे और कघी से काढते थे। स्त्रियाँ माँग काढती थी। बाल बनाने की रीति प्रचलित थी परन्तु बहुधा लोग दाढी रखते थे। आर्यों का जीवन आनन्दमय था। नाचने-गाने का रवाज था। शिकार करना और रथ दौडाना उनके मनोविनोद के मुख्य साधन थे। जुआ खेलना बुरा नही समझा जाता था। परन्तु यदि लडके जुआ खेलते समय पकड जाते तो उन्हे दण्ड दिया जाता था। घूसेबाजी की प्रथा थी और नट अपनी कलाओ से लोगों का चित्त प्रसन्न करते थे।

**स्त्रियो की स्थिति**—स्त्रियो को काफी स्वतंत्रता थी। कुटुम्ब और समाज मे स्त्री को बडा आदरणीय स्थान प्राप्त था। स्त्रियाँ अपने पतियों के साथ यज्ञो में भाग लेती थी। पर्दे का रवाज नही था। लडकियो को भी अच्छी शिक्षा दी जाती थी। कुछ स्त्रियो ने ऋषियो का पद प्राप्त किया और वेद की ऋचाओ की रचना की। अच्छी स्त्रियाँ प्रात काल उठती थी और दही को मथकर मक्खन निकालती थी। लडकियाँ काम

करने में अपनी माँ का हाथ बँटाती थी और कुओं से जल भरकर लाती थीं। स्त्रियाँ बड़ी साध्वी और पतिव्रता होती थी। वे अपने पति की सेवा करती थी। जो स्त्री घर के प्रत्येक व्यक्ति के आराम का खयाल रखती थी और घर को सुख तथा आनन्द का स्थान बनाती थी उसका अधिक आदर होता था। ऐसा मालूम होता है कि सती की प्रथा उस समय प्रचलित थी। कभी-कभी पति की मृत्यु पर विधवा स्त्री स्वयं जलकर अपने प्राण त्याग देती थी अथवा उसके सम्बन्धी उसे जीते-जी जला डालते थे। यह प्रथा क्षत्रियो में थी। अन्य जाति की विधवाये इस प्रकार मरने की अपेक्षा जीवित रहना पसन्द करती थीं। पुत्र पाने की इच्छा लोगो में प्रबल थी। लड़की पैदा होने पर खुशी नहीं मनाई जाती थी।

विद्यार्थी-जीवन—जिन बालको को आगे चल कर पुरोहित बनना होता था उन्हें अपने विद्यार्थी-जीवन में ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करना पड़ता था। अन्य वर्णों के बालक भी ऐसा ही करते थे। उसके लिए गुरु दूसरी माता के समान था और उन पर बड़ी कृपा रखता था। गुरु के घर रहकर विद्यार्थी प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन करता था। गुरु पाठ को सुनाता था और विद्यार्थी उनको फिर दुहराते थे। सारी विद्याएँ इसी प्रकार ज़बानी पढ़ाई जाती थीं। शिक्षा की यही प्रणाली कई शताब्दियों तक जारी रही।

वर्ण-व्यवस्था—पहले आर्यों में तीन वर्ण थे—ब्राह्मण, राजन्य (क्षत्रिय) और विश अर्थात् वैश्य। जैसे जैसे आर्य लोग देश में इधर-उधर फैलने लगे, उनके सामाजिक संगठन में परिवर्त्तन होने लगा। अनार्य लोगों के धीरे-धीरे समाज में मिल जाने से एक चौथा वर्ण बन गया जो शूद्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जब यज्ञो और अनुष्ठानो की संख्या बढ़ गई तो कुछ ऐसे लोगों की आवश्यकता हुई जो इसी काम में अपना जीवन व्यतीत करते थे। ये ब्राह्मण कहलाने लगे। यज्ञ करना-कराना, विद्या पढ़ना-पढ़ाना और दान लेना इन्हीं का काम बन गया। शासन और युद्ध करने-वाले लोग क्षत्रिय कहलाये और उनकी एक अलग जाति बन गई। अधिकांश

आर्य खेती करते थे और दूसरे व्यवसायो मे लगे रहते थे। ये वैश्य कहलाने लगे। अध्ययन में इनकी अधिक रुचि न थी। गाँव का मुखिया वनने की इनकी वडी अभिलाषा होती थी। इस पद पर राजा धनवान् वैश्यो को नियुक्त करता था। शूद्रो का कर्तव्य उच्च वर्णों की सेवा करना और व्यवसाय में योग देना निश्चित हुआ।

यद्यपि समाज वर्णों मे विभक्त हो गया था परन्तु जाति-बन्धन कठिन नही था। कडे नियम केवल उन लोगो के लिए थे जो किसी वडे धार्मिक अनुष्ठान में तत्पर होते थे। धीरे-धीरे जाति जन्म और पेशो के अनुसार बनने लगी।

कालान्तर में अनेक जातियाँ वन गईं। जातियो के वन्धन भी दृढ हो गये। इन चार वर्णों के अतिरिक्त एक जाति अछूतो अर्थात् चाण्डालो की वन गई।

जाति की सस्था से भारत को बडी हानि पहुँची है। देश में एकता का अभाव इसी का परिणाम है। जो मनुष्य जिस जाति में उत्पन्न हुआ है वह उसी का पेशा करता है। इससे सामाजिक उन्नति में वडी रुकावट होती है। जाति के नियम कडे होने के कारण लोग विदेशो में नही जा सकते। परन्तु आधुनिक शिक्षा के प्रभाव से जाति के वन्धन अव बहुत कुछ ढीले पड गये है। आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज इत्यादि सस्थाओ ने भी इस मामले में प्रशसनीय उद्योग किया है।

# अध्याय ४

## उत्तर वैदिक काल

वेदाग—छ वेदाग अर्थात् वेदो के भागो मे निम्नलिखित छ विषय सम्मिलित है—

(१) शिक्षा (अर्थात् सूक्तो का शुद्ध उच्चारण)। (२) छन्द। (३) व्याकरण—पाणिनि का व्याकरण सर्वोत्तम है। पाणिनि का काल विद्वानो ने ई० पू० सातवी शताब्दी निर्धारित किया है। (४) निघन्टु (वैदिक शब्दो का अर्थ)। (५) कल्प (कर्मकाण्ट)। (६) ज्योतिप। इनमें से कुछ मूत्रो के रूप में है और इतने सूक्ष्म है कि उनका आशय समझना भी अत्यन्त कठिन है। यह निश्चय करना असम्भव है कि सूत्रो की रचना किस काल में हुई। परन्तु स्थूल रूप से इतना कहा जा सकता है कि ईसा के पूर्व आठवी और दूमरी शताब्दियो के वीच में ये रचे गये होगे।

कल्पसूत्र—कल्पमूत्र तीन प्रकार के है—(१) गृह्यसत्र, (२) श्रौत-सूत्र, (३) धर्मसूत्र। सवमे प्राचीन सत्रो की रचना उस समय हुई थी जिस समय वौद्ध धर्म का आविर्भाव हुआ। वैदिक धर्म में जो सरलता थी उसमें वहुत परिवर्त्तन हो गया और कर्मकाण्ड का जोर वढा। ब्राह्मणो ने कुछ धार्मिक क्रियाओ का प्रचार किया और उनको अत्यन्त महत्त्वपूण वताया। गृह्यसूत्रो में छोटे-छोटे घरेलू यज्ञो का वणन है और जन्म से लेकर मृत्यु तक मनुष्य के जीवन का चित्र है। श्रौतसूत्रो में उन कर्मकाण्डो का वर्णन है जो वडे-वडे वैदिक यज्ञो के साथ किये जाते थे। वास्तव में इन सूत्रो से वैदिक यज्ञो के करने मे वडी सहायता मिलती है।

धर्मसूत्रो में धार्मिक और सामाजिक जीवन का वर्णन है। उनमें दीवानी और फौजदारी के कानून तथा विरासत के नियमो का उल्लेख है। इन सूत्रो के अनुसार प्रत्येक मनुष्य के जन्म से मृत्युपर्यन्त ४० सस्कार निर्धारित किये गये है। इनमें से कुछ अब तक हिन्दुओ में प्रचलित हैं।

**यज्ञ का महत्त्व**—सूत्रो में कई प्रकार के यज्ञो का उल्लेख है जिनमें राजसूय और अश्वमेध अधिक प्रसिद्ध है। राजसूय यज्ञ राज्याभिषेक के समय किया जाता था। इस यज्ञ के पूर्व एक वर्ष तक अनेक प्रकार के धार्मिक कृत्य किये जाते थे। अश्वमेध यज्ञ में एक घोडा १०० रक्षको के साथ छोड दिया जाता था और यज्ञ करनेवाला राजा अन्य राजाओ को चुनौती देता था। साल भर तक घोडा घूमता फिरता था। साल के अन्त मे जब वह वापस लाया जाता था तब राजा-रानी यज्ञ करते थे। इसके बाद पुरोहित राजा को अभिषिक्त करता था।

इसमे कोई सन्देह नही कि उपर्युक्त दोनो यज्ञ वे ही शक्तिशाली राजा करते थे जिनकी प्रभुता और पराक्रम को उनके समकालीन शासक स्वीकार करते थे। महाभारत तथा रामायण मे इन दोनो प्रकार के यज्ञो का वर्णन है।

**तपस्या**—कुछ समय के बाद लोगो के मन में यह भाव पैदा हुआ कि मोक्ष पाने के लिए तप करना अथवा शारीरिक कष्ट सहना आवश्यक है। शरीर को कष्ट देना सर्वोत्कृष्ट धार्मिक कृत्य समझा गया। लोग जगलो मे चले जाते और वहाँ कठिन तप करते थे। धीरे-धीरे लोगो का दृष्टिकोण बदल गया और दैनिक जीवन में यज्ञ के स्थान पर तपस्या को महत्त्व दिया गया।

**षट्दर्शन**—एक ओर तो ऐसे लोग थे जिनका खयाल था कि केवल तप के द्वारा ही परम आनन्द की प्राप्ति हो सकती है। परन्तु इनके साथ ही कुछ ऐसे भी थे जो कहते थे कि सच्चे ज्ञान से ही मोक्ष मिल सकता है। उन्होने कर्मकाण्ड और तप को बुरा नही बताया परन्तु उनके

महत्त्व को नही स्वीकार किया। उन्होने कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड के भेद ५र जोर दिया और कहा कि जो ईश्वर को जानता है वह उसे केवल प्राप्त ही नही करता वरन् स्वय उसके तुल्य हो जाता है।

षट्दर्शनो के नाम ये है—कपिल मुनि-रचित साख्य-शास्त्र, पतञ्जलि का योगदर्शन, गौतम-रचित न्याय-दर्शन, कणाद मुनि का वैशेषिक दर्शन, जैमिनि का पूर्व-मीमासा और व्यास का उत्तर-मीमासा।

षट्दर्शनो में जो विचार प्रकट किये गये हैं, वे उपनिषदो के वाद के हैं और उनकी अपेक्षा ऊँचे दर्जे के है।

चार आश्रम—किस प्रकार मनुष्य को अपना जीवन व्यतीत करना चाहिए—सूत्रो मे इसके सविस्तर नियम दिये गये है। उपनयन के वाद जव वालक का यज्ञोपवीत सस्कार हो जाता था तव उसकी गिनती अपने वर्ण मे होती थी और वह शिक्षा प्राप्त करने के लिए अपने गुरु के पास जाता था। विद्या पढने मे वहुधा उसके २४ वर्ष व्यतीत हो जाते थे। इसके वाद वह अपना विवाह करता था और गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता था। गार्हस्थ्य जीवन मे उसका कर्त्तव्य था कि ब्राह्मणों को दान दे, अतिथि-सत्कार करे और विद्यार्थियो का भी स्वय भरण-पोषण करे। लगभग ५० वर्ष की अवस्था में वह ससार को त्याग कर जगल मे चला जाता था और वहाँ कद-मूल-फल खाकर जीवन-निर्वाह करता था। जीवन के अन्तिम भाग मे वह सन्यास धारण करता था और देश में भ्रमण करता था। इस समय वह भिक्षा माँगकर अपना निर्वाह करता था। जीवन की ये ही चार अवस्थाएँ ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास आदि चार आश्रमो के नाम से प्रसिद्ध हैं।

समाज—धर्मसूत्रो में मनुष्य के सामाजिक जीवन का वर्णन है। उनमें ऐसे समाज का चित्र खीचा गया है जिसमे वैदिक काल की अपेक्षा वर्ण-व्यवस्था अधिक दृढ हो गई थी। सूत्रो का आदेश है कि किसी व्यक्ति को विना सकट पडे, अपना पैत्रिक व्यवसाय नही छोडना चाहिए। सूत्रकाल में भिन्न-भिन्न वर्णो के लोग एक साथ भोजन कर सकते थे।

उच्च वर्ण का मनुष्य अपने से नीच वर्ण की लडकी के साथ विवाह कर सकता था। परन्तु उच्च वर्ण की लडकी को अपने से नीचे वर्णवाले के साथ विवाह करने की आज्ञा न थी। लडकियो का छोटी अवस्था में विवाह करना बुरा नही समझा जाता था। विधवाओ का पुर्नविवाह किसी-किसी हालत में हो सकता था। धर्मशास्त्र के रचयिताओं ने नगरो में रहना नापसन्द किया और उन्हें अपवित्र बतलाया। इन्ही धर्मसूत्रो के आधार पर धर्मशास्त्र रचे गये। धर्मशास्त्र पद्य में हैं। इनमें मनुस्मृति अधिक प्रसिद्ध है। इसकी रचना ई० पू० द्वितीय शताब्दी में मनु महाराज ने की। मनुस्मृति के समय में वर्ण-व्यवस्था का काफी विकास हो गया था। भिन्न-भिन्न वर्णों में परस्पर विवाह करना बुरा समझा जाने लगा था। इसमें ब्राह्मणो की अधिक प्रशसा की गई है और चाहे वे शिक्षित हो अथवा अशिक्षित, उनको पृथ्वी के देवता समझने का आदेश किया गया है। मनु ने चारो आश्रमो का सविस्तर वर्णन किया है और प्रत्येक आश्रम का धर्म भी बतलाया है। उन्होने दीवानी और फौजदारी कानून के नियम भी दिये हैं। स्त्रियो के प्रति कुछ निष्ठुरता दिखाई गई है परन्तु स्त्री-शिक्षा का विरोध नही किया गया है। कही-कही पर यह भी कहा गया है कि जहाँ स्त्रियाँ प्रसन्न रहती है वहाँ देवता निवास करते हैं।

स्त्रियो की स्थिति—उत्तर वैदिक काल मे स्त्रियो की स्थिति पहले की सी न रही। उन्हें सम्पत्ति पर अधिकार नही दिया गया और इसी लिए उनका दर्जा छोटा हो गया। राजा लोग एक से अधिक विवाह कर सकते थे और धनी लोग इस बात में उनका अनुकरण करते थे। किन्तु इतना होने पर भी स्त्रियो का चरित्र उच्च कोटि का बना रहा। पुत्र प्राप्त करने की लालसा प्रबल हो गई। एक ब्राह्मण-ग्रन्थ में लिखा है कि लड़की दु ख की जड है और लडका सर्वोच्च आकाश का प्रकाश है।

**आर्यों के महाकाव्य**—आर्यों के महाकाव्य, जिनका देश भर में सम्मान है, रामायण और महाभारत है। रामायण के रचयिता वाल्मीकि ऋषि थे और महाभारत के वेदव्यास। यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि इन ग्रन्थो की रचना किस समय हुई। विद्वानो ने इनका रचना-काल ७०० ईसवी पूर्व से २०० ईसवी पूर्व तक निर्दिष्ट किया है। मूलकथा इस काल से भी पूर्व की हो सकती है। कालान्तर में विद्वानो ने इनको बढाया और उन्हे वर्तमान रूप दिया। इन काव्यो का भारतवर्ष की प्रत्येक भाषा में अनुवाद हो गया है और देश में कोई हिन्दू ऐसा नही जो इनसे अनभिज्ञ हो। सोलहवी शताब्दी ईसवी में वाल्मीकि मुनि के रामायण के आधार पर गोस्वामी तुलसीदास जी ने हिन्दी भाषा में एक दूसरे रामायण की रचना की जिसका नाम रामचरित मानस है।

महाकाव्यो के समय में भारतवर्ष में बहुत से बडे-बडे राज्य थे। पाचाल, कौशाम्बी, कोशल, विदेह, काशी आदि राज्यो का उनमे वर्णन है। इनके अतिरिक्त एक दूसरे प्रकार के राज्य भी थे जिन्हे हम प्रजातन्त्र राज्य कह सकते है। राजा लोकमत का आदर करता था। राजसिंहासनारूढ होने के समय उसे शपथ लेनी पड़ती थी कि मै प्रजा की रक्षा करूँगा और धर्म के अनुसार राज्य-कार्य करूँगा। दुराचारी एव अन्यायी राजा मार भी डाले जाते थे। सभा का उल्लेख भी मिलता है। रामायण मे लिखा है कि राजा दशरथ भी सभा की राय लेते थे और श्री रामचन्द्र जी ने भी सभा की सम्मति लेकर सीता जी को निर्वासित किया था। ऐसे राजा भी थे जो निरकुशता से काम लेते थे और लोकमत की अवहेलना करते थे। राजकुमारो को शिक्षा अच्छी दी जाती थी। उन्हे बचपन ही मे अस्त्र-शस्त्र, तीर चलाना सिखा दिया जाता था। क्षत्रियो की युद्ध में विशेष रुचि थी इसलिए उन्हे शस्त्र-विद्या की ही अधिक शिक्षा दी जाती थी। सामन्त लोग राजभक्त होते थे और युद्ध मे प्राण देना ही अपना कर्त्तव्य समझते थे। महाभारत के समय के आदर्श उतने

उत्कृष्ट नही प्रतीत होते जितने रामायण के। छूत की प्रथा प्रचलित थी। राजवशो में इसका अधिक प्रचार था।

वर्ण-व्यवस्था का भी प्रचार था। विवाह बहुधा स्वयवर द्वारा होते थे। सीता जी और द्रौपदी दोनो के विवाह स्वयवर द्वारा ही हुए थे। राजवशो में बहु-विवाह की प्रथा प्रचलित थी। बाल-विवाह नही होता था। पर्दे का रवाज पिछले काल की तरह कठिन न था। भिन्न-भिन्न वर्णों में परस्पर विवाह होता था। कही-कही पर सती की प्रथा का भी उल्लेख है। पाडु की दो स्त्रियो में से एक अपने पति के साथ सती हो गई थी। स्त्रियो को शिक्षा दी जाती थी और वे पुरुषो की तरह शास्त्रो का भी अध्ययन करती थी।

व्यापार उन्नत दशा में था। महाकाव्यो में अनेक प्रकार के आभूषणो और वस्त्रो का वर्णन है। आर्य-धर्म का प्रचार था। परन्तु वेदो के समय का सा न था। शिव और विष्णु की पूजा होने लगी थी और भक्ति पर अधिक ज़ोर दिया जाता था। वासुदेव-कृष्ण को लोग विष्णु का अवतार समझते थे। मथुरा-वृन्दावन कृष्ण के भक्तो के प्रधान केन्द्र थे।

भगवद्गीता—भगवद्गीता महाभारत का एक अश है। युद्ध के आरम्भ होने के पूर्व जब अर्जुन ने अस्त्र-शस्त्र डाल दिये और कृष्ण से कहा कि महाराज मैं युद्ध नही करूँगा। सम्बन्धियो, भाई-बन्धुओ को मारकर राज्य करने से तो भिक्षा माँगना अच्छा है। तब भगवान् ने उसे समझाया और कहा कि आत्मा अजर-अमर है यह न मरता है, न नाश को प्राप्त होता है। तुम किस मोह में पडे हो। मेरा उपदेश सुनो और मेरी आराधना करो। युद्ध करना तुम्हारा धर्म है। कृष्ण के समझाने से अर्जुन ने युद्ध किया। गीता में यही वेदान्त का उपदेश है। कर्म करना मनुष्य का कर्त्तव्य है। उसके फल पर उसका अधिकार नही है। इसलिए फल का बिना ख्याल किये कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए। गीता का देश में सर्वत्र आदर है। विदेशीय विद्वानो ने भी इसकी महत्ता को स्वीकार किया है।

# अध्याय ५

## जैन धर्म और बौद्ध धर्म

**ब्राह्मण-धर्म का विरोध**—जब ब्राह्मणो ने कर्मकाण्ड को अधिक महत्त्व दिया तब कुछ विचारशील लोगो ने उसकी उपयोगिता पर सन्देह किया। इस प्रकार लोगो में स्वतन्त्र विचार फैलने लगे। कुछ उपनिषदो ने भी मोक्षप्राप्ति के लिए यज्ञो को निरर्थक बताया। ई० पू० आठवी या सातवी शताब्दी के लगभग बिहार के पूर्वी भाग में ब्राह्मण-धर्म का ज़ोर से विरोध होने लगा। अभी तक बिहार के देश मे आर्यो का पूर्ण रीति से प्रभुत्व नही स्थापित हुआ था। अनेक ऐसे सम्प्रदाय उत्पन्न हो गये जिनका विश्वास था कि मोक्ष-प्राप्ति यज्ञ और कर्म-काण्डो द्वारा नही वरन् आचरण और विचार की पवित्रता से ही हो सकती है। इन सम्प्रदायो के अनुयायी विभिन्न दलो में सगठित हो गये और उन्होने उपदेश देना प्रारम्भ कर दिया। बहुत से सन्यासी भ्रमण करते हुए स्थान-स्थान पर अपने सिद्धान्तो का प्रचार करने लगे। उनकी पवित्रता, सरलता और तप से बहुत से लोग आकृष्ट हुए और थोडे ही समय में उनके बहुत से अनुयायी हो गये। इनमें मुख्य जैन और बौद्ध सम्प्रदाय थे। उन्होने वैदिक क्रियाओ को त्याग दिया और ब्राह्मणो की श्रेष्ठता को नही माना और मोक्ष-प्राप्ति के लिए दूसरा साधन खोजने की चेष्टा की। क्षत्रिय-कुलो पर उनके उपदेशो का बहुत प्रभाव पडा।

**जैन धर्म**—बौद्ध धर्म और जैन धर्म में बडा सादृश्य है। किन्तु अब यह सिद्ध हो चुका है कि बौद्ध धर्म की अपेक्षा जैन धर्म अधिक प्राचीन है। जैनो की धारणा है कि हमारे २४ तीर्थंकर हो चुके है जिनके द्वारा

बुद्ध (सारनाथ)

जैन धर्म की उत्पत्ति और विकास हुआ है। उनमें से तेरहवें तीर्थंकर पार्श्वनाथजी ही प्रथम ऐतिहासिक व्यक्ति प्रतीत होते है। वे सम्भवत ईसा के पूर्व आठवी शताब्दी में हुए। वे जाति के क्षत्रिय थे और सच बोलना, अहिंसा, चोरी न करना और सम्पत्ति को त्याग देना ये ही उनके मुख्य सिद्धान्त थे।

परन्तु जैन धर्म के मूलप्रवर्त्तक वैशाली के राजकुमार वर्द्धमान थे। वैशाली* मे लिच्छवि-वश के क्षत्रिय राजा राज्य करते थे और वहाँ प्रजा-तन्त्र राज्य था। उनका जन्म ई० पू० ५४० के लगभग हुआ था। भगवान् बुद्ध और वर्द्धमान के जीवन में अधिक समानता है। वर्द्धमान ने ३० वर्ष की अवस्था में अपना घर-बार छोड दिया और १२ वर्ष तक घोर तपस्या की। वे जप करने में सदैव लीन रहते थ, अहिंसाव्रत का पूर्ण रीति से पालन करते थे और खान-पान में बडे सयम से काम लेते थे। इस प्रकार उन्होने अपनी इन्द्रियों को वश में कर लिया। तेरहवें वर्ष में उन्हें परम ज्ञान की प्राप्ति हुई और वे महावीर और जिन (विजयी) कहलाने लगे। महावीर के उपदेशो में कोई नई बात नही है। पार्श्वनाथ की चार प्रतिज्ञाओ में उन्होने एक पाँचवी और शामिल कर दी। वह थी पवित्रता से जीवन व्यतीत करना। उनके शिष्य नग्न घूमते थे, इसलिए वे निर्ग्रन्थ कहलाये। महात्मा बुद्ध की तरह महावीर स्वामी ने भी शरीर तथा मन की पवित्रता और अहिंसा पर बडा जोर दिया। मोक्ष ही मनुष्य का अन्तिम उद्देश्य है। परन्तु यह बुद्ध के निर्वाण से भिन्न है। आत्मा का परमानन्द में विलीन होना ही मोक्ष है। ३० वर्ष तक इन्ही सिद्धान्तो का प्रचार करने के बाद ७२ वर्ष की अवस्था में महावीर स्वामी ने राज-गृह के निकट पावा नामक स्थान पर ई० पू० ४६८ में शरीर-त्याग किया।

---

* वैशाली को आज-कल बसाढ़ कहते है जो कि बिहार के मुजफ्फर-पुर जिले में है।

महावीर के उपदेशो का सार यह था कि जो जैन निर्वाण प्राप्त करना चाहता है उसका आचरण, ज्ञान और विश्वास ठीक होना चाहिए। वह उपर्युक्त पाँच प्रतिज्ञाओ का पालन अवश्य करे। जैनियो के लिए तप करना एक आवश्यक कर्त्तव्य बताया गया है और यह भी कहा गया है कि उपवास तप का एक रूप है। विना ध्यान, अनशन तथा तप किये मनुष्य अपने अन्तिम ध्येय को प्राप्त नही कर सकता अर्थात् उसकी आत्मा मुक्त नही हो सकती। महावीर ने पूर्ण अहिंसा पर ज़ोर दिया और तब से वह जैन धर्म का एक प्रधान सिद्धान्त माना जाता है।

ई० पू० ३०० के लगभग जैन लोग दो सम्प्रदायो में विभक्त हो गये—दिगम्बर और श्वेताम्बर। दिगम्बर नग्न मूर्ति की उपासना करते है और श्वेताम्बर अपनी मूर्तियो को श्वेत वस्त्र पहनाते है। भारतवर्ष मे जैन धर्म के अनुयायियो की सख्या लगभग १२ लाख है। ये लोग बड़े धनवान् तथा समृद्धिशाली हैं और बहुधा व्यापार करते हैं। जैन धर्म का प्रचार कभी सर्व-साधारण में नही हुआ। इसका कारण यह है कि इसके नियम कठिन है। राजाओ ने इसे अपनाया और उनकी सरक्षता में जैनियो ने अपने साहित्य तथा कला की उन्नति की। जैन धर्म के अनुयायियो में कई विद्वान् महात्मा हुए है जिनके नाम अब तक प्रसिद्ध है। इन सब बातो के कारण जैनो को भारतीय इतिहास मे अच्छा स्थान मिला है।

**गौतम बुद्ध का जीवन-चरित्र**—नैपाल की तराई में शाक्य-वश के क्षत्रियो का राज्य था। कपिलवस्तु उनकी राजधानी थी। ईसा के पूर्व छठी शताब्दी मे वहाँ शुद्धोदन नाम का राजा राज्य करता था। वह कोशल के सम्राट् के अधीन था। उसके इकलौते बेटे का नाम सिद्धार्थ था। सिद्धार्थ का जन्म ई० पू० ५६३ के लगभग लुम्बिनी नामक गाँव मे हुआ था। यही सिद्धार्थ पीछे से गौतम के नाम से प्रसिद्ध हुआ। गौतम बचपन से ही बडे विचारशील थे। वे घटो सोच-विचार में मग्न रहते थे। उनकी वैराग्य की ओर प्रवृत्ति देखकर पिता ने उन्हें सासारिक सुखो में

लिप्त रखने की चेष्टा की और १६ वर्ष की अवस्था में यशोधरा नामक एक सुन्दरी लडकी के साथ विवाह कर दिया। किन्तु पिता के ये सारे प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध हुए। सिद्धार्थ को एक बार वृद्ध मनुष्य, रोगी, तथा मुर्दे को देखकर बडा दु ख हुआ। उन्होंने समझ लिया कि एक दिन हमारी भी यही दशा होगी, रोग, वृद्धावस्था तथा मृत्यु मे हम किसी प्रकार बच नही सकते। बस, इस विचार के उठते ही वे एक दिन रात में अपने नवजात पुत्र, स्त्री और घर-बार को छोडकर जीवन के रहस्य को समझने के लिए बाहर निकल गये। उस समय उनकी अवस्था ३० वर्ष की थी। उन्होने दर्शनशास्त्र का अध्ययन किया, ब्राह्मणो का आश्रय लिया और ज्ञान की खोज में स्थान-स्थान पर ब्राह्मणो के साथ भ्रमण किया। परन्तु उनके चित्त को शान्ति न मिली। तब वे गया पहुँचे और वहाँ कठोर तप करने लगे। बहुत-से उपवास किये, शरीर को अनेक प्रकार के कष्ट दिये और सब तरह के दु ख उठाये लेकिन उनके हृदय मे ज्ञान का प्रकाश नही हुआ। उनका स्वास्थ्य बहुत खराब हो गया और शरीर में हड्डियो के सिवा कुछ भी न रहा। ६ वर्ष के बाद उनको मालूम हुआ कि ये सब कष्ट देनेवाली क्रियाएँ व्यर्थ है। उन्होने अपना अनशन व्रत तोड दिया। उनके पाँच शिष्य, जो अब तक उनके साथ थे, उन्हें छोडकर चले गये। अन्त में बोध-गया में नैरजना नदी के तट पर एक पीपल के वृक्ष के नीचे वे समाधि लगा कर बैठ गये। समाधि के टूटते ही उनके हृदय में एक प्रकाश-सा जान पडा और उन्हें सासारिक दु खो मे छूटने का साधन मिल गया। उनको ज्ञान की प्राप्ति हो गई जिसकी तलाश में उन्होंने घर-बार छोडा और तप से शरीर को घुला दिया था। इस प्रकार वे बुद्ध अथवा ज्ञानी हो गये। वहाँ से फिर वे बनारस के पास सारनाथ को गये। वही पहले-पहल उन्होने उपदेश देना प्रारम्भ किया। थोडे ही समय में उनके बहुत-से अनुयायी हो गये। अपने शेप जीवन मे उन्होंने कोशल और मगध के देशो में एक सिरे से दूसरे सिरे तक भ्रमण कर लोगो को उपदेश दिया। अन्त में ई० पू० ४८३ के लगभग कुशीनगर (गोरखपुर जिले

में स्थित वर्तमान कसिया) में उन्होने ८० वर्ष की अवस्था में शरीर छोडा।

बुद्ध की शिक्षा—भगवान बुद्ध का कहना था कि बार-बार जन्म ग्रहण करने से ही दुख की उत्पत्ति होती है, आवागमन का चक्र ही दुख का मूल कारण है। आवागमन का कारण सासारिक पदार्थों के प्रति अतिशय अनुराग है। जब तक हमारे हृदय से यह अभिलाषा निकलेगी नही तब तक हम आवागमन के बन्धन मे जकडे रहेंगे। शोक और कष्ट से मुक्त होने के लिए मनुष्यो को बीच का रास्ता पकडना चाहिए। न तो शरीर को घोर कष्ट ही देना चाहिए और न एकदम से जीवन के आनन्द में ही निमग्न रहना चाहिए। यह बीच का मार्ग क्या है—*सम्यक् दृष्टि, सम्यक् सकल्प, सम्यक् वाक्य, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् समाधि इत्यादि। महात्मा बुद्ध का विश्वास था कि इसी मार्ग का अवलबन करने से निर्वाण मिलेगा। निर्वाण ही मनुष्य के जीवन का लक्ष्य है, बिना उसके दुख और शोक से छुटकारा नही मिल सकता।

ईश्वर का अस्तित्व तथा अन्य ऐसे विषयो पर उन्होने कोई राय नही प्रकट की। उनका उद्देश्य तो केवल निर्वाण का साधन बताना था। उन्होने वर्ण-व्यवस्था का विरोध किया और कहा कि यह समाज का अप्राकृतिक विभाग है। ऊँच-नीच का भेद-भाव मनुष्य के गुणो के अनुसार होना चाहिए। उन्होने यज्ञो का भी घोर विरोध किया और निर्वाण-प्राप्ति के लिए उन्हें निरर्थक बताया। कर्मकाण्ड को भी उन्होने मोक्ष

---

*भगवान बुद्ध ने इस मध्य पथ को आष्टाङ्गिक मार्ग कहा है। इसी पथ पर चलने से निर्वाण प्राप्त हो सकता है। इसके ये आठ भाग है—(१) सम्यक् दृष्टि, (२) सम्यक् सकल्प, (३) सम्यक् वाक्य, (४) सम्यक् कर्मान्त, (५) सम्यक् आजीव, (६) सम्यक् व्यायाम, (७) सम्यक् स्मृति, (८) सम्यक् समाधि।

के लिए व्यर्थ बतलाया और ब्राह्मणो की श्रेष्ठता को स्वीकार नही किया। किसी काम के लिए भी उन्होने पशुओ की हिंसा करने की आज्ञा नहीं दी।

सदाचार पर बुद्ध भगवान् ने बडा ज़ोर दिया। वे कहते थे कि यदि कोई मनुष्य इस जीवन में अच्छे कर्म करेगा तो उसे दूसरी बार अधिक श्रेष्ठ जीवन प्राप्त होगा। इस प्रकार प्रत्येक जन्म मे उसका जीवन उन्नत होता जायगा और अन्त में वह जन्म-मरण से मुक्त हो जायगा। बुरे कर्मों से मनुष्य अवश्य नीचे गिर जायगा और अन्त मे उसको निर्वाण नही प्राप्त होगा। सत्य, जीवन की पवित्रता, दानशीलता तथा आत्म-सयम ऐसे गुण है जिनकी प्राप्ति के लिए मनुष्य को निरन्तर प्रयत्न करना चाहिए।

अपने प्रधान शिष्य आनन्द को भगवान् बुद्ध ने एक बार यह उप-देश दिया—

"इसलिए हे आनन्द! तुम अपने लिए दीपक बनो। तुम अपने लिए आश्रय-स्थान बनो। सत्य अथवा धर्म तुम्हारे दीपक है। उन्हीं को अपना आश्रय जानकर दृढ रहो। अपने सिवा किसी के आश्रय की इच्छा न करो।"

महात्मा बुद्ध की सफलता के कारण—उत्तरी भारत के अनेक राजाओ और सरदारो ने बौद्ध-धर्म को स्वीकार किया। इसका कारण यह है कि वे भी अपने गुरु की तरह क्षत्रिय थे। बुद्ध ने अपना उपदेश मामूली बोल-चाल की भाषा मे दिया था और अपने शिष्यों को भी ऐसा ही करने का आदेश किया था। एक बार कुछ ब्राह्मणो ने उनसे कहा कि आपके उपदेशो का सग्रह सस्कृत भाषा में होना चाहिए। परन्तु बुद्धजी ने इसका विरोध किया और कहा कि ऐसा करने से साधारण लोगो के लिए उनका अर्थ समझना कठिन हो जायगा। जिस धर्म का उन्होने उपदेश किया वह बडा ही आकर्षक और सरल था। इसलिए लोगो पर उसका शीघ्र प्रभाव पडा। इसके अतिरिक्त उनकी सेवा मे अनेक

वैदिक काल में भारतवर्ष
सिन्धु
गोमती न०
ब्रह्मावर्त
सरस्वती
दृषद्वती
ब्रह्मर्षिदेश
ब्रह्मपुत्र
यमुना न०
म हा का न्ता र
गुजरात
नर्मदा
द क्षि णा प थ
गोदावरी
कृष्णा
कावेरी
बं गा ल
की
खा ड़ी
सा ग र

उत्साही शिष्य थे जिन्होने दूर-दूर देशो में जाकर उनके सन्देश को सुनाया। उन्होंने जाति-व्यवस्था की निन्दा की और कहा कि जाति-पाँति का भेद निर्वाण की प्राप्ति में रुकावट नही डाल सकता। सभी श्रेणी के लोगो ने उनके उपदेश को सुना और उनके सिद्धान्तो को अपनाया। इन्ही कारणो से थोडे ही काल में बौद्ध धर्म की जड भारत में जम गई। देश के प्रत्येक भाग से लोग ज्ञान प्राप्त करने के लिए उनकी शरण में आने लगे।

**धर्म-ग्रन्थ**—भगवान् बुद्ध की मृत्यु के बाद उनके शिष्यो ने उनके कार्यों और उपदेशो को लिपिवद्ध कर डाला। पीछे से इन धर्म-ग्रन्थो का नाम त्रिपिटक पडा। त्रिपिटक के तीन भाग है—विनयपिटक, सूत्र-पिटक और अभिधर्म्मपिटक। विनयपिटक में मठो में रहनेवाले भिक्षुओ के आचरण-सम्बन्धी नियम हैं। सूत्रपिटक में बुद्ध भगवान् के उपदेशो का सग्रह है। अभिधर्म्मपिटक में दार्शनिक वाद-विवाद है। जब कभी इन धर्मग्रन्थो के अर्थ में कुछ सन्देह उत्पन्न होता तब उसका समाधान करने के लिए प्रतिष्ठित भिक्षुओं की सभा की जाती थी। इस तरह की चार सभाएँ हुईं। पहली सभा बुद्ध की मृत्यु के बाद ही राजगृह में उनके प्रधान शिष्य महा कश्यप ने की। इसके १०० वर्ष बाद दूसरी सभा वैशाली में हुई। तीसरी और चौथी सभाएँ क्रमश सम्राट् अशोक के और कनिष्क के समय में हुईं। इनका उल्लेख आगे चलकर किया जायगा।

**बौद्धो का सगठन**—बुद्ध भगवान् केवल एक बडे उपदेशक ही न थे, बल्कि एक बडे सगठन-कर्त्ता भी थे। उनके अनुयामी दो श्रेणियो में विभक्त थे। एक श्रेणी में उपासक लोग थे जो कि गृहस्थ का आचरण करते थे और दूसरी श्रेणी के लोग भिक्षु कहलाते थे। भिक्षु लोग ससार को त्यागकर सन्यासियो का जीवन व्यतीत करते थे। उनके सघ बने हुए थे और उनके प्रबन्ध के लिए नियम बना दिये गये थे। सघ को लोग बहुत पसन्द करते थे। इसका कारण यह था कि उनके सब सदस्यो को समान अधिकार प्राप्त था और लोगो को बोलचाल की

भाषा में धर्मोपदेश दिया जाता था जिसे सब आसानी से समझ सकते थे।

**बौद्ध धर्म और जैन धर्म**—ये दोनो धर्म कई बातो में एक दूसरे से मिलते है। ये न तो वेदो को मानते हैं और न कर्मकाण्ड से ही कुछ लाभ समझते है। दोनो वर्ण-व्यवस्था का भी विरोध करते है। दोनो को क्षत्रिय राजाओ के दरबारो मे आश्रय मिला था। दोनो धर्मो का प्रचार बोल-चाल की भाषा में हुआ। दोनो जीवन की पवित्रता पर जोर देते थे। मनुष्य के अच्छे और बुरे कर्मो का प्रभाव उनके वर्तमान तथा भविष्य जीवन पर पडता है, इस सिद्धान्त पर दोनो ने जोर दिया। परमेश्वर की सत्ता के विषय में दोनो चुप रहे और दोनो ने धर्म-सघ बनाने पर जोर दिया। इतना सादृश्य होने पर भी अनेक विषयो मे उनमें मतभेद था। जैसा कि हम पहले कह चुके है, जैन धर्म मे मोक्ष का आदर्श बौद्धो के आदर्श से बिलकुल भिन्न है। बुद्ध की अपेक्षा महावीर ने अहिंसा और तपश्चर्या पर अधिक जोर दिया। इसके अतिरिक्त जैनो की तरह नग्न रहने तथा अनशन द्वारा प्राण छोडने की प्रथाएँ बौद्ध धर्म मे नही थीं।

ज्यो-ज्यो समय बीतता गया त्यो-त्यो हिन्दू तथा जैन धर्म की विभिन्नता कम होती गई, यहाँ तक कि अन्त मे जैन धर्म हिन्दूधर्म का एक सम्प्रदाय बन गया। दोनो के रहन-सहन, रस्म-रवाज तथा सिद्धान्तो में बहुत अन्तर नही रह गया। किन्तु बौद्धो ने हिन्दुओ के साथ मिलने की चेष्टा नही की। भारतवर्ष से बौद्ध धर्म के लोप होने का एक कारण यह भी है।

**जातक**—बौद्धो की धारणा यह है कि बुद्ध को, निर्वाण-प्राप्ति के पहले, अनेक बार जन्म ग्रहण करना पडा था। जिन ग्रथो मे इन जन्म-कहानियो का सग्रह है उन्हे जातक कहते है। ये किसी एक काल के बने हुए नही हैं। कुछ इनमें दूसरी शताब्दी, ईसवी के है। ये सख्या में लगभग ५५० हैं। प्राचीन भारत की सामाजिक तथा राजनीतिक दशा जानने के लिए इन ग्रथो में बहुत-सी सामग्री है।

बौद्धकालीन भारत
६०० ई० पू०
सरस्वती
सिन्धु न०
कुरु
मथुरा
सूरसेन
चेदि
सांकाश्य
कान्यकुब्ज
श्रावस्ती
कपिलवस्तु
पावा
कुशीनगर
मल्ल
लिच्छवि
वैशाली
काशी
पाटलिग्राम
सारनाथ
नालन्दा
चम्पा
राजगृह
वत्स
अवन्ती
उज्जैन
नर्मदा न०
सतपुरा प०
म ग ध
क लि ग
अरब सागर
बंगाल की खाड़ी
१६ महाजनपद
अंग, मगध, काशी,
कोशल, वृज्जि, मल्ल, चेदि, वत्स,
कुरु, पञ्चाल, मत्स्य, सूरसेन.
अश्मक, अवन्ति, गान्धार, कम्बोज.
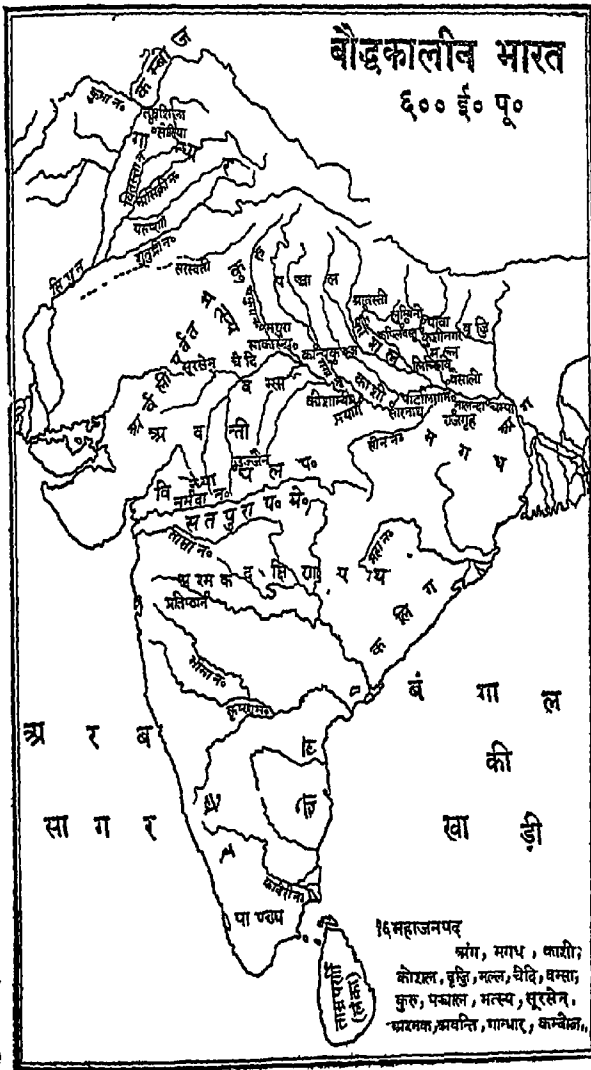
**महात्मा बुद्ध के समय में भारत की राजनीतिक तथा सामाजिक स्थिति—राज्य**—ई० पू० सातवी शताब्दी के अन्तिम भाग में आर्यों के अधिकार में जितना देश था वह तीन भागो में बँटा था। मध्यदेश, उत्तरपथ तथा दक्षिणापथ। सारे देश में १६ राज्य थे, जिनमें चार अधिक प्रसिद्ध थे। उनके नाम ये है—

(१) मगध (दक्षिण विहार)।
(२) कोशल (साकेत या अवध)।
(३) वत्स (कोशाम्वी या इलाहावाद)।
(४) अवन्ती (मालवा)।

इनमें से कुछ राज्यो के नाम उन जातियो पर पडे, जो वहाँ निवास करती थी।

**प्रजातन्त्र राज्य**—महाभारत, वौद्ध धर्मग्रन्थो तथा अन्य ग्रन्थो के पढने से पता लगता है कि प्राचीन भारत में कई ऐसे राज्य थे जिनका शासन कोई एक राजा नही करता था वल्कि कई व्यक्ति मिलकर करते थे। ये लोग अपने वाप-दादो के पद पर प्रतिष्ठित होते थे और 'राज' की उपाधि धारण करते थे। पाली भाषा के ग्रन्थो में उनका उल्लेख है और वे अपनी जाति के नाम से प्रसिद्ध है। उन सवमें शाक्य, भग्ग, मल्ल, मोरिया, विदेह तथा लिच्छवि अधिक प्रसिद्ध थे। इन राज्यो के लिए सस्कृत में "गण" शब्द का प्रयोग हुआ है जो प्राय प्रजातन्त्र का पर्यायवाची है। इनमें मिथिला का लिच्छवि राज्य सवसे वडा था। भगवान् वुद्ध ने भी उसकी प्रशसा की थी।

**शासन-प्रवन्ध**—इन राज्यो का प्रवन्ध एक सार्वजनिक सभा द्वारा होता था जिसमें युवा, वृद्ध सभी लोग सम्मिलित होते थे। सभा की वैठक एक छप्पर के नीचे होती थी। छप्पर विना दीवार का होता था और केवल काठ के खम्भो के आधार पर खडा रहता था। इस स्थान को लोग सस्थागार कहते थे। सभा में सव लोग एक निर्दिष्ट क्रम से विठाये जाते थे। निर्णय प्राय सर्वसम्मति से होता था। किन्तु

जब कभी किसी विषय में मतभेद होता तो उसका निर्णय करन के लिए कुछ लोगो को मध्यस्थ चुनकर उनकी एक छोटी-सी कमेटी बना दी जाती थी। सभापति चुना जाता था और वह राजा की उपाधि धारण करता था। शाक्य वश के इतिहास से हमें ज्ञात होता है कि वुद्ध के एक चचेरे भाई भड्डिय तथा उनके पिता शुद्धोदन ने किसी समय पर इस उपाधि को धारण किया था। राय लेने के लिए टिकट या शलाकाओ का उपयोग किया जाता था। इन छोटे-छोटे प्रजातन्त्रात्मक राज्यो मे वडी राजनीतिक चहल-पहल रहती थी' मगध-साम्राज्य के अभ्युदय के पहले ही ये सब राज्य लुप्त हो गये।

सामाजिक स्थिति में परिवर्तन—पश्चिमी भारत मे ब्राह्मणो का वडा प्रभाव था। उन्होन वहुत-से धार्मिक सस्कार और क्रियाएँ प्रचलित की जिनको मानना प्रत्येक हिन्दू के लिए आवश्यक था। अपने पाण्डित्य और आध्यात्मिक उन्नति के कारण वे अन्य जातियो की अपेक्षा श्रेष्ठ समझे गये। जिन प्रदेशो मे कुरु, मत्स्य, पाञ्चाल तथा शूरसेन लोग बसे थे वहाँ ब्राह्मणो का खूब दौर-दौरा था। परन्तु पूर्वी देशो (काशी, कोशल, विदेह तथा मगध) के लोगों पर वैदिक सस्कृति का अधिक प्रभाव नही पडा था। यज्ञ की क्रियाएं और वेदो का अध्ययन व्यर्थ समझा जाता था। इन देशो के क्षत्रिय ब्राह्मणो को सर्वश्रेष्ठ मानने को तैयार नही थे, अपने को उनके वराबर ही समझते थे। उन्होने यह भी मानने से इनकार कर दिया कि केवल ब्राह्मण ही सत्य और धर्म के एकमात्र सरक्षक है। उनमें अनेक व्यक्तियो ने अपने घर-बार और सम्पत्ति को त्यागकर सन्यास ग्रहण कर लिया। ब्राह्मणो की भाँति उन्होने भी विद्या पढी और ज्ञान प्राप्त किया। महावीर और बुद्ध दोनो क्षत्रिय थे। उनके अनुपम त्याग का लोगो पर बडा प्रभाव पडा।

जाति-पाँति का भद-भाव विलकुल व्यर्थ वताया गया किन्तु भगवान् बुद्ध भी अपन समय के सामाजिक सगठन को बदल न सके।

बौद्ध भिक्षुओ के समाज में भी जाति-पाँति का विचार था। क्षत्रिय लोग स्वय अपनी जाति की विशुद्धता पर बहुत ध्यान देते थे और अपने लडको का विवाह अपनी जाति के अन्दर ही करते थे। अपने से नीची जाति में विवाह करना बुरा समझा जाता था। सबसे निकृष्ट जातियाँ चाण्डाल आदि नगर से बाहर रहती थी। परन्तु ऐसा मालूम होता है कि उनसे छू जाने पर लोग अपने को भ्रष्ट नही समझते थे।

**आर्थिक दशा**—भारतवर्ष में सदा से गाँव ही सामाजिक सगठन का आधार रहा है। धान के खेतो के किनारो पर गाँव बसता था। पास-पास खडे किये हुए अनेक झोपडो के समुदाय से एक गाँव बनता था। बीच-बीच में सकरी गलियाँ होती थी। चरागाह की भूमि पर सबका समान अधिकार होता था। सभी के पशु उसमे चरते थे और सारे गाँव की ओर से एक चरवाहा रहता था जो सबके पशुओ की देख-रेख करता था। बढई, लुहार, सुनार, कुम्हार आदि व्यवसायियो के अलग गाँव होते थे। ब्राह्मणो के गाँव अलग थे। चावल ही लोगो का प्रधान खाद्य पदार्थ था यद्यपि दूसरे प्रकार के अनेक अन्नो का वर्णन मिलता है। ईख, फल, तरकारी और फूलो की खेती भी होती थी। बाज़ार लगते थे और उनमें दूकाने सजाकर रक्खी जाती थी। उनका प्रबन्ध अच्छे ढग से होता था। कपडा बुनने, बाल काटने, माला गूँथने, धातु, जवाहिरात और सभी दाँत की चीजें बनाने के काम भी होते थे। धनी पुरुषों को सेठी या सेठ कहकर पुकारते थे। जातको में लिखा है कि ब्राह्मण, सेठ, राजकुमार आपस में मित्रता का व्यवहार करते थे। वे अपने लडको को एक ही गुरु के घर पर पढने भेजते थे। एक साथ भोजन करते थे और परस्पर विवाह इत्यादि भी करते थे। ऐसा करने पर भी उन्हें समाज में कोई बुरा नही कहता था।

**ग्रामो और नगरो की सामाजिक स्थिति**—गाँवो के मामले बाहर बगीचे में खुली सभा में तय होते थे। प्रत्येक गाँव में एक मुखिया होता था जिसके द्वारा सारा सरकारी काम होता था। बेगार

की प्रथा नही थी। पुरुष और स्त्रियाँ स्वत आपस में मिलकर हौज, तालाब और पार्क बनाते और देहात की सडको की मरम्मत करते थे। लोग बडे सुखी और सन्तुष्ट थे। समाज में न तो बहुत बडे जमीदार थे और न कगाल। अपराध कम होते थे और जो कुछ भी होते थे वे गाँव के बाहर। आपस के झगडो का निपटारा गाँव के बडे-बूढे करते थे। अपने धन को लोग घडो में भरकर जमीन में गाड देते या नदी की तलहटी मे छिपाकर रख देते थे। कभी-कभी मित्रो के यहाँ जमा भी कर देते थे। कर्ज़ का कानून बडा कठोर था। कभी-कभी ऋणी मनुष्य अपने स्त्री-बच्चो को भी महाजनो के यहाँ गिरवी रख देते थे।

शहरो की हालत देहात से अच्छी थी। बौद्ध ग्रथो से पता लगता है कि सातवी शताब्दी ई० पू० में आर्य-सभ्यता का काफी विकास हो चुका था।

## सक्षिप्त सन्वार विवरण

| | ई० पू० |
|---|---|
| गौतम बुद्ध का जन्म .. .. .. .. | ५६३ |
| महावीर स्वामी का जन्म .. .. .. .. | ५४० |
| गौतम बुद्ध की मृत्यु .. .. .. .. | ४८३ |
| महावीर की मृत्यु .. .. .. .. | ४६८ |
| जैन सम्प्रदायो का बनना .. .. .. .. | ३०० |

# अध्याय ६

## मौर्य-काल के पूर्व का समय

### विदेशी आक्रमण

**प्राचीन काल**—प्राचीन भारत का असली इतिहास ई० पू० ६०० से प्रारम्भ होता है और हर्षवर्द्धन की मृत्यु के साथ ६४७ ई० में समाप्त हो जाता है। यह १२०० वर्ष का समय महत्त्व-पूर्ण घटनाओ से परिपूर्ण है। इस काल में हमारी सभ्यता का विकास हुआ और भारत के दो बडे धर्मों (जैन धर्म तथा बौद्ध धर्म) का अभ्युदय हुआ। राजा लोग शक्तिशाली हो गये और उन्होंने सारा अधिकार अपने हाथ में ले लिया। पहले-पहल भारत का एक बडा भाग मौर्य सम्राटो के आधिपत्य में राजनीतिक एकता में बँधा। वैदिक काल की सरलता के स्थान में अब कूटनीति से काम लिया जाने लगा। बडे-बडे साम्राज्यो की स्थापना हुई किन्तु प्रजा के हित का ध्यान राजा लोगो को सदैव बना रहा। राजा का कर्त्तव्य था कि अपनी प्रजा की रक्षा करे और धर्म का अनुसरण करे। लोगो के दिमाग में यह विचार इतनी दृढता के साथ जम गया था कि राजा भी उसकी उपेक्षा नही कर सकता था। समाज का सगठन जटिल बनता गया। इस काल में विदेशियो के आगमन से यहाँ की आबादी में एक नया रक्त मिल गया। यूनानियो के साथ भारतीयो का सम्पर्क हुआ जिसके कारण कला-कौशल और सस्कृति के नये विचारो का समावेश हुआ। यूनानियो के अतिरिक्त और भी विदेशी लोग आये। हूण और सिदियन लोगो ने यहाँ की प्रचलित राजनीतिक व्यवस्था को बडा भारी धक्का पहुँचाया। उत्तरी भारत में अधिक समय तक भीषण उपद्रव मचे

रहे। अन्त में सातवी शताब्दी के आरम्भ म हर्षवर्द्धन ने शान्ति स्थापित की और भारतीय कला और सभ्यता की रक्षा की। कला और सस्कृति का उत्तरोत्तर अधिक विकास होता रहा और अनेक बडे-बडे ग्रन्थो की रचना हुई।

**चार राज्य**—भारत के राजनीतिक इतिहास का प्रारम्भ सम्भवत बुद्ध के समय से होता है। पहले कह चुके है कि इस काल में चार बडे-बडे राज्य थे। प्रत्येक का शासन एक शक्तिशाली राजा करता था। राज्यो के नाम अवन्ति (मालवा) कोशल (अवध), वत्स (इलाहाबाद के इर्दगिर्द) तथा मगध (विहार) थे। इनकी राजधानियाँ क्रम से उज्जयिनी, श्रावस्ती, कोशाम्बी तथा राजगह थी।

**बिम्बिसार का वश**—भगवान बुद्ध के बाद कुछ शताब्दियो में मगध एक बडा शक्तिशाली साम्राज्य बन गया। उसके सम्राट् सम्पूर्ण भारत पर शासन करने लगे। बुद्ध के समय में मगध का शासक बिम्बिसार था। वह एक प्रभावशाली राजा था। उसने कोशल राज्य के राजा प्रसेनजित की बहिन के साथ अपना विवाह कर लिया। वैशाली के लिच्छवि सरदारो की राजकुमारियो के साथ भी उसने अपना विवाह किया। यही नही, उसने वत्स के सरदारो के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया। ५२ वर्ष तक (ई० पू० ५४३ से ४९१ तक) राज्य करने के पश्चात वह अपने ही लडके अजातशत्रु के हाथ से मारा गया। अजातशत्रु सिहासन पर बैठने के लिए अधीर हो रहा था। इसी कारण उसने यह दुष्कर्म किया। ई० पू० ४५९ तक वह राज्य करता रहा। अजातशत्रु की पितृहत्या से क्रुद्ध होकर बदला लेने के लिए प्रसेनजित ने उस पर चढाई कर दी। कुछ समय तक युद्ध होता रहा। अन्त में दोनो दलो में सन्धि हो गई और काशी का राज्य अजातशत्रु को मिल गया। अजातशत्रु ने लिच्छवियो के साथ भी युद्ध किया और उन्हे पराजित कर उनका राज्य मगध में मिला लिया। उसने वृज्जियो पर भी आक्रमण किया और उनकी राजधानी को नष्ट कर उनके

राज्य पर अपना अधिकार जमा लिया। अजातशत्रु के बाद मगध के सिंहासन पर उदयी बैठा। गिरिव्वज (आधुनिक राजगृह) के बजाय पाटलिपुत्र (पटना) को उसने अपनी राजधानी बनाया।

शिशुनाग—दो और पीढियो के बाद बिम्बिसार के वश को काशी के हाकिम (ई० पू० ४११ से ३९३ तक) शिशुनाग ने विध्वस कर डाला। उसने अवन्ति को अपने राज्य में मिला लिया और इस प्रकार अपनी शक्ति और गौरव को बढाया।

नन्दवश—शिशुनाग वश का अन्त ई० पू० चौथी शताब्दी में हुआ। पुराणो में शिशुनाग वश के राजाओ को क्षत्रिय कहा गया है। परन्तु उस वश के अन्तिम राजा महानन्दिन् ने एक शूद्रा स्त्री के साथ अपना विवाह कर लिया और इस प्रकार एक शूद्रवश की स्थापना की। उसका बेटा महापद्मनन्द नीच जाति का पुरुष कहा गया है परन्तु वह बडा वीर योधा था। पजाब और काश्मीर को छोड उसने सारे उत्तरी भारत को जीत लिया और सिन्ध तथा दक्षिण के भी कुछ प्रदेशो पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। वह एक बडा शक्तिशाली सम्राट् था। उसने अपने अधीनस्थ राजाओ को वश में रक्खा। उसके बाद उसके आठ बेटो ने कुछ समय तक राज्य किया। अन्त में ३२५ ई०, पू० के लग-भग चन्द्रगुप्त मौर्य ने चाणक्य अथवा कौटल्य नामक ब्राह्मण की सहायता से नदवश का नाश कर दिया।

विदेशी आक्रमण—जिस समय उत्तरी भारत में मगध का राज्य उन्नति कर रहा था और उसके शासक युद्ध करके अथवा विवाह-सम्बन्ध जोडकर अपने राज्य को बढा रहे थे ठीक उसी समय उत्तर-पश्चिम भारत पर विदेशियो का आक्रमण होना प्रारम्भ हुआ। इनमें से दो आक्रमण बहुत प्रसिद्ध हैं। पहला ईरानियो का आक्रमण और दूसरा उसके २०० वर्ष बाद सिकन्दर का था।

भारत पर ईरानियो की विजय—ईरान और भारत का सम्बन्ध बहुत प्राचीन काल से चला आता है। एक समय था जब कि

आर्यों और ईरानियो के पूवज एक ही वश के लोग थे। अलग-अलग शाखाओ में विभक्त हो जाने के वाद भी उन्होने अपना सम्बन्ध वनाये रखा। ईरानी साम्राज्य के सस्थापक साइरस (Cyrus) (५५८-५३० ई० पू०) के पहले पश्चिमी एशिया के किसी राजा ने पूर्व में भारत तक अपना प्रभाव नहीं वढ़ाया था। साइरस ने गाधार को जीत लिया। उस समय गाधार मे आधुनिक पेशावर, रावलपिडी तथा कावुल के प्रदेश सम्मिलित थे। ईरान के एक दूसरे सम्राट् डेरीअस (Darius) ने (ई० पू० ५२२-४८६) अपने राज्य के अधिकार-क्षेत्र को अधिक वढाया। उसने उत्तरी भारत के एक भाग को जीत लिया। यूनानी इतिहास-लेखक हैरोडोटस (Herodotus) ने ईरान-साम्राज्य के २० प्रान्तो के नाम दिये हैं और लिखा है कि भारत उसका बीसवाँ प्रान्त है। उसका यह भी लेख है कि भारत की जन-सख्या अन्य देशो की आवादी से अधिक है। भारत से जो कर ईरान के राजा को मिलता था वह शेष साम्राज्य से मिलनेवाले कर की अपेक्षा कहीं अधिक था। उस समय भारत से ईरान को १० लाख पौण्ड कर मिलता था। यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि ईरानी साम्राज्य के अधीनस्थ भारतीय प्रान्त का विस्तार कहाँ से कहाँ तक था किन्तु इतना पता चलता है कि वह सिन्ध देश तथा सिन्धु नदी की तलहटी में कालवाग से समुद्र तक फैला हुआ था। सम्पूर्ण सिन्ध प्रदेश तथा सिन्धु नदी के पूर्व स्थित पजाव का अधिकाश भाग उसमें सम्मिलित था।

भारत और ईरान के सम्पर्क का वहुत कुछ प्रभाव मौर्य कला पर पड़ा। सम्राट् अशोक की लाटो पर जो शिखरमूर्ति हमे मिलती है उस पर ईरानी कला का प्रभाव दिखलाई पड़ता है, यद्यपि कुछ विद्वानो का कथन है कि वह विशुद्ध भारतीय है। इसके अतिरिक्त तक्षशिला में कुछ विचित्र प्रथाएँ प्रचलित थी, जैसे मुर्दे को खुला छोड देना और राजा के केशो को धोना। इन प्रथाओ से प्रतीत होता है कि किसी समय उस प्रदेश में ईरानियो का प्रभाव था।

**सिकन्दर का आक्रमण**—यूनान देश में मेसीडन (मकदूनिया) नामक एक राज्य था। सिकन्दर वहाँ के राजा फिलिप का बेटा था। उसने २२ वर्ष की अवस्था में, ई० पू० ३३३ में, और देशो को जीतने के लिए प्रस्थान किया। वह पूर्व की ओर बढा और रास्ते में जो देश उसे मिले उन्हें उसने अपने अधीन कर लिया। ई० पू० ३३० में उसने ईरान के सम्राट को पराजित किया और ई० पू० ३२७ में वह भारत की सीमा पर पहुँच गया। उस समय पजाव कई छोटे-छोटे राज्यो में विभक्त था। सिन्ध-झेलम के दोआवे* के राजा अम्भी ने विजयी सिकन्दर का स्वागत किया। इस स्वागत से प्रोत्साहित होकर उसने ई० पू० जुलाई ३२६ में झेलम नदी को पार किया। झेलम और चिनाव नदियो के वीच के देश मे पुरु नामक एक क्षत्रिय राजा राज्य करता था। यूनानियो ने उसका उल्लेख पोरस के नाम से किया है। उसने सिकन्दर को आगे वढने से रोक लिया। झेलम के किनारे दोनो दलो में घोर युद्ध हुआ और पुरु वडी वहादुरी के साथ लडा। किन्तु अन्त में जब वह घायल होकर गिर पडा तब यूनानी सैनिक उसे पकडकर सिकन्दर के सामने ले गये। तक्षशिला के राजा ने न केवल सिकन्दर का साथ दिया वल्कि उसने अपने प्रतिद्वन्द्वी पुरु को पराजित करने मे भी सहायता दी। जब पुरु सिकन्दर के सामने लाया गया तो उसने पूछा—"तुम्हारे साथ कैसा वर्त्ताव किया जाय?" इस पर पुरु ने उत्तर दिया—"जैसा राजा राजाओ के साथ करते है।" इस उत्तर से सिकन्दर वडा प्रसन्न हुआ। उसने फिर पुरु को उसका राज्य वापस दे दिया। इसके वाद यूनानी सेना व्यास नदी की ओर वढी। मार्ग के सभी राजा पराजित हुए। व्यास नदी के तट पर सैनिको को यह मालूम हुआ कि पाटलिपुत्र का नन्द राजा एक विशाल सेना

---

* इस राज्य की राजधानी तक्षशिला थी। इसके खँडहर अभी तक पजाव के अटक जिले में हसन अब्दाल के पास पाये जाते है।

लेकर युद्ध की प्रतीक्षा कर रहा है। इस समाचार को पाकर वे हतोत्साह हो गये और उन्होने आगे बढने से इनकार कर दिया। सिकन्दर को विवश होकर वापस लौटना पडा। झेलम नदी के पास उसने नावो का एक बेडा तैयार कराया और कुछ सेना को, अक्टूबर ३२५ ई० पू० में, समुद्र के मार्ग से भेज दिया। स्वय वह एक दूसरे मार्ग से रवाना हुआ और बिलोचिस्तान होता हुआ बेबीलोन पहुँचा। भारत में वह कुल १९ महीने रहा। बेबीलोन मे, ३२ वर्ष की अवस्था मे, अधिक मद्यपान के कारण उसे ज्वर आ गया और ३२३ ई० पू० में उसका देहान्त हो गया।

**सिकन्दर और प्रजातन्त्र राज्य**—सिकन्दर के आक्रमण के समय पजाब मे कई प्रजातन्त्र राज्य थे। यूनानी लेखको ने कठ जाति का उल्लेख किया है। कठ लोग उस देश में बसे थे जहाँ अब लाहौर और अमृतसर के जिले है। साकल (स्यालकोट) उनकी राजधानी थी। सिकन्दर के आने के पूर्व कठ जाति के लोगो ने पुरु को एक उग्र युद्ध में पराजित किया था।

पजाब से वापस जाते समय मार्ग में सिकन्दर को कई राज्यो के साथ युद्ध करना पडा। इन राज्यो में प्रधान शूद्रक, मालव और शिवि थे। उनके पास एक लाख आदमियो की फौज थी। उनकी सैनिक शक्ति को देखकर सिकन्दर ने उनके साथ सन्धि कर ली।

ये प्रजातन्त्र राज्य भारत में गुप्त काल तक रहे। गुप्त-साम्राज्य का अभ्युदय होने पर वे एक-एक करके लुप्त हो गये। गुप्त सम्राटो की शक्ति के सम्मुख उनका ठहरना सर्वथा असम्भव था।

**आक्रमण का प्रभाव**—सिकन्दर की सेना ने भारत मे केवल पजाब के छोटे-छोटे सरदारो को पराजित किया था। इससे अधिक सफलता उसे नही मिली थी। मगध-सम्राट् के साथ उसका युद्ध नही हुआ, नही तो उसे मालूम हो जाता कि भारत पर विजय पाना कितना कठिन काम है। हार हुए लोगो के साथ यूनानियो ने बडी निर्दयता का व्यवहार किया। उन्होने नगरो को लूटा और लोगो को गुलाम बनाकर बेच दिया।

एक यूनानी लेखक का लेख है कि सिन्धु नदी की तलहटी में ८०,००० हजार भारतवासी मारे गये थे। इस निर्दयता, रक्त-पात और अमानुषिक अत्याचार को देखकर यह कहना पडता है कि सिकन्दर तैमूर और नादिर-शाह से किसी प्रकार भी कम नही था। इस काल के यूनानी भारतीय सस्कृति पर अपना कोई प्रभाव नही डाल सके। विश्व-साम्राज्य स्थापित करने का जो स्वप्न सिकन्दर देख रहा था वह बिलकुल विफल हुआ।

## सक्षिप्त सन्‌वार विवरण

| | ई० पू० |
|---|---|
| बिम्बिसार का गद्दी पर बैठना | ५४३ |
| दारा का भारत-विजय | ५१६ |
| अजातशत्रु का गद्दी पर बैठना | ४९१ |
| उदयी का गद्दी पर बैठना | ४५९ |
| शिशुनाग का गद्दी पर बैठना | ४११ |
| अवन्ती का मगध-राज्य में मिलना | ४१० |
| नन्दवश का प्रारम्भ | ३४५ |
| सिकन्दर का सिन्धु को पार करना | मार्च ३२६ |
| सिकन्दर का भारत से लौटना | अक्टूबर ३२५ |
| सिकन्दर की मृत्यु | ३२३ |

# अध्याय ७

## मौर्य-साम्राज्य और उसके बाद

चन्द्रगुप्त का सिंहासनारोहण—जिस समय सिकन्दर भारत से वापस लौटा उसी समय के लगभग मगध में सिंहासन के लिए क्रान्ति हो रही थी। चन्द्रगुप्त मौर्य नामक एक नवयुवक ने महाशक्तिशाली नन्द सम्राट् को पराजित कर दिया और वह स्वय ई० पू० ३२५ में गद्दी पर बैठ गया। उसके विषय मे यह जनश्रुति प्रसिद्ध है कि वह नन्द का बेटा था और मुरा नामक एक शूद्र स्त्री के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। किन्तु यह कथा ठीक नही मालूम होती। यह हो सकता है कि चन्द्रगुप्त नन्द का पुत्र रहा हो और किसी मौर्य राजकुमारी के गर्भ से पैदा हुआ हो। बौद्ध लेखो के अनुसार मौर्य (मोरिया) लोग क्षत्रिय थे। कहा जाता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य, नन्द राजाओ का, सेनापति था। वह अपनी उन्नति चाहता था। उसने कुछ लोगो की सहायता से राज्य पर अधिकार करने के लिए षड्यन्त्र रचा परन्तु उसका सारा प्रयत्न विफल हुआ और वह पजाब की ओर भाग गया। वहाँ सिकन्दर से उसकी भेंट हुई। पजाब तथा हिमालय प्रदेशो के सरदारो के साथ मेल करके उसने मगध-साम्राज्य पर आक्रमण किया। यद्यपि इस आक्रमण का पूरा हाल नही मालूम है परन्तु इतना निश्चय है कि नन्द राजा युद्ध में पराजित हुआ, मार डाला गया और उसकी राजधानी पर चन्द्रगुप्त ने अपना अधिकार स्थापित कर लिया।

किंवदन्तियाँ अभी तक प्रचलित हैं कि इस कार्य में चाणक्य अथवा कौटल्य नामक ब्राह्मण ने चन्द्रगुप्त की बडी सहायता की थी। किसी कारण से चाणक्य, नन्द-वश के राजाओ से पहले ही से चिढा हुआ था। वह एक विद्वान् पुरुष था और राजनीतिक दाव-पेचो को खूब समझता था। उसने 'अर्थ-शास्त्र' नामक एक ग्रन्थ लिखा है जिसमे आर्थिक, सामाजिक

तथा राजनीतिक विषयो पर महत्त्वपूर्ण विचार प्रकट किये गये है। 'मुद्राराक्षस' नामक सस्कृत नाटक में इस बात का उल्लेख मिलता है कि चाणक्य की कूट-नीति से नन्द-वश का सर्वनाश हुआ और चन्द्रगुप्त मौर्य को राज्य मिला।

चन्द्रगुप्त ने समस्त उत्तरी भारत को जीत लिया। दक्षिण का भी कुछ भाग उसके अधीन था। सिन्ध, काठियावाड, गुजरात तथा मालवा भी सम्भवत उसके साम्राज्य मे शामिल थे।

**सिल्यूकस नाइकेटर**—सिल्यूकस सिकन्दर का एक सेनापति था। सिकन्दर की मृत्यु के बाद वह सिरिया (Syria) का शासक बन बैठा। वह भी भारत को विजय करना चाहता था। ३०५ ई० पू० के लगभग उसने सिन्धु नदी को पार किया किन्तु कुछ-सफलता प्राप्त नही हुई। सिल्यूकस को वापस लौटना पडा और दबकर सन्धि करनी पडी। इस सन्धि के द्वारा उसने अफगानिस्तान और बिलोचिस्तान के देश चन्द्रगुप्त को दे दिये। चन्द्रगुप्त ने उसकी लडकी के साथ विवाह कर लिया और ५०० हाथी उसे भेंट किये। इसके अतिरिक्त सिल्यूकस ने मेगास्थनीज़ नामक राजदूत को चन्द्रगुप्त के दरबार मे भेज दिया। मेगास्थनीज़ ने मौर्य साम्राज्य के शासन-प्रबन्ध का विवरण लिखा है।

**चन्द्रगुप्त का कार्य**—२४ वर्ष तक सफलतापूर्वक शासन करने के बाद चन्द्रगुप्त ने अपनी राजगद्दी अपने पुत्र बिन्दुसार को (ई० पू० २००) सौंप दी। भारत के इतिहास में चन्द्रगुप्त मौर्य का शासन एक महत्त्वपूर्ण घटना है। अपने बाहुबल से उसने तथा उसके वशजो ने एक विशाल साम्राज्य स्थापित किया। उसका शासन-प्रबन्ध सुव्यवस्थित था। उसके राज्य में न तो कोई विद्रोह हुआ और न देश की शान्ति ही भग हुई। यूनानियो को अच्छा सबक मिल गया था इसलिए उन्होने सिल्यूकस के बाद १०० वर्ष तक भारत पर आक्रमण नही किया।

**शासन-प्रबन्ध**—वैदिक काल की शासन-पद्धति धीरे-धीरे लुप्त हो चुकी थी। मौर्य सम्राट् निरकुश शासक था परन्तु मनमानी नही

करता था। उसकी सहायता के लिए एक कौंसिल थी जिसे मन्त्रि-परिषद् कहते थे। राज्य के मामलो में यह परिषद् राजा को परामर्श देती थी। इस परिषद् के अतिरिक्त एक अतरग मन्त्रिमण्डल भी था जिसमें मन्त्री (प्रधान सचिव), पुरोहित, सेनापति तथा युवराज सम्मिलित होते थे। उनके नीचे शासन के विविध विभागो का प्रवन्ध करने के लिए अनेक अधिकारी थे। इनमें से तीन मुख्य थे—समाहर्तृ, सन्निधातृ तथा प्रादेशिक। समाहर्तृ राज्य की आय का हिसाब-किताब रखता था। सन्निधातृ राजकीय कोष तथा मालगोदाम की देख-रेख करता था और प्रादेशिक माल के महकमे तथा न्याय-विभाग का प्रधान था। इनके अतिरिक्त अन्तपाल और दुर्गपाल लोग थे जो साम्राज्य के दुर्गों की रक्षा करते थे। राज-पुरोहित को छोडकर और सब मुख्य-मुख्य मन्त्री क्षत्रिय होते थे और उनका पद प्राय मौरूसी होता था।

सारा साम्राज्य प्रान्तो में विभक्त था। प्रत्येक प्रान्त का शासन प्रादेशिको की सहायता से राजवश का कोई राजकुमार करता था। प्रत्येक प्रान्त कई जनपदो मे विभक्त होता था और प्रत्येक जनपद में कई गण अथवा स्थान होते थे। कई ग्रामो के समूह से गण वनता था।

ग्राम का प्रवन्ध ग्रामनिवासी ही करते थे। गाँव का मुखिया बडे-बूढो की सलाह मे मामलो का निपटारा करता था। मुखिया के ऊपर के अधिकारियो को गण और स्थानिक कहते थे। उनका अधिकार-क्षेत्र अधिक विस्तृत था। नगर का प्रवन्ध भी नागरिको द्वारा इसी प्रकार होता था। नगर के प्रधान अधिकारी को नागरिक कहते थे और उसको वही काम करना पडता था जो आज-कल कोतवाल करता है। वह मनुष्यो और उनकी धन-सम्पत्ति का उल्लेख रखता था और सरायो की देख-भाल करता था। जिन स्थानो पर खेल-तमाशे होते थे उनकी भी निगरानी करना उसका काम था। बाजार के क्रय-विक्रय का निरीक्षण भी वही करता था और परदेशी लोगो के चाल-चलन की भी देख-रेख करता था।

साम्राज्य की समस्त भूमि राजा की होती थी। जमींदारी-प्रथा

नही थी। किसानो के हितो की पूर्ण रक्षा की जाती थी। भूमि की उपज का चतुर्थांश उन्हे राज्य को देना पडता था। शिल्पजीवियो से कोई कर नही लिया जाता था।

राजा देश मे सबसे वडा न्यायाधीश था। वह रोज़ दरबार करता था और लोग उसके पास जाकर अपनी फरियाद करते थे। झगडो का निपटारा अधिकारियो अथवा पञ्चायतो द्वारा होता था। अपील राजा स्वय सुनता था।

मेगास्थनीज लिखता है कि फौजदारी का कानून बहुत कडा था। छोटे-छोटे अपराधों के लिए हाथ-पैर काट लिये जाते थे। झूठी गवाही देने-वाले का अगच्छेद किया जाता था। यदि कोई मनुष्य किसी कारीगर का हाथ तोड या काट डालता अथवा उसकी आँख फोड डालता तो उसे फाँसी की सज़ा दी जाती थी। इन कडे कानूनो का परिणाम यह हुआ कि अपराध बहुत कम होते थे और मुकदमाबाज़ी भी कम थी।

राजा और उसके वडे अफसर गुप्तचर रखते थे। वे अनेक भाषाएँ और बोलियाँ जानते थे और कई तरह के भेप बदलना जानते थे। राजा को सदा यह भय लगा रहता था कि कोई उसे विप न दे दे अथवा मार न डाले। उसके महल की रक्षा वडी चौकसी के साथ होती थी। महल के अन्दर जो कोई चीज़ जाती थी वह रजिस्टरो में दर्ज की जाती थी। मेगा-स्थनीज़ लिखता है कि राजा प्रत्येक रात्रि को अपने सोने का कमरा बदल देता था। महल मे सोने और जवाहरात की कोई कमी न थी। शासन-व्यवस्था की छोटी-छोटी बातो को राजा स्वय देखता था। इस कारण उसका दैनिक कार्य बहुत वढ जाता था। इतना होने पर भी वह जनता के दु खो को सुनने के लिए सदैव तैयार रहता था।

विदेशियो के साथ अच्छा वर्त्ताव किया जाता था। हाकिमो को हिदायत दी जाती थी कि वे उनके आराम और सुभीते का ख़याल रक्खें। न्यायाधीश वडी सावधानी से मुकदमो पर विचार करते थे और जो कोई उन्हें कष्ट देता था उसे उचित दण्ड दिया जाता था। यदि कोई विदेशी

बीमार पड जाता तो राज्य के वैद्य उसकी चिकित्सा करते थे और यदि दैवात् वह मर जाता तो उसकी सम्पत्ति उसके वारिसो को दे दी जाती थी।

साम्राज्य, सैनिक शक्ति पर निर्भर था इसलिए सेना का सगठन बहुत अच्छा था। फौजी अफसर छ कमेटियो में विभक्त किये गये थे और प्रत्येक कमेटी में पाँच सदस्य होते थे। ये लोग जहाजी बेडा, फौजी रसद, पैदल और अश्वारोही सेना, लडाई के रथो और हाथियो का प्रबन्ध करते थे। सेना बहुत शक्तिशाली थी। उसमें छ लाख पैदल सिपाही, तीस हजार अश्वारोही, नौ हजार हाथी और असंख्य रथ थे। चन्द्रगुप्त ने बलात् सिंहासन पर अधिकार जमाया था इसलिए उसे कठोर नीति से काम लेना पडता था। उसकी मृत्यु के बाद शासन में बहुत-सा परिवर्तन हो गया। अशोक ने साम्राज्य की सारी शक्ति को धर्म-प्रचार में लगा दिया।

पाटलिपुत्र—पाटलिपुत्र मगध की राजधानी था और सोन तथा गंगा के सगम पर बसा था। इसकी लम्बाई ९ मील और चौडाई १½ मील थी। इसके चारो ओर लकडी की एक मजबूत दीवार थी जिसमें ६४ फाटक और ५०० बुर्ज तथा मीनारें थी। दीवार के चारो तरफ एक गहरी खाई थी जिससे कोई शत्रु सहसा नगर पर आक्रमण न कर सके। राजप्रासाद भी लकडी का बना हुआ था किन्तु सुन्दरता और सज-धज में बिलकुल बेजोड था। नगर का प्रबन्ध एक म्यूनिसिपल कमेटी द्वारा होता था। इसमे कुल छ समितियाँ थी और प्रत्येक समिति मे पाँच-पाँच सदस्य थे। इन समितियो का काम अलग-अलग बँटा हुआ था। पहली समिति लोगो के जन्म-मरण का लेखा रखती थी। दूसरी समिति दस्तकारी का प्रबन्ध करती थी। तीसरी समिति टैक्स अथवा कर वसूल करती थी। चौथी समिति विदेशियो की देख-भाल करती थी और उनकी सुविधाओ का प्रबन्ध करती थी। पाँचवी समिति वाणिज्य-व्यापार की व्यवस्था करती थी। छठी उद्योग-व्यवसाय का निरीक्षण करती थी।

आर्थिक और सामाजिक स्थिति—मेगास्थनीज लिखता है कि लोग बडी सादगी से रहते थे। विशेष कर उस समय जब वे फ़ौजी पडाव

पर रहते थे। चोरी बहुत कम होती थी। कानून बहुत सरल थे। लोग मुकदमेबाज़ी बहुत कम करते थे। वे ऐसे ईमानदार थे कि उन्हें रुपया जमा करने या चीज़ गिरवी रखने के लिए मुहरो या गवाहो की आवश्यकता नही पडती थी। धन-सम्पत्ति की रक्षा के लिए पहरेदार नहीं रक्खे जाते थे। लोग घरो में ताले नही लगाते थे। सचाई और आचरण की पवित्रता पर बहुत ध्यान दिया जाता था। दासता का चिह्न भी न था। जाति-पांत का भेद-भाव था और अन्तर्जातीय विवाह नहीं होते थे। लोग आभूषण तथा बढ़िया और भडकीली चीज़ें बहुत पसन्द करते थे। त्यौहारो के अवसर पर धूमधाम के साथ उत्सव मनाया जाता था। ब्राह्मण पशुओ का मास नही खाते थे। वे अपना समय अध्ययन और शास्त्रार्थ मे व्यतीत करते थे। देश मे मूर्ति-पूजा का प्रचार था। प्राय लोग शिव और विष्णु की पूजा करते थे। पजाब में कुछ अद्भुत प्रथाएँ प्रचलित थी जैसे लडकियो का वेचना और विधवाओ का अग्नि में जलाना आदि।

लोगो की आर्थिक दशा के सम्बन्ध मे मेगास्थनीज़ लिखता है कि भारतवासी अनेक व्यवसाय करते थे। विशेषकर वे धातु का काम करने और कपडा बुनने मे लगे रहते थे। देश में अनेक धनी पुरुष थे जिनका समाज मे बडा प्रभाव था। व्यापारी राज्य से वेतन पाते थे। वे राजकीय माल की देख-भाल करते थे और चीज़ो के निर्ख और बिक्री पर नज़र रखते थे। व्यापार उन्नत दशा मे था। मसाले और सोने-चाँदी की बहुमूल्य चीजें भारत के प्रत्येक भाग से आती थी। लका तथा समुद्र-पार से मोती-जवाहिरात आते थे। मलमल, रेशम और सूत के कपडे चीन और सुदूर भारत से मँगाये जाते थे। राज्य के अफसर इस बात का हिसाब रखते थे कि व्यापारी कहाँ से आते है और कहाँ जाते हैं। चीज़ो का निर्ख नियत करने के लिए व्यापारी आपस में गुट्ट नही बनाने पाते थे। मामूली चीज़ो के दाम नियत कर दिये जाते थे और राज्य के कर्मचारी उनकी घोषणा कर देते थे। बाँटो की जाँच होती थी। माल पर चुगी ली जाती

थी। राज्य में अनेक कारखाने और गोदाम थे। अनाथ और असहाय स्त्रियो के लिए सूत-कताई के आश्रम खुले हुए थे। दीनो को भोजन और वस्त्र दिये जाते थे। सिक्के जारी करने का अधिकार केवल राजा ही को था।

अर्थ-शास्त्र—कौटल्य ने अर्थ-शास्त्र नामक एक बडा ग्रन्थ लिखा है और उसमें बताया है कि राजा को शासन-व्यवस्था किस प्रकार करनी चाहिए। वह लिखता है कि राजा को तीन या चार मन्त्री रखने चाहिए। इन मन्त्रियो के अतिरिक्त परामर्श देने के लिए एक परिषद् होनी चाहिए। परन्तु उसके सदस्यो की सख्या निश्चित नही की गई है। सन्निधातृ का काम राजा के परिवार, राजकोष तथा सिक्के आदि का प्रवन्ध करना था। शासन-प्रवन्ध का कार्य लगभग २५ अध्यक्षो द्वारा सञ्चालित होता था और समाहर्तृ कर और महसूल वसूल करता था। ये अध्यक्ष मन्त्रियो तथा अन्य बडे-बडे हाकिमो की अधीनता में काम करते थे। कौटल्य ने प्रान्तीय तथा स्थानीय शासन-व्यवस्था के सम्बन्ध में भी विस्तार-पूर्वक लिखा है। उसने यह भी बतलाया है कि अदालतो का किस प्रकार प्रवन्ध होना चाहिए। राजा का कर्त्तव्य है कि अपनी प्रजा के साथ दया का बर्ताव करे और उसके हित का सदैव ध्यान रक्खे। अपराधो के लिए कडे दण्ड निर्धारित किये गये है। छोटे-छोटे अपराधो के लिए प्राण-दण्ड तक देने का विधान है। कौटल्य की राय में परराष्ट्र के प्रति किसी भी प्रकार की नीति का व्यवहार किया जा सकता है। इसमे उचित और अनुचित का विचार नही करना चाहिए।

विन्दुसार—चन्द्रगुप्त मौर्य का बेटा विन्दुसार ई० पू० ३०० के लगभग सिहासन पर बैठा। उसके शासन-काल में कोई महत्त्वपूर्ण घटना नही हुई। केवल इतना ही मालूम हुआ है कि पडोस के यूनानी सरदारो के साथ उसकी मित्रता थी। ई० पू० २७४ के लगभग उसका देहान्त हो गया। उसके बाद उसका लडका अशोक गद्दी पर बैठा।

अशोक—प्रारम्भिक जीवन में कुछ किंवदन्तियो के अनुसार अशोक

अपने ९९ भाइयो को मारकर गद्दी पर बैठा था। किन्तु इनमें तथ्य कुछ भी नही है। यह सम्भव है कि सिंहासन के लिए उसे अपने भाइयो के साथ युद्ध करना पडा हो और उसके भाइयो ने अन्त में हार मान ली हो। यो तो वह ई० पू० २७४ मे गद्दी पर बैठा किन्तु उसका राज्याभिषेक चार वर्ष के बाद हुआ। गद्दी पर बैठते ही उसने 'प्रियदर्शी' और 'देवानाम्प्रिय'' आदि उपाधियाँ धारण की। ई० पू० २६२ के लगभग उसने कलिंग देश पर चढाई की और उसे जीतकर अपने राज्य मे मिला लिया। युद्ध की भीषणता और घोर रक्त-पात को देखकर उसे बडा दुःख हुआ। उसने संकल्प किया कि अब फिर कभी युद्ध न करूँगा। इस घटना के थोडे ही दिनो बाद बौद्ध-भिक्षुओ के साथ अशोक का सम्पर्क हुआ और उसने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया। ई० पू० २५८ तक वह एक कट्टर बौद्ध बन गया और जनता में बौद्धमत का प्रचार करने लगा।

अशोक की शिक्षाएँ—अपने सिद्धान्त का सर्व-साधारण में प्रचार करने के लिए उसने एक नया उपाय निकाला। देश के अनेक भागो में उसने लाटें* गडवाईं और उन पर लेख खुदवाये। कुछ चट्टानो की सतहो को साफ और चिकनी करके उन पर भी लेख खुदवाये। अपने अनेक लेखो मे अशोक ने यह बतलाया है कि सच्चा धर्म क्या है जिसका लोगो को अनुसरण करना चाहिए। वह कहता था कि माता-पिता और बडो की आज्ञा पालन करना, गुरु का आदर करना, ब्राह्मण, बौद्ध भिक्षुओ, सम्बन्धियो, नौकर-चाकरो तथा दीनो के प्रति उचित व्यवहार करना, जीव-हिंसा न करना, दया करना, दान देना और शुद्ध आचरण रखना ही सच्चा धर्म है। उनकी शिक्षाएँ इतनी सरल थी कि कोई भी मनुष्य बिना बौद्ध

---

* संयुक्त प्रान्त में देहरादून के समीप कलसी में शिलालेख मिले हैं। काशी के निकट सारनाथ और इलाहाबाद के क़िले के अन्दर अशोक के स्तम्भ-लेख मिलते हैं। स्तम्भ-लेख सख्या में कुल ७ है और शिला-लेख १४।

धर्म ग्रहण किये उन पर आचरण कर सकता था। यद्यपि ये सब शिक्षाएँ बौद्ध धर्म-ग्रन्थो से ली गई है किन्तु उनका समावेश सब धर्मों मे है।

**अशोक का धम्म (धर्म)**—अशोक बौद्ध धर्म का अनुयायी था किन्तु वह सब धर्मों का आदर करता था। उसमें धार्मिक मात्रा, उदारता और सहिष्णुता अधिक थी। उसने एक लेख खुदवाया जिसमे धार्मिक सहिष्णुता का इस प्रकार वर्णन किया है—"जो अपने धर्म का आदर करता है और अकारण ही दूसरो के धर्म की निन्दा करता है वह वास्तव मे अपने आचरण द्वारा अपने ही धर्म को बडी हानि पहुँचाता है। ऐसा मनुष्य धर्म के तत्त्व को नही जानता।"

इस धर्म का पालन सभी लोग कर सकते थे। छोटे बडे सबको इस धर्म पर चलने का राज्य की ओर से आदेश था। कर्मचारियो को आज्ञा थी कि वे धनवान् तथा धनहीन सबको दान करने का आदेश करें। यही शिक्षा लाटो पर खुदवाई गई और जनता में इसका प्रचार किया गया। अशोक का मन्तव्य यश प्राप्त करना नही था। उसकी इच्छा थी कि उसके वशज इसी सन्मार्ग पर चले और प्रजा के हित को अपना लक्ष्य बनायें। प्राचीन काल के पुस्तकालय नष्ट हो गये है परन्तु अशोक की लाटे अब तक मौजूद है और हमें उसके सत्कर्मो का स्मरण कराती हैं।

**बौद्ध धर्म का प्रचार**—अशोक ने बौद्ध धर्म को बडा आश्रय दिया। वह बौद्ध धर्म का एक प्रसिद्ध आचार्य बन गया। उसके शासन के इक्कीसवें वर्ष में पाटलिपुत्र में बौद्धो की तीसरी सभा हुई। उसमें विभिन्नताओ का उल्लेख किया गया और सिद्धान्त का निर्णय हुआ। सभा के समाप्त होने के बाद अशोक ने काश्मीर, गान्धार, बैक्ट्रिया, हिमालय- प्रदेश, दक्षिण भारत तथा लका, पीगू, पूर्वी द्वीपसमूह, सिरिया तथा मिस्र आदि बाहर के देशो में अपने धर्म-प्रचारक भेजे। धर्म-प्रचारको का जो दल लका भेजा गया उसके प्रधान अशोक के पुत्र महेन्द्र और उसकी पुत्री सघमित्रा थे। बोधगया मे जिस वृक्ष के नीचे बुद्ध भगवान् को निर्वाण प्राप्त हुआ था उसकी एक शाख भी वे लका ले गये थे।

बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए उसने बहुत से कर्मचारी नियुक्त किये जो दौरे पर जाकर सर्वसाधारण को धर्म और सदाचार का उपदेश करते थे। उसकी आज्ञा थी कि उसके भोजनालय में केवल तीन जीवित जन्तु—दो मोर और एक हिरन—मारे जायँ। इन पशुओ का वध भी कुछ समय के बाद उसने बिलकुल बन्द कर दिया। राजधानी में यज्ञ का निषेध हो गया। ऐसे नाटको का खेला जाना बन्द कर दिया गया जिनमें पशु-युद्ध तथा सुरापान आदि के दृश्य रहते थे। इन नाटको के स्थान में उसने अन्य प्रकार के खेल-तमाशे और मनोविनोद के साधनो की व्यवस्था की। उसने तीर्थ-स्थानो की यात्रा की और बुद्ध भगवान् के जन्म-स्थान का भी दर्शन किया।

**अशोक और लोक-कल्याण**—अशोक अपनी प्रजा की उन्नति का बहुत ध्यान रखता था। मनुष्यो और पशुओ के लिए उसने चिकित्सालय स्थापित किये। सडको के किनारे कुएँ खुदवाये और फलनेवाले छायादार वृक्ष लगवाये। उसने इस बात की भी खूब चेष्टा की कि उसके कर्मचारी प्रजा पर अत्याचार न करने पावें। पशुओ पर भी वह बडी दया करता था। उनके लिए भी उसने अस्पताल खुलवा दिये थे। राज्य में उसने घोषणा कर दी थी कि वर्ष के कुछ दिनो में जीव-हिंसा बिलकुल बन्द कर दी जाय।

इन तमाम कार्यों में सफलता प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक था कि सम्राट् स्वय परिश्रम करता। राज्य का काम करने के लिए वह दिन-रात तैयार रहता था। इतने पर भी वह अपने काम से सन्तुष्ट न था।

**अशोक का शासन-प्रबन्ध**—अशोक का राष्ट्रीय आदर्श बहुत उत्कृष्ट था। वह कहता था कि सब लोग मेरी सन्तान के तुल्य हैं। जिस प्रकार मेरी यह अभिलाषा रहती है कि मेरी सन्तान इस लोक तथा परलोक में सब प्रकार सुखी एव समृद्धिशाली हो उसी प्रकार सबके लिए मेरी ऐसी ही कामना है।

अशोक बडा परिश्रमशील था। वह प्रत्येक समय प्रत्येक स्थान

पर राज-कार्य में तैयार रहता था। अफसरो को आज्ञा थी कि प्रजा के मामलो की सम्राट् को फौरन सूचना दिया करें, वह चाहे शयन-गृह में हो चाहे क्रीडा-स्थल में। राजा स्वय प्रजा की दशा को अच्छी तरह जानने के लिए देश में भ्रमण किया करता था।

साम्राज्य दो प्रकार के सूबो में विभक्त था। बडे सूबो का शासन करने के लिए राज-वश के लोग नियुक्त किये जाते थे और छोटे सूबे दूसरे शासको के अधीन होते थे। अशोक के लेखो मे ऐसे चार प्रान्तो का वर्णन है जहाँ राज-वश के लोग शासन करते थे।

(१) गान्धार, जिसकी राजधानी तक्षशिला थी।
(२) दक्षिण प्रान्त, जिसकी राजधानी सुवर्णगिरि थी।
(३) कलिंग, जिसकी राजधानी तोसाली (आधुनिक धौली) थी।
(४) मध्य प्रान्त, जिसकी राजधानी उज्जयिनी अथवा उज्जैन थी।

रुद्रदामा के जूनागढवाले लेख से पता चलता है कि सौराष्ट्र तथा काठियावाड का शासन करने के लिए एक यवन नियुक्त किया गया था। बडे प्रान्तो के अध्यक्षो की मदद के लिए महामात्र नाम के अफसर नियुक्त थे। अशोक के लेखो में तीन और अफसरो का उल्लेख मिलता है। ये है प्रादेशिक, राजुक और युक्त। प्रादेशिक भूमिकर और पुलिस का प्रबन्ध करता था। राजुक की अधीनता में सहस्रो मनुष्यो की खपत थी। उसका काम ज़मीन की पैमाइश करना और सीमा निर्धारित करना था। युक्त ज़िलो के अफसर होते थे।

युक्त सम्राट् की आय और सम्पत्ति की देख-भाल करते थ। प्रति पाँचवें वर्ष बडे-बडे अफसर सारे राज्य में दौरा करते थे और लोगो को सदाचार की शिक्षा देते थे। धर्म की शिक्षा देने के लिए धर्ममहामात्र नाम के अफसर थे जो अन्याय का प्रतिकार तथा राज-परिवार के दान का भी प्रबन्ध करते थे। इनके अतिरिक्त ऐसे भी निरीक्षक थे जो लोगो के आचरण पर नज़र रखते थे और देखते थे कि सम्राट् के धार्मिक नियमो का पालन होता है या नही। सब लोगों को राज्य की ओर से आदेश

थो कि वे दयालु, उदार, सत्यवादी, पवित्र तथा विनम्र बनें। सम्राट् की आज्ञा थी कि राज-कर्मचारी सदैव अपने काम मे तत्पर रहें और शीघ्रता से अपने कर्त्तव्य का पालन करे। मनमानी तौर पर लोग कैद नही किये जाते थे और यदि कर्मचारी अनुचित कार्य करते तो उन्हे दण्ड दिया जाता था। अनाथ बच्चो, विधवाओ, असहायो और वृद्धो की सुविधा का विशेप ध्यान रक्खा जाता था। धर्म का एक अलग विभाग था। युद्ध बन्द कर दिया गया और सम्राट् ने प्रजा के मन से भय तथा शका दूर करने के लिए पूरा प्रयत्न किया। यवन, गान्धार आदि सीमान्त प्रदेशो के साथ समानता का व्यवहार किया गया। अशोक अपने प्रेम तथा अपनी शुभेच्छा का सन्देश उनके पास भेजता था और जगल के निवासियो के प्रति भी दया का बर्ताव करता था। सम्राट् सदाचार पर विशेप जोर देता था। उसका कहना था कि राजा का गौरव देश जीतने में नही है बल्कि प्रजा की धार्मिक उन्नति में है।

**साम्राज्य का विस्तार**—अशोक का साम्राज्य सारे भारत में फैला हुआ था। दक्षिण की ओर मैसूर के ऊपरी भाग तक, उत्तर-पश्चिम की ओर कश्मीर, हिमालय-प्रदेश तथा अफगानिस्तान और बिलोचिस्तान के कुछ भाग उसमें शामिल थे। इसके नीचे पजाब और सिन्ध से लेकर बगाल और विहार तक तथा गुजरात एव मालवा से कलिग प्रान्त तक का देश इसमे शामिल था। समस्त पश्चिमी तथा मध्य भारत अशोक के साम्राज्य में थे। विन्ध्य पर्वत के उस पार पेनार नदी तक उसका राज्य था। सुदूर दक्षिण के राज्य—चोल, चेर, पाण्ड्य और सत्यपुत्र स्वाधीन थे। साम्राज्य की उत्तरी-पश्चिमी तथा दक्षिणी सीमा पर कुछ अर्द्ध-स्वाधीन राज्य थे जो सम्राट् अशोक का आधिपत्य स्वीकार कर चुके थे।

**अशोक का चरित्र**—भारतीय इतिहास मे अशोक बहुत बडे राजाओ मे गिना जाता है। राजनीति मे उसने बहुत ऊँचे आदर्शों का समावेश किया। उसका कहना था कि वास्तविक विजय वह है जो सत्य-द्वारा प्राप्त की

जाय। शारीरिक वल द्वारा प्राप्त विजय को वह विजय नही समझता था। वह अपनी प्रजा से प्रेम करता था और उनके हित के लिए भरसक उसने प्रयत्न किया। अमीर-गरीव दोनो को वह समान समझता था। और देश भर में दौरा करके वह लोगो की वास्तविक दशा का ज्ञान प्राप्त करता था। इस प्रकार उसने उनके जीवन को अधिक सुखमय वनाने का उद्योग किया। वह सव पर दया करता था और दान देने में वौद्धो तथा अन्य धर्मवालो में कोई भेद-भाव नही करता था। धर्म के विषय मे वह वडा ही सहिष्णु था और दूसरो को भी यही शिक्षा देता था। वह सदाचार

अशोक का लेख

पर ज़ोर देता था और अपने एक लेख में उसने यह कहा—"माता-पिता की आज्ञा का पालन अवश्य होना चाहिए। उसी प्रकार जीव-जन्तुओ का आदर अवश्य किया जाय, सत्य अवश्य वोला जाय। शिष्यो को अपने गुरु का सम्मान करना चाहिए और सम्वन्धियो के प्रति उचित शिष्टाचार का व्यवहार करना चाहिए।"

अशोक का साम्राज्य
काबुल
कम्बोज
गजनी
पेशावर
तक्षशिला
श्रीनगर
गान्धार
यवनराज्य
साकल
सिल्यूकस का दिया हुआ
मूलस्थानपुर
अम्बाला
टोपरा
देहरादून
मेरठ
इन्द्रप्रस्थ
मथुरा
बैराट
श्रावस्ती
कुशीनगर
ललितापट्टन
कपिलवस्तु
पाटलिपुत्र
कौशाम्बी
प्रयाग
काशी
मगध
चम्पा
सहसराम
बोधगया
अंग
विदिसा
रूपनाथ
उज्जैन
साची
ताम्रलिप्ति
सोराष्ट्र
गिरनार
भोज
पुलिंद
(धौली) तोसाली
जौगढ़
सोपारा
राष्ट्रीक
कलिंग
आन्ध्र
मस्की
स्वर्णगिरि
सिद्धपुर
पेनार नं०
नीलोर
बंगाल की खाड़ी
अरब सागर
सत्यपुत्र
केरलपुत्र
तंजोर
मदुरा
चोल
पाण्ड्य
ताम्रपर्णी (लंका)
शिलालेख
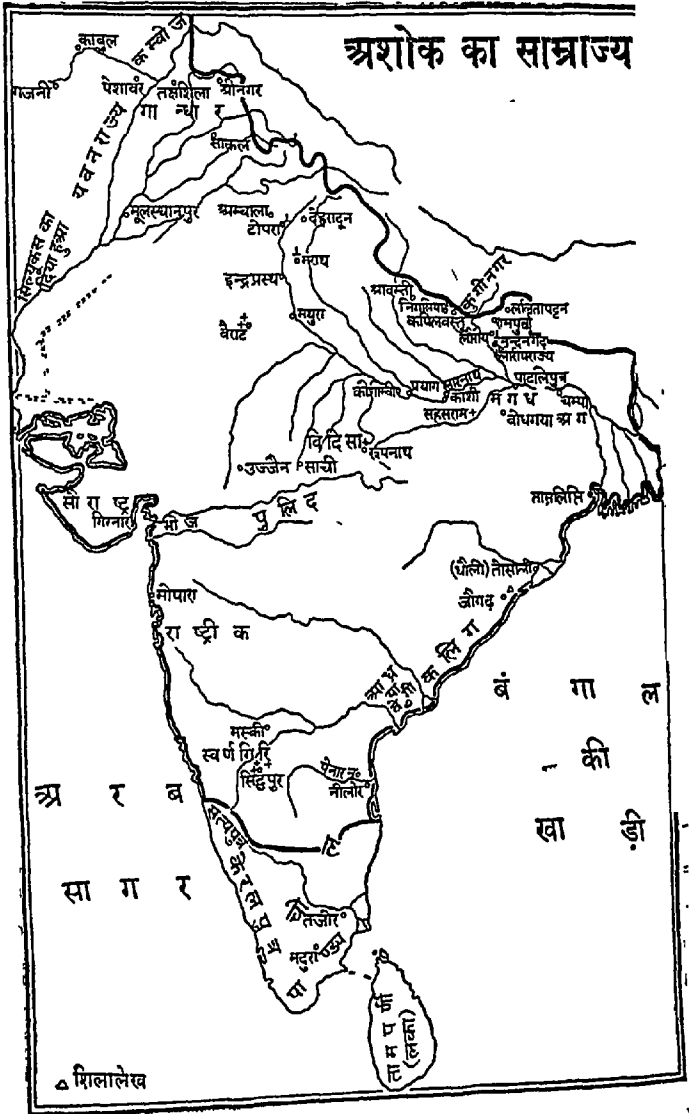
अशोक एक सच्चे धर्म-प्रचारक की भाँति अपना जीवन व्यतीत करता था। अपने धर्म पर वह स्वय आचरण करता था और दूसरो को भी वैसा ही करने का उपदेश करता था। इतिहास के पृष्ठो में उसका नाम सदा अजर-अमर रहेगा। उसके समान दूसरा कोई राजा भारत के क्या ससार के इतिहास में नही हुआ।

लौरिया नदनगढ-स्तम्भ

**अशोक के समय का सामाजिक जीवन**—अशोक के शासन-काल में भारत की सामाजिक स्थिति में वडा परिवर्तन हुआ। सारे देश में धर्म का राज्य फैल गया और सभी लोगो ने उसका अनुभव अपने जीवन में किया। ब्राह्मण, श्रवण, आजीविक आदि अनेक सम्प्रदाय थे। परन्तु राज्य की ओर से सवके साथ निष्पक्षता का व्यवहार किया जाता था और सवको इस वात की हिदायत की गई थी कि धर्म के मामलो मे सहिष्णु होना सीखें, सत्य का आदर करें और वार्तालाप में सयम से काम लें। देश में वहुत से साधु थे जिनमें से कोई-कोई समाज की अच्छी सेवा करते थे। कभी-कभी राजकुमार तथा राजकुमारियाँ भी धर्म-प्रचार के लिए दूर देशो में जाती थी। लोगो का धार्मिक दृष्टि-कोण उदार था। समुद्रयात्रा का निषेध नही था। ऐसा करने पर लोग जाति से वहिष्कृत नही किये जाते थे। कभी-कभी विदेशी भी हिन्दू वना लिये जाते थे और लोकमत कभी इस कार्य को वुरा नही समझता था। एक यूनानी हिन्दू-धर्म में दीक्षित किया गया
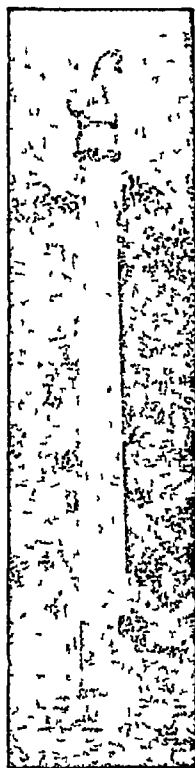
और उसका नाम धर्मरक्षित रक्खा गया। अशोक ने अपनी शिक्षाओं को बोल-चाल की भाषा में लाटो पर खुदवाया था। इससे मालूम होता है कि उस समय शिक्षा का काफी प्रचार था। देश मे बहुत से मठ और पाठशालाएँ थी। इतिहासकार स्मिथ शिक्षा के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखता है—"मेरी सम्मति में अशोक के समय की बौद्ध-जनता में प्रतिशत शिक्षितो की संख्या आधुनिक ब्रिटिश भारत के अनेक प्रान्तो की अपेक्षा अधिक थी।"

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारो वर्णों के लोग सुखी तथा सदाचारी थे। सम्बन्धियो, मित्रो और नौकरो तथा पशुओ के साथ भी दया का बर्ताव किया जाता था। साधु-महात्माओ के भरण-पोषण की सहायता का भी प्रबन्ध किया जाता था। बाल-विवाह तथा बहुविवाह की प्रथाएँ प्रचलित थी। अशोक के कई रानियाँ थी। उसने १८ वर्ष की अवस्था में अपना विवाह किया था और उसकी सबसे बडी लडकी का विवाह

चन्द्रगुप्त के सिक्के

१४ वर्ष की अवस्था मे हुआ था। मांस खाने का रवाज कम हो रहा था। आज-कल की तरह उस समय पर्दे की प्रथा न थी किन्तु महिलाएँ अन्तःपुर मे रहती थी। हिन्दू स्त्रियाँ आज-कल की तरह बालक का जन्म होने पर और यात्रा के समय अनेक अनावश्यक क्रियाएँ करती थी। अशोक ने भी लिखा है कि स्त्रियाँ बहुत-से निरर्थक धार्मिक संस्कार करती हैं।

**मौर्यकालीन कला**—अशोक ने बहुत-से नगर, स्तूप, विहार और मठ बनवाये। स्थान-स्थान पर अनेक लाटे गडवाई। उसके लेखो से इस बात का प्रमाण मिलता है। उसने काश्मीर की राजधानी श्रीनगर की स्थापना की और एक दूसरा नगर उसने नैपाल मे बसाया। कहा जाता है कि अशोक अपनी लडकी चारुमती और उसके क्षत्रिय पति देवपाल के साथ

भारतवर्ष
शाक, कुशान और शातवाहन-
साम्राज्य
बे क्ट्रि या
गा न्धा र
का श्मी र
पुरुषपुर
कनिष्कपुर
तक्षशिला
सरस्वती
का
सा
म्रा
ज्य
मथुरा
कन्याकुब्ज
अयोध्या
कौशाम्बी
प्रयाग
काशी
पाटलिपुत्र
बुद्धगया
ने पा ल
कपिलवस्तु
उज्जैन
विदिशा
नर्मदा
अ भी र
शा त वा ह न
सोपारा
नासिक
उदयगिरि
क लि ग
ताम्रलिप्ति
गोदावरी
वेंगिपुर
धान्यकटक
अ र ब
सा ग र
ब गा ल
की
खा ड़ी
कांची
कावेरी
मदुरा
ल का

वहाँ गया था। अशोक का महल ऐसा सुन्दर था कि लगभग ६०० वर्ष के बाद जब चीनी यात्री फाह्यान भारत में आया तब उसे देखकर वह चकित रह गया कि ऐसा सुन्दर प्रासाद मनुष्य के हाथ का बनाया हुआ हो सकता है। उसकी चित्रकारी और पत्थर की खुदाई को देखकर वह मुग्ध हो गया। अशोक की बनवाई हुई बहुत सी इमारतें नष्ट हो गई हैं परन्तु साँची (भूपाल राज्य में स्थित) तथा भरहुत (इलाहाबाद से दक्षिण-पश्चिम की ओर ६५ मील पर बघेलखण्ड में स्थित) के स्तूप अब भी उसकी स्मृति की रक्षा कर रहे हैं। अशोक ने कई लाटें बनवाईं जो देश के सब भागो में पाई जाती है।
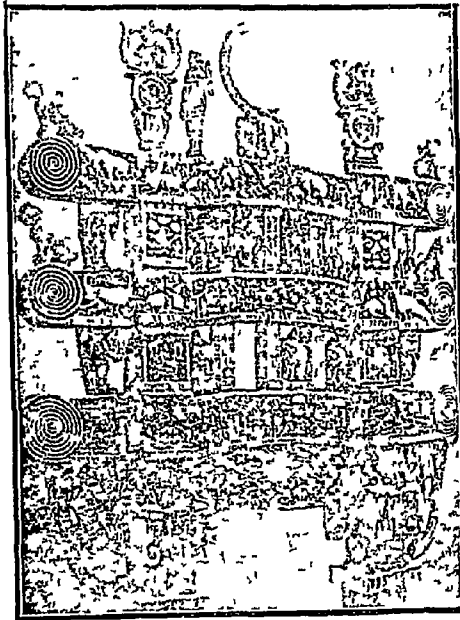
स्तूप-द्वार (साँची)

इनमें से साँची, प्रयाग, सारनाथ और लौरिया नन्दन-गढ की लाटें अधिक प्रसिद्ध है। इनमे कुछ स्तम्भो के ऊपर सिंह की मूर्तियाँ है। दिल्ली की लाट को १३५६ ई० में फीरोज़ तुगलक टोपरा नामक गाँव (मेरठ ज़िले मे स्थित) से उठाकर लाया था। यह उस काल

के स्थापत्य का एक अद्भुत नमूना है। इसकी वनावट और चमक अत्यन्त सुन्दर है। इन लाटो को उठाकर खडा करने में उस काल के इजीनियरो ने जो कुशलता दिखाई है वह भी ऊँचे दर्जे की है। सर जान मार्शल का कथन है कि सारनाथ के शिला-स्तम्भ पर जानवरो के जो चित्र खोदे गये है वह कला और शैली दोनो दृष्टि से बहुत उच्च कोटि के है। पत्थर पर इतनी सुन्दर खुदाई भारत में कभी नही हुई और न प्राचीन ससार में ही इसके जोड की कोई चीज़ मिलती है। सगतराशो ने आश्चर्य-जनक पटुता दिखाई है और ऐसा बारीक काम किया है जो आज-कल के कारीगरो के लिए सर्वथा दुष्प्राप्य है। कुछ ऐसी गुफाएँ भी है जिन पर अशोक तथा उसके उत्तराधिकारियो के लेख खुदे हुए है। ऐसी कुल सात गुफाएँ है और गया के पास वरावर की पहाडियो में स्थित हैं। उन पर मौर्य-काल की चमकीली पालिश है। दीवारें और छतें शीशे की तरह चमकती है। मौर्य-काल के कारीगर जौहरी का काम भी खूब जानते थे। वे वडी होशियारी और सफलता के साथ पत्थरो को काटते और उन पर पालिश करते थे।

कुछ विद्वानो का मत है कि मौर्य-कालीन कला पर यूनानी तथा ईरानी कला का प्रभाव पडा है। किन्तु इस कथन का कोई विश्वसनीय प्रमाण नही मिलता। यह जरूर है कि उस काल में विदेशी लोग भारत मे आये और वस गये। अशोक ने पश्चिम के प्रसिद्ध देशो के साथ घनिष्ठ सम्वन्ध स्थापित कर लिया था। सम्भव है कि उन देशो की कला का यहाँ की कला पर प्रभाव पडा हो।

इतिहास में अशोक का स्थान—इतिहास में अशोक का स्थान बहुत ऊँचा है। ऐसा और कोई राजा नही हुआ जिसने अपनी प्रजा का इतना हित किया हो। उसका आदर्श केवल मनुष्यो में ही भ्रातृभाव पैदा करना नहीं था वरन् जीव-मात्र में। उसने समस्त ससार के हित का ध्यान रक्खा और शारीरिक और आध्यात्मिक उन्नति के लिए प्रयत्न किया। पशुओं पर भी वह वडी दया करता था। अपने निकटवर्ती देशो में धर्म-प्रचार कर

उसने बौद्ध धर्म को विश्वव्यापी कर दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि भारत के लोग पूर्वी द्वीप-समूह में जाकर बस गये और वहाँ उन्होंने अपनी सस्कृति का प्रचार किया। राजा की बडाई की असली कसौटी यह है कि उसने अपने राजत्व-काल मे ससार को अधिक सुखी बनाया या नही। इस विचार से अशोक की गिनती अवश्य बडे राजाओ मे होनी चाहिए। इतिहास के अनेक राजाओ के चरित्र की आलोचना करता हुआ अँगरेज़ विद्वान् एच्० जी० वेल्स लिखता है—

"इतिहास के पृष्ठो में जिन सैकडो और हज़ारो राजा-महाराजाओ के नाम आते हैं उनमे केवल अशोक का नाम एक सितारे की तरह चमकता है। उसके नाम का सम्मान अभी तक वाल्गा नदी मे जापान तक होता है। चीन और तिब्बत में उसकी महत्ता का सिक्का जमा हुआ है और भारतवर्ष में भी, जहाँ बौद्ध धर्म का लोप हो गया है, अभी तक आदर के साथ उसका नाम लिया जाता है।"

अशोक ने आध्यात्मिक उन्नति पर इतना जोर दिया कि लोगो का सैनिक बल क्षीण हो गया और उनकी हिम्मत भी कम हो गई। धीरे-धीरे साम्राज्य का पतन आरम्भ हो गया।

**साम्राज्य का पतन**—अशोक के उत्तराधिकारी शक्तिहीन थे। वे इतने बडे साम्राज्य का प्रबन्ध करने में सर्वथा असमर्थ थे। अशोक ने सेना की ओर कुछ भी ध्यान नही दिया था और अपने पूर्वजो की सैनिक नीति को भी छोड दिया था। उसके बेटो और पोतो को यह शिक्षा मिली थी कि वे धैर्य और नम्रता से काम ले और खून बहाने से दूर रहें। उनमें लडने-भिडने का साहस न रहा। उसकी मृत्यु के बाद भारत मे विदेशी जातियाँ आने लगी। मौर्य सम्राट् उनको आगे बढने से रोक न सके। ब्राह्मणो का विरोध भी साम्राज्य के पतन का कारण हो सकता है परन्तु ऐसा नही प्रतीत होता कि सम्राट् ने ब्राह्मणो के साथ कठोरता का बर्त्ताव किया हो। साम्राज्य के पतन का वास्तविक कारण यह था कि बाहरी प्रान्तो के वाइसराय प्रजा पर अत्याचार करते थे। इस कारण प्रजा

में असन्तोष फैल गया और जब विदेशियो ने देश पर आक्रमण किया तो उनका सामना करनेवाला कोई न रहा।

शुग-वश—ब्राह्मण-साम्राज्य—मौर्य-वश के अन्तिम राजा बृहद्रथ को उसके ब्राह्मण सेनापति पुष्यमित्र ने ई० पू० १८४ में मार डाला। पुष्यमित्र स्वय गद्दी पर बैठा किन्तु उसके वाद भी वह अपने को सेनापति ही कहता रहा। उसका साम्राज्य दक्षिण मे नर्मदा नदी तक फैला हुआ था। पाटलिपुत्र और विदिशा उसमे सम्मिलित थे। उसके समय में यूनानी राजा डिमीट्रियस न उत्तरी भारत पर चढाई की और वह अवध तक वढ आया। किन्तु पुष्यमित्र ने उसे हराकर भगा दिया। पुष्यमित्र इतना शक्तिशाली राजा था कि उसने दो अश्वमेध यज्ञ किये और ब्राह्मणो के गौरव का पुनरुद्धार किया। मालविकाग्निमित्र नामक नाटक से पता चलता है कि सिधु नदी के दक्षिणी तट पर उसके यज्ञ के घोडे को यूनानियो ने रोक लिया था परन्तु उसके पोते ने उनको पराजित किया और घोडे को छुडा लिया। शुग-वश के लोग कट्टर हिंदू-धर्म के अनुयायी थे। परन्तु उन्होंने बौद्ध-धर्मवालो के साथ अत्याचार नही किया। पुष्यमित्र ई० पू० १४९ में अथवा उसके लगभग मर गया और उसका वेटा अग्निमित्र गद्दी पर बैठा। अग्निमित्र के वाद उसका वेटा वसुमित्र सिहासन का अधिकारी हुआ। इस वश के दसवे राजा देवभूमि को उसके ब्राह्मण मन्त्री वसुदेव काण्व ने मार डाला। इस प्रकार शुग-वश का अन्त करके वसुदेव पाटलिपुत्र की गद्दी पर बैठा। परन्तु उसका राज्य वहुत छोटा था। पुष्यमित्र के वशज उत्तरी भारत के कुछ प्रदेशो में इसके वाद भी राज्य करते रहे।

काण्व-वश—वसुदेव ई० पू० ७२ में पाटलिपुत्र का राजा हुआ। काण्व-वश के राजाओ का राज्य केवल मगध में था और वह भी थोडे ही दिनो तक। दक्षिणी भारत के शातवाहन राजाओ ने काण्व-वश का अन्त कर दिया। पुराणो में शातवाहनो को आन्ध्र कहा गया है। इसका कारण यह है कि उन्होंने आन्ध्र अथवा तेलगू भाषा-भाषी प्रदेश में होकर

मगध पर आक्रमण किया था। काण्व राजा निर्बल थे, अत वे शातवाहनो का सामना नही कर सके और ई० पू० २७ या २८ में पराजित कर दिये गये। शातवाहन वशवालो का भाग्य चमका और उनका राज्य एक वार हिमालय से लेकर दक्षिण में तुगभद्रा नदी तक फैल गया।

**शुग एव काण्व राजाओ के समय (ई० पू० १८४-२७) का सामाजिक जीवन**—शुग और काण्व दोनो वशो के राजा, जाति के ब्राह्मण थे। जव उनके हाथ मे राजनीतिक शक्ति आई तव ब्राह्मण-धर्म फिर उन्नति करने लगा। पुष्यमित्र सस्कृत विद्या का प्रेमी था। उसने ब्राह्मणो के धर्म को प्रोत्साहन प्रदान किया। वौद्ध धर्म की धीरे-धीरे अवनति होने लगी। वैदिक यज्ञो और कर्मकाण्ड का प्रचार फिर आरम्भ हुआ। पुष्यमित्र के शासनकाल में ही पतञ्जलि ने पाणिनि के व्याकरण पर प्रसिद्ध महाभाष्य लिखा। धर्म-शास्त्र का सग्रह किया गया। प्राचीन ग्रन्थो का क्रम स्थिर किया गया और विद्वानो ने उनका अध्ययन किया। रामायण और महाभारत काव्यो का इसी समय फिर से सम्पादन हुआ। इस काल का सर्वोत्कृष्ट कानून का ग्रन्थ मनुस्मृति या मानवधर्मशास्त्र है जिसमें हिन्दू-जीवन के प्रत्येक पहलू पर विचार किया गया है। समाज में ब्राह्मणो का स्थान ऊँचा है, विधवा-विवाह का निषेध है और दैनिक जीवन के अनेक नियम वने हुए है। मनुस्मृति में स्त्रियो की पूर्ण स्वतन्त्रता का विरोध किया गया है लेकिन साथ ही साथ यह भी कहा गया है कि जहाँ स्त्रियो का आदर होता है वहाँ देवता निवास करते है। जाति जन्म से मानी जाती है किन्तु मालूम होता है कि व्यावहारिक जीवन में जाति-पाँत के वन्धन वहुत कडे न थे।

ऊपर कहा जा चुका है कि महाराज अशोक के समय वौद्धो की एक वडी सभा हुई थी और उसमें इस वात की चेष्टा की गई थी कि बौद्ध सघ मे फूट न होने पावे। किन्तु उस सभा के वाद भी बौद्धो में मत-भेद वना रहा और विभिन्नताएँ वढती रही। वौद्धो ने यज्ञ और कर्म-काण्ड को रोक दिया था—किन्तु पुष्यमित्र ने वैदिक रीति के अनुसार

अश्वमेध यज्ञ किया और दूसरे राजाओ को अपनी प्रभुता स्वीकार करने पर विवश किया। बौद्ध और ब्राह्मण-धर्म के बीच भागवत तथा शैव नामक दो सम्प्रदायो का जन्म हुआ । भागवत सम्प्रदायवाले वासुदेव कृष्ण की उपासना करते थे और उनका केन्द्र मथुरा था। यह मत धीरे-धीरे भारत के अनेक भागो में फैल गया और दक्षिण में कृष्णा नदी तक पहुँच गया। विदेशियो ने भी इस मत को स्वीकार किया और अपने को भाग-

भरहुत-स्तूप
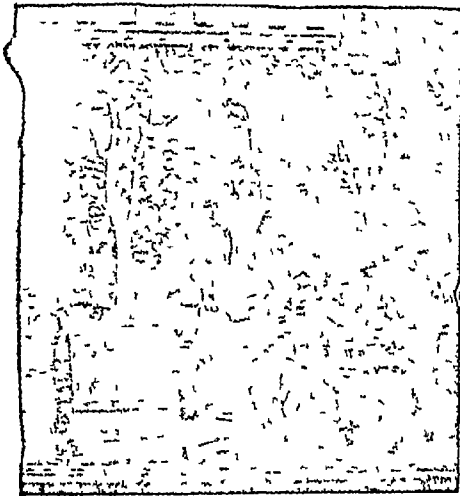
वत कहकर पुकारा। ई० पू० दूसरी शताब्दी के लगभग यह सम्प्रदाय ब्राह्मण-धर्म में मिल गया और वैष्णव धर्म के नाम से अधिक प्रसिद्ध हुआ। दूसरे सम्प्रदाय के लोग शिव की उपासना करते थे। भागवन धर्म की तरह शैव मत की ओर भी विदेशी लोग आकृष्ट हुए । कुशान-वश के राजा कडफिसीज़ ने शैव-धर्म ग्रहण किया था। इसका प्रमाण यह है कि उसके सिक्को पर शिव की मूर्ति मौजूद है। कृष्ण और शिव की

पूजा के लिए मन्दिर बनाये गये और नई रीतियो का प्रचलन हुआ। वैदिक काल के देवताओ का कुछ महत्त्व न रह गया। उनमें से कुछ को तो लोग बिलकुल भूल गये।

कला—मौर्य-काल की इमारतें बहुत सुन्दर और भव्य थी। परन्तु उन पर सजावट और चित्रो की खुदाई उतनी बढिया नही थी जितनी कि इस काल के भवनो पर थी। इस काल मे पत्थर की खुदाई के काम मे बडी उन्नति हुई। स्तूपो, विहारो और फाटको पर सुन्दर चित्र खुदे हुए मिलते है। इस कला के बढिया नमूने भरहुत (नागोध राज्य में
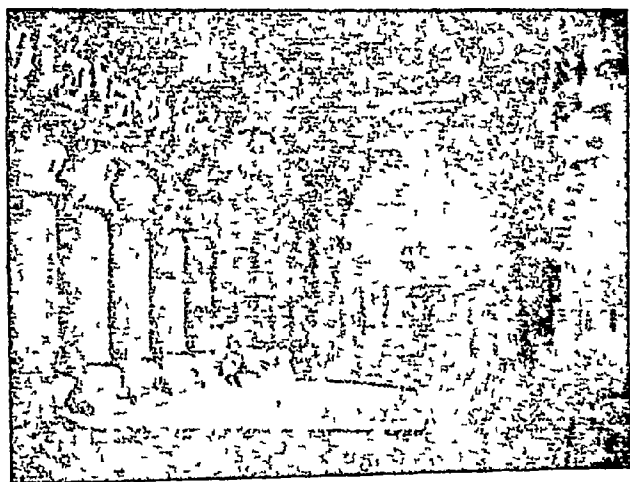
कार्ली चैत्य

स्थित) और अमरावती में पाये जाते है। उन पर जो दृश्य दिखाये गये है वे भगवान् बुद्ध के जीवन से लिये गये है और अपूर्व सुन्दरता तथा कुशलता से अंकित किये गये है। इस प्रकार की चित्रकारी से हमें उस काल की दशा का बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त होता है। उसमें मानव-जीवन के विविध दृश्यो के चित्र अंकित है। सुख और आनन्द-विलास

के जीवन के दृश्य प्रदर्शित किये गये है और फिर यह दिखाया गया है कि मृत्यु द्वारा उनका अन्त किस प्रकार होता है। भरहुत का स्तूप ई० पू० दूसरी शताब्दी का है। हाथी, हिरन तथा बन्दरो के चित्र अंकित करने
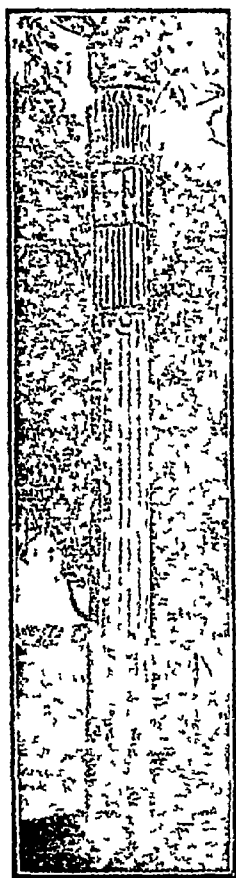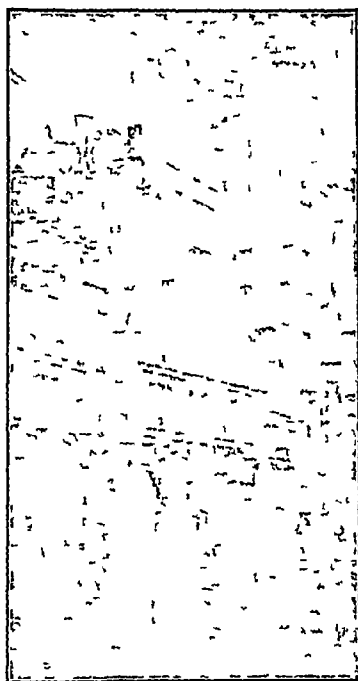
बेसनगर का स्तम्भ

सामने का दृश्य (अजन्ता गुफा)

में जो कुशलता दिखाई गई है वह ससार के किसी भी खुदे हुए चित्र में नही मिलेगी।

पूना के पास भाजा का विहार, नासिक और कार्ली के चैत्य-भवन, अमरावती का स्तूप तथा बेसनगर (मध्यदेश मे भिलसा के पास) का स्तम्भ—ये इस काल के महत्त्वपूर्ण स्मारक है। बेसनगर के स्तम्भ को ई० पू० १४० के लगभग तक्षशिला के राजा के राजदूत हेलियोडोरस ने भगवान् वासुदेव के सम्मानार्थ बनवाया था। हेलियोडोरस ने भागवत धर्म ग्रहण कर लिया था। इनके अतिरिक्त अनेक मठ और मन्दिर बनवाये गये और कई स्थानो में चट्टानो को काट-काटकर गुफाएँ बनाई गई।

इन इमारतो की दीवारो और अन्दर की छतो को चित्रो से खूब अलकृत किया गया। इस कला के सबसे प्राचीन नमूने अजन्ता तथा (उडीसा में सरगुजा राज्य मे स्थित) जोगिमार की जगत्प्रसिद्ध गुफाओ मे पाये जाते है।

**शातवाहन-वश**—ई० पू० पहली शताब्दी में दक्षिण भारत में शातवाहन नामक एक शक्तिशाली वश का अभ्युदय हुआ। इस वश का सस्थापक सीमुक (१०० ई० पू०) था। उसकी राजधानी प्रतिष्ठान* थी। इस वश का दूसरा राजा शातर्काण सीमुक का पुत्र या भतीजा था। उसने कृष्णा नदी के दहाने से लेकर सारे दक्षिण के प्लेटो पर अपना राज्य स्थापित किया और एक अश्वमेध यज्ञ किया। ईसा के पूर्व की अन्तिम शताब्दी मे शातवाहन-वशवालो ने काण्व-वश के अन्तिम राजा को पराजित किया और शुग-वश की बची-खुची शक्ति को भी नष्ट कर डाला। मगध राज्य के प्रदेशो पर भी उसने अपना अधिकार जमा लिया। इस प्रकार उसने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की जिसकी प्रभुता उत्तर तथा दक्षिण भारत में फैली हुई थी।,

---

* इसे आजकल पैठान कहते है और यह निजामराज्य के औरगाबाद ज़िले में है।

१०० वर्ष तक इस साम्राज्य की अच्छी उन्नति हुई। सिदियन, शक तथा पार्थियन आक्रमणकारियो ने उसे बडी हानि पहुँचाई। मालवा और काठियावाड के क्षत्रप राजाओ ने भी शातवाहनो से कुछ देश छीन लिये। मध्यभारत का सबसे बडा क्षत्रप राजा नहपाण था जो सम्भवत ८५
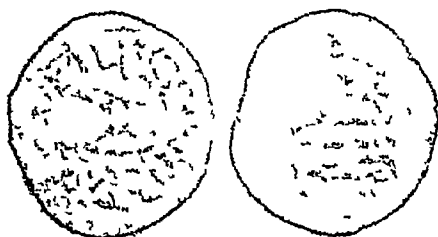
आन्ध्र-सिक्के

ई० में गद्दी पर बैठा था। उसने शातवाहनो से महाराष्ट्र देश छीन लिया और अपने लिए एक बड़ा राज्य स्थापित कर लिया। उत्तर मे यह राज्य अजमेर तक विस्तृत था और इसमें काठियावाड, पश्चिमी गुजरात, पश्चिमी मालवा, उत्तरी कोकण, नासिक और पूना के जिले सम्मिलित थे। शातवाहन-वश में गौतमी-पुत्र शातकर्णि नामक एक बडा प्रतापी राजा हुआ। वह १०७ ई० में सिहासन पर बैठा। उसके शासन-काल में इस वश ने फिर उन्नति की। उसने नहपाण को पराजित कर मार डाला और उसके सारे राज्य को अपने साम्राज्य मे मिला लिया।

२५ वर्ष तक शासन करने के बाद गौतमी-पुत्र का देहान्त हो गया। उसके बाद उसका लडका वशिष्ठी-पुत्र पुलोमावि गद्दी पर बैठा। इसी समय के लगभग रुद्रदामा नामक पश्चिम के क्षत्रप राजा ने मालवा और काठियावाड को शक-राज्य मे मिला लिया। कहा जाता है कि वह शातवाहन राजा से बहुत दिनो तक लडता रहा और अन्त मे विजयी हुआ। पुलोमावि का विवाह रुद्रदामा की लडकी के साथ हुआ और कुछ समय तक झगड़ा बन्द रहा। कुछ दिन के बाद झगड़ा फिर प्रारम्भ

हुआ। शातवाहन-वंश का अन्तिम बड़ा राजा यज्ञश्री शातकर्णि हुआ। उसने अनेक युद्धो में विजय प्राप्त की परन्तु क्षत्रिय राजाओ के प्रभुत्व को वह न मिटा सका। लगभग ३५० वर्ष तक दूर-दूर तक अपना आधिपत्य फैलाकर २२५ ई० के लगभग शातवाहन-साम्राज्य विलुप्त हो गया। शको के साथ युद्ध, प्रान्तीय शासको का विद्रोह तथा नाग, अभीर और अन्य जातियो के आक्रमण ही उसके पतन के प्रधान कारण थे।

पश्चिमी क्षत्रपो ने दक्षिण के कुछ भाग को जीत लिया और १०० से कुछ अधिक वर्ष तक वे उस पर शासन करते रहे। साम्राज्य का शेष भाग अभीर, कदम्ब और इक्ष्वाकु इत्यादि नये वंशो में विभक्त हो गया।

दक्षिण भारत के प्राचीन वंश—चेर, चोल तथा पाण्ड्य—शातवाहन राजाओ के पतन के बाद भी अपनी उन्नति करते रहे।

संक्षिप्त सन्‌वार विवरण

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| चन्द्रगुप्त का गद्दी पर बैठना | .. | .. | ई० पू० | ३२५ |
| सिल्यूकस का आक्रमण | | .. | ,, | ३०५ |
| बिन्दुसार का गद्दी पर बैठना | .. | .. | ,, | ३०० |
| अशोक का गद्दी पर बैठना | .. | .. | ,, | २७४ |
| अशोक का राज्याभिषेक | .. | .. | ,, | २७० |
| कलिंग की विजय | .. | .. | ,, | २६२ |
| अशोक की मृत्यु | .. | .. | ,, | २३२ |
| शुंग-वंश का प्रारम्भ | .. | .. | ,, | १८४ |
| पुष्यमित्र की मृत्यु | .. | .. | ,, | १४६ |
| काण्व-वंश का प्रारम्भ | .. | .. | ,, | ७२ |
| काण्व-वंश का अन्त | .. | .. | ,, | २७ |
| शातवाहन राज्य का आरम्भ | | .. | ,, | १०० |
| गौतमी-पुत्र शातकर्णि की शको पर विजय | | | | १२४ ई० |
| रुद्रदामा द्वारा शातवाहनो की पराजय | | | | १५० ई० |
| शातवाहनो का अन्त | | | | २२५ ई० |

# अध्याय ८

## भारत मे विदेशी राज्य

### कुशान-साम्राज्य—सम्राट् कनिष्क

यूनानी—ई० पू० २५० के लगभग बैक्ट्रिया (मध्यएशिया में बलख) के सरदार सिरिया के यूनानी साम्राज्य से अलग हो कर स्वाधीन हो गये। तब यूनानी लोग अशोक की मृत्यु के बाद भारत की ओर बढने लगे। पहले कह चुके हैं कि डिमिट्रिअस ने पुष्यमित्र शुग के समय मे भारत पर चढाई की थी। डिमिट्रियस के वश का प्रसिद्ध राजा मेनेंडर भारत पर ११० ई० पू० के लगभग चढ आया और उसने साकल (स्यालकोट) पर अपना अधिकार जमा लिया। बौद्ध-साहित्य मे मैनेडर को मिलिन्द लिखा गया है। बौद्धो का कहना है कि उसने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया था। वह केवल विजयी योधा ही न था वरन् वैदिक काल के राजाओ की तरह एक विद्वान् दार्शनिक भी था। वाद-विवाद में उसको परास्त करना कठिन था। उसके पास बहुत धन था और एक विशाल और सु-सगठित सेना थी। वह
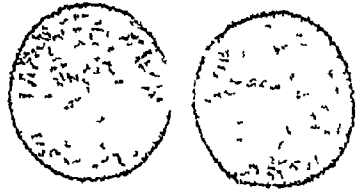
इंडो-ग्रीक सिक्का

बड़ा न्यायी था इसलिए उसकी मृत्यु के बाद प्रजा ने उसका बड़ा सम्मान किया। दूसरा प्रसिद्ध यूनानी शासक एनटियलकिटास यूर्केडिटीज़ शाखा का था। उसने अपने राजदूत हेलियोडोरस को विदिशा के शुग

राजा भागभद्र के दरबार में भेजा था, जिसका काल ईसा से पूर्व द्वितीय शताब्दी में माना गया है।

यूनानियो का भारतीय सस्कृति पर भी प्रभाव पडा। उत्तर-पश्चिम मे पाई जानेवाली बुद्ध की मूर्तियो की बनावट और पोशाक मे यूनानी शैली के चिह्न दिखाई पडते है। भारत के सिक्को पर भी बैक्ट्रिया के यूनानियो का प्रभाव पडा। ज्योतिष-विद्या की अनेक बातें भारतीयो ने यूरोप के लोगो से सीखी। वे रोम और यूनान को ज्योतिष-विद्या का घर समझते थे। ज्योतिप के अनेक यूनानी ग्रन्थो का अनुवाद सस्कृत में किया गया। भारतीय पचाङ्ग का भी यूनानियो की सलाह से सशोधन हुआ। अनेक यूनानी हिन्दू हो गये और ब्राह्मण अथवा बौद्ध धर्म को मानने लगे।

शक और इडो-पार्थियन—शक अथवा सिदियन मध्यएशिया की एक घूमने-फिरनेवाली जाति के लोग थे। वे आमू नदी के उस पार रहते थे। ई० पू० दूसरी शताब्दी में मध्यएशिया की जातियों में बडी चहल-पहल मच रही थी। चीन के सम्राट् हूण लोगो का दमन करना चाहते थे। हूण यूची नामक जाति से लड गये। परन्तु इस युद्ध में यूची जातिवालो की हार हुई। हूणो ने उन्हें देश से बाहर निकाल दिया। विवश होकर वे पश्चिम की ओर बढे और रास्ते में उनका सम्पर्क एक ऐसी जाति से हुआ जिसे चीनी लोग सी (सै) या सेक कहते थे। वे सर (जक्जारटीस) नदी की तलहटी मे रहनेवाले शक लोग थे। यूचियो के भय से शको को वहाँ से भागना पडा और फलत ई० पू० १२७ के कुछ समय बाद वे सिन्धु नदी के किनारे पहुँचे। उन्होने बैक्ट्रिया को जीत लिया।

इडो-बैक्ट्रियन सिक्का

बैक्ट्रिया के निवासी लडना-भिडना नही जानते थे। वे शको से लोहा न ले सके। शको ने उत्तरी और पश्चिमी भारत में एक साम्राज्य स्थापित कर लिया जिसमें पजाब, सिन्ध, सयुक्त-प्रान्त, राजपूताना तथा दक्षिणी भारत के उत्तरी भाग सम्मिलित थे। पहला शक राजा मोगा या मौस हुआ। उसने अफगानिस्तान और पजाब पर शासन किया। मथुरा और तक्षशिला के क्षत्रिय भी उसके अधीन थे। दक्षिणी प्रान्तो पर एक क्षत्रप, उज्जैन को अपनी राजधानी बनाकर, राज्य करता था। मोगा के उत्तराधिकारी एज़ेस प्रथम और एज़ेस द्वितीय भी शक्तिशाली राजा थे। इन शक राजाओ को इडो-पार्थियन लोगो ने पराजित किया। ये लोग अधिक काल तक पार्थिया (ईरान) में रह चुके थे और ईरान के रीति-रिवाज तथा रहन-सहन को ग्रहण कर चुके थे। इसी लिए जब वे भारत मे आये तो इडो-पार्थियन के नाम से प्रसिद्ध हुए। गोंडोफरनीज इस शाखा का एक प्रसिद्ध राजा हुआ। वह ईसा मसीह का समकालीन था। इडो-पार्थियन राजाओ का राज्य कई प्रान्तो में विभक्त था। प्रत्येक प्रान्त में एक क्षत्रप शासन करता था। इनमे से कई क्षत्रपो ने स्वाधीन राज्य बना लिये और राज-पदवी धारण की। इनमे तक्ष-शिला, मथुरा, उज्जैन, सौराष्ट्र तथा दक्षिण के क्षत्रप मुख्य थे।
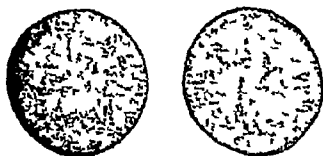
गोडोफरनीज २०-६६ ई०

गुजरात, दक्षिण तथा मध्य-भारत में अपनी प्रभुता स्थापित करने के लिए शको और शातवाहनो में बहुत समय तक लडाई होती रही। रुद्रदामा ने गुजरात तथा मध्य-भारत से शातवाहनों को निकाल बाहर किया किन्तु दक्षिण मे तीसरी शताब्दी के प्रारम्भ तक उनका राज्य कायम रहा। कुछ समय के बाद शातवाहनो का शेष साम्राज्य भी छिन्न-भिन्न हो गया और उसकी जगह अनेक छोटे-छोटे राज्य बन गये।

कुशान—कुशान लोग उन यूचियो की एक शाखा थे जो आमू नदी के उत्तरी तट पर बस गये थे। वे पाँच छोटे-छोटे राज्यो में विभक्त थे। ये राज्य हिन्दूकुश के उत्तर में थ। कुशान जाति के सरदार कुजूला कडफ़िसीज़ प्रथम ने इन पाँचो राज्यो को एक कर दिया और लगभग २५ ई० के बाद अफ़ग़ानिस्तान तथा पजाब के कुछ भागो को भी जीत लिया। उसका साम्राज्य ईरान की सीमा से लेकर सिन्धु नदी तक फैला हुआ था। उसमे बुखारा और अफग़ानिस्तान भी सम्मिलित है। उसका लडका वेमा कडफिसीज़ अथवा कडफ़िसीज़ द्वितीय भी अपने बाप की तरह प्रतापी शासक था। उसने पजाब तथा दोआबा को जीत लिया और पूर्व में बनारस तक अपना राज्य बढ़ाया। सम्भव है कि इसी राजा ने शक-सवत चलाया हो। परन्तु कुछ विद्वानो का मत है कि शक-सवत् का प्रचलित करनेवाला सम्राट् कनिष्क था।

कनिष्क—कडफिसीज़ द्वितीय की मृत्यु हो जाने पर लगभग २० वर्ष के बाद कनिष्क गद्दी पर बैठा। वह कुशान-वश का सबसे प्रतापी राजा था। सम्भवत १२८ ई० में वह सिहासनारूढ़ हुआ। परन्तु कुछ विद्वानो का मत है कि वह ७८ ई० मे ही गद्दी का मालिक हुआ। कनिष्क ने एक बडा साम्राज्य स्थापित किया जो काबुल से लेकर पूर्व में बनारस और दक्षिण में विन्ध्याचल पर्वत तक फैला हुआ था। उसने काश्मीर को जीता और वहाँ एक नगर बसाया। अब उसके स्थान पर कनिष्कपुर नामक एक गाँव है। कनिष्क एक वीर राजा था। वह अपनी भारतीय विजय से ही सन्तुष्ट नही था। इसलिए उसने पार्थियन लोगो के साथ युद्ध किया और उन्हें अन्त में पराजित किया। चीनी तुर्किस्तान मे उसने और भी अच्छी विजय पाई। काशगर, यारक़द और खोतान, जो चीनी साम्राज्य के भाग थे, उसके अधीन हो गये। उसने पुरुषपुर (पेशावर) नामक नगर बसाया और उसे अपनी राजधानी बनाया। वहाँ उसने एक सुन्दर चैत्य तैयार कराया जिसे देखकर विदेशी यात्री चकित हो जाते थे। कडफ़िसीज़ द्वितीय चीन

के आधिपत्य से मुक्त न हो सका था परन्तु कनिष्क ने कर देना बन्द कर दिया। चीनी यात्री ह्वानच्वांग लिखता है कि कनिष्क के दरबार में चीनी राजकुमार बन्धक के रूप में रख लिया गया था।

अशोक की तरह कुशान-सम्राट् भी युद्ध के भीषण दृश्यो को देखकर बौद्ध धर्म का अनुयायी हो गया। उसके सिक्को से इस बात का प्रमाण मिलता है। बौद्ध धर्म के माननेवालो में कुछ समय से बडा मत-भेद चला आता था। कनिष्क ने काश्मीर में कुण्डलवन नामक स्थान पर बौद्धो की सभा की। इस सभा ने बौद्धो को दो सम्प्रदायो में विभाजित कर दिया। एक सम्प्रदाय का नाम हीनयान पडा और दूसरे का महायान। हीनयान-सम्प्रदायवाले महात्मा बुद्ध के सरल सिद्धान्त की रक्षा करना चाहते थे। महायान सम्प्रदाय के लोग उनकी मूर्ति बनाकर पूजना चाहते थे और उन्हे देवता मानते थे।

कनिष्क के दरबार में बहुत-से कवि और विद्वान् थे। अश्वघोष संस्कृत का एक बडा कवि था। उसने भगवान् बुद्ध के जीवन पर कुछ नाटक और महाकाव्य रचे। आयुर्वेद का प्रसिद्ध विद्वान् चरक भी कनिष्क के दरबार मे रहता था।

कनिष्क पश्चिमी क्षत्रप

**कनिष्क के उत्तराधिकारी**—कनिष्क के बाद वाशिष्क गद्दी पर बैठा और उसने १३८ ई० तक राज्य किया। अफगानिस्तान कुशान-साम्राज्य के अन्तर्गत बना रहा किन्तु मध्यभारत के विषय में कुछ

कहा नही जा सकता। वाशिष्क के बाद हुविष्क सिंहासन का अधिकारी हुआ। उसने काश्मीर में अपने नाम पर हुविष्कपुर नामक नगर बसाया। वासुदेव प्रथम कुशान-वश का अन्तिम प्रतापी सम्राट् था। उसने शैव धर्म ग्रहण कर लिया था। उसके शासन-काल में साम्राज्य के अनेक सूबे स्वाधीन हो गये और पश्चिमी क्षत्रपो का ज़ोर बढ गया। वासुदेव की मृत्यु के बाद कई राजा गद्दी पर बैठे परन्तु वे इतने शक्तिहीन थे कि साम्राज्य को छिन्न-भिन्न होने से बचा न सके। कुशान-वश के राजा उसके बाद भी अधिक समय तक भारत के सीमान्त देश तथा काबुल की घाटी में शासन करते रहे।

**पश्चिमी क्षत्रप**—पश्चिमी क्षत्रपो के वश का सस्थापक चष्टन था। उसने शातवाहन राजा पुलोमावि से, जिसका पहले वर्णन हो चुका है, उसका प्रदेश छीन लिया। चष्टन को गौतमीपुत्र के साथ भी युद्ध करना पडा। गौतमीपुत्र शको, यवनो और पल्लवो का नाश करनेवाला कहा गया है। चष्टन ने दूसरे देशो को जीत कर अपना राज्य बढाया और १४० ई० के लगभग उज्जयिनी पर अपना अधिकार स्थापित किया। उसका पोता रुद्रदामा एक योग्य शासक हुआ। जूनागढ के लेख में उसकी विजय का विवरण मिलता है। उसने लिखा है कि उसके राज्य का दक्षिणी भाग शातकर्णि सम्राट् से छीना गया था। रुद्रदामा एक प्रतापी शासक था। सुदर्शन झील के बाँध की मरम्मत कराने में उसने बहुत-सा धन खर्च किया। इस बाँध को चन्द्रगुप्त मौर्य ने बनवाया था और १५० ई० में वह एक तूफान से टूट गया था। वह एक सुशिक्षित राजा था। व्याकरण, राजनीति, सगीत और तर्कशास्त्र का वह बडा विद्वान् था। उसका शिष्टाचार उच्च कोटि का था। स्वभाव से वह बडा दयालु था। युद्ध के अतिरिक्त अपने दैनिक जीवन में वह अहिंसा-व्रत का पालन करता था। रुद्रदामा के चरित्र से पता लगता है कि विदेशी लोग कितनी शीघ्रता के साथ हिन्दू विचारो को ग्रहण करते थे।

रुद्रदामा के वंश का गौरव अधिक समय तक न रहा। परन्तु शक राजा मध्य-भारत मे गुप्त-काल तक शासन करते रहे। अन्त में वे चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के हाथ से पराजित हुए।

विदेशियो और शातवाहनो के समय की सामाजिक दशा—उत्तरी भारत में (२७ ई० पू० से ३०० ईसवी तक) जाति-व्यवस्था पहले की तरह बनी रही। क्षत्रियो की प्रभुता का विरोध बन्द नही हुआ था। ब्राह्मणो का बहुत आदर होता था। उनके विचार उदार थे और इसका प्रमाण यह है कि ब्राह्मण होते हुए भी शातकर्णि राजाओ ने शक-वंश की राजकुमारियो के साथ विवाह किया। शातवाहन राजा ब्राह्मण-धर्म के अनुयायी थे परन्तु वे बौद्ध धर्म के विरोधी न थे। कहा जाता है कि शातकर्णि प्रथम तथा उसकी रानी ने कम से कम २० यज्ञ किये, जिनमे से तीन अश्वमेध यज्ञ थे। वैदिक काल के बहुत से देवताओ को लोग भूल चुके थे परन्तु इन्द्र की अब भी पूजा होती थी। विदेशियो को भी ब्राह्मण-धर्म स्वीकार करने की आज्ञा दी गई। अपना धर्म बदल देने से कोई मनुष्य जाति-च्युत नही किया जाता था। कोई भी ब्राह्मण अपनी जाति मे रहता हुआ भी बौद्ध हो सकता था। लोग एक दूसरे के धर्म का आदर करते थे। राजा लोग ब्राह्मणो और बौद्धो को समान रूप से दान देते थे। बौद्ध धर्म में दो सम्प्रदाय हो गये थे। उनका उल्लेख पहले हो चुका है। ब्राह्मण और बौद्ध धर्म दोनो साथ ही साथ अपनी उन्नति कर रहे थे। दक्षिण में श्रीकृष्ण की पूजा का प्रचार हो रहा था। शिव, भागवत और विष्णु की उपासना भी सर्वसाधारण मे प्रचलित थी। जैन धर्म के अनुयायी, बौद्धो की तरह, उपासना करने लगे। उन्होने अपने तीर्थङ्करो के मन्दिर बनवाये और उनमें मूर्तियाँ स्थापित की। देश मे धार्मिक सहिष्णुता इतनी थी कि बौद्ध और जैन धर्म के अनुयायी घरेलू धार्मिक क्रियाओ को वैदिक नियमो के अनुसार करते थे।

दक्षिण में समाज मनुष्य के पद अथवा रुतबे के अनुसार विभक्त था। सर्वोच्च श्रेणी के लोग महारथी, महाभोज और महासेनापति कहलाते थे। उनसे कुछ नीचे अमात्य, महामात्र आदि थे। श्रेष्ठी अथवा व्यापार-समिति के अध्यक्षो का दर्जा अमात्य के बराबर समझा जाता था। किसान, चिकित्सक तथा लेखक (मुशी) नीचे दर्जे के समझे जाते थे। सबसे नीची श्रेणी में बढई, माली, लुहार आदि गिने जाते थे। मध्य श्रेणी अनेक गृहो, कुलो या कुटुम्बो में विभक्त थी और प्रत्येक गृह का प्रधान गृहपति या कुटुम्बी कहलाता था।

आर्थिक दशा—लोग सुखी और सतुष्ट थे। वाणिज्य और व्यवसाय उन्नत दशा में थे। अधिकाश जनता उद्योग-धन्धो मे लगी हुई थी। प्राचीन लेखो में व्यवसाय-समितियो अथवा श्रेणियो का उल्लेख मिलता है। वे देश के प्रत्येक भाग में मौजूद थी। वे अपना प्रबन्ध आप करती थी। उनका काम केवल व्यापार का प्रबन्ध करना ही न था बल्कि वे बैङ्क का भी काम देती थी। लोग उनके पास रुपया जमा कर सकते थे और ९ से १० फी सदी तक सूद पाते थे।

प्राचीन काल से भारत बाहर के देशो के साथ जल तथा स्थल के मार्ग से व्यापार करता था। ई० पू० आठवी शताब्दी में भारतीय व्यापारी मेसोपोटामिया, अरब, मिस्र, फिनीशिया आदि सुदूर देशो तक जहाजो द्वारा जाते थे। इससे पता लगता है कि भारत का जहाजी बेडा खूब व्यवस्थित था। पहली शताब्दी के एक उल्लेख से पता चलता है कि मसाला, सुगन्धित चीजे, जडी-बूटियाँ, बहुमूल्य कपडे, मोती, रेशमी तथा अनेक प्रकार के कपडे और चीनी मिट्टी के बर्तन विदेशो को भेजे जाते थ। पश्चिमी देशो से जहाज बैरीगाजा (भडौच) तथा मलाबार के बन्दरगाहो तक आते थे। रोम को भारत से—विशेषत सुदूर दक्षिण से—बहुत माल भेजा जाता था। रोम की महिलाओ को भारतीय मलमल बहुत पसन्द थी। रोम का प्रसिद्ध

इतिहासकार प्लिनी इस बात पर बड़ा खेद प्रकट करता है कि उसके देश का बहुत सा धन भारत चला जाता है।
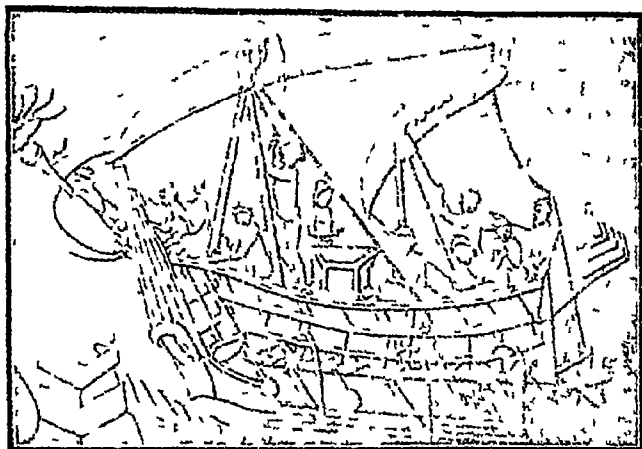
प्राचीन भारत का जहाज

**कला**—इस काल में कला की अच्छी उन्नति हुई। स्तूप बनवाये गये, नगरो की स्थापना हुई। सम्राट् कनिष्क ने एक स्तूप पेशावर नगर के बाहर बनवाया और उसमें भगवान् बुद्ध के कुछ स्मृति-चिह्न रख दिये। पत्थर की खुदाई भी उच्च कोटि की हुई। स्तूपो के फाटकों को सजाने मे विशेष कुशलता दिखाई गई। तक्षण-कला के चार प्रथम केन्द्र थे—गान्धार, मथुरा, सारनाथ और अमरावती। अमरावती गन्तूर जिले में है। वहाँ की पत्थर की उभडी हुई मूर्तियाँ बहुत प्रसिद्ध है। मध्यभारत में भरहुत का पत्थर का घेरा तत्कालीन कला का एक उत्कृष्ट नमूना है।

**गान्धार शैली**—यूनानियो के साथ सम्पर्क होने के कारण भारतीय कला में कुछ परिवर्तन हुआ। उनके प्रभाव से एक नई शैली प्रचलित

हुई, जिसे गान्धार शैली कहते हैं। इसका विकास उत्तर-पश्चिम भारत मे हुआ। भारतीय और यूनानी सस्कृतियो का मेल होने पर भारतीय विषयो में यूनानी भावो का समावेश होने से इस नवीन शैली का जन्म हुआ। इस शैली के अनुसार पत्थर पर अद्भुत खुदाई हुई और उसका तत्कालीन कला पर भी बडा प्रभाव पडा।

मूर्तियाँ अधिकाधिक सख्या में बनने लगी। तक्षशिला के पास जो मूर्त्तियाँ पाई जाती है उन पर यूनानी कला का प्रभाव दिखाई पडता हैं। बौद्धो की भाँति ब्राह्मण भी मूर्तियो की पूजा करने लगे। मथुरा मूर्ति-निर्माण-कला का एक भारी केन्द्र हो गया। पशुपति (शिव) और भागवत (विष्णु) की मूर्तियाँ अधिक बनती थी। कुशान राजाओ ने अपनी इमारतें बनवाने के लिए यूनानियों को नौकर रक्खा। पेशावर के बाहर जो कनिष्क का स्तूप था वह यूनानियो द्वारा बनवाया गया था।

**साहित्य**—इस काल में भी राज्य का काम सस्कृत भाषा द्वारा होता था। विद्वान् लोग सस्कृत से ही काम लेते थे। बौद्ध और जैन विद्वानो न अपने ग्रन्थो को सस्कृत में लिखना आरम्भ कर दिया था। पहले-पहल शातवाहनो के समय में बोल-चाल की भाषा प्राकृत का साहित्यिक ग्रन्थो में प्रयोग किया गया। सप्तशती प्राचीन मराठी में लिखी गई थी। इसमें गाथाओ का सग्रह हैं। कहा जाता है कि यह ग्रन्थ शातवाहन राजा हल का बनवाया हुआ हैं। सम्भव है, राजा ने स्वय इस ग्रन्थ को लिखा हो अथवा किसी दूसरे विद्वान् ने लिखकर उसे समर्पित किया हो। सौदागरो और धर्म-प्रचारको द्वारा भारतीय सस्कृति इस काल में दूर-दूर के देशो में पहुँच गई।

**उपनिवेशो का स्थापन**—इस काल के भारतवासी जहाजो पर व्यापार करने के लिए यूरोप, मिस्र और अफीका आदि देशो को गये। ब्राह्मणो और बौद्धो के धर्म-प्रचारक भी अपनी सभ्यता-सस्कृति का प्रचार करने के लिए उन देशो में पहुँचे। भारतीय गन्थो का विदेशी

भाषाओं में अनुवाद हुआ और इस प्रकार सारी एशिया में भारतीय विद्या फैल गई।

बहुत प्राचीन काल से ही सुदूर पूर्व में भारतीय उपनिवेशों की स्थापना प्रारम्भ हो गई थी। ईसा की पहली शताब्दी में दक्षिणी अनाम में चम्पा राज्य की स्थापना हुई थी। इसी समय के लगभग जहाज़ में बैठकर ब्राह्मण फुनाम गया और वहाँ की राजकुमारी के साथ अपना विवाह किया। इस विवाह-सम्बन्ध से सारे देश पर उसका अधिकार हो गया। इसके अतिरिक्त कम्बोडिया राज्य की स्थापना हुई। जावा, सुमात्रा, बाली तथा बोर्नियो में भी भारतीयों ने अपने उपनिवेश बनाये।

हाल की खोजों से यह पता लगा है कि भारत के लोग मध्य एशिया खुतन और तुर्किस्तान में भी बसे थे। गोबी के रेगिस्तान में भारतीय देवी-देवताओं की मूर्तियां, कुछ सिक्के और भारतीय लिपि में लिखे हुए कुछ लेख मिले हैं। इससे यह प्रमाणित होता है कि भारतवासी मिस्र और मैसोपोटामिया तक गये थे और सम्पूर्ण एशिया पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव पड़ा था।

### संक्षिप्त सन्वार विवरण

| | |
|---|---|
| मैनेंडर का आक्रमण .. .. .. .. | ई० पू० ११० |
| कनिष्क का गद्दी पर बैठना .. .. .. | १२८ ई० |
| वाशिष्क के शासन-काल का अन्त .. .. | १३८ ई० |
| चष्टन की उज्जयिनी पर विजय .. .. | १४० ई० |
| रुद्रदामा द्वारा सुदर्शन झील की मरम्मत .. | १५० ई० |

# अध्याय ९

## गुप्त-साम्राज्य

चन्द्रगुप्त प्रथम—तीसरी शताब्दी ईसवी को हम प्राचीन भारतीय इतिहास का अन्धकाल कह सकते है क्योकि उस काल की ऐतिहासिक घटनाओ का हमें कुछ पता नही चलता।* चतुर्थ शताब्दी के आरम्भ में मगध देश में एक प्रतापशाली राज-वश की उत्पत्ति हुई। यह वश गुप्त-वश के नाम से प्रसिद्ध है। इसका पहला प्रतापी राजा चन्द्रगुप्त प्रथम हुआ। उसने अपने राज्याभिषेक (३१९ ई०) के समय से गुप्त-सवत् चलाया जिसे उसके उत्तराधिकारियो ने भी जारी रक्खा। उसने महाराजाधिराज की पदवी धारण की और प्रयाग तक के सब प्रदेशो को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया। लिच्छवि-वश की एक राजकुमारी के साथ विवाह करके उसने अपनी शक्ति और भी बढा ली।

चन्द्रगुप्त प्रथम का सिक्का

समुद्रगुप्त (३३५–३७५ ई०)—चन्द्रगुप्त प्रथम के बाद उसका बेटा समुद्रगुप्त ३३५ ई० के लगभग गद्दी पर बैठा। यमुना नदी तक उत्तरी भारत के सब राजाओ को हराकर वह दक्षिण की ओर बढ़ा और समुद्र के किनारे बिलासपुर और विजगापट्टम के बीच के जगली देश में पहुँचा और वहाँ के राजाओ को पराजित किया। इस विजय के बाद वह

---

* इसको भारतीय इतिहास का नेपोलियन कहना अनुचित न होगा। इसकी विजयों का हाल हमें प्रयागवाले अशोक के स्तम्भ पर खुदे हुए लेख से मिलता है। यह लेख उसके राज-कवि हरिषेण की रचना है।

आगे बढ़ा और कृष्णा नदी तक पहुँच गया। कहते हैं कि दक्षिण के १२ राजाओ ने उसका आधिपत्य स्वीकार किया। परन्तु लौटते समय पराजित राजाओ को फिर उसने उनके राज्य लौटा दिये और उनसे कर लेकर सन्तुष्ट हो गया। यह अनुमान ठीक नही है कि उसने मलावार, महाराष्ट्र और पश्चिमी घाट को भी जीत लिया था। दक्षिण के जिन राज्यों का इलाहाबाद की प्रशस्ति में वर्णन है वे सब पूर्वीय तट पर हैं। परन्तु इसमें कोई सन्देह नही कि उसका प्रभाव सुदूर दक्षिण तक फैला हुआ था। उसके निकटवर्ती राजा, पजाव तथा राजपूताना के प्रजातन्त्र राज्य भी उसके अधीन थे।

दिग्विजय करने के बाद जब समुद्रगुप्त अपनी राजधानी पाटलिपुत्र को वापस आया तब उसने अश्वमेध यज्ञ किया। इस प्रकार उसने अपने समकालीन राजाओ पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। इस यज्ञ के अवसर पर उसने ब्राह्मणो को सोने के सिक्के दक्षिणा में दिये।

समुद्रगुप्त वास्तव में एक बडा प्रतिभाशाली सम्राट् था। वह एक महान् कवि तथा चतुर गायक था। विद्वानो ने उसे 'कविराज' की पदवी प्रदान की थी। उसे वीणा बजाने का बडा शौक था। अपने सिक्को पर वह इसी रूप में प्रदर्शित किया गया है। वह पहला सम्राट् था जिसने मुद्राओ पर सस्कृत के श्लोक अकित कराये। उसके उत्तराधिकारियो ने भी इस प्रथा को प्रचलित रक्खा। समुद्रगुप्त स्वय विद्या-प्रेमी था और विद्वानो के सत्सग में उसे बडा आनन्द आता था। वह एक वीर योधा था परन्तु उसका हृदय कोमल था। दीन-दुखियो की सहायता करने को वह हमेशा उद्यत रहता था। स्वयं ब्राह्मण-धर्म का अनुयायी था, जैसा कि उसके अश्वमेध यज्ञ से प्रकट

समुद्रगुप्त के सोने के सिक्के

होता है। परन्तु धर्म के मामलो में वह उदारता से काम लेता था और बौद्धो का भी आदर करता था। जब लका के राजा ने बुद्ध-गया में एक विहार बनवाने की इच्छा प्रकट की तो सम्राट् ने शीघ्र आज्ञा दे दी। यह भी उसकी धार्मिक सहिष्णुता का एक उदाहरण है।

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वितीय (३७५-४१३ ई०)—समुद्रगुप्त के बाद उसका बेटा चन्द्रगुप्त (द्वितीय) गद्दी पर बैठा।* उसने बडी योग्यतापूर्वक अपने पिता की कीर्ति और गौरव को कायम रक्खा। पिता के समान ही उसमे अदम्य साहस तथा उच्च अभिलाषाएँ थी। उसने पहले मथुरा के सिदियन राजा को परास्त किया और फिर उसके बाद पश्चिमी भारत के क्षत्रपो की ओर बढा। क्षत्रप बडे शक्तिशाली हो गये थे। चन्द्रगुप्त ने मालवा तथा काठियावाड के प्रान्तो को जीत लिया। शक-वश के अन्तिम क्षत्रप राजा को पराजित करके उसके राज्य को अपने साम्राज्य में मिला लिया। बरार और महाराष्ट्र के राजा वाकटक के साथ उसने अपनी कन्या प्रभावती गुप्त का विवाह किया। अब उसका साम्राज्य अरब सागर तक फैल गया था और सौराष्ट्र (गुजरात) का प्रान्त उसका एक अग बन गया। गुजरात के बन्दरगाहो पर अधिकार हो जाने से साम्राज्य की आमदनी बहुत बढ गई। यूरोपीय देशो के साथ भी व्यापार होने लगा। इस व्यापारिक सम्पर्क का परिणाम यह हुआ कि भारतीय सस्कृति को उन देशो में फैलने का अवसर मिला।

शको पर विजय प्राप्त करने के बाद चन्द्रगुप्त द्वितीय ने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की। अपने असीम बल एव साहस के कारण वह इस उपाधि के सर्वथा उपयुक्त भी था। अनेक इतिहास-लेखको

---

* कुछ विद्वानों का मत है कि समुद्रगुप्त के बाद रामगुप्त गद्दी पर बैठा। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने उसे मारकर बलपूर्वक सिंहासन पर अपना अधिकार जमा लिया।

का मत है कि यह चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य वही राजा विक्रमादित्य है जिसके सम्बन्ध में बहुत-सी दन्त-कथाएँ अब तक प्रचलित हैं। जन-श्रुति-प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्य को सस्कृत में शकारि की पदवी दी गई है। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने भी शको का नाश किया था। इस कारण सम्भव है कि यह बात ठीक हो। परन्तु निश्चित रूप से यह बतलाना कि उज्जैन का विक्रमादित्य---जिसके दरबार में कालिदास आदि विद्वान् रहते थे---कौन था, भारतीय इतिहास की एक जटिल समस्या हैं। सम्भव है, कालिदास इस समय रहा हो, क्योकि वह चतुर्थ अथवा पञ्चम शताब्दी के एक तर्कशास्त्र के बौद्ध विद्वान दिड्नाग का समकालीन कहा गया है।

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य अपने पिता के समान कला और साहित्य का परिपोषक तथा विद्वानो का आश्रयदाता था। वह विष्णु का अनन्य भक्त था किन्तु वैष्णव होते हुए भी अन्य मतावलम्बियो का आदर करता था। उसने अनेक उपाधियाँ धारण की थी जिनमें से महाराजाधिराज विक्रमादित्य, श्रीविक्रम, सिहविक्रम, परमभट्टारक, परमभागवत तथा राजाधिराजर्षि आदि विशष उल्लेखनीय है। इन सब उपाधियो से यह स्पष्ट प्रकट होता है कि वह बडा पराक्रमी तथा यशस्वी राजा था। उसके गार्हस्थ्य जीवन पर धर्म की छाप लगी थी। उसने सोने, चाँदी तथा ताँबे के अनेक सिक्के ढलवाये जिनसे यह अनुमान होता है कि उसका राजत्वकाल शान्तिमय तथा उन्नतिशील था। व्यापार तथा उद्योग-धन्धे बडी उन्नत अवस्था में थे।

चीनी यात्री फाह्यान---चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय में फाह्यान नामक एक चीनी यात्री भारत में आया था। वह एक बौद्ध भिक्षु था और बौद्ध धर्म के तीर्थ-स्थानो के दर्शनार्थ ही भारत-भ्रमण करने निकला था। वह इस देश में कुल ६ वर्ष तक रहा। उसने पेशावर, तक्षशिला, मथुरा, कन्नौज, कपिलवस्तु, श्रावस्ती, पाटलिपुत्र, बुद्धगया, राजगृह, वैशाली तथा अन्य स्थानो की यात्रा की। यद्यपि उसने अपना सारा समय बौद्ध-तीर्थों के दर्शन तथा धार्मिक विषयो की खोज में ही

बिताया, तो भी उसके यात्रा-विवरण से देश की तत्कालीन सामाजिक तथा राजनीतिक स्थिति का भी बहुत कुछ पता चलता है। उसके वर्णन से पता चलता है कि उस समय के लोग सुखी थे, उन्हे कर अधिक नही देने पडते थे। अपराधियो को प्राय जुर्माने का ही दण्ड मिलता था। किन्तु बार-बार अपराध करने पर अगच्छेद का दण्ड दिया जाता था। चाण्डालो को नगर के बाहर रहना पडता था। उन्हे लोग घृणा की दृष्टि से देखते थे। न तो कोई सूअर या मुर्गी पालता था और न देश में कही गोश्त या शराब की दूकानें थीं। चाण्डालो के सिवा न कोई मदिरा पीता था और न लहसुन-प्याज ही खाता था। देश भर में बौद्ध-विहारो का जाल-सा फैला हुआ था। इनसे लगे हुए जमीन तथा बगीचे भी होते थे जिनसे उनका खर्च चलता था। विहारो में हर प्रकार का सुख मिलता था और भिक्षु-जन अतिथि-सत्कार को अपना कर्त्तव्य समझते थे।

कन्नौज, श्रावस्ती आदि स्थानो में होता हुआ फाह्यान पाटलिपुत्र पहुँचा। वहाँ अशोक के बनवाये हुए विशाल भवन को देखकर वह चकित रह गया और उसने समझा कि यह देवो का बनाया हुआ होगा। पाटलिपुत्र में एक औषधालय भी था जिसमें अनाथ और दीन-दुखियो को मुफ्त दवा दी जाती थी। वहाँ उनके लिए भोजन का भी प्रबन्ध था। इस औषधालय के खर्च का सारा भार नगर के कुछ धनाढ्य तथा दानशील निवासियो पर था। इतिहासकार विंसेंट स्मिथ का कथन है कि शायद इतना सुन्दर और व्यवस्थित औषधालय उस समय ससार के किसी देश में नही था। यात्री लिखता है कि लोग इतने धनाढ्य थे कि दया और दानशीलता में एक दूसरे की बराबरी करते थे। वैश्यो ने ऐसी अनेक संस्थाएँ स्थापित की थी जहाँ लोगो को दान मिलता था और औषधि भी मुफ्त दी जाती थी।

फ़ाह्यान लिखता है कि प्रजा राजा से प्रेम करती थी। उसका शासन शान्तिमय था। वह प्रजा के मामलो मे हस्तक्षेप नही करता था। देश में धन-धान्य की प्रचुरता थी। अनाज आदि खाने-पीने की चीजो की कमी

कमी नहीं होती थी। खाद्य-पदार्थ इतने सस्ते थे कि बाज़ारों में मोल-तोल कौडियो में होता था। ब्राह्मण और बौद्ध खब सुशिक्षित थे। शास्त्रार्थ में उनकी बडी रुचि थी। भिन्न-भिन्न धर्मों के अनुयायियो को अपना धर्म पालने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। बौद्ध-धर्म की इस समय अवनति हो रही थी परन्तु फाह्यान इसके विषय में कुछ भी नहीं लिखता। देश का शासन अच्छा था। मार्ग में चोर-डाकुओ का ज़रा भी डर न था। यात्री कई वर्ष तक धार्मिक ग्रन्थो का अध्ययन करता रहा और अन्त में ताम्रलिप्ति* के बन्दरगाह से जहाज़ में सवार होकर चीन को वापस चला गया।

शासन-प्रबन्ध—शासन का प्रधान राजा होता था। अपने उत्तराधिकारी को वह स्वय नामज़द करता था। उसकी सहायता के लिए एक मन्त्रि-परिषद् होती थी। मन्त्रियो का पद प्राय मौरूसी होता था। माल और फौज के विभागो मे कोई भेद नही था। एक ही अफसर दोनो विभागो का काम कर सकता था। सारा साम्राज्य प्रान्तो मे विभक्त था। प्रान्त को देश या भुक्ति कहते थ। प्रान्त ज़िलो में विभक्त थे जो प्रदेश या विषय कहलाते थे। गाँव का प्रबन्ध ग्रामिक करता था। वह हर एक मामले मे बडे-बूढो की सलाह लेता था। नगरो का प्रबन्ध नागरिक स्वयं करते थे परन्तु उनके प्रधान कर्मचारी को प्रान्तीय शासक नियुक्त करता था। प्रान्तीय शासक प्राय राजकुल के व्यक्ति होते थे। राज्य के ओहदो पर सभी श्रेणी और सम्प्रदायो के लोग नियुक्त किये जाते थे। चन्द्रगुप्त द्वितीय का सेनापति बौद्ध था और उसका मन्त्री शैव धर्म का अनुयायी था। ज़मीन की नाप बडी सावधानी से की जाती थी, फिर उस पर नियमानुसार लगान लगाया जाता था। किसानो को पैदावार का छठा भाग देना पडता था। राज्य की आमदनी के और ज़रिये भी

---

* ताम्रलिप्ति बगाल के मिदिनापुर ज़िले में था। आज-कल उसे तामलुक कहते है।

थे, जैसे अधीनस्थ देशो से कर, जुरमाना तथा जगल की आय। चमडा, लोहा, खानो और ओषधियो पर भी महसूल लगाया जाता था। राजवश के लोग सदा दान और परोपकार किया करते थे। दान का पृथक् विभाग था। ज़मीन भी लोगो को मुफ्त दी जाती थी और राज्य के कर्मचारी उसमे कुछ भी हस्तक्षेप नही कर सकते थे। साम्राज्य की एकता का भाव लोगो के हृदयो में पूर्ण रीति से जम गया था। सम्राट् के प्रति अधीनस्थ राजाओ की श्रद्धा और भक्ति तथा प्रजातन्त्र राज्यो का साम्राज्य में सम्मिलित होना इस बात के काफी प्रमाण है।

**पिछले समय के गुप्त-सम्राट् और साम्राज्य का अन्त**—चन्द्रगुप्त द्वितीय के बाद उसका पुत्र कुमारगुप्त गद्दी पर बैठा। उसका राज्य-काल ४१३–१४ ई० से ४५५ ई० तक माना जाता है। उसके राज्य के अन्तिम भाग में साम्राज्य की शक्ति छिन्न-भिन्न होने लगी। गुप्त का उत्तराधिकारी उसका बेटा स्कन्दगुप्त (४५५–४६७) हुआ। स्कन्दगुप्त बडा साहसी तथा पराक्रमी था। उसने जी तोडकर पुष्यमित्रो के साथ युद्ध किया, यहाँ तक कि उसे एक दिन युद्ध-क्षेत्र में खाली ज़मीन पर सोकर सारी रात वितानी पडी थी।* देश भर मे उसकी बडी प्रशसा हुई। उसके राजत्वकाल में मध्य एशिया की हूण जाति ने भारतवर्ष पर अनेक आक्रमण किये। उनके साथ भी वह खूब लडा। स्कन्दगुप्त का अल्पकालीन राज्य-काल हूणो को पराजित कर भगाने में ही व्यतीत हुआ। हूण बार-बार हमला करते थे इसलिए राज-कोष का बहुत-सा धन उनको रोकने में खर्च हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि स्कन्दगुप्त को अपने बाप की तरह खराब सोने के सिक्के चलाने पडे। स्कन्दगुप्त की मृत्यु के बाद ४८४ ई० में हूणो ने तोरमाण के नेतृत्व में पजाब, राजपूताना तथा मध्यदेश के कुछ भागों को जीतकर अपने अधिकार में कर लिया।

स्कन्दगुप्त के उत्तराधिकारियो मे इतनी शक्ति नही थी कि साम्राज्य पर आनेवाले भीषण सकट को रोक सकें। फिर क्या था, धीरे-धीरे

---

* भिटारी के स्तम्भ लेख मे लिखा है कि पुष्यमित्रो की पराजय के बाद स्कन्दगुप्त अपनी माता के पास गया था जिस प्रकार कस को मारकर कृष्ण देवकी के पास गये थे।

गुप्त-साम्राज्य की शक्ति क्षीण होने लगी। बुद्धगुप्त इस वश का अन्तिम प्रभावशाली राजा था। उसने ४९५ ई० तक राज्य किया और वगाल से मालवा तक उसका साम्राज्य फैला हुआ था। किन्तु उसकी मृत्यु के बाद हूणो ने तोरमाण और मिहिरकुल की अध्यक्षता में मालवा पर चढाई की और भानुगुप्त को हरा दिया। मालवा के निकल जाने से सारे साम्राज्य का विस्तार कम हो गया। भानुगुप्त की मृत्यु के साथ ही साथ गुप्त-वश का गौरव-सूर्य भी सदा के लिए अस्त हो गया। साम्राज्य के विनाश का प्रधान कारण हूणो का आक्रमण था।

आर्थिक दशा—गुप्त-काल भारतीय इतिहास में एक स्वर्ण-युग है। कला, साहित्य की असाधारण उन्नति तथा ब्राह्मण-धर्म का पुनरुत्थान तो इस काल में हुआ ही था, साथ ही साथ लोगो की आर्थिक दशा भी अच्छी हो गई। गुप्त-काल में हमारा देश धन-धान्य-सम्पन्न था और लोग बडे सुख-शान्ति से अपना जीवन व्यतीत करते थे। समुद्रगुप्त तथा चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य न बहुत-सा धन लोगो को दान कर दिया था और जनता के हित के लिए अनेक कार्य किये थे। वाणिज्य-व्यापार भी उन्नत अवस्था में था। उस काल के बहुसख्यक सिक्को से इस कथन की पुष्टि होती है। विभिन्न प्रकार के उद्योग-धन्धो तथा दस्तकारियो का प्रबन्ध सघो द्वारा होता था। प्रत्येक सघ के पास अपनी मुहरे होती थी जिनसे सेठ और व्यापारी लोग काम लेते थे। स्कन्दगुप्त के समय मे—४६५ ई० के लगभग—एक ब्राह्मण ने सूर्यदेव के मन्दिर के लिए एक दीपक प्रदान किया था और उसका प्रबन्ध तेलियो के सघ को सौंप दिया था। ये सघ आधुनिक बैंको का भी काम करते थे। वे लोगो का रुपया जमा करते थे और उन्हे व्याज देते थे।

पश्चिमी देशो के साथ जो व्यापार होता था वह रोम-साम्राज्य के पतन के कारण धीरे-धीरे ढीला पडने लगा। किन्तु पूर्वी द्वीप-समूह के साथ वाणिज्य बराबर जारी रहा और ताम्रलिप्ति का बन्दरगाह सम्पत्ति-शाली हो गया।

**विक्रम-सवत्**—साधारणतया लोगो का विश्वास है कि इस संवत् को उज्जैन के विक्रमादित्य नामक किसी राजा ने प्रचलित किया था। उसने सिदियन लोगो पर विजय प्राप्त की थी। उसी के उपलक्ष में उसने इस संवत् को चलाया था। इसका आरम्भ ई० पू० ५७ से होता है। कुछ विद्वानो की राय है कि इस सवत् को मालव-जाति के लोगो ने चलाया था। यह वही जाति है जिसका प्रजातन्त्र राज्य सिकन्दर के आक्रमण के समय पजाब में मौजूद था। छठी शताब्दी के बाद यह सवत् विक्रम-सवत् के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

**गुप्तकालीन सस्कृति—कला**—यो तो विदेशी शासको के समय में ही, उनका आश्रय और प्रोत्साहन प्राप्त कर कला और साहित्य ने काफी उन्नति कर ली थी किन्तु गुप्त-काल में उनकी उन्नति चरम सीमा तक पहुँच गई। गुप्त-काल की वहुत सी इमारतें नष्ट हो गई हैं परन्तु जो कुछ अभी मौजूद हैं उनसे हमें तत्कालीन कला का हाल मालूम होता है। झाँसी ज़िले के देवगढ गाँव में गुप्त-काल का वनवाया हुआ एक विष्णु-मन्दिर अब तक खडा है। कानपुर ज़िले में भिटारगाँव में ईंटो का वना हुआ एक विशाल मन्दिर भी गुप्त-काल का माना जाता है। इसी तरह मध्यदेश के नागौर राज्य में भुमरा के समीप उसी काल का एक शिव-मन्दिर मौजूद है। ये तीनो मन्दिर गुप्त-कालीन स्थापत्य-कला के उत्कृष्ट नमूने है। इन मन्दिरों की दीवारो पर जो मूर्तियाँ खोदकर बनाई गई हैं वे अत्यन्त सुन्दर है। उनकी कारीगरी अपूर्व है।

ग्वालियर के पास उदयगिरि की पहाडियो की गुफाओ में जो मन्दिर वने है उन पर विष्णु-वाराह देव तथा गगा-यमुना की सुन्दर मूर्तियाँ खुदी हुई है। यही, पथरी के पास, कृष्ण के जन्म का चित्र पत्थर में खोदा गया है। इस काल मे जैसी सुन्दर मूर्तियाँ बनी वैसी अब तक भारत के इतिहास में शायद कभी बनी हो। उनकी गणना संसार की सर्वोत्कृष्ट मूर्तियो में की जा सकती है। गुप्त-काल की अनेक मूर्तियाँ सारनाथ के अजायवघर में मौजूद है। इन मूर्तियो को देखने से हम इस बात का अनुमान

कर सकते है कि उस काल के कलाविदो ने कितनी बारीकी, सफाई तथा सुन्दरता के साथ अपने भावो को प्रकट करने का सफल प्रयास किया है । लोहा, तांबा आदि धातुओ पर भी उच्च कोटि की कारीगरी उस काल में दिखाई गई। दिल्ली में कुतुबमीनार के निकटस्थ लोहे का स्तम्भ गुप्तकालीन कला का आश्चर्यजनक स्मारक है। गुप्त-वशीय राजाओ के सिक्के—विशेषकर चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की स्वर्ण-मुद्राऐं—बनावट तथा आकृति मे अत्यन्त सुन्दर है। गुप्त-काल में चित्रण-कला की भी वडी उन्नति हुई। अजन्ता की गुफाओ की' चित्रकारी उच्च कोटि की कारीगरी का नमूना है। पाश्चात्य कला-विशारदो ने भी अजन्ता के चित्रो की मुक्तकण्ठ से प्रशसा की है।
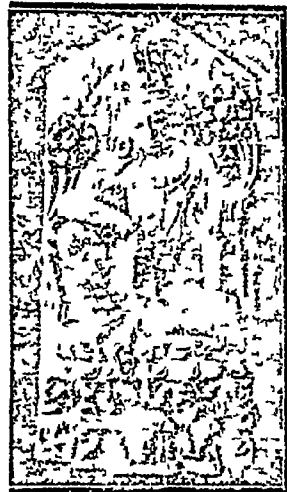
गुप्त-काल की मूर्तिकला

साहित्य—गुप्त-काल में साहित्य की भी खूब उन्नति हुई। सस्कृत-साहित्य के महाकवि कालिदास ने अपने काव्यो तथा नाटको की रचना शायद इसी काल में की थी। उसने रघुवश, मेघदूत तथा कुमारसम्भव नामक काव्य तथा शकुन्तला, विक्रमोर्वशीय और मालविकाग्नि-मित्र तीन नाटक-ग्रन्थ रचे। हरिषेण और वीरसेन नामक दो सस्कृत के प्रसिद्ध कवि समुद्रगुप्त तथा चन्द्रगुप्त-विक्रमादित्य के दर्बार में रहते थे। मृच्छकटिक नाटक का रचयिता शूद्रक तथा मुद्रा-राक्षस का प्रणेता विशाखदत्त भी इसी काल में हुए थे। इसी काल में रामायण और महाभारत काव्यो की रचना

समाप्त हुई और पुराणो का अन्तिम सम्पादन हुआ। आर्यभट्ट तथा वराहमिहिर ने ज्योतिष के कतिपय ग्रन्थ रचे जिनसे उस विद्या की बहुत कुछ उन्नति हुई।

लोह-स्तम्भ (दिल्ली)

धर्म—गुप्तवंशीय सम्राट वैष्णव-धर्म के अनुयायी थे। उनकी संरक्षकता में ब्राह्मण-धर्म का प्रभाव फिर से जाग्रत हुआ जैसा कि उनके अश्वमेध यज्ञो से विदित होता है। ब्राह्मण-धर्म की प्रधान विशेषता भक्ति थी। ईश्वर की उपासना, वर्ण व्यवस्था तथा यज्ञ यही इस धर्म के मुख्य अंग थे। विष्णु की उपासना का बहुत प्रचार था। विष्णु के अनेक मन्दिर भी बने। यद्यपि इस काल में ब्राह्मण-धर्म की ही प्रधानता थी, परन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि बौद्ध तथा जैन धर्मावलम्बियो पर किसी प्रकार का अत्याचार किया जाता था। उन्हें अपना धर्म पालने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। शिव, विष्णु, बुद्ध, सूर्य तथा अन्य देवताओ की उपासना के लिए बहुत से मन्दिर बनवाये गये। ४६० ई० का एक लेख मिला है जिससे प्रकट होता है कि पाँच जैन साधुओ की मूर्तियाँ और एक स्तम्भ इस काल में बनवाये गये। इनका बनवानेवाला एक ब्राह्मण था जो गुरुओ और साधुओ का विशेष सम्मान करता था।
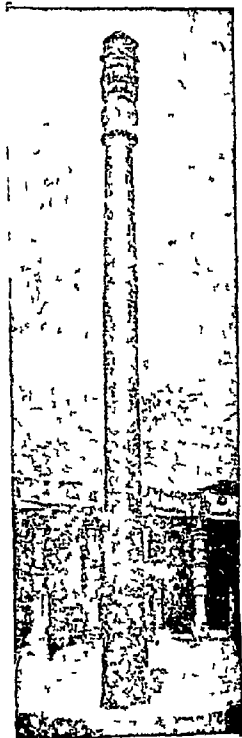
हूण जाति—गुप्त-साम्राज्य के छिन्न-भिन्न हो जाने के बाद उत्तरी

गुप्त साम्राज्य
काश्मीर
श्रीनगर
तक्षशिला
पेशावर
इन्द्रप्रस्थ
मथुरा
अहिच्छत्र
श्रावस्ती
कुशीनगर
कपिलवस्तु
कोशल
अयोध्या
कान्यकुब्ज
ग्वालियर
पद्मावती
प्रयाग
काशी
वैशाली
पाटलिपुत्र
गया
बोधगया
चम्पा
नाग प्रदेश
मन्दसौर
मालवा
विदिशा
उज्जैन
सांची
धार
गुजरात
सौराष्ट्र
द्वारका
वल्लभी
जूनागढ़
सोमनाथ
सूरत
ताम्रलिप्ति
महाकोशल
सोनपुर
देवगिरि
पैठन
महेन्द्रगिरि
पुरी
बंगाल की खाड़ी
अरब सागर
वेंगीपुर
मद्रास
नैलौर
तंजौर
मदुरा
सिंहल या ताम्रपर्णी
तिब्बत
हिमालय पर्वत
ल्हासा
कामरूप
समुद्र गुप्त की दिग्विजय
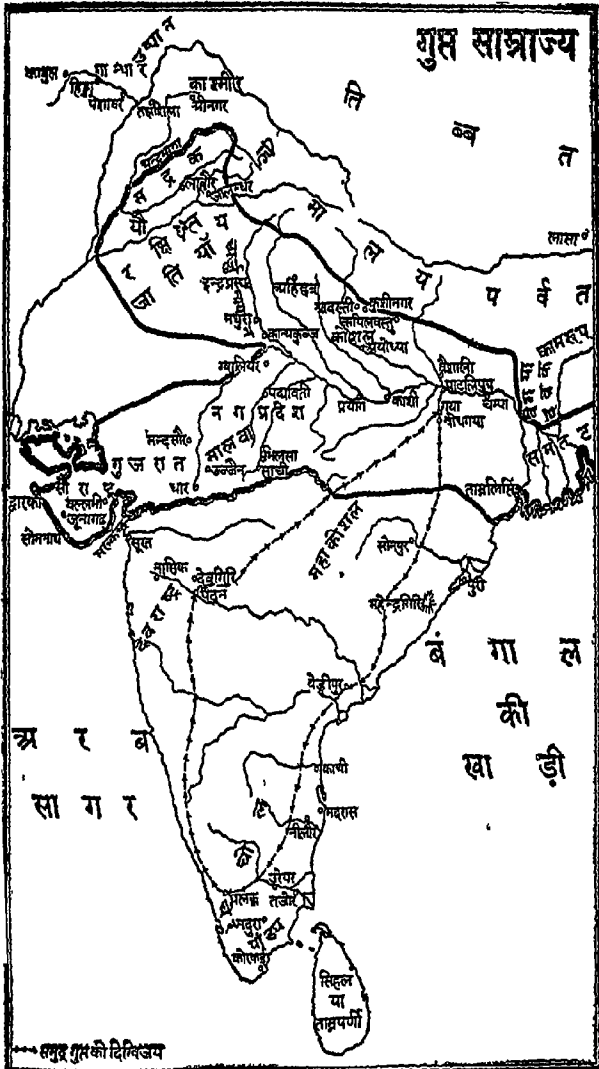
भारत अनेक स्वतन्त्र राज्यो में विभक्त हो गया। गुप्त सम्राटो ने हूणो के आक्रमणो को रोकने के लिए वडी वीरता से युद्ध किया परन्तु वे असफल

अजन्ता की चित्रकारी

रहे। ५१० ई० के लगभग तोरमाण का बेटा मिहिरकुल हूणो का राजा हुआ। वह वडा अत्याचारी शासक था। वह स्वय शैव था परन्तु बौद्ध-धर्म के अनुयायियो के साथ उसने बड़ा कठोर वर्त्ताव किया। उसने सैकडो स्तूपो और विहारो को ढहा दिया। उसके अत्याचारो को रोकने के लिए मध्यभारत के एक शक्तिशाली राजा यशोधर्मन् ने एक सघ बनाया। मगध के राजा नरसिंह बालादित्य की सहायता से उसने सिन्धु नदी के

फाह्यान की भारत-यात्रा
काराशहर
काशगर
करगलिक
खुतन
पेशावर
तक्षशिला
मथुरा
कन्नौज
कुशीनगर
वैसाली
नालन्दा
राजगृह
गया
तामलुक
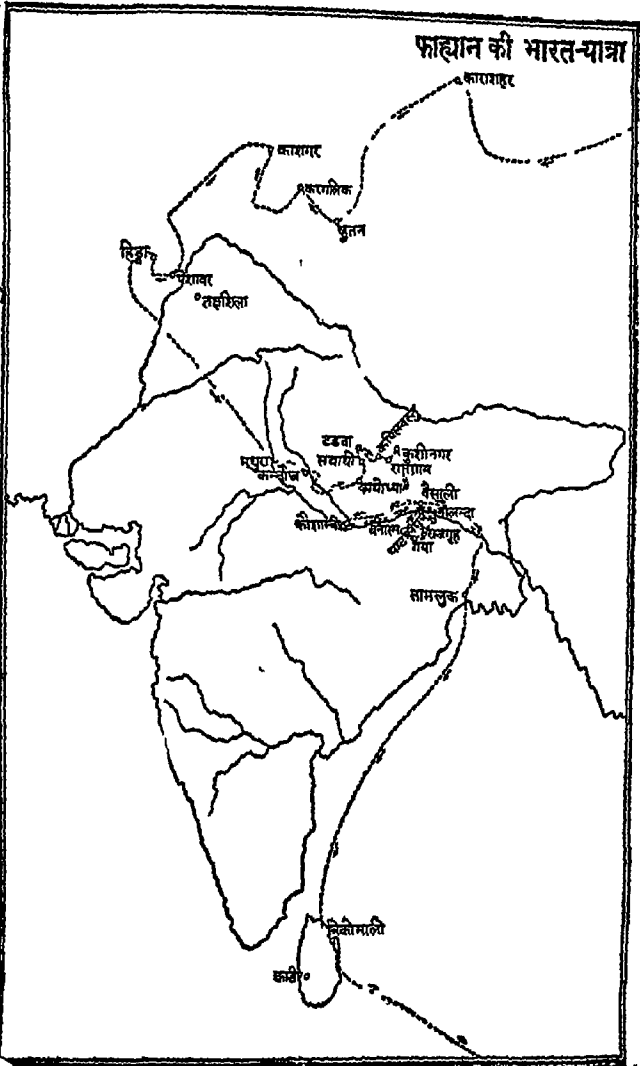
तट पर हूणो को बुरी तरह पराजित किया और (५३० ई० के लगभग) मिहिरकुल को काश्मीर की ओर भगा दिया।
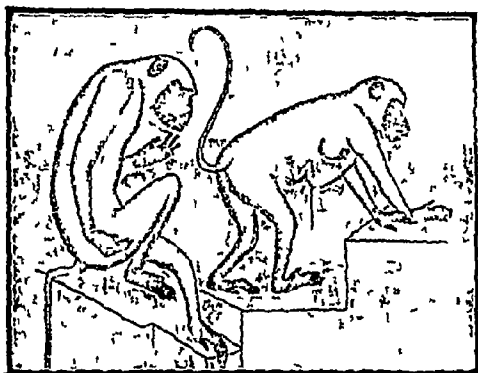
अजन्ता की चित्रकारी

अजन्ता की चित्रकारी

मध्यभारत में मन्दसोर नामक स्थान पर उसके दो लेख पाये गये हैं।

इन लेखो से पता चलता है कि उसने भारत के प्रत्येक भाग को जीता था और उसका साम्राज्य गुप्त-सम्राटो के साम्राज्य से वडा था। कुछ विद्वानो का मत है कि उसने विक्रमादित्य की पदवी धारण की थी। किन्तु इस कथन की पुष्टि के लिए कोई प्रमाण नही मिलता। यह नही कहा जा सकता कि उसकी मृत्यु के वाद साम्राज्य की क्या दशा हुई।

## सक्षिप्त सनवार विवरण

| | |
|---|---|
| चन्द्रगुप्त प्रथम का गद्दी पर बैठना और गुप्तकाल का प्रारम्भ | ३१९ ई० |
| समुद्रगुप्त का गद्दी पर बैठना | ३३५ ,, |
| चन्द्रगुप्त द्वितीय | ३७५ ,, |
| कुमारगुप्त | ४१४ ,, |
| स्कन्दगुप्त | ४५५ ,, |
| तोरमाण की पजाव पर विजय | ४८४ ,, |
| तोरमाण द्वारा गुप्त-राज्य की पराजय | ५१० ,, |
| मिहिरकुल की पराजय | ५३० ई० के लगभग। |

# अध्याय १०

## उत्तरी भारत—थानेश्वर का अभ्युदय

गुप्त राजाओ के बाद उत्तरी भारत—पहले कह चुके है कि छठी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में यशोधर्मन् भारत का बडा प्रतापी राजा हुआ। उसकी मृत्य के बाद सारा देश फिर अनेक स्वतन्त्र राज्यो में विभक्त हो गया। सयुक्त-प्रान्त तथा बिहार के कुछ भागो पर मौखरी-वश का आधिपत्य स्थापित हो गया। उत्तर-कालीन गुप्त राजाओ के साथ इन मौखरी लोगो ने घोर युद्ध किया। यह युद्ध अधिक काल तक चलता रहा किन्तु हार-जीत का निर्णय न हुआ। कभी एक पक्ष जीतता था और कभी दूसरा। उत्तर-काल के गुप्त राजा महासेन गुप्त ने लडाई करना बन्द कर दिया और बगाल तथा आसाम में अपना अधिकार बढाने की चेष्टा की। इसी समय पूर्वी पजाब में थानेश्वर में एक राजवश का अभ्युदय हुआ। मौखरियो ने इस वश के साथ मित्रता कर ली।

थानेश्वर का राजवश—इस वश का पहला राजा प्रभाकरवर्द्धन (लगभग ५८० से ६०५ तक) था। उसने हूणो को पराजित किया और सिंध, गुजरात तथा मालवा आदि देशो को जीतकर एक छोटा-सा साम्राज्य बनाया। महासेन गुप्त की बहिन के साथ विवाह करके उसने गुप्तवश से मित्रता कर ली। इसके अतिरिक्त अपनी बेटी राज्यश्री का विवाह गृहवर्मन् मौखरी के साथ करके उसने अपनी शक्ति को अधिक बढा लिया। प्रभाकरवर्द्धन के दो बेटे थे—राज्यवर्द्धन और हर्षवर्द्धन। उसकी मृत्यु के बाद ज्योही राज्यवर्द्धन गद्दी पर बैठा, मालवा के एक गुप्तवशीय राजा ने गृहवर्मन् मौखरी को मारकर राज्यश्री को कारागार में डाल दिया। राज्यवर्द्धन ने अपने बहनोई की मृत्यु का बदला लेने की

हर्ष का साम्राज्य
६४० ई० में भारत
काबुल
गान्धार
गजनी
पुरुषपुर
तक्षशिला
श्रीनगर
कश्मीर
स्यालकोट
जालन्धर
थानेश्वर
मतिपुर
सिन्ध
इन्द्रप्रस्थ
अहिछत्र
कुशीनगर
मथुरा
गुर्जर
नेपाल
वृज्जी
पुण्ड्रवर्द्धन
ग्वालियर
पाटलिपुत्र
जेजाकभुक्ति
प्रयाग
काशी
गौड़
उज्जैन
मगध
समतट
वल्लभी
नर्मदा
महाकोसल
उद्र
(उड़ीसा)
ताप्ती
अजन्ता
एलोरा
नासिक
पुरी
पुलकेशी
का
साम्राज्य
पू० चालुक्य
कलिंग
वातापि
कृष्णा
धान्यकटक
बंगाल
की
खाड़ी
अरब
सागर
नेल्लोर
कांची
कावेरी
नागपट्टन
मदुरा
सिंहलद्वीप

चेष्टा की परन्तु बंगाल के शक्तिशाली राजा शशाक ने बीच ही में उसे कत्ल कर दिया।

हर्षवर्द्धन (६०६-६४७ ई०) राज्यवर्द्धन के बाद उसका भाई हर्ष-वर्द्धन ६०६ ई० में थानेश्वर की गद्दी पर बैठा। उसका पहला काम अपनी बहन राज्यश्री को मुक्त करना था। वह कारागार से निकलकर विन्ध्याचल पर्वत की ओर भाग गई थी। वहाँ जाकर हर्षवर्द्धन ने उसे चिता में जलकर मरने से रोका और अपने साथ थानेश्वर ले आया। गृहवर्मन् की मृत्यु के बाद उसके मन्त्रियो ने कन्नौज की गद्दी पर बैठने के लिए हर्ष-वर्द्धन को निमन्त्रित किया। उसने अपनी बहिन के सरक्षक रूप में उसे स्वीकार किया और जब तक राज्यश्री जीवित रही तब तक उसने राजा की पदवी नही धारण की। इसके पश्चात् महाराज हर्ष ने बगाल के राजा शशाक पर चढाई की किन्तु जब तक शशाक जीता रहा, उसे सफलता प्राप्त न हो सकी। उसके शासन के प्रथम ६ वर्ष मालवा, बिहार, सयुक्तप्रान्त तथा पजाब के एक बडे भाग को जीतने में बीते। विन्ध्याचल पर्वत को पार कर उसने महाराष्ट्र के प्रतापी चालुक्य राजा पुलकेशिन् द्वितीय पर चढाई की। परन्तु इस युद्ध में उसे करारी हार खानी पडी। उसने कामरूप (आसाम) तथा वल्लभी (गुजरात) के राजाओ के साथ मैत्री-सम्बन्ध स्थापित किया। उसके साम्राज्य में सयुक्त-प्रान्त, बिहार और सम्भवत मालवा तथा पजाब का कुछ भाग सम्मिलित था। गुप्त-साम्राज्य की अपेक्षा उसका राज्य-विस्तार कम था। अपने शासन-काल के अन्तिम भाग में उसने गजाम* के राजा के साथ युद्ध किया परन्तु यह नही कहा जा सकता कि उसका परिणाम क्या हुआ।

---

* गजाम मद्रास अहाते में है। कुछ विद्वानो का मत है कि हर्ष के साम्राज्य में पूर्वी पजाब, प्राय सम्पूर्ण सयुक्त-प्रान्त, बिहार, बगाल, उड़ीसा तथा गजाम प्रदेश सम्मिलित थे।

**ग्वानच्वांग (ह्वेनसांग) का विवरण—हर्ष का शासन-प्रवन्ध—** चीनी यात्री ग्वानच्वांग या ह्वेनसांग महायान सम्प्रदाय का बौद्ध था। वह ६३० ई० में भारत में आया और १४ वर्ष तक देश में घूमता रहा। वह स्थल-मार्ग से गोवी के रेगिस्तान को पार कर खुतन होता हुआ अफग़ानिस्तान पहुँचा और वहाँ से खैवर के दर्रे मे होकर पजाव में प्रविष्ट हुआ। उसने इस देश तथा राजाओ और जनता के विषय में अनेक वातें विस्तार-पूर्वक लिखी है। हर्ष का शासन-प्रवन्ध अच्छा था। अपराधियो को कडी सज़ाएँ दी जाती थी। जो मनुष्य राजा के साथ विश्वासघात करता था उसे जीवन-पर्यन्त कारागार का दण्ड भोगना पडता था। घोर अपराधो के वदले में हाथ-पैर, नाक-कान काट लिये जाते थे। लोगो को कर अधिक नहीं देना पडता था। मन्त्रियो तथा प्रान्तीय शासको को वेतन के वदले ज़मीन दी जाती थी किन्तु फौजी अफसरो को नकद वेतन मिलता था। वेगार की प्रथा विलकुल न थी। राज्य की प्रधान आय राजकीय भूमि (ख़ालसा की ज़मीन) से होती थी। किसान पैदावार का छठा भाग राज्य को देते थे। व्यापार से भी राज्य को आमदनी होती थी। इसके सिवा घाटो के कर और चुगी से भी वहुत-सा रुपया मिल जाता था। सेना वहुत वडी थी और उसके चार विभाग थे—हाथी, रथ, अश्वारोही तथा पैदल। सैनिक लोग हथियार चलाने में वडे निपुण थे। विशाल सेना तथा कठोर दण्ड-विधान के होते हुए भी जान और माल सुरक्षित न थे। इस काल का शासन उतना सगठित तथा सुव्यवस्थित न था जितना कि गुप्त-काल का। ग्वानच्वांग स्वय कई वार डाकुओ के हाथो में पड गया था।

**सामाजिक स्थिति—**ग्वानच्वांग लिखता है कि देश के अधिकाश भागों में लोग सीधे और ईमानदार थे। जाति-व्यवस्था का पूर्ण विकास हो चुका था और अन्तर्जातीय विवाह का निषेध था। ऐसा प्रतीत होता है कि वाल-विवाह की प्रथा प्रचलित थी। हर्ष की वहिन राज्यश्री का विवाह वारह वर्ष की अवस्था में हुआ था। पर्दे का नियम कडा नही था। राज्यश्री सार्वजनिक सभाओ में सम्मिलित होती थी और धार्मिक वाद-

विवाद में भाग लेती थी। इससे मालूम होता है कि देश में स्त्री-शिक्षा का प्रचार काफ़ी था।

उच्च वर्णों की स्त्रियो मे पति के मरते समय अथवा मरने के बाद चिता में जलकर मर जाने की प्रथा थी। हर्ष की माता अपने पति के जीते-जी उसके शोक में जल मरी थी और राज्यश्री को चिता में जलने से उसके भाई ने बचाया था।

लोगो का भोजन साधारण था। वे दूध, घी, भुने हुए चने तथा मीठी रोटी का इस्तेमाल करते थे। लहसुन और प्याज खाने का रवाज बहुत कम था। मास भी लोगो का नित्य का भोजन नही था। यद्यपि देश मे तरह-तरह के कपडे तैयार होते थे तो भी लोगो की पोशाक सादी थी। समुद्र-यात्रा का निषेध नही था। ब्राह्मण भी जहाजो में बैठकर विदेशो को जाते थे। उन्ही के द्वारा भारतीय सस्कृति और सभ्यता का प्रचार जावा और दूसरे देशो में हुआ था।

ब्राह्मण अपनी विद्या और धर्म-परायणता के लिए प्रसिद्ध थे। शिक्षित समाज की भाषा सस्कृत थी। बौद्ध भी सस्कृत में लिखते-पढते थे। ह्वानच्वांग ने भारतीय सन्यासियो की बडी प्रशसा की है। वे राजाओ की भी कुछ पर्वाह नही करते थे और निन्दा अथवा प्रशसा का उन पर कोई प्रभाव नही पड़ता था। उन्ही के द्वारा लोगो में ज्ञान का प्रकाश फैलता था।

आर्थिक दशा—चीनी यात्री ने लोगो की आर्थिक दशा के बारे में भी कुछ लिखा है। बौद्ध-धर्म की उन्नतावस्था में जो नगर बहुत प्रसिद्ध थे उनकी अब अवनति हो रही थी परन्तु उनकी शानदार इमारतो को देखकर वह भी चकित हो गया था। ब्राह्मण लोग उद्योग-धधो में भाग नही लेते थे। वे केवल आध्यात्मिक कृत्यो में लगे रहते थे। व्यापार वैश्यो के हाथ में था और अधिकाश लोग खेती करके अपना जीवन व्यतीत करते थे। शूद्र और चाण्डाल नगर के बाहर रहते थे। लोगो की रहन-सहन का तरीका ऊँचे दर्जे का था क्योकि ह्वानच्वांग लिखता है कि ग़रीब

आदमियो के घर भी इट या लकडी के बने रहते थे। दीवारो पर चूने का प्लास्टर होता था और उन पर अनेक प्रकार के फूल कढे हुए होते थे। देश मे सोने-चाँदी की कमी न थी। बहुमूल्य धातुओ की बनी हुई बुद्ध भगवान् की अनेक प्रतिमाए ह्वानच्वांग जाते समय अपने साथ ले गया था।

शिक्षा और बौद्ध धर्म—ह्वानच्वांग के विवरण से हमे पता लगता है कि बौद्ध-धर्म का पतन आरम्भ हो गया था और वह अनेक उप-सम्प्रदायो मे विभक्त हो गया था। बौद्धो का एक अद्भुत् विहार नालन्दा* का विश्वविद्यालय था जिसमे दस हजार विद्यार्थी पढते थे। अनेक राजा उसके सरक्षक थे। उसके खर्चे के लिए राज्य की ओर से १०० गाँव लगे हुए थे। चीन, मगोलिया आदि सुदूर देशो से विद्यार्थी आकर वहाँ विद्याध्ययन करते थे, उनके रहन, खाने और पढने का प्रबन्ध मुफ्त मे होता था। भारत के प्रसिद्ध विद्वान् इस विश्वविद्यालय में अध्यापक थे। यद्यपि विश्वविद्यालय बौद्ध-धर्म की शिक्षा के लिए स्थापित हुआ था परन्तु वहाँ अन्य धर्मों की भी पढाई होती थी। रात-दिन विद्वत्तापूर्ण वाद-विवाद की धूम रहती थी। छोटे-बडे सब विद्वान् अध्ययन मे तत्पर रहते थे और उच्च कोटि की योग्यता प्राप्त करने में एक दूसरे की सहायता करते थे। महाराज हर्ष शिव और सूर्य के उपासक थे। परन्तु पीछे से उनकी प्रवृत्ति बौद्ध-धर्म की ओर अधिक हो गई थी। ह्वानच्वांग लिखता है कि राजा ने अपने सारे राज्य में पशु-वध का निषेध कर दिया था।

प्रयाग की सभा—६४३ ई० में हर्ष ने धार्मिक विषयो पर वाद-विवाद करने के लिए अपनी राजधानी कन्नौज में एक बडी सभा की। अनेक राजा और विद्वान् इस सभा में सम्मिलित हुए थे। ह्वानच्वांग को राजा ने बडे आदर के साथ निमन्त्रण भेजा था। प्रति पाँचवें वर्ष हर्ष प्रयाग में एक सभा करता था जिसमें सब श्रेणी के लोग शामिल होते थे।

---

* नालन्दा पटना जिले में राजगृह के निकट है।

पाँच वर्ष में जो कुछ धन इकट्ठा करता था उसे इस अवसर पर दान कर देता था। अपने वस्त्र-आभूषण इत्यादि सब कुछ दान करने के बाद वह अपनी बहन से एक पुराना कपड़ा माँगता था और उसे पहनकर भगवान् बुद्ध की उपासना करता था। ब्राह्मण, भिक्षुक और विशेषत बौद्ध, राजा
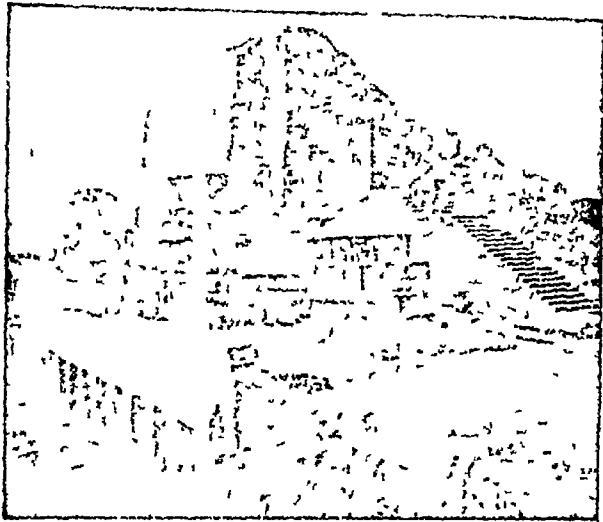
नालन्दा विश्वविद्यालय के ध्वंसावशेष

से अनेक प्रकार के उपहार पाते थे। हर्ष किसी खास धर्म को नहीं मानता था। वह बारी-बारी से बुद्ध, सूर्य तथा शिव की पूजा करता था। प्रतिदिन बुद्ध की मूर्ति का जलूस निकाला जाता था।

ह्वानच्वांग का अपने देश को लौटना—इसके बाद ह्वानच्वांग अपने देश को वापस लौट गया। हर्ष ने उसे विविध प्रकार के उपहार भेंट किये और पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्त तक पहुँचाने के लिए कुछ सिपाही भी साथ कर दिये। सन् ६६४ ई० में उसका देहान्त हो गया। वह बौद्ध-

धर्म का एक प्रकाण्ड विद्वान् था और अपने साहस तथा धार्मिक उत्साह के लिए भी बहुत प्रसिद्ध था।

हर्ष का चरित्र—हर्ष स्वय विद्वान् पुरुष था। उसने अनेक विद्वानो को अपने यहाँ आश्रय दिया था। सस्कृत का प्रसिद्ध गद्य-लेखक बाण उसके दरबार में रहता था। उसने कादम्बरी तथा हर्ष-चरित नामक दो ग्रन्थो की रचना की। कादम्बरी एक कथा-पुस्तक है और हर्ष-चरित में हर्ष का जीवन-चरित्र है। ये दोनो ग्रन्थ बहुत ऊँचे दरजे के हैं और इस प्रकार के ग्रन्थो में सर्वश्रेष्ठ है। हर्ष स्वय नाटककार था। कहा जाता है कि रत्नावली, प्रियदर्शिका और नागानन्द नामक नाटक उसी के बनाये हुए है। वह गद्य और पद्य दोनो आसानी से लिखता था। उसने व्याकरण की भी एक पुस्तक लिखी थी। चित्र-कला का भी उसे ज्ञान था, एक पत्र पर उसका चित्र-लेख मिला है। धार्मिक मामलो में हर्ष के विचार उदार थे। वह बौद्ध तथा ब्राह्मण दोनो धर्मों का समान आदर करता था। हर्ष ने अपने शासन-द्वारा हिन्दू राजधर्म का एक उत्कृष्ट आदर्श जनता के सामने रक्खा। वह प्रजा के साथ दया का वर्त्ताव करता था और उसकी सेवा में खाने और सोने की भी कुछ पर्वाह नही करता था। उसने देश भर में पुण्यशालाएँ स्थापित की थी जहाँ लोगो को मुफ्त में भोजन, शर्बत और ओषधि इत्यादि वस्तुएँ बाँटी जाती थी। लोग सुखी और सतुष्ट थे, यद्यपि कभी-कभी ब्राह्मणो और बौद्धो में झगडा हो जाता था।

४२ वर्ष के शासन के बाद, ६४७ ई० में, हर्ष की मृत्यु हो गई। उसके देहान्त के बाद उसका साम्राज्य भी छिन्न-भिन्न हो गया।

## सक्षिप्त सन्‌वार विवरण

| | |
|---|---|
| थानेश्वर के राजवश का अभ्युदय .. .. .. | ५८० ई० |
| हर्षवर्द्धन का जन्म .. .. .. .. | ५९० ,, |
| प्रभाकरवर्द्धन की मृत्यु .. .. .. .. | ६०५ ,, |
| गृहवर्मन् की मृत्यु और राज्यवर्द्धन की प्राणहत्या . .. | ६०५ ,, |

| | |
|---|---|
| हर्ष का गद्दी पर बैठना और हर्ष का सवत् .. .. .. | ६०६ ई० |
| पुलकेशिन् द्वितीय से युद्ध .. .. .. | ६१२ „ |
| ह्यानच्वांग का भारत मे आगमन .. .. .. | ६२६ „ |
| ह्यानच्वांग की हर्ष से भेंट .. .. .. . | ६४२ „ |
| कन्नौज और प्रयाग की सभाएँ .. .. .. . | ६४३ „ |
| हर्ष की मृत्यु .. .. .. .. .. | ६४७ „ |

---

# अध्याय ११

## उत्तरी राजवंश—राजपूत

(६५० से १२०० ई० तक)

**हर्ष की मृत्यु के बाद भारत**—हर्ष की मृत्यु के बाद भारत के इतिहास में फिर एक वार अराजकता फैल गई। हर्ष का साम्राज्य ऐसा लुप्त हो गया कि उसका कोई चिह्न बाकी न रहा। हर्ष के जीवन-काल में ही दुर्लभवर्द्धन ने काश्मीर में कारकोट वश की स्थापना कर ली। मैत्रक राजाओ ने गुजरात मे अपना स्वाधीन राज्य स्थापित कर लिया। मगध पिछले गुप्त राजाओ की शक्ति का केन्द्र वन गया और इस वश के आदित्य-सेन नामक राजा ने अपने को वडा शक्तिशाली वना लिया। उसने ६७५ ई० के लगभग वगाल को जीत लिया। परन्तु कन्नौज के राजा यशोवर्मन् ने मगध की शक्ति को नष्ट कर दिया। यशोवर्मन् एक वडा विजयी पुरुष तथा कवियो का आश्रयदाता था। सस्कृत-साहित्य का महाकवि और उत्तर-रामचरित का रचयिता भवभूति उसी के दरवार में रहता था। यशोवर्मन् ने एक वडा साम्राज्य स्थापित कर लिया। काश्मीर का राजा ललितादित्य (७२४–६० ई०) उसका घोर शत्रु और प्रतिद्वन्द्वी था। दोनो में युद्ध आरम्भ हो गया जिसमे यशोवर्मन् की हार हुई और वह मारा गया। राजनीतिक सत्ता कन्नौज से काश्मीर को चली गई।

ललितादित्य एक वीर, उत्साही और निरकुश शासक था। विजय और गौरव प्राप्त करने के लिए उसने मगध, वगाल तथा कन्नौज पर आक्रमण किया। वह दक्षिण भारत में भी पहुँचा और कहते हैं कि उसने गुजरात और मालवा को भी जीता। उसके विशाल साम्राज्य को देख-

कर लोगो को मौर्य सम्राटो के दिन याद आने लगे। सैकडो वर्ष तक अपने राजा की विजयो की खुशी में वे उत्सव मनाते रहे।

सन् ७६० ई० में ललितादित्य की मृत्यु हो गई। उसके बाद कई शक्तिहीन राजा हुए। उनमें इतने वडे साम्राज्य को सँभालने की शक्ति नही थी। जिस समय काश्मीर की ऐसी दशा थी उसी समय उत्तरी भारत मे दो नये राज्य बने। इनमें से एक वगाल में पाल-वश का राज्य था और दूसरा गुर्जर-प्रतिहारो का। जिस समय यशोवर्मन् के शासन में कन्नौज उन्नति कर रहा था और गुर्जर-प्रतिहार राजपूताना में अपनी शक्ति वढा रहे थे उसी समय अरव के मुसलमानो ने सिन्ध पर आक्रमण किया। सिन्ध के वहुत से भाग पर उनका अधिकार स्थापित हो गया। भारत पर मुसलमानो का यह पहला आक्रमण था।

**सिन्ध पर अरबो का आक्रमण**—अरव के मुसलमान हजरत मुहम्मद के अनुयायी थे। उनको वे ईश्वर का पैगम्वर अर्थात् दूत मानते थे। उनका जन्म ५७० ई० में मक्का में हुआ था। उनके माता-पिता की आर्थिक दशा अच्छी न थी। इसलिए उनके चचा ने उनका पालन-पोषण किया। वाल्यावस्था से ही मुहम्मद ईश्वरभक्त थे और धार्मिक मामलो में वडी रुचि रखते थे। लगभग ३० वर्ष की अवस्था में उनको अरव-निवासियो के धर्म से घृणा हो गई और वे एकेश्वरवादी हो गये। उन्होंने अपने नये सिद्धान्त का प्रचार करना आरम्भ किया और वे अपने को ईश्वर का पैगम्वर कहने लगे। मक्का के निवासियो ने उनके नये मत का विरोध किया और उन्हें इतना सताया कि सन् ६२२ ई० में वे मक्का छोडकर मदीना को चले गये। इसी समय से मुसलमानो के हिजरी सवत्* का आरम्भ होता है। मदीना में हजरत को अच्छी सफलता हुई और धीरे-

---

* हिजरी संवत् का आरम्भ १६ जूलाई सन् ६२२ से होता है। मरते समय हजरत मुहम्मद ने किसी को अपना उत्तराधिकारी नामजद नहीं किया। अतः इस वात पर झगड़ा उठ खड़ा हुआ कि उनके अनुयायियो

धीरे सारे मदीने में ही नहीं, बल्कि अन्य अनेक नगरो और स्थानो के लोगो ने भी उनके धर्म को स्वीकार कर लिया।

धीरे-धीरे उनके अनुयायियो की सख्या बढ गई और सब उन्हें ईश्वर का पैग़म्बर या दूत मानने लगे। हज़रत ने बड़े परिश्रम के साथ अपना जीवन व्यतीत किया। लडते भिडते और अपने धर्म का प्रचार करते हुए अन्त में वे सन् ६३२ ई० में मर गये। कुरान में उनकी शिक्षाओ का वर्णन है। मुसलमान लोग उसे ईश्वर-वाक्य समझते है।

पैग़म्बर की मृत्यु के बाद भी उनके साहसी अनुयायियो ने उनका काम जारी रक्खा। उन्होने बीस वर्ष के भीतर सीरिया, पैलेस्टाइन, मिस्र तथा ईरान को जीत लिया। ईरान पर विजय प्राप्त करने के बाद उनकी इच्छा पूर्व की ओर बढने की हुई। फलत ६३७ ई० में उन्होने भारत पर आक्रमण करने की आयोजना की। परन्तु खलीफा ने समझा कि इसका परिणाम मुसलमानो के लिए बडा भयकर होगा। अतः यह विचार छोड दिया गया।

अरब के मुसलमानो का पहला उल्लेखनीय आक्रमण मुहम्मद बिन कासिम की अध्यक्षता में ७१२ ई० में हुआ। यह आक्रमण सिन्ध देश पर हुआ, जहाँ दाहिर नाम का एक ब्राह्मण राजा राज्य करता था। राजा ने बडे साहस के साथ युद्ध किया किन्तु उसकी हार हुई और वह मारा गया। इसके बाद उसकी रानी ने अपने पति की सेना का सगठन किया और

---

का नेता कौन बनाया जाय। अबूबक्र, जो पैग़म्बर के साथियो में से थे, ख़लीफा चुने गये। हज़रत मुहम्मद के दामाद अली ने भी ख़लीफा होने के लिए अपना दावा पेश किया था। परन्तु उस पर कुछ ध्यान न दिया गया। इस कारण हज़रत मुहम्मद के अनुयायियो में दो दल हो गये। जो लोग अली के पक्ष का समर्थन करते थे वे शिया कहलाये। ख़लीफा मुसलमान जगत् का अध्यक्ष माना जाने लगा और उसका पद बडे महत्व का हो गया।

१५,००० सैनिको को लेकर विदेशियो के साथ युद्ध छेड दिया। किन्तु सफलता की आशा न देखकर वह राजकीय वश की अन्य महिलाओ के साथ आग मे जल मरी। दाहिर के राज्य पर मुसलमानो का अधिकार हो गया। इस विजय के बाद विजेताओ ने ब्राह्मणावाद और मुलतान को जीता और इस प्रकार प्राय सम्पूर्ण सिन्ध प्रदेश मुसलमानो के अधिकार में चला गया।

मुहम्मद बिन कासिम के शासन-काल में हिन्दुओ पर अत्याचार नही किया गया। उन्हे काफी स्वतन्त्रता प्रदान की गई, यद्यपि उन्हें जजिया देना पडा। जो लोग इस्लाम धर्म को ग्रहण कर लेते थे वे गुलामी से मुक्त कर दिये जाते थे। ब्राह्मणो के साथ अच्छा बर्ताव किया गया और उनके पद-गौरव की रक्षा की गई। हिन्दू-मन्दिरो को कोई हानि नही पहुँचाई गई और लोगो को पूजा करने की आज्ञा प्रदान की गई। इतनी विजय पाने पर भी उसके शत्रुओ ने उसके विरुद्ध षड्यन्त्र किया। खलीफा से उसकी बहुत-सी शिकायते की गई और इसका परिणाम यह हुआ कि उसको फाँसी की सजा दी गई। सिन्ध की विजय अधूरी रह गई और अरब-वालो की स्थिति बहुत कमजोर हो गई।

सिन्ध पर अरब के मुसलमानो ने जो विजय प्राप्त की, उसके विषय में कहा गया है कि यह भारत और इस्लाम के इतिहास की एक रोचक घटना है और परिणाम-शून्य विजय है। इसके कई कारण है। मुहम्मद बिन कासिम की अध्यक्षता में जितनी सेना भेजी गई थी वह काफी नही थी। सिन्ध का प्रान्त बिल्कुल रेगिस्तान और अनुपजाऊ था। सबसे प्रधान कारण यह था कि उत्तर तथा पूर्व मे राजपूतो के बडे-बडे राज्य थे और दक्षिण राष्ट्रकूटो के अधिकार में था। ये सब हिन्दू राजा आक्रमणकारियो से लडने को तैयार थे। ऐसी परिस्थिति में मुसलमानो के लिए यहाँ पर स्थायी राज्य स्थापित करना प्राय असम्भव था।

मुसलमानो की विजय का एक महत्त्वपूर्ण प्रभाव वर्णन करने योग्य है। अरब के लोगो ने हिन्दू-सभ्यता और सस्कृति को बहुत पसद किया।

अनेक मुसलमान विद्वानो ने ब्राह्मण पडितो से उनकी प्राचीन विद्याएँ सीखी। ज्योतिष, गणित, दर्शन-शास्त्र, आयुर्वेद तथा अन्य विद्याओ के जो ग्रंथ सस्कृत में थे उनका अनुवाद अरवी भाषा में किया गया। यह उस समय के मुसलमानो की गुण-ग्राहकता है कि उन्होने अपने से भिन्न मतवालो की सुन्दर सस्कृति को घृणा की दृष्टि से नही देखा। मुसलमानो ने सस्कृत-भाषा का भी ज्ञान प्राप्त किया और अरवी के ग्रथो का अनुवाद किया। हिन्दू-चिकित्सक वगदाद गये और वहाँ के औषधालयो की देख-भाल उनके सुपुर्द की गई। अरव-निवासियो ने हिन्दुओ से शतरञ्ज का खेल तथा एक से नौ तक के अक सीखे। पीछे से यूरोपवालो ने इन्ही अको को अरव-वालो से सीखा। इन सव वातो में खलीफाओ के विचार उदार थे। कहा जाता है कि एक खलीफा ने तो हिन्दू वैद्य से अपनी चिकित्सा कराके स्वास्थ्य लाभ किया था।

प्रतिहार-साम्राज्य—गुर्जर-प्रतिहार एक विदेशी जाति के लोग थे। जव ब्राह्मणो ने उन्हें हिन्दू वना लिया तव भारतीय समाज में उनका प्रवेश हुआ। आजकल वे परिहार के नाम से प्रसिद्ध हैं। चौहानो की तरह उनका भी कहना है कि वे अर्वली पर्वत की चोटी पर ब्रह्मा के अग्नि-कुण्ड से उत्पन्न हुए हैं। वे पहले-पहल राजपूताना में भीनमल नामक स्थान में बसे थे। जिस समय (७१२ ई०) सिन्ध को अरववालो ने जीता था उस समय प्रतिहार बडे शक्तिशाली थे। उन्होने अरबो को सिन्ध से आगे वढने से रोका। आठवी शताब्दी के मध्य-काल में वत्सराज नामक प्रतिहार राजा ने सारे उत्तरी भारत को रौंद डाला और कन्नौज तथा वगाल राज्यो को जीत लिया। प्रतिहारो को राष्ट्रकूटो के साथ युद्ध करना पडा और अन्त में राजा ध्रुव द्वितीय से हार खानी पडी। वत्सराज (८१५–३४ ई०) के वेटे नागभट्ट द्वितीय ने वगाल के पाल राजा धर्मपाल को पराजित किया और कन्नौज पर अपना अधिकार जमा लिया। धर्मपाल के पुत्र देवपाल ने थोडे काल के लिए प्रतिहारो की शक्ति को क्षीण कर दिया, किन्तु राजा भोज प्रथम (८४०–९० ई०) के समय में प्रतिहार फिर सवल

बन गये। उसने कन्नौज को फिर जीत लिया और अपना साम्राज्य स्थापित किया जिसमे पजाब, राजपूताना, मध्यभारत, गुजरात तथा सयुक्त-प्रान्त सम्मिलित थे। उसके बेटे महेन्द्रपाल (८९०—९०८ ई०) ने विहार को भी अपने साम्राज्य मे मिला लिया। प्रतिहारो का शासन अब समस्त उत्तरी भारत मे स्थापित हो गया। परन्तु महेन्द्रपाल के दूसरे बेटे महिपाल (९१०—४० ई०) को दक्षिण के राष्ट्रकूट राजा इन्द्र तृतीय के हाथ से गहरी हार खानी पडी। इस समय से प्रतिहारो की शक्ति का ह्रास होने लगा। धीरे-धीरे अनेक छोटे-छोटे राज्य बन गये। इसका परिणाम यह हुआ कि अन्त मे—प्रतिहारो के अधिकार में केवल कन्नौज के चारों ओर का प्रदेश ही शेष रह गया। पीछे से इस बश मे राज्यपाल (९९०—१०१८ ई०) नामक एक राजा हुआ। उसने महमूद गजनवी के आधिपत्य को स्वीकार किया। १०९० ई० के कुछ ही पहले गहरवारो ने कन्नौज को जीत लिया और प्रतिहारो का नाम-निशान भी बाकी न रहा।

**स्थानीय राजवश**—पहले कह चुके है कि जब प्रतिहारो के साम्राज्य का पतन हुआ तब उनके अधिकृत प्रदेश कई छोटे-छोटे राज्यो में विभक्त हो गये। उनमें से जैजाक-भुक्ति के चन्देले, दहल के कलचुरि, मालवा के परमार, गुजरात के चालुक्य, शाकम्भरी के चौहान, कन्नौज के गहरवार तथा ग्वालियर के कच्छपघट बहुत प्रसिद्ध थे।

**जैजाक-भुक्ति के चन्देले**—दसवी शताब्दी के पहले भाग में यशोवर्मन् की अध्यक्षता में चन्देले लोग प्रतिहार-साम्राज्य से अलग हो गये और जैजाक-भुक्ति* में उन्होने अपना एक छोटा-सा राज्य स्थापित कर लिया। यशोवर्मन् एक योग्य तथा युद्ध-प्रिय राजा था। प्रतिहार-साम्राज्य के पतन से उसे अपने छोटे राज्य का विस्तार करने का अच्छा अवसर मिला। उसने कई राजाओ के साथ युद्ध किया और कालिंजर पर्वत को जीत लिया

---

* जैजाक-भुक्ति आजकल का बुन्देलखण्ड है। मध्यप्रदेश के जबलपुर जिले के चारो ओर का प्रदेश उस समय दहल कहलाता था।

जो चन्देलो का प्रधान किला बन गया। धग (९५०-९०) राजा के शासन-काल में इस वंश का गौरव बहुत बढा और चन्देलो का राज्य यमुना नदी तक फैल गया। गजनी के बादशाह सुबुक्तगीन के साथ युद्ध करने के लिए इस समय जो सघ स्थापित किया गया था उसमें धग भी सम्मिलित था। उसने खजुराहो के प्रसिद्ध मन्दिर को बनवाया। उसके बेटे गण्ड ने महमूद गजनवी के साथ युद्ध करने मे राजा आनन्दपाल का साथ दिया। बिना युद्ध किये महमूद की अधीनता स्वीकार करने पर उसने राज्य-पाल पर चढाई की और उसे मार डाला। परन्तु जब महमूद ने इसका बदला लेने के लिए चढाई की तब राजा गण्ड बिना उसका सामना किये ही मैदान से भाग निकला। इस वंश का दूसरा प्रतापी राजा कीर्तिवर्मन् हुआ। उसने अपने वंश के क्षीण होते हुए गौरव को फिर से बचाया। अन्तिम राजा परमर्दिन् अथवा परमाल (११६५-१२०३ ई०) हुआ। सन् ११८२ ई० में पृथ्वीराज चौहान ने उसे पराजित किया। अन्त में कुतुबुद्दीन ऐबक ने १२०३ ई० में चन्देलो के राज्य पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। किन्तु परमर्दिन् के पुत्र ने फिर अपनी खोई शक्ति को प्राप्त किया और मुसलमानो को निकाल बाहर किया।

**ग्वालियर के कच्छपघट**—ग्वालियर पहले प्रतिहार-साम्राज्य का एक भाग था। विजयपाल (९६०-९० ई०) के शासन-काल में कच्छ-पघट के सरदार वज्रदमन ने उसे जीत लिया और एक नया राज्य स्थापित किया। सन् ११२८ ई० तक ग्वालियर का क़िला इस वंश के अधिकार में रहा। ग्वालियर के राजा ने चन्देलो की अधीनता स्वीकार कर ली और कन्नौज के प्रतिहार-सम्राट् राज्यपाल को पराजित करने में उनकी सहायता की।

**दहल (बघेलखण्ड) के कलचुरि**—कलचुरि अथवा चेदि लोगो का राज्य चन्देल-राज्य के दक्षिण में था और उनकी राजधानी जबलपुर के पास त्रिपुरी थी। उनका सबसे शक्तिशाली राजा गांगेयदेव विक्रमादित्य (१०१०-४० ई०) हुआ। उसने अपने राज्य को खूब

बढाया। उसके उत्तराधिकारी राजा कर्ण (१०४०–७० ई०) को चन्देल राजा कीर्तिवर्मन् ने पराजित किया। उसने बनारस मे शिवजी का मन्दिर बनवाया और त्रिपुरी के पास कर्णवती नामक एक नई राजधानी स्थापित की। उसकी मृत्यु के बाद चेदियो की शक्ति का ह्रास हो गया। अन्तिम चेदिराजा विजयसिंह ११९६ ई० मे देवगिरि के यादव राजा के हाथ पराजित हुआ और मारा गया।

ग्वालियर का क़िला
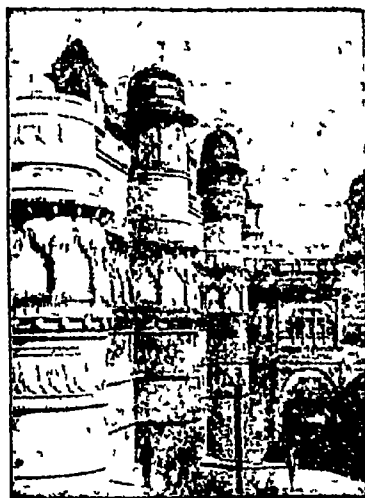
**मालवा के परमार**—चन्देलो की भाँति मालवा के पास परमार राजा भी प्रतिहार साम्राज्य के अधीन थे। इस वंश का संस्थापक उपेन्द्र अथवा कृष्णराज था। परन्तु पहले-पहल स्वाधीन होनेवाला राजा वाक्पतिराज द्वितीय था जिसने गुजरात के चालुक्य राजाओ के साथ निरन्तर युद्ध किया। उसके बाद भोज प्रथम (१०१८-६० ई०) गद्दी पर बैठा और यही इस वंश का सबसे अधिक प्रसिद्ध शासक हुआ। भारतीय जनश्रुति मे उसका नाम अभी तक प्रसिद्ध है। उसने ज्योतिष तथा साहित्य को प्रोत्साहन दिया और विद्वानो का सम्मान किया। उसने कला, काव्य तथा नाटक में एक नई शैली का आविष्कार किया। उसने पत्थर के टुकडो पर काव्य, ज्योतिष तथा अलंकार के ग्रन्थ खुदवाये और धार के विद्यालय मे रख दिये। जब मुसलमानो ने मालवा को जीता तब उन्होंने इन बहुमूल्य पत्थरों को मसजिद में लगा दिया जहाँ वे अब भी दिखाई देते है। राजा भोज को

गुजरात तथा चेदिराज्यों से युद्ध करना पड़ा। इस युद्ध में वह पराजित हुआ और मारा गया। भोज के उत्तराधिकारी कई वर्ष तक अपने शत्रुओं से लोहा लेते रहे। कभी उनकी विजय हुई, कभी उनके विपक्षियों की। मालवा का अन्तिम परमार राजा भोज द्वितीय था। अलाउद्दीन खिलजी ने उसे पराजित किया और मालवा को दिल्ली-साम्राज्य का एक सूबा बना दिया।

गुजरात के चालुक्य अथवा सोलंकी—चन्देलों और परमारों की तरह सोलंकी भी प्रतिहार-सम्राटों के अधीन थे। इस वंश का संस्थापक मूलराज प्रथम था। लगभग दसवीं शताब्दी के मध्य में उसने अपना एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया और अन्हलवाड़ को अपनी राजधानी बनाया। इस वंश का दूसरा प्रसिद्ध राजा भीम प्रथम हुआ। उसके शासन-काल में महमूद गजनवी ने गुजरात पर आक्रमण किया। सोलंकियों का सबसे प्रतापी राजा कुमारपाल (११४३–७८ ई०) हुआ। उसने कई देशों को जीत कर अपने राज्य का विस्तार बढ़ाया। वह जैन विद्वान् हेम-चन्द्र सूरि का बड़ा भक्त था। उसी के प्रभाव में आकर उसने जैन-धर्म के अनेक आदेशों का अनुसरण किया। यद्यपि उसने स्वयं जैन-धर्म स्वीकार नहीं किया परन्तु जैन-धर्म की बहुत सी बातों को वह मानता था। विद्वानों का वह आश्रयदाता था। अनेक प्रसिद्ध विद्वान् उसके दरबार में रहते थे। कुमारपाल की मृत्यु के बाद सोलंकियों की शक्ति का ह्रास हो गया। उनके अन्तिम राजा कर्णदेव द्वितीय* को अलाउद्दीन खिलजी के सेनापतियों ने पराजित किया और उसके बाद गुजरात भी दिल्ली-साम्राज्य का एक सूबा हो गया।

कन्नौज के गहरवार—कन्नौज के गहड़वाल या गहरवार लोगों का राज्य उस समय प्रारम्भ हुआ जब प्रतिहारों की शक्ति एकदम विलुप्त

* मुसलमान इतिहासकारों ने उसका उल्लेख राय करन बघेला के नाम से किया है।

मुसलमानों के आक्रमण के पूर्व उत्तर भारत
काबुल
गजनी
पेशावर
काश्मीर
लाहौर
कांगड़ा
मुलतान
थानेसर
उच्छ
भटिण्डा
हांसी
तोमर
सिन्ध
दिल्ली
मेरठ
जैसलमेर
नागरकोट
मथुरा
बरन
कन्नौज
शाकम्भरी
बियाना
ग्वालियर
रणथम्भोर
जालोर
बनारस
अन्हलवाड़
उज्जैन
कालिंजर
धार
परमार
द्वारका
सोमनाथ
पाल
चालुक्य राज्य
मलखेद
अरब सागर
बंगाल की खाड़ी
काञ्ची
कावेरी
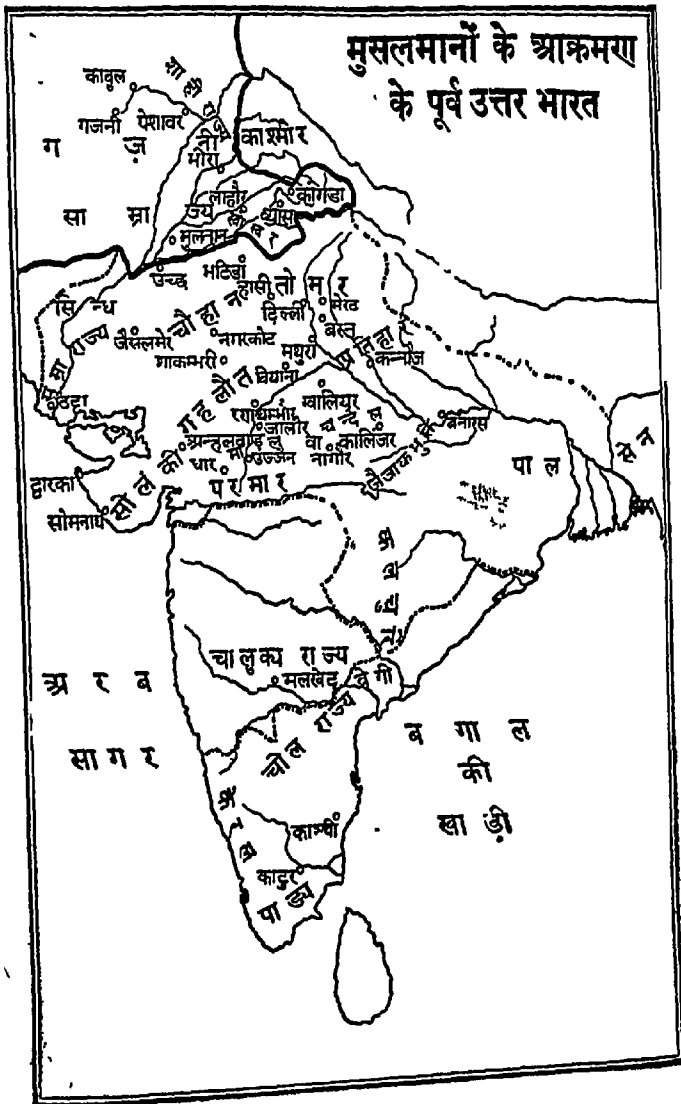
हो गई। यह ग्यारहवीं शताब्दी की बात है। इस वंश का सबसे शक्तिशाली राजा गोविन्दचन्द्र (१११४–५४ ई०) था। उसने बिहार के पश्चिमी भाग पर अपनी प्रभुता स्थापित की और मुसलमान आक्रमणकारियों के साथ खूब युद्ध किया। उसका पोता जयचन्द्र (११७०–९४ ई०) था, जिसे चौहानों के राजा पृथ्वीराज के साथ लड़ना पड़ा था। वह एक प्रतिभाशाली राजा था। उसका राज्य बनारस तक विस्तृत था। दिल्ली के राजा पृथ्वीराज चौहान के साथ उसकी घोर शत्रुता थी। जब मुहम्मद गोरी ने पृथ्वीराज पर चढ़ाई की, तब जयचन्द्र ने चौहान राजा को कुछ भी सहायता नहीं पहुँचाई। तराइन (११९२ ई०) के युद्ध में पृथ्वीराज पराजित हुआ और दिल्ली के हिन्दू-साम्राज्य का अन्त हो गया। इसके एक वर्ष बाद मुहम्मद ने कन्नौज पर आक्रमण किया और जयचन्द्र को हराया। चँदवार के युद्ध में वीरता के साथ लड़ते हुए उसकी मृत्यु हुई। उसके बाद उसका बेटा राजगद्दी पर बैठा परन्तु अब कन्नौज-राज्य का विस्तार बहुत कम हो गया।

**तोमर और चौहान**—तोमर राजपूत हरियाक प्रदेश में राज्य करते थे। इसे आजकल हरियाना कहते हैं। यह दिल्ली तथा गुड़गाँव के जिलों में शामिल है। ये लोग भी पहले प्रतिहारों के अधीन थे और कर देते थे। शाकम्भरी या साँभर के राजा विग्रहराज चतुर्थ (बीसलदेव) ने उनके राज्य को जीत लिया था। उसने ११६४ ई० में दिल्ली पर अपना अधिकार जमाया। वह एक वीर योद्धा तथा अच्छा कवि था। कहा जाता है कि हरकेलिनाटक का रचयिता वही है। उसका उत्तराधिकारी पृथ्वीराज तृतीय उत्तरी भारत का १२ वीं शताब्दी में बड़ा ही प्रतापी राजा हुआ। वह इतिहास तथा जनश्रुति दोनों में प्रसिद्ध है। मुहम्मद गोरी ने उसे युद्ध में पराजित कर दिल्ली और अजमेर पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। चौहानों ने राजपूताना में रणथम्भौर को अपनी राजधानी बनाया। वहाँ अनेक वर्ष तक वे मुसलमानों के आक्रमणों को रोकते रहे।

चौहान राज्य के पतन के बाद मुसलमानो के लिए पूर्व की ओर बढ़ना सहज हो गया।

राजपूतो की उत्पत्ति—राजपूत सस्कृत शब्द राजपुत्र का अपभ्रश है। राजकुमार तथा राजवशीय लोगो के लिए प्राचीन काल में राजपुत्र शब्द का प्रयोग किया जाता था। प्राचीन काव्यो तथा शिलालेखो में यह शब्द मिलता है। जब मुसलमान इस देश में आये तब वे राजकुल के क्षत्रियो को राजपूत कहने लगे। राजपूत अपने को प्राचीन वैदिक क्षत्रियो की सतान बतलाते है। वे कहते है कि हमारी आदि-उत्पत्ति सूर्य और चन्द्रमा से हुई है। चौहान, सोलकी, प्रतिहार, परमार आदि राजपूतो का कहना है कि हमारे आदि-पुरुष आबू पर्वत के अग्नि-कुड से उत्पन्न हुए थे। किन्तु यूरोपीय विद्वान् तथा कुछ भारतीय इतिहासकार इन सब बातो को स्वीकार नही करते। उनका मत है कि राजपूत लोग हूण, सिदियन आदि उन विदेशी लोगो की सन्तान हैं जिन्होने भारत पर आक्रमण किया और हिन्दू-धर्म को स्वीकार करके ब्राह्मणो की सहायता से हिन्दुओ की भाँति भारतीय समाज में स्थान प्राप्त किया। जब उन लोगो के हाथो मे राज्य-शक्ति आई तब ब्राह्मणो ने उनकी कल्पित वशावलियाँ तैयार करके उन्हें क्षत्रियो में सम्मिलित कर लिया। किन्तु अनेक भारतीय विद्वान् इस मत से सह-मत नही हैं। उनका कथन है कि राजपूत प्राचीन क्षत्रियों की सन्तान हैं। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि वे विशुद्ध आर्य क्षत्रिय हैं। भारत की अन्य जातियो की तरह राजपूत भी मिश्रित जाति है।

राजपूतो का चरित्र—भारतीय इतिहास में राजपूतो ने बडी वीरता दिखलाई है। उन्होने हिन्दू-शासन के आदर्श को अपने सामने रक्खा और प्राचीन सस्कृति की रक्षा की। शत्रु के सामने वे कभी पीछे नही हटते थे और अपने जातीय सम्मान तथा प्रतिष्ठा के लिए प्राण तक देने के लिए सदा तैयार रहते थे। राजपूत-समाज के आदर्श उच्च कोटि के थे। राजपूत अपनी बात के पक्के होते थे और युद्ध के समय भी

विश्वासघात नही करते थे। शरण में आये हुए शत्रु के साथ भी वे दया का वर्त्ताव करते थे। किसी को धोखा देना, झूठ बोलना और नीचता-पूर्ण चालाकी चलना उनके स्वभाव के विरुद्ध था। कभी-कभी अपनी सचाई के कारण उन्हें बडी-बडी आपत्तियो का सामना करना पडता था। लडाई मे वे कभी स्त्रियो और बच्चो पर हाथ नही उठाते थे। राजपूत स्त्रियो का आदर करते थे। स्त्रियाँ भी वीरता में मर्दों से कम न थी। कठिन समय में उन्होने भारतीय मान-मर्यादा की रक्षा की। कुल और जाति के गौरव के लिए राजपूत अपने निजी हिताहित की पर्वाह नही करते थे। इसी के कारण उनमे जौहर* की भीषण प्रथा का प्रचलन हुआ। जौहर उस समय किया जाता था जब वे देखते थे कि शत्रु से बचने की कोई आशा नही है।

एक राजपूत वीर

राजपूतो के दोष भी उनके गुणो की तरह प्रसिद्ध हैं। उनकी युद्ध में बडी रुचि थी और कीर्ति लाभ करने की उन्हे प्रबल इच्छा रहती थी। ईर्ष्या, द्वेष, फूट, सहयोग का अभाव तथा जातीय स्वार्थ उनके लिए हानिकारक सिद्ध हुआ। शासन-प्रबन्ध की ओर उन्होने कुछ भी ध्यान न

---

* जौहर—जब राजपूत धोखा देखते थे कि शत्रु से बचना कठिन है तो पहले स्त्रियों को अग्नि में जला देते थे, फिर युद्ध करके अपने प्राण दे देते थे।

दिया और न अपनी शक्ति को दृढ बनाने के लिए कोई उपाय निकाला। वे अफीम खाते थे और इसका उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पडा। इन्ही दोषो के कारण उन्होने अपनी प्राचीन शक्ति तथा गौरव को खो दिया।

**बगाल का पाल-वश**—नवी शताब्दी मे जिस समय बगाल में अराजकता फैली हुई थी, लोगो ने गोपाल नामक व्यक्ति को अपना राजा चुना। उसके बाद उसका लडका धर्मपाल गद्दी का अधिकारी हुआ। धर्मपाल ने कन्नौज के राजा इन्द्रायुध को पराजित किया और अपने अधीनस्थ चक्रायुध को गद्दी पर बैठाया। इन्द्रायुध ने मारवाड के गुर्जर-प्रतिहार राजा नागभट्ट द्वितीय से सहायता माँगी। नागभट्ट ने राजपूताना तथा पजाब के गुर्जर सर्दारो का एक सघ बनाया और धर्मपाल तथा कन्नौज के राजा चक्रायुध को पराजित कर उत्तरी भारत में अपना प्रभुत्व स्थापित किया। उसका पुत्र और उत्तराधिकारी देवपाल कला और साहित्य का आश्रयदाता था। उसने नालन्दा के मन्दिर को फिर से बनवाया और उसमें सुन्दर प्रतिमाएँ स्थापित की। पाल-वशीय राजा, भोज प्रथम (प्रतिहार) के आक्रमणो के सामने नही ठहर सके। भोज ने बगाल की सेना को परास्त कर कन्नौज को जीत लिया।

महिपाल प्रथम ने इस वश के नष्ट होते हुए गौरव का फिर से पुनरुद्धार किया। जब राजेन्द्र चोल प्रथम ने उसके राज्य पर आक्रमण किया तब उसे पराजित होकर लौटना पडा। महिपाल ने अपने राज्य का विस्तार बनारस तक बढा दिया। उसके बाद शत्रुओ से बराबर युद्ध होता रहा और साम्राज्य की शक्ति क्षीण होती गई। महिपाल द्वितीय के छोटे भाई रामपाल ने अपने वश के गौरव का पुनरुद्धार करने की चेष्टा की, परन्तु उसके उत्तराधिकारी शक्तिहीन थे। विजय-सेन ने उनको बगाल से निकाल बाहर किया और अपना एक स्वाधीन राज्य स्थापित कर लिया।

पाल राजा बडे शक्तिशाली थे। उन्होने एक विशाल साम्राज्य बनाया और बगाल को विदेशी आक्रमणकारियो के उत्पात से बचाया। कला और साहित्य को उनसे बहुत प्रोत्साहन मिला। उनके शासन-

नालन्दा में प्राप्त बोधिसत्व (पाल राजाओं के समय)

काल में विक्रमशिला और उद्दानपुर के विहार बने। उन्ही के आश्रय मे रहकर कुछ बडे-बडे कवि-लेखको ने अपने ग्रन्थ रचे। यद्यपि पालवश के राजा बौद्ध-धर्म के अनुयायी थे तथापि उन्होने अन्य

मतवालो के साथ सहिष्णुता का वर्त्ताव किया और ब्राह्मणो को अपना मन्त्री वनाया।

**सेन-वश**—सेन-वश का संस्थापक विजयसेन था जिसने पाल-साम्राज्य का विध्वस किया था। सेन लोग व्यवसाय की खोज में दक्षिण से आये थे। विजयसेन के वाद उसका वेटा वल्लालसेन राज्य का अधिकारी हुआ। उसका शासन अधिक काल तक न रहा। वगाल में कुलीन-प्रथा का प्रचार उसी ने किया था। सेन-वश के राजा हिन्दू थे। उन्ही के काल में ब्राह्मण-धर्म का फिर से अभ्युदय हुआ। वल्लालसेन के वाद उसका पुत्र लक्ष्मणसेन १११९ ई० में गद्दी पर बैठा। वह एक उत्साही तथा पराक्रमशील पुरुष था। उसने मगध और कन्नौज के राज्यो को जीत कर पाल-साम्राज्य के पुनरुद्धार की चेष्टा की। पाल राजाओ की भाँति उसने भी कला और साहित्य को आश्रय दिया। गीत-गोविन्द के रचयिता जय-देव तथा धोयी जैसे कवि भी उसके दर्वार में रहते और विविध प्रकार के उपहार पाते थे। वारहवी शताब्दी के अन्तिम काल में मुसलमानो ने वगाल पर आक्रमण किया। सेन-वश के राजा सफ-लतापूर्वक उनका सामना न कर सके। इस हार से उनका पूर्व गौरव नष्ट हो गया परन्तु वे १३वीं शताब्दी तक पूर्वी वगाल मे राज्य करते रहे।

### सक्षिप्त सन्वार विवरण

| | |
|---|---|
| आदित्यसेन का वगाल जीतना .. .. | ६७५ ई० |
| ललितादित्य की मृत्यु .. .. | ७६० „ |
| वीसलदेव द्वारा दिल्ली-विजय .. .. | ११६४ „ |
| पृथ्वीराज की परमाल पर विजय .. .. | ११८२ „ |
| तराइन की लडाई .. .. | ११९३ „ |

# अध्याय १२

## दक्षिण तथा सुदूर दक्षिण के राज्य

### (६००—१२०० ई० तक)

वातापि के चालुक्य—लगभग २०० ई० के शातवाहनो की राज्य-शक्ति के नष्ट हो जाने के बाद दक्षिण का मध्यभाग अभीर आदि जातियो के हाथ में चला गया। २५० ई० के लगभग उस प्रदेश में वाकाटक जाति के लोगो का आधिपत्य स्थापित हो गया। उनके एक राजा रुद्रसेन ने गुप्त-वश के राजा चन्द्रगुप्त द्वितीय की बेटी के साथ अपना विवाह किया। इस वश का राज्य ५५० ई० तक रहा। इसके बाद पुलकेशिन् प्रथम की अध्यक्षता में चालुक्यो ने उसे पराजित किया। वातापि* पर पुलकेशिन् का अधिकार स्थापित हो गया। उसके उत्तराधिकारियो ने अपने राज्य को खूब बढ़ाया। सम्पूर्ण बगाल तथा हैदराबाद का काफी भाग उनके अधीन हो गया। इस वश का सबसे शक्तिशाली राजा पुलकेशिन् द्वितीय (६०८-६४२ ई०) था। उसने गुजरात तथा मद्रास के तेलगू जिलो को भी जीत लिया। उसने कन्नौज के राजा हर्षवर्धन की सेना को भी मार भगाया। अपने पराक्रम द्वारा उसने बड़ा यश प्राप्त किया। किन्तु ६४२ ई० में पल्लव राजा नरसिंह वर्मन् प्रथम के साथ युद्ध में वह पराजित हुआ और मारा गया। पुलकेशिन् के उत्तराधिकारियो ने पल्लव राजाओ से इसका बदला लिया और अपनी शक्ति को खूब बढाया। इस वश का अन्तिम राजा

---

* वातापि का आधुनिक नाम बादामि है। यह बीजापुर जिले में है।

कीर्तिवर्मन (७४६-८५३ ई०) था। उसे राष्ट्रकूट-नरेश दन्तिदुर्ग ने पराजित किया।

**मान्यखेत के राष्ट्रकूट**—राष्ट्रकूटो का राज्य दन्तिदुर्ग की अध्यक्षता में प्रारम्भ हुआ। उसने मान्यखेत* को अपनी राजधानी बनाया और ७५३ से ७६० ई० तक राज्य किया। उसके चचा कृष्ण प्रथम (७६०-७५ ई०) ने एलोरा का कैलास का प्रसिद्ध मन्दिर बनवाया। यह मन्दिर बडा विशाल है और चट्टान को काटकर बनाया गया है। राजा ध्रुव (७८०-७९३ ई०) अपनी सेना-सहित उत्तर की ओर पहुँचा और भीनमल के प्रतिहार राजाओ को पराजित किया। एक दूसरे राजा कृष्ण तृतीय (९४०-९६५ ई०) ने चोल राजा राजादित्य को ९४९ ई० में मार डाला। उसके बाद उसका छोटा भाई गद्दी पर बैठा। फिर इस वश में कोई प्रभावशाली राजा नही हुआ। कक्क द्वितीय (७९२-९३ ई०) को द्वितीय चालुक्य-वश के सस्थापक तैल के हाथ हार खानी पडी। कक्क के पश्चात् कृष्ण तृतीय का एक पुत्र राज्याधिकारी हुआ और ९८२ ई० तक शासन करता रहा। वह राष्ट्रकूट वश का अन्तिम राजा था। उसकी मृत्यु के बाद कल्याणी के चालुक्यो ने दक्षिण पर अपना आधिपत्य जमा लिया।

**पश्चिमी चालुक्य**—इस वश का सस्थापक तैल था। उसके बाद उसका बेटा गद्दी पर बैठा। उसे चोल राजा राजराज ने पराजित किया। छठवें विक्रमादित्य (१०७६-११२६ ई०) ने चोलो को हराकर इस अपमान का बदला लिया और एक नया सवत् चलाया। उसने विद्वानो को बडा आश्रय दिया। प्रसिद्ध कवि विल्हण और धर्मशास्त्र का ज्ञाता विज्ञानेश्वर उसके दरबार में थे। मृत्यु के बाद इस वश का पतन हुआ और उसके स्थान मे तीन नये वश स्थापित

---

* मान्यखेत का आधुनिक नाम मालखेद है और वह निजाम के राज्य में है।

हो गये —द्वार-समुद्र के होयसल, देवगिरि के यादव तथा बंगाल के काकतीय।

लिंगायत सम्प्रदाय—द्वितीय चालुक्य-वंश के राजा बिज्जल (११५६-६७ ई०) के शासन-काल में लिंगायत नाम का एक नया
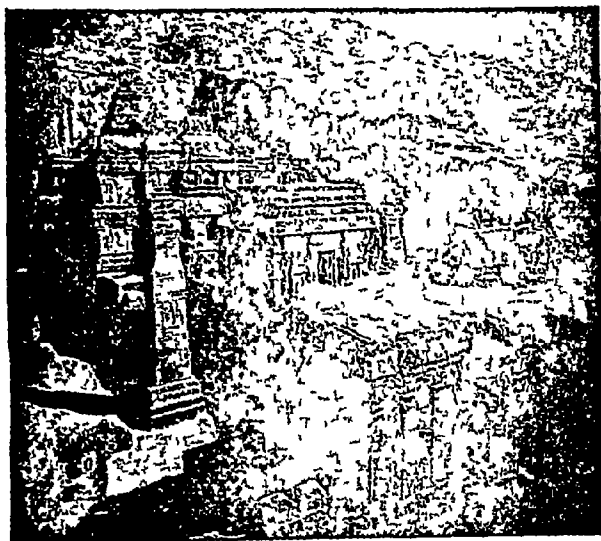
कैलास का मन्दिर (एलौरा)

धार्मिक सम्प्रदाय उठ खड़ा हुआ। इस सम्प्रदाय का प्रवर्तक बासव था। लिंगायत सम्प्रदाय के लोग आजकल भी प्रचुर संख्या में दक्षिण में पाये जाते हैं। वे शिव की उपासना करते हैं। भक्ति तथा अन्त में ईश्वर में तल्लीन हो जाने के सिद्धान्तों में उनका दृढ़ विश्वास है। पहले तो वे वर्ण-व्यवस्था और श्राद्ध आदि रस्मों को बुरा समझते थे परन्तु आज-कल के लिंगायत ब्राह्मण धर्म की बहुत-सी बातों को मानने लगे हैं।

**देवगिरि के यादव**—देवगिरि के यादवो में प्रसिद्ध राजा सिंघन (१२१०-४७) हुआ। उसका राज्य विन्ध्याचल पर्वत से कृष्णा नदी तक विस्तृत था। उसके पोते रामचन्द्र को १२९४ ई० में अलाउद्दीन खिलजी ने पराजित कर अपने अधीन कर लिया। उसे फिर मलिक काफूर ने हराया और कर देने पर विवश किया। रामचन्द्र की मृत्यु के वाद उसका वेटा शकरदेव राज्य का अधिकारी हुआ। उसने दिल्ली को कर भेजना वन्द कर दिया। इस पर काफूर ने देवगिरि पर चढाई की और उसे जीत लिया। शंकर के उत्तराधिकारी हरपालदेव ने विद्रोह किया। उसे मुसलमानो ने युद्ध में हराया और दिल्ली के खिलजी सुलतान कुतुवुद्दीन मुवारक ने सन् १३१८ ई० में उसकी खाल खिचवाई।

**वरगल के काकतीय**—देवगिरि के यादवो की भाँति काकतीय लोग भी पहले-पहल पश्चिमी चालुक्यो के अधीन थे। वे तैलगाना पर राज्य करते थे जिसमें उस समय निजाम-राज्य का पूर्वी भाग भी सम्मिलित था। वारहवी शताब्दी के अन्तिम काल में गणपति इस वश का राजा हुआ। उसने ६२ वर्ष तक शासन किया और आसपास के राजाओ को युद्ध में पराजित किया। उसके कोई पुत्र न था इसलिए उसकी मृत्यु के वाद उसकी वेटी रुद्रमा गद्दी पर बैठी। उसने ३० वर्ष तक शासन किया। चौदहवी शताब्दी के आरम्भ में जिस समय दिल्ली का साम्राज्य दक्षिण की ओर फैल रहा था, काकतीयो पर मुसलमानो का आक्रमण हुआ। उसके राजा प्रतापरुद्रदेव प्रथम को मलिक काफूर ने १३१० ई० में युद्ध में परास्त किया और कर देने पर विवश किया।

**द्वार-समुद्र का होयसल-वश**—होयसल-वश के राजा द्वार-समुद्र* को अपनी राजधानी वनाकर मैसूर में राज्य करते थे। इस वश का एक प्रसिद्ध राजा विट्टिग (१११०-४० ई०) था। वह वैष्णव-धर्म के आचार्य रामानुज का शिष्य था। इस वश का अन्तिम शक्ति-

---

* द्वार-समुद्र का आधुनिक नाम हलेविद है।

शाली राजा वीरबल्लाल तृतीय (१२६१-१३४२ ई०) हुआ। उसने निकटस्थ हिन्दू और मुसलमान राजाओ के साथ जीवन-पर्यन्त युद्ध किया। परन्तु सन १३१० ई० मे उसे भी मलिक काफूर ने हरा दिया। अन्त मे विवश होकर उसने दिल्ली सुलतान का आधिपत्य स्वीकार कर लिया।

**पूर्वी गग-वश**—पूर्वी गग-वश का अभ्युदय ग्यारहवी शताब्दी के आरम्भ में कलिग देश में हुआ। इस वश का राजा अनन्तवर्मन् चोड गग १०७६ ई० में गद्दी पर वैठा। उसने कलिगनगरम्* पर अपना पूर्ण अधिकार जमा लिया। उसका साम्राज्य गगा से लेकर गोदावरी नदी तक फैला हुआ था। उसने उडीसा को जीतकर अपने राज्य मे मिला लिया। वह धर्मात्मा पुरुष था। पुरी के प्रसिद्ध जगन्नाथ मन्दिर को उसी ने वनवाया था। सन् ११४७ ई० में उसकी मृत्यु हो गई। गग-वश का राज्य दो सौ वर्ष से अधिक समय तक रहा। इस वश का जो अन्तिम खुदा हुआ लेख मिला है वह १३८४ ई० का है। यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता कि इस वश का पतन कैसे हुआ। परन्तु ऐसा मालूम होता है कि वहमनी राजाओ के समय मे किसी दूसरे वंश ने उसे अधिकार-च्युत कर दिया।

**पल्लव-वश**—पल्लव राज्य की स्थापना ३०० ई० के लगभग काञ्ची (काञ्जीवरम्) में हुई थी। छठवी शताब्दी के अन्तिम चरण में, सिंहविष्णु के शासन-काल में, इस वश ने वडी उन्नति की। उसके वाद राजा महेन्द्रवर्मन् (६००-६२५ ई०) गद्दी पर वैठा। उसे चालुक्य राजा पुलकेशि द्वितीय ने पराजित किया। महेन्द्रवर्मन् के उत्तराधिकारी राजा नरसिंहवर्मन् (६२५-६४५ ई०) ने ६४२ ई० में चालुक्यो को वडी वुरी तरह से हराया और १३ वर्ष तक उनकी राजधानी को अपने अधिकार में रक्खा। पल्लवो को चालुक्यो के ही

*कलिगनगरम् गजाम जिले में है।
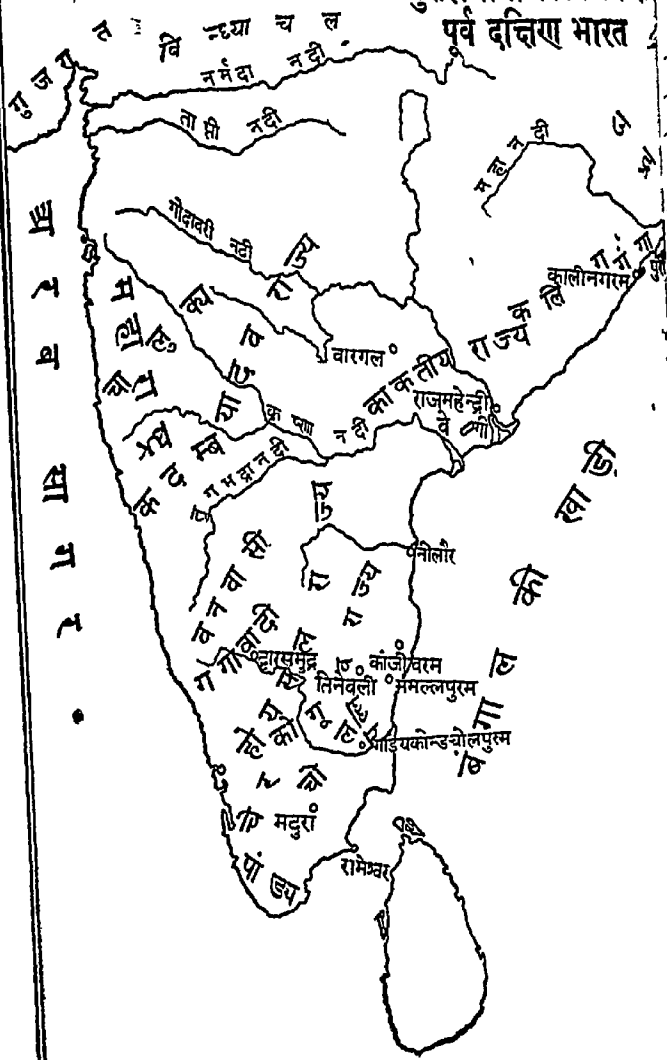
साथ नही बल्कि मैसूर के पश्चिमी गग और पाण्डय वशवालो के साथ भी लडना पडा जो उत्तर की ओर बढते आ रहे थे। नवी शताब्दी के प्राय अन्त मे पाण्डय तथा चोल वशो ने मिलकर पल्लवो को पराजित किया। इस प्रकार उनकी दक्षिण मे आधिपत्य स्थापित करने की लालसा का अन्त हो गया।
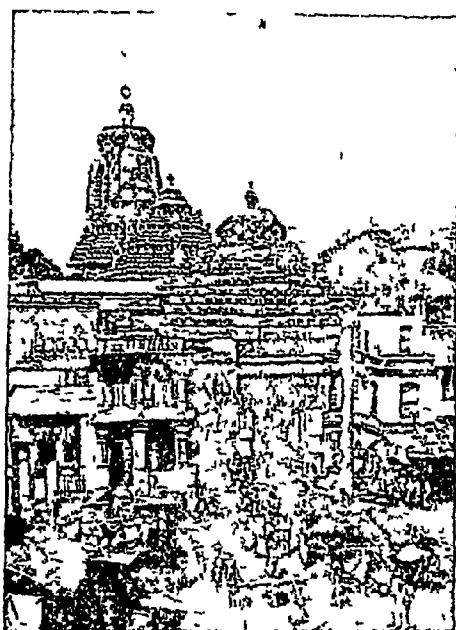
जगन्नाथ जी का मदिर

**चोल-वश**—चोल-वश के लोग भारत में प्राचीन काल से रहते थे। अशोक के समय में भी वे काफी प्रसिद्ध थे। नवी शताब्दी के अन्त में उनका राज्य प्रसिद्ध हुआ, जब आदित्य ने पल्लव-राज्य के प्रदेशो को जीत लिया। राजराज महान् (९८५-१०१८ ई०) इस

वंश का बड़ा पराक्रमी राजा था। अपनी सेना तथा नाविक बेड़े की सहायता से उसने लंका, मैसूर, कुर्ग तथा उड़ीसा को जीत लिया। उसके पुत्र राजेन्द्र चोल प्रथम (१०१८-३५ ई०) ने पीगू, मर्तबान एवं नीकोबार द्वीप-समूह तथा गंगा तक विस्तृत बंगाल की खाड़ी के तट-प्रदेश को जीत लिया। गंगा तक प्रस्थान करने के उपलक्ष में उसने गंगकोंड की उपाधि धारण की और गंगकोंड-चोल-पुरम् नामक एक नगर बसाया। वह केवल एक बड़ा विजयी ही न था वरन् शासन-प्रबन्ध में भी कुशल था और उसका चरित्र उच्च कोटि का था। खेतो की सिंचाई के लिए उसने एक बड़ा तालाब बनवाया था जिसकी लम्बाई १६ मील थी। अपने पिता के द्वारा स्थापित की हुई संस्थाओ को उसने फिर से संगठित किया। १३वी शताब्दी में चोल-वंश की शक्ति का ह्रास होने लगा। निकटवर्ती राजाओ के वैमनस्य, सरदारो के विद्रोह और मुसलमानो की बढ़ती हुई शक्ति ने चोल-साम्राज्य का अन्त कर दिया।

चोल-राज्य का शासन-प्रबन्ध उत्तम था। दक्षिण के अन्य राज्यो ने उसे आदर्श मानकर उसी प्रकार की शासन-व्यवस्था करने की चेष्टा की। राजा निरंकुश था, किन्तु उसकी सहायता के लिए मन्त्री नियुक्त थे जो उसे परामर्श देते थे। स्थानीय स्वायत्त-शासन की प्रणाली भी सुन्दर और संगठित थी। शासन की व्यवस्था का आधार ग्राम था। प्रत्येक ग्राम अथवा ग्राम-समूह में एक सभा होती थी। गुप्त रीति से चिट्ठियाँ डालकर तीस सदस्य चुने जाते थे। चुनाव के नियम बने हुए थे। इस समिति के सदस्य कमेटियो में विभक्त थे। ये कमेटियाँ न्याय, सिक्के, दान, मन्दिर इत्यादि का प्रबन्ध करती थी। जमीन की पैमाइश की जाती थी। किसान पैदावार का $\frac{४}{१५}$ भाग लगान में देते थे। राजाओ ने तालाब और बाँध बनवाये और खेती की सुविधा के लिए नहरें खुदवाई थी।

**पाण्ड्यराज्य**—सुदूर दक्षिण में एक दूसरा प्रसिद्ध राज्य पाण्ड्य-

वश का था। इस राज्य मे आधुनिक मदुरा तथा तिनेवेली के जिले तथा ट्रावन्कोर राज्य के कुछ भाग सम्मिलित थे। पहली और दूसरी शताब्दी में पाण्ड्यो का रोम के साम्राज्य से भी कुछ सम्बन्ध था। य्वानच्वांग ने लिखा है कि मदुरा के लोग मोती का व्यापार करते हैं। दसवी शताब्दी मे राजराज चोल ने पाण्ड्यो को पराजित किया। विवश होकर पाण्ड्य राजाओ ने अपने विजयी शत्रु की अधीनता स्वीकार कर ली। दो सौ वर्ष तक पाण्ड्य राजा चोल राजाओ के अधीन रहे, किन्तु तेरहवी शताब्दी में जातवर्मन् सुन्दर पाण्ड्य के शासन-काल (१२५१-७० ई०) में उन्होने अपनी शक्ति को फिर प्राप्त कर लिया। सुन्दर पाण्ड्य एक बडा शक्तिशाली राजा था। उसका राज्य नीलोर से कुमारी अन्तरीप तक सम्पूर्ण पूर्वी तट-प्रदेश पर फैला हुआ था। पाण्ड्य राज्य के बन्दरगाहो से प्रजा को बडा लाभ होता था। चीन और पश्चिमी देशो से विदेशी व्यापारी व्यापार करने के लिए यहाँ आते थे। कुछ अरब-निवासी भी आकर दक्षिण मे बस गये थे और घोडो का व्यापार करते थे। १३वी शताब्दी के अन्त मे दो भाइयो में राज-सिहासन के लिए झगडा होने पर सन् १३१० ई० में मलिक काफूर ने पाण्ड्य राज्य पर चढाई की और उसका अन्त कर दिया।

**चेर-वश**—चेर-राज्य का उल्लेख अशोक के शिलालेखो में मिलता है। उस समय इसे केरलपुत्र कहते थे। चेर-वश का शृंखलाबद्ध इतिहास जानने के लिए हमारे पास पर्याप्त सामग्री नही है। किन्तु खुदे हुए लेखो से इस बात का पता चलता है कि पाण्ड्य लोगो की भाँति चेर-वशवाले भी बाहर के देशो से व्यापार करते थे। १३वी शताब्दी के अन्तिम काल में चेर बडे शक्तिशाली थे। सन् १३१० ई० में मलिक काफूर ने दक्षिण पर चढाई की तब उसके विरुद्ध हिन्दू राजाओ ने एक बडा सघ बनाया। इस सघ में चेर-वशीय राजा रविवर्मन् भी सम्मिलित था।

---

# अध्याय १३

## भारतीय सभ्यता

( ६००-१२००ई० तक )

सामाजिक विभाग—बौद्ध-धर्म तथा जैन-धर्म ने वर्ण-व्यवस्था का विरोध किया था। वे समाज को इस प्रकार अलग-अलग जातियो में विभक्त करना अनिष्टकारी समझते थे। ह्वानच्वॉंग ने चार वर्णों का उल्लेख किया है। जातियो मे ब्राह्मण सबसे अधिक विद्वान् तथा आदरणीय समझे जाते थे। प्राय वे ही मन्त्रि-पद पर नियुक्त किये जाते थे और कभी-कभी सेनानायक भी होते थे। भारत में आने-वाले अरब यात्रियो ने भी उनकी धार्मिक तथा दार्शनिक विद्वत्ता की प्रशसा की है। ब्राह्मण कभी तो अपने गोत्र से जाने जाते थे और कभी अपने निवास-स्थान से। १२वी शताब्दी के बाद वे दो शाखाओ में विभक्त हो गये। पच गौड और पच द्राविड यह विभाग भोजन और रीति-रवाज के आधार पर ही हुआ था। पीछे से उत्तर तथा दक्षिण में अनेक उपशाखाएँ पैदा हो गईं। समाज में क्षत्रियो का भी स्थान ऊँचा था। धारा के राजा भोज तथा शाकम्भरी के विग्रह-राज चतुर्थ की तरह इनमें भी कुछ लोग विद्वान् और योद्धा दोनो होते थे। ह्वानच्वॉंग अपने समय के ब्राह्मणो तथा क्षत्रियो के विषय में लिखता है कि वे किसी को धोखा नही देते थे, उनका जीवन बडा पवित्र तथा सादा था। पहले क्षत्रिय उपजातियो में विभक्त नही थे। महाभारत के काल में सूर्यवशी और चन्द्रवशी दो प्रकार के क्षत्रिय थे। किन्तु पीछे से उनकी भी कई शाखाएँ हो गईं, इनका उल्लेख पहले किया जा चुका है। इसी प्रकार वैश्यो तथा शूद्रो के भी उपविभाग हो गये। बौद्ध-धर्म तथा जैन-धर्मके अनुयायी कृषिकर्म को अच्छा

नही समझते थे। इसलिए बहुत से वैश्यो ने व्यापार करना आरम्भ कर दिया और राज्य की नौकरी कर ली। शूद्रो के नीचे अछूत लोग थे जो चारो वर्णों से अलग थे।

समाज चार वर्णों में विभक्त था किन्तु एक वर्ण के लोग दूसरे वर्ण के साथ विवाह कर सकते थे। आगे चल कर अन्तर्जातीय विवाह की प्रथा उठ गई और एक वर्ण के लोगो का दूसरे वर्ण में मिलना असम्भव हो गया। हिन्दुओ मे वाल-विवाह तथा सती आदि प्रथाएँ प्रचलित हो गईं।

**स्त्रियों की स्थिति**—समाज में स्त्रियो का आदर था। वे तरह-तरह की विद्याएँ सीखती थीं और विद्वानो तथा धार्मिक आचार्यों के साथ वाद-विवाद करती थी। प्रसिद्ध विद्वान् शकराचार्य को एक ब्राह्मण की स्त्री ने शास्त्रार्थ मे हराया था। सगीत तथा नृत्य-कला का अभ्यास भी किया जाता था। राजाओ और योद्धाओ की लडकियो को घोडे की सवारी तथा तलवार चलाना सिखाया जाता था। पर्दा का रवाज नही था, राजपूत राजकुमारियो को अपना पति पसन्द करने का अधिकार था। स्वयवर की प्रथा १२वी शताब्दी तक प्रचलित रही। कन्नौज के राजा जयचन्द्र की वेटी का स्वयवर इस प्रथा का अन्तिम उदाहरण था।

**धर्म—बौद्ध-धर्म का ह्रास**—गुप्तकाल के बाद बौद्ध-धर्म अपनी जन्मभूमि भारत से लुप्त हो गया। बगाल के पाल ही भारत के अन्तिम राजा थे जिन्होने उसे आश्रय दिया। पाल-वश के उत्तराधिकारी सेन राजाओ के काल में बौद्ध-धर्म को कुछ भी प्रोत्साहन नही मिला और वह धीरे-धीरे यहाँ से लुप्त होने लगा। अन्त में मुसलमान आक्रमणकारियो ने भारत में बौद्ध-धर्म का अन्त ही कर दिया। उन्होने विहार से सब बौद्धो को निकाल भगाया।

यद्यपि बौद्ध-धर्म का लोप १२वी और १३वी शताब्दियो में हुआ परन्तु इसमें कोई सदेह नही कि उसका ह्रास बहुत दिन पहले से

आरम्भ हो गया था। विदेशी आक्रमण, भिक्षुओं का पारस्परिक वैमनस्य तथा राजकीय आश्रय का अभाव ये तीन उसके पतन के प्रधान कारण थे। इसके अतिरिक्त बौद्ध-सघ में धर्म-परायणता की कमी थी। भिक्षुगण विहारों में बुरी तरह जीवन व्यतीत करते थे। कुमारिलभट्ट (७५० ई०) तथा शकराचार्य (जन्म ७८८ ई०), के नेतृत्व में ब्राह्मण-धर्म का पुनरुत्थान हुआ। शकराचार्य दक्षिणी भारत के नामबूद्री ब्राह्मण थे। वे बडे उच्च कोटि के विद्वान् तथा दार्शनिक थे।

**ब्राह्मण-धर्म का पुनरुद्धार**—बौद्ध-धर्म के ह्रास के साथ ही साथ ब्राह्मण-धर्म की शीघ्रता से उन्नति होने लगी। वैदिक यज्ञ बन्द हो गये और वासुदेव (कृष्ण) की उपासना होने लगी। आगे चलकर वैष्णवो ने अहिंसा के सिद्धान्त को भी अपना लिया। वे विष्णु के २४ अवतार मानने लगे। श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में बहुत-सी कथाएँ प्रचलित हो गई और पुराणो में उनका समावेश हो गया। विष्णु, शिव, शक्ति तथा अनेक देवी-देवताओ के मन्दिर बन गये।

ब्राह्मण-धर्म के पुनरुत्थान का श्रेय उस काल के कुछ आचार्यों को है। शकराचार्य ने अपने अद्वैतवाद के सिद्धान्त का प्रचार किया जिसका आशय यह है कि ब्रह्म तथा आत्मा में कोई भेद नही है। दोनों एक ही हैं। दक्षिण में रामानुज स्वामी ने भक्ति का उपदेश किया और विष्णु की उपासना पर जोर दिया। उनका जन्म १२वी शताब्दी में, दक्षिण में, ब्राह्मण-कुल में हुआ था। उनके अनुयायी श्री वैष्णव के नाम से प्रसिद्ध हुए।

दक्षिण में शिव की पूजा का भी काफी प्रचार हुआ। वहाँ लिगायत नाम का एक नया सम्प्रदाय उठ खडा हुआ। लिगायत सम्प्रदायवाले न तो वेदो को मानते थे और न ब्राह्मण-धर्म के रीति-रवाजो का ही आदर करते थे। दक्षिण में अब भी वे काफी सख्या में मौजूद हैं।

**जैन-धर्म**—दक्षिण के अनेक राजाओ ने जैन-धर्म को आश्रय दिया

और मन्दिर तथा विहार बनवाये। राष्ट्रकूटो ने जैन-धर्म को ग्रहण किया और उसकी उन्नति के लिए बडा उद्योग किया। उत्तर-कालीन चालुक्य राजाओ ने शैव मत को स्वीकार किया और ब्राह्मण-धर्म को प्रोत्साहन दिया। १२वी शताब्दी मे जिस समय रामानुज ने अपने सिद्धान्तो का प्रचार करना आरम्भ किया, जैन-धर्म को बडा धक्का पहुँचा। परन्तु दक्षिण में इस प्रकार जो हानि हुई उसकी पूर्ति गुजरात, राजपूताना और मालवा मे हो गई। गुजरात में सोलकी राजाओ ने जैन-धर्म के सिद्धान्तो तथा रवाजो को अपनाया। जैन-धर्म-द्वारा एक उत्तम कला का प्रचार हुआ जिसके नमूने आज भी मौजूद है।

इस्लाम धर्म—इस्लाम धर्म अरब-निवासियो के साथ आठवी शताब्दी के आरम्भ में भारत में आया। इसका मुख्य सिद्धान्त यह है कि ईश्वर एक है। उसके अतिरिक्त और कोई मनुष्य पूजा के योग्य नही है। ऐसे ईश्वर के लिए मनुष्य को अपना सर्वस्व त्याग करना चाहिए। इस्लाम धर्म की क्रियाएँ बडी सरल हैं। प्रतिदिन पाँच बार नमाज़ पढना, रमज़ान के महीने में उपवास-व्रत (रोज़ा) रखना और मक्का की यात्रा करना, यही सारा कर्मकाड है। इस सरलता और भ्रातृभाव के होते हुए भी इस काल में हिन्दुओ पर इस्लाम का अधिक प्रभाव न पडा। ऐसा प्रतीत होता है कि थोडे से हिन्दुओ ने ही इस धर्म को स्वीकार किया होगा।

आर्थिक दशा—भारत बडा समृद्धिशाली तथा धन-धान्य-पूर्ण देश था। वाणिज्य व्यापार की खूब उन्नति थी। कला और कारीगरी की सारे देश में धूम थी। भारतीय साहित्य को पढ़ने से पता लगता है कि प्राचीन हिन्दुओ का जीवन कितना प्रसन्न और सुखमय था। ७वी शताब्दी से ही अरब के व्यापारी भारत मे रहते थे। दक्षिण के हिन्दू राजा, विशेषत पाण्डय-वशवाले, उनको बडी मदद देते थे। सोना, चाँदी तथा जवाहिरात की कमी नही थी। महमूद ग़ज़नवी ११वी शताब्दी में भारत के मन्दिरो को लूटकर अतुल सम्पत्ति अपने

देश को ले गया था। इसी से हम इस बात का अनुमान कर सकते है कि हमारा देश उस समय कितना धनी था।

**शासन-प्रबन्ध**—राजपूत राजा निरकुश थे किन्तु उनको परामर्श देने के लिए मन्त्री नियुक्त रहते थे। ये मन्त्री राज्य के बडे-बडे विभागो का निरीक्षण करते थे। शासन-सम्बन्धी मामलो में राजा मन्त्रियो से सलाह लेता था। राज्य के सर्वोच्च कर्मचारी राजामात्य, पुरोहित महाधर्माध्यक्ष, महासन्धिविग्रहक (युद्ध-सचिव) तथा महा-सेनापति थे। इनके अतिरिक्त और बहुत से कर्मचारी उनकी अधीनता में काम करते थे।

सारा राज्य भुक्तियो अथवा प्रान्तो मे विभक्त था। प्रान्त विषयो अथवा जिलो में बँटे रहते थे। विषय के अन्तर्गत बहुत-से गाँव होते थे। गाँव के मामलो का प्रबन्ध स्थानीय कर्मचारी करते थे जिन्हें ग्रामिक (मुखिया), शौल्किक (टैक्स वसूल करनेवाला) तथा तल-वत्कर (पटवारी) कहते थे। उत्तर काल के सम्बन्ध में लिखते हुए कर्नल टाड ने राजपूत राज्यो में पचायतो का उल्लेख किया है। प्रत्येक नगर में नागरिको द्वारा चुने हुए पच मुकदमो का फैसला करते थे। पंच सम्मानित व्यक्ति होते थे। पटैल और पटवारी भी न्याय करने में उनकी सहायता करते थे। राज्य की जमीन में गाँव के बाहर चबूतरे होते थे जिन पर बैठकर पचायत के मेम्बर झगडो का फैसला करते थे।

जमीन नापी जाती थी और उस पर उचित मालगुजारी ली जाती थी। राज्य की ओर से उपज का छठा भाग किसानो से लिया जाता था। प्रत्येक गाँव मे पशुओ के चरने के लिए चरागाह होते थे। सिचाई की सुविधा के लिए तालाब और नहरें बनवाई गई थी।

युद्ध अकसर हुआ करते थे, इसलिए राजपूत राजा सुव्यवस्थित सेनाएँ रखते थे। काम पडने पर अधीनस्थ सरदारो के योग से सैनिको की सख्या बहुत बढ जाती थी। राजकीय सेना के चार अग होते थे:—

हाथी, रथ, घोडे तथा पैदल। युद्ध में हाथी बहुत काम के जानवर समझे जाते थे किन्तु कभी-कभी उनसे बडी गडबडी मच जाती थी।
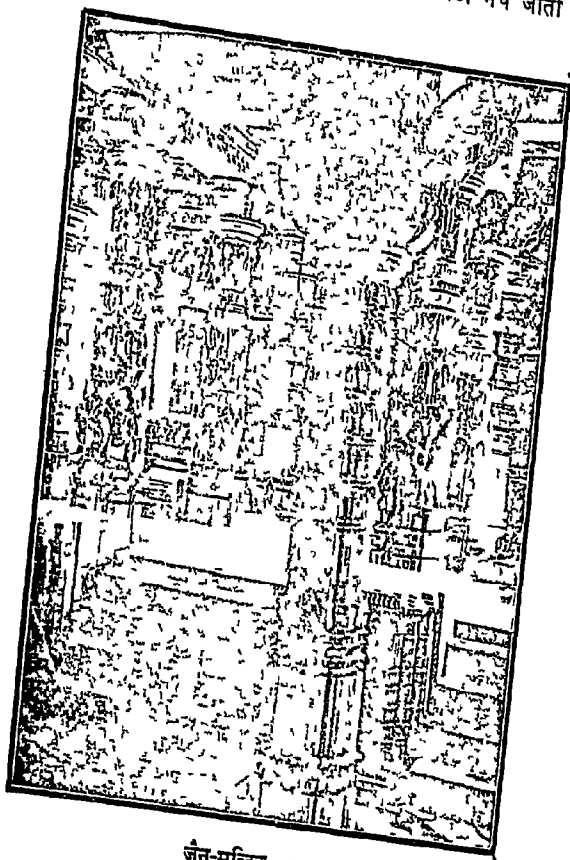
जैन-मन्दिर—आबू

राजा अपनी सेना का नायक होता था। उसकी वीरता और बुद्धिमानी पर प्राय हार-जीत निर्भर रहती थी। यदि वह युद्ध-क्षेत्र में मार

डाला जाता अथवा मैदान छोडकर भाग निकलता तो सारी सेना भयभीत हो जाती और हलचल मच जाती थी।

राजा अपने राज्य का प्रधान न्यायाधीश (जज) होता था। उसके नीचे उसके कर्मचारी होते थे जो मुकदमो का फैसला करते थे। कानून अधिकाश रिवाजो के आधार पर बनते थे। कभी-कभी राजा लोग नियम बनाते थे जो लिख लिये जाते थे। ये नियम व्यापार, कृषि, कर, एकाधिकार और व्यावसायिक सघो के सम्बन्ध मे होते थे। सजा कठोर दी जाती थी और यह कठोरता १२वी शताब्दी के अन्त तक जारी रही। कानून के सामने सब लोग बराबर नही समझे जाते थे। ब्राह्मणो और क्षत्रियो को फाँसी नही दी जाती थी। अग्नि-परीक्षा आदि द्वारा दैवी न्याय करने की प्रथा भी प्रचलित थी किन्तु इसका उपयोग बहुत कम होता था। राजस्थान के कई राज्यो मे ऐसे नियम प्रचलित थे, जैसे अमावस्या के दिन बैल न जोते जायँ। मेवाड के पुराने कागजात को देखने से पता लगता है कि प्रजा के आचरण सुधारने के लिए कभी-कभी राज्य की ओर से नियम बना दिये जाते थे। इनमे एक नियम यह भी था कि कोई मनुष्य दावत मे से खाने की सामग्री अपने घर को न ले जाय।

राजा पर बहुत कुछ निर्भर था। यदि वह सबल होता तो राज्य उन्नति करता था और यदि वह बलहीन होता तो राज्य की अवनति होने लगती थी। जब विदेशी आक्रमण का भय नही होता था तब राजपूत राजा परस्पर लडते थे। इस प्रकार राज्य मे उपद्रव मच जाता था। अनेक जातियो के आपस के झगडो के कारण देश मे अधिक काल तक शान्ति नही रह सकती थी। यही कारण है, कि राजपूत कोई स्थायी राजनीतिक सगठन न कर सके।

साहित्य—राजपूत राजा विद्या-प्रेमी थे, वे विद्वानो को आश्रय देते थे। सब प्रकार की विद्याओ का अध्ययन होता था। काव्य, गीत, नाटक, उपन्यास, इतिहास, राजनीति, गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि अनेक

विषयो पर ग्रन्थ रचे गये। काव्यो में माघ का शिशुपालवध, भर्तृहरि का भट्टिकाव्य तथा श्रीहर्ष का नैषध-चरित बहुत प्रसिद्ध हैं। गीत-काव्य का सबसे बडा कवि जयदेव है जिसने १२ वी शताब्दी में गीत-गोविन्द की रचना की है। इस काव्य का विषय राधा के प्रति कृष्ण का प्रेम, उसका वियोग तथा अन्तिम मिलन है। आदि से अन्त तक इस ग्रन्थ मे कवि ने अपनी काव्य-प्रतिभा का अद्भुत चमत्कार दिखाया है। नाटककार भी इस युग मे कई हुए। उनमे भवभूति अधिक प्रसिद्ध है। उसने उत्तर-रामचरित, मालती-माधव तथा महावीर-चरित नाम के तीन नाटक रचे। वह कन्नौज के राजा यशोवर्मन के दर्बार में रहता था। उसने प्रकृति का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है। १०वी शताब्दी में कन्नौज के राजदर्बार मे कर्पूरमञ्जरी का रचयिता राजशेखर कवि रहता था। भारतीय साहित्य में इस नाटक की गणना उच्च कोटि के सुखान्त नाटको में है। १२ वी शताब्दी मे कृष्णमिश्र ने वैष्णव-धर्म की स्तुति मे प्रबोध-चन्द्रोदय नाम का नाटक बनाया।

कहानियाँ तथा कल्पित आख्यायिकाओ के द्वारा कुछ लेखक लोगो को सासारिक ज्ञान की शिक्षा दिया करते थे। इस श्रेणी का एक प्रसिद्ध ग्रन्थ पञ्चतन्त्र है जो बडा ही रोचक है। इसमे व्यावहारिक ज्ञान तथा नैतिक आचरण की शिक्षा देनेवाली कई कथाएँ हैं। विशेषकर नव-युवको के लिए यह पुस्तक बहुत उपयोगी है। इसी ग्रन्थ के आधार पर १०००–१२०० ई० के बीच हितोपदेश की रचना हुई थी। इसके अति-रिक्त एक उल्लेखनीय ग्रन्थ और है। ११वीं शताब्दी मे काश्मीर देश के कवि सोमदेव ने कथा-सरित्सागर की रचना की।

कल्हण ने १२वीं शताब्दी मे राजतरङ्गिणी नामक एक इतिहास-ग्रन्थ लिखा। इसमें काश्मीर के राजाओ का वर्णन है। कई जीवन-चरित्र भी लिखे गये जिनमें बिल्हण का विक्रमाङ्कचरित, बल्लाल का भोजप्रबन्ध तथा सनाढ्यकरनन्दी का रामचरित बहुत प्रसिद्ध हैं। विक्रमाङ्कचरित में चालुक्य-वंश के राजा छठे विक्रमादित्य का जीवन-

चरित्र है और रामचरित मे बगाल के एक पाल राजा की जीवनकथा वर्णित है।

प्रसिद्ध ज्योतिषी भास्कराचार्य भी इसी काल में हुए। चिकित्सा-शास्त्र पर ग्रन्थ लिखनेवालो मे वाग्भट्ट का नाम प्रसिद्ध है। उसने ८०० ई० के लगभग अपने ग्रन्थ रचे।
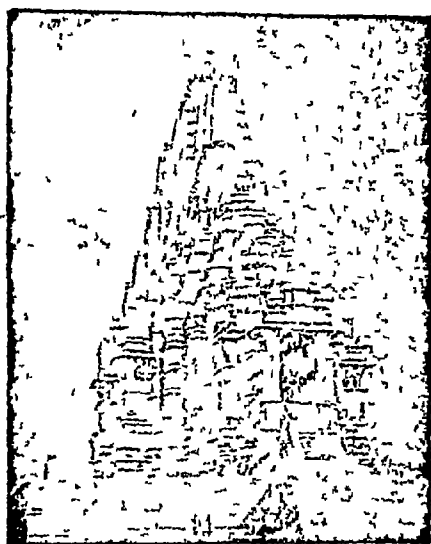
खजुराहो का मन्दिर (बुन्देलखण्ड)

इस काल मे धर्म-शास्त्र का सबसे प्रसिद्ध लेखक विज्ञानेश्वर था। उसने धर्म-शास्त्र पर एक भाष्य लिखा जो मिताक्षरा के नाम से प्रसिद्ध है। भारत के कुछ भागों मे यह आज भी काम में लाया जाता है।

जैनियो ने भी एक बडे साहित्य का निर्माण किया। हरिभद्र नाम का एक प्रसिद्ध लेखक नवी शताब्दी मे उत्पन्न हुआ। उसने कई ग्रन्थ रचे। बडे-बड़े महन्तो, योगियो तथा तीर्थंकरो के जीवन-चरित लिखे गये।

इन ग्रन्थो का उद्देश्य जनता को नैतिक शिक्षा देना था। इस काल का सबसे प्रसिद्ध विद्वान् हेमचन्द्र था जो गुजरात के सोलकी राजा कुमारपाल के दरबार मे रहता था।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है उससे यह ज्ञात होता है कि उस काल के साहित्य का क्षेत्र बहुत विस्तृत था। अनेक विषयो पर ग्रन्थ रचे गये
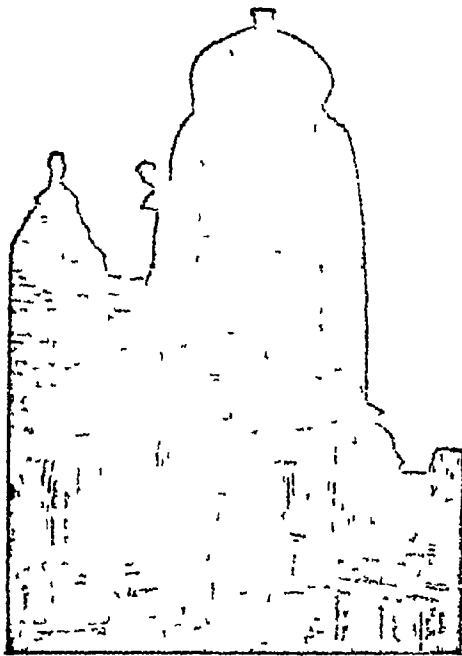
भुवनेश्वर-मन्दिर (उडीसा)

और जीवन के हर एक पहलू पर विद्वानो ने अपने विचार प्रकट किये। प्राचीन हिन्दुओ की प्रतिभा बडी प्रखर थी। ज्ञान और विद्या की वृद्धि के लिए उन्होंने जो कुछ किया वह मानव-जाति के लिए अमूल्य वस्तु है।

कला—इस काल मे राजपूतो के वनवाये हुए मन्दिर वास्तु-कला के अच्छे नमूने है। इन मन्दिरो के वनवाने मे वहुत धन व्यय किया गया। तीन प्रसिद्ध शैलियाँ प्रचलित थी—नगर, वेसर तथा द्रविड। इनमें से प्रथम दो को यूरोपीय लेखक क्रमश इन्डो-आर्यों तथा चालुक्यो की शैली कहते हैं। वेसर शैली मे एक शिखर होता है। वौद्ध गया से लेकर उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त-प्रान्त तक तथा काँगडा से धारवाड तक ऐसे शिखर पाये जाते है। द्रविड शैली मे छोटे-वडे कई वुर्ज रहते है और सिरे पर
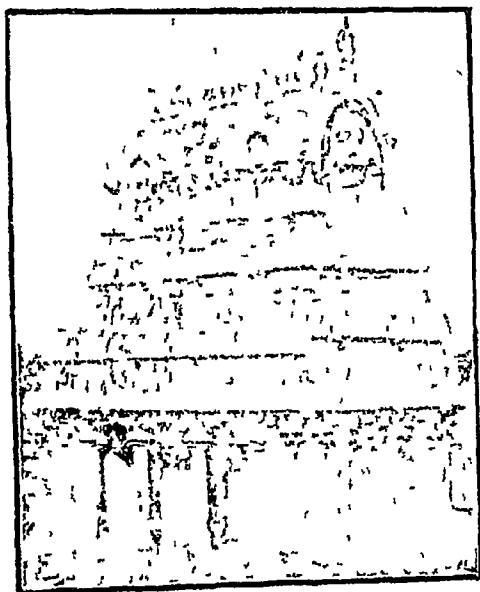
गणेश-रथ—ममल्लपुरम्

एक अर्द्धचन्द्राकार गुम्वज रहता है। इस शैली के नमूने तामिल देश तथा दक्षिण में पाये जाते हैं। चालुक्य-शैली इन दोनो के मिश्रण से वनी है और इसके नमूने वम्वई अहाते के मध्यभाग में पाये जाते हैं।

उडीसा में भुवनेश्वर का मन्दिर, बुन्देलखण्ड में खजुराहो का मन्दिर तथा आबू पर्वत का जैन-मन्दिर प्रसिद्ध इमारतें हैं। ये तीनो नगर शैली के उत्कृष्ट नमूने हैं। आबू का जैन-मन्दिर सफेद संगमरमर का बना हुआ है। उसमें पत्थर की खुदाई का काम अत्यन्त उच्च कोटि का है।

ममल्लपुरम के रथ-मन्दिर, कॉंची के पल्लव-मन्दिर, एलौरा का कैलाश मन्दिर तथा १००० ई० के लगभग राजराज चोल का बनवाया हुआ तन्जौर का मन्दिर द्रविड-शैली के उत्कृष्ट नमूने हैं।
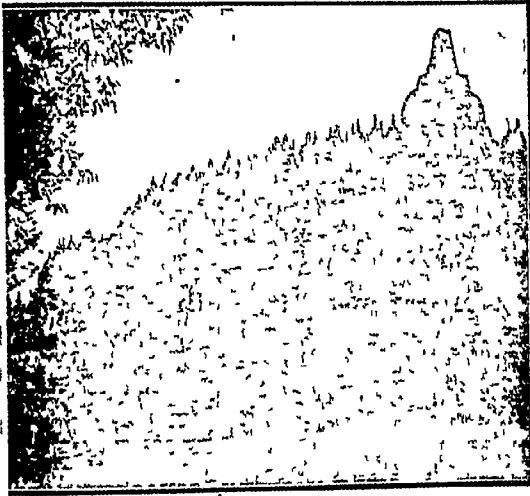
बोरोबुदुर मन्दिर (जावा)

चालुक्यों ने भी अनेक मन्दिर बनवाये। १२वी शताब्दी मे होयसल-वंश के राजा विष्णुवर्द्धन का बनवाया हुआ बेलूर का मन्दिर एक दर्शनीय इमारत है। किन्तु हलेबिद (प्राचीन द्वारसमुद्र) का मन्दिर

चालुक्यो की स्थापत्य-कला का सबसे बढिया नमूना है। इसका बनना सन् १२०० ई० में आरम्भ हुआ था परन्तु कभी पूरा न होने पाया। इस दशा मे भी इसकी गणना उच्च कोटि के मन्दिरो में है।

देश भर मे असख्य मन्दिर बने हुए थे। महमूद गज़नवी भी मथुरा के मन्दिरो को देखकर चकित रह गया था।

**जहाज और उपनिवेश**—भारतीय लोग जहाज़ बनाने की कला जानते थे। आदि-काल से ही वे समुद्री मार्ग से बाहर के देशो के साथ
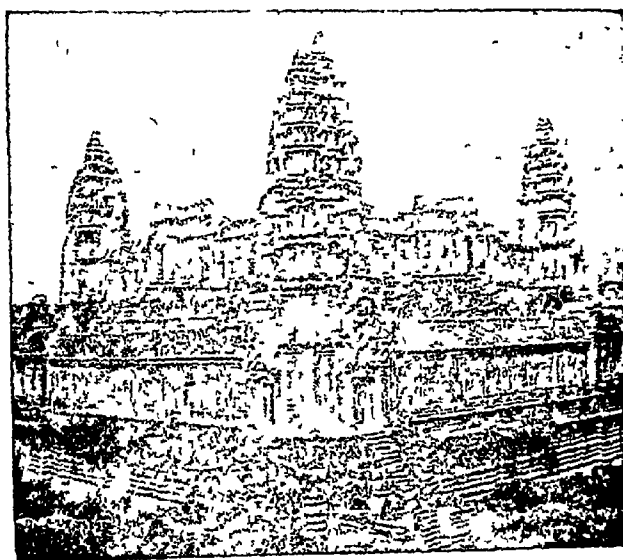
अगकोरवट मन्दिर (कम्बोडिया)

वाणिज्य करते थे। ह्वांनच्वांग हर्ष के समय का वर्णन करता हुआ एक स्थान पर लिखता है कि सौराष्ट्र (गुजरात) के लोग जहाज़ के द्वारा व्यापार करके ही अपनी जीविका उपार्जन करते थे। ग्यारहवीं शताब्दी

मे भी पंजाव के जाटो ने महमूद गजनवी को मार भगाने के लिए नावो का एक वहुत वडा वेडा तैयार किया था।

हर्ष की मृत्यु के वाद हिन्दुओ ने उपनिवेश स्थापित करने का काम वन्द नही किया। कम्वोडिया इस समय तक हिन्दू राजाओ के अधिकार में था। वारहवी शताब्दी में एक हिन्दू राजा ने अङ्कोरवट नाम का प्रसिद्ध विष्णु-मन्दिर वनवाया। इन उपनिवेशो में व्राह्मण-धर्म तथा वौद्ध-धर्म दोनो का साथ-साथ प्रचार हुआ। किन्तु जावा मे वौद्ध-धर्म का वडा प्रभाव पडा। वोरोवुदुर के ध्वसावशेप से इसका पता लगता है।

# अध्याय १४

## ग़ज़नवी सुलतान और भारत पर मुसलमानों के आक्रमण

गजनी में तुर्कों का राज्य—अरबो का प्रयत्न सिन्ध में असफल रहा। मुसलमानी प्रभुत्व का फैलाव कुछ समय के लिए रुक गया। परन्तु १०वी शताब्दी में तुर्कों ने भारत की तरफ ध्यान किया। उस समय खलीफा की शक्ति कम हो गई थी और कितने ही राजवश स्थापित हो गये थे। इन राजवशो में एक सामानीवश था, जिसके राज्य मे आधुनिक फारस, मध्यएशिया और वर्तमान अफगानिस्तान का अधिकाश भाग शामिल था। परन्तु सामानी शासको की शक्ति उतनी ही शीघ्रता से नष्ट हो गई, जितनी शीघ्रता से उसकी वृद्धि हुई थी। उनके तुर्क गुलाम, जिनके हाथो में उन्होने अपना सारा राज-काज सौंप दिया था, इतने बलवान् बन बैठे कि उनको काबू में करना कठिन हो गया। यहाँ तक कि उनमें से अलप्तगीन नाम के एक गुलाम ने सन् ९३३ ई० में गजनी को जीत लिया और वहाँ स्वतन्त्र शासक की तरह राज्य करने लगा। सन् ९६३ ई० में अलप्तगीन की मृत्यु हुई, उसके बाद उसका बेटा गजनी की गद्दी पर बैठा। परन्तु वह इतना शक्तिहीन था कि उसका राज्य उसके बाप के गुलामो के हाथ में चला गया। उन गुलामो में से एक का नाम सुबुक्तगीन था जो सन् ९७७ ई० में गजनी के सिंहासन पर बैठा। वह एक उत्साही एव साहसी पुरुष था। उसने अपने राज्य की सीमा बढाने का प्रयत्न किया और गद्दी पर बैठने के एक ही दो साल बाद भारत की ओर ध्यान किया।

मुसलमान इतिहास-लेखको ने सुबुक्तगीन को एक धार्मिक पेशवा कहा है, जिसने इसलाम का प्रचार करने और मूर्ति-पूजको को दण्ड देने

के लिए भारत पर आक्रमण किया। पर उनका यह कथन ठीक नही। वास्तव में सुबुक्तगीन अपने राज्य को बढाना चाहता था। इसी कारण शाही वश के हिन्दू-राजा जयपाल से, जिसका राज्य लमगान से लेकर चिनाव नदी तक के देश पर था, उसकी मुठभेड हुई। सन् ९८६ ई० में सुबुक्तगीन को दण्ड देने के लिए जयपाल ने ग़जनी पर चढाई की, परन्तु उसे सन्धि करने के लिए विवश होना पडा। उसने जरमाने में बहुत-सा द्रव्य देना और सरहद के कुछ किलो को छोड देना स्वीकार किया। परन्तु उसने शीघ्र ही अपना वादा तोड दिया और सुबुक्तगीन के उन अफसरो को कैद कर लिया जो उसके दिये हुए शहरो का प्रबन्ध करने को आये थे। इस पर सुबुक्तगीन एक बडी सेना लेकर फिर भारत में आया, जयपाल ने उत्तरी भारत के हिन्दू राजाओ का एक सघ बनाया और १,००,००० आदमियो को लेकर वह युद्ध करने के लिए चला। दोनो दलो में घोर युद्ध हुआ। जयपाल पराजित हुआ और लमग़ान तथा पेशावर के बीच के ज़िले उसे सुबुक्तगीन को देने पडे। सन् ९९४ ई० में उसने खुरासान का सूबा जीत लिया और अपने बेटे महमूद को वहाँ का सूबेदार बनाया। तीन वर्ष बाद अपने उत्तराधिकारी के लिए एक विशाल साम्राज्य छोडकर वह स्वर्गवामी हुआ।

सुबुक्तगीन की मृत्यु के बाद उसके बेटे इस्माइल और महमूद ने गद्दी के लिए झगडा किया। महमूद बडा था। उसने अपने प्रतिद्वन्द्वी को हरा दिया और गजनी-राज्य पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया।

महमूद गजनवी—जिस समय महमूद गद्दी पर बैठा, गजनी के राज्य मे आधुनिक अफगानिस्तान, खुरासान और फारस देश के पूर्वीय प्रान्त शामिल थे। महमूद ने अपनी विजयो से इस राज्य को बहुत बढाया। एक ही साल बाद उसने सीस्तान को अपने राज्य में मिला लिया। उसकी विजयो का हाल सुनकर खलीफा ने उसे यमीनुद्दौला की उपाधि दी, जिससे उसका हौसला बढ गया और उसने हिन्दुस्तान पर प्रतिवर्ष आक्रमण करने का सकल्प किया। वह इन हमलो को "जिहाद" अर्थात्

पवित्र युद्ध समझता था। १००० ई० से लेकर १०२६ ई० तक उसने इस देश पर १७ आक्रमण किये और यहाँ से अतुल धन लटकर ले गया, जिसने उसके साम्राज्य के ऐश्वर्य को कई गुना बढा दिया।

**जयपाल की पराजय**—सन् १००० ई० के अपने पहले ही धावे मे महमूद ने सीमान्त-प्रान्त के अनेक किलो और जिलो पर अधिकार स्थापित कर लिया और वहाँ अपना सूबेदार नियुक्त कर दिया। दूसरी बार (१००१ ई०) उसने जयपाल के राज्य पर धावा किया। जयपाल उस समय प्राय सारे पजाब का शासक था। उसकी राजधानी भटिण्डा थी। पेशावर के करीब युद्ध हुआ जिसमे हिन्दुओ की हार हुई। जयपाल अपने कई रिश्तेदारो के साथ पकडा गया, और सन्धि करने पर विवश हुआ। इस सन्धि के अनुसार उसे हरजाने में एक बहुत बडी रकम और ५० हाथी सुलतान को देने पडे। वह इतना दबाया गया कि सन्धि की शर्तों को पूरा करने के लिए उसने अपने एक बेटे और पोते को गज़नी भेजना स्वीकार किया। जयपाल स्वाभिमानी था। इस प्रकार जीने से मरना अच्छा समझकर उसने चिता में जलकर अपने अपमानित जीवन का अन्त कर दिया।

**आनन्दपाल के साथ युद्ध**—जयपाल का बेटा आनन्दपाल महमूद की बढती हुई शक्ति को देखकर बडा चिन्तित हुआ। उसने उसे हिन्दुस्तान की तरफ बढने से रोकना चाहा। परन्तु वह जानता था कि उसमें इतनी शक्ति नही है, इसलिए उसने अपने आसपास के राजाओ से सहायता के लिए प्रार्थना की। कहा जाता है कि स्त्रियो तक ने अपने आभूषण बेचकर देश के दूर-दूर के स्थानो से सहायता के लिए धन भेजा। निधन औरतो ने दिन-रात चर्खे चलाकर अपनी शक्ति के अनुसार मदद दी। इन तैयारियो की ख़बर पाकर ३१ दिसम्बर १००८ को महमूद ने सिन्धु नदी को पार किया और भारतीय सेना का सामना किया। पहले ही धावे में ५,००० मुसलमान मारे गये और सुलतान ने भी घबराहट मे भागने का निश्चय किया परन्तु

अकस्मात् आनन्दपाल का हाथी भाग खडा हुआ। उसके सिपाहियो की हिम्मत टूट गई और वे आसानी से पराजित हो गये। महमूद ने काँगडा के निकट पहाडी पर बने हुए नगरकोट के किले तक भागनेवालो का पीछा किया। ज्वालामुखी के मन्दिर को, जो सारे भारतवर्ष में प्रसिद्ध था, खूब लूटकर वह ग़ज़नी को वापस हुआ।

अन्य आक्रमण—महमूद को भारत में अच्छी सफलता प्राप्त हुई। अब उसने प्रतिवर्ष हमला करना आरम्भ कर दिया। सन् १०१८ ई० मे उसने कन्नौज के राजा पर आक्रमण किया। रास्ते में उसने बरन (आधुनिक बुलन्दशहर) को घेर लिया। कहा जाता है कि बरन के हिन्दू राजा ने महमूद की अधीनता स्वीकार की और वह दस हज़ार आदमियो के साथ मुसलमान हो गया। वहाँ से महमूद मथुरा की तरफ बढा और मन्दिरो को देखकर चकित रह गया। उसने शहर को खूब लूटा, और मन्दिरो को नष्ट किया। कहते है कि इस लूट में उसे ५०,००० दीनार का माल मिला।

अपनी सेना का एक बडा भाग पीछे छोडकर सुलतान कन्नौज की ओर बढा और सन् १०१८ के दिसम्बर मे शहर के फाटक के सामने पहुँचा। प्रतिहार राजा राज्यपाल बिना युद्ध के ही भाग गया। उसका किला जीत लिया गया और लूट का अतुल धन लेकर सुलतान गज़नी को लौट गया।

राज्यपाल की कायरता से अन्य राजा बहुत अप्रसन्न हुए। कालिञ्जर के चन्देल राजा गण्ड ने अपने बेटे को उसके विरुद्ध भेजा। राज्यपाल की युद्ध मे हार हुई और वह मारा गया। जब महमूद ने राज्यपाल की मृत्यु का समाचार सुना तो वह आगबबूला हो गया और चन्देल राजा को दण्ड देने के लिए फिर भारत पर चढ आया। परन्तु चन्देल-नरेश अपनी जान बचाने के लिए भाग खडा हुआ। सुलतान फिर दूसरी बार १०२१–२२ मे आया और उसने चन्देल राजा को सन्धि करने के लिए विवश किया।

**सोमनाथ की चढाई**—सन् १०२६ का सोमनाथ का हमला महमूद के प्रसिद्ध हमलो में से है। सोमनाथ का मन्दिर काठियावाड में था और अपनी पवित्रता और सम्पत्ति के लिए सारे भारतवर्ष में विख्यात था। महमूद की चढाई का समाचार पाते ही चारो ओर से हिन्दू अपने मन्दिर की रक्षा के लिए एकत्र हो गये और ऐसी वीरता से लडे कि मुसलमानदल निराश हो गया। ऐसी कठिन स्थिति में महमूद ने धर्म के नाम पर मरने के लिए अपने सिपाहियो को उत्साहित किया। वे भी असाधारण जोश और साहस से युद्ध में पिल पडे और सोमनाथ के सहस्रो उपासक थोडी देर में तलवार के घाट उतार दिये गये। मन्दिर की सारी सम्पत्ति लूट ली गई और महमूद की आज्ञा से वह गिरा दिया गया।

महमूद की अन्तिम चढाई मुलतान के निकटवर्ती प्रदेश के जाटो पर हुई। जिस समय सोमनाथ के आक्रमण के बाद महमूद गज़नी को लौट रहा था, इन जाटो ने उसकी सेना को तग किया था। महमूद इस समय इसका बदला लेने के लिए आया था। जाट बडी वीरता से लडे परन्तु अन्त में उनकी हार हुई। सन् १०२७ ई० के जून के महीने में सुलतान गज़नी लौट गया।

**महमूद की मृत्यु**—जाटो की लडाई के बाद गज़नी लौटते समय महमूद को मलेरिया ज्वर आ गया था। धीरे-धीरे उसे क्षयरोग हो गया। यद्यपि वह इस भीषण रोग से दो वर्ष तक अपने स्वाभाविक साहस से लडता रहा परन्तु दिन पर दिन उसकी दशा बिगडती ही गई और सन् १०३० ई० में ५६ वर्ष की अवस्था में उसकी मृत्यु हो गई।

**महमूद की सफलता के कारण**—भारत की अतुल सम्पत्ति महमूद और उसके साथियो को प्रतिवर्ष हमला करने के लिए बाध्य करती थी। अनेक छोटी-छोटी स्वतन्त्र रियासतो की स्थापना के कारण यहाँ की राजनैतिक एकता नष्ट हो गई थी। राजपूत राजा हमेशा एक दूसरे से लडा करते थे। आपस की फूट और वैमनस्य के

कारण वे कभी मिलकर शत्रुओ का सामना नही कर सकते थे। उनके सामने न तो देश-प्रेम का ऊँचा आदर्श था और न मिलकर काम करने की ही योग्यता उनमे थी। उनमे सैनिक सगठन की कमी थी। वे एक सेनापति के अनुशासन मे लडने का महत्त्व नही जानते थे। महमूद के सिपाही धार्मिक जोश से प्रेरित हो युद्ध मे प्राण तक को देने तैयार रहते थे। उधर उन्हें महमूद-जैसा सेनापति मिला था, जिसका सेना पर बडा प्रभाव पडता था। धर्म के लिए युद्ध करना महमूद के जीवन का ध्येय था। उसके प्रति सैनिको की बडी श्रद्धा थी। इसका नतीजा यह हुआ कि वे लडने में ज़रा भी नही डरते थे और विशेषकर हिन्दुओ के साथ लडने में उनका जोश और भी बढ जाता था।

महमूद का चरित्र—मुसलमान इतिहासकारो ने महमूद की बडी प्रशसा की है। इन्होने उसे महात्मा तक कह डाला है, परन्तु ऐसा कहना सही नही है। हाँ, इसमे सन्देह नही कि उसकी गिनती महान् योद्धाओ में है। इसने केवल अपनी असाधारण प्रतिभा ही के कारण अपने पिता के छोटे से राज्य को इसे विशाल साम्राज्य मे परिणत किया। वह युद्ध-विद्या मे कुशल था और स्वय भी एक असाधारण सेनानायक था। न्याय करते समय वह किसी का पक्षपात नही करता था। दीन-दुखियो की सहायता करने को वह सदा उद्यत रहता था और उसके अफसर तथा अमीर जब गलती करते थे तो वह उन्हे दण्ड देता था। उसे रुपये से बडा प्रेम था और मरते समय उसने बहुत बडा खजाना छोडा था। वह सुन्नी मुसलमान था और नियमित रूप से नित्य नमाज पढता था और रमजान के महीने में अपनी सम्पत्ति का २½ प्रति सैकडा खैरात के लिए अलग रख देता था। उसमे मजहबी जोश की मात्रा अधिक थी और अपने सिपाहियो को उत्तेजित करके वह हमेशा उनके जोश से लाभ उठाता था। एक आधुनिक मुसलमान लेखक का कहना है वह इस्लाम-धर्म का प्रचार

करना चाहता था, परन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं है। जिन देशो में उसने लूट-मार की उनके निवासियो को मुसलमान बनाने का उसने कुछ भी प्रयत्न नही किया।

यद्यपि महमूद ने मन्दिरो को लूटा, फिर भी हम यह नही कह सकते कि वह एक असभ्य पुरुष था। उसके दरबार में अनेक कवि और विद्वान् थे जो एशिया भर में प्रसिद्ध थे। उसके दरबार में अल-बरूनी जैसे दार्शनिक और सस्कृत के ज्ञाता तथा उतबी जैसे अद्वितीय इतिहासकार के अलावा कितने ही अन्य विद्वान् भी रहते थे। उसके दरबार के कवियो में 'शाहनामा' का रचयिता फिरदौसी बहुत प्रसिद्ध था। कहा जाता है कि फिरदौसी ने इस महाकाव्य की रचना में बडा परिश्रम किया, परन्तु उनसुरी नाम के एक दूसरे कवि की ईर्ष्या के कारण उसे वह पुरस्कार न मिल सका जिसे देने का सुलतान ने वादा किया था*।

यद्यपि फिरदौसी के साथ महमूद का बर्त्ताव कठोर था फिर भी यह मानना पडेगा कि विद्वानो तथा साधुओ के प्रति वह बडी उदारता दिखलाता था। विद्याप्रचार करने के लिए उसने गज़नी मे एक विद्यापीठ स्थापित किया। उसने अनेक सुन्दर मस्जिदें बनवाई और भव्यभवनो से अपनी राजधानी को अलकृत किया। इसी के कारण गज़नी की गणना एशिया के प्रसिद्ध नगरो में होने लगी। भारतीय

---

* कहा जाता है कि महमूद ने फिरदौसी को 'शाहनामा' के लिए ६०,००० सोने के सिक्के देने का वादा किया था, परन्तु जब वह महाकाव्य समाप्त हो गया तो उसने ६०,००० चाँदी के सिक्के देना चाहा। फिरदौसी बहुत दुखी हुआ और उसने कुछ न लिया। अन्त में सुलतान ने अपने वादे के अनुसार सोने के सिक्के भेजे। परन्तु जब महमूद का दूत पुरस्कार लेकर पहुँचा तो फिरदौसी मर चुका था और लोग उसकी लाश को घर के बाहर ले जा रहे थे।

संगतराशो और कारीगरो ने, जिन्हें महमूद मथुरा तथा अन्य स्थानों से अपने साथ गजनी ले गया था, अनेक सुन्दर इमारतें बनाईं और उस वास्तु-कला को जन्म दिया जो "इडो सारसनिक" * (Indo-Sarcenic) के नाम से प्रसिद्ध है।

अलबरूनी—दसवी शताब्दी में भारत की सामाजिक स्थिति—अलबरूनी एक विद्वान् पुरुष था जो महमूद गजनवी के समय में भारत में आया था। इस देश मे कुछ काल तक रहकर उसने भारतीय दर्शन, ज्योतिष और कतिपय अन्य शास्त्रो का अध्ययन किया था। हिन्दुओ के विषय में उसने लिखा है कि ये लोग अभिमानी हैं, वे विदेशियो को म्लेच्छ कहते है और उनसे किसी प्रकार का सम्बन्ध नही रखते। यद्यपि वे एकेश्वरवादी है, परन्तु मूर्तिपूजा सारे देश में प्रचलित है। वर्ण-व्यवस्था के सम्बन्ध में वह लिखता है कि देश में भिन्न-भिन्न जातियाँ तो हैं परन्तु सब लोग एक ही शहर या गाँव में रहते है और परस्पर मिलते-जुलते भी हैं। बाल-विवाह की प्रथा है। विवाह बहुधा माता-पिता ही करते है। दहेज की प्रथा है। एक बार विवाह हो जाने पर पति पत्नी को छोड नही सकता। विधवा-विवाह नही है। विधवाएँ या तो अग्नि में जलकर मर जाती हैं या आजन्म वैधव्य व्यतीत करती है। प्राय राजवश की स्त्रियाँ ही सती होती है। न्याय करने में दया से काम लिया जाता है। परन्तु कभी-कभी जलते तवे पर खडे होकर अथवा आग पर चलकर अभियुक्तो को निर्दोष होने का प्रमाण देना पडता है। कर अधिक नही देने पडते, राजा पैदावार का केवल $\frac{1}{6}$ भाग लेता है। ब्राह्मणो से कर नही लिया जाता। अलबरूनी ने अनेक त्योहारो और उत्सवो का वर्णन

---

* 'इडो-सारसिनिक' का आशय है 'जिसमें हिन्दू-मुसलमान-कला का मिश्रण हो'।

किया है जिससे प्रतीत होता है कि साधारण जनता भी उस समय समृद्धिशाली थी।

अलबरूनी को सस्कृत सीखने मे बडी अडचन पडी थी। इसी लिए उसने लिखा है कि हिन्दू विद्वान् विदेशियो को अपनी विद्या सिखाने मे सकोच करते है।

**गजनी-राज्य का पतन**––महमूद गजनवी को हम एक प्रतिभा-शाली तथा दूरदर्शी शासक नही कह सकते। जिन देशो को उसने जीता, उनको वह शान्त तथा सगठित करने में असफल रहा। उसने न कोई नियम बनाये और न शासन का ही समुचित प्रबन्ध किया। उसकी शासन-प्रणाली ऐसे विशाल साम्राज्य को सगठित करने के लिए उपयुक्त न थी। इसी लिए उसके मरते ही अशान्ति के लक्षण दिखाई देने लगे और कुछ ही दिनो बाद उसके साम्राज्य की जड हिल गई।

महमूद के उत्तराधिकारी शक्तिहीन थे। उनमें कोई ऐसा न था जो अशान्ति के कारणो को दूर करके साम्राज्य की रक्षा करता। महमूद के बाद मसऊद गद्दी पर बैठा। सन् १०४० ई० में सालजूक तुर्कों ने उसे बुरी तरह पराजित किया। फलत फारस का देश मह-मूद के साम्राज्य से निकल गया। सन् १०४३ ई० में लाहौर में हिन्दुओ ने भी फिर अपनी शक्ति बढा ली। परन्तु गजनी की सेना ने उन्हे फिर से दबा दिया। इसके बाद सालजूक तुर्कों ने गजनी पर धावा किया और अपना प्रभुत्व स्थापित किया।

किन्तु गजनवी सुलतानो का अन्तिम पतन गोर के सूर अफगानो-द्वारा हुआ। महमूद के समय में सूर अफगान उसके अधीन थे। परन्तु उसकी मृत्यु के बाद उन्होने स्वाधीन होने का प्रयत्न किया। जब गजनी के सुलतान बहराम ने उनके एक सरदार को मरवा डाला तब उन्हे राजविद्रोह का अच्छा अवसर मिला। बहराम ने जिस सरदार को मरवा डाला था, उसके भाई अलाउद्दीन ने बदला लेने के लिए

सन् ११५० में बहराम को युद्ध में परास्त किया। गजनी की शक्ति शीघ्र ही क्षीण हो गई और गोर-वश का प्रभुत्व स्थापित हो गया। अलाउद्दीन के भतीजे गयासुद्दीन ने सन् ११७३ ई० में गजनी को पूर्णतया अपने अधीन कर लिया और उसे अपने भाई मुईजुद्दीन-बिनसाम के सुपुर्द कर दिया। मुईजुद्दीन इतिहास में मुहम्मद गोरी के नाम से विख्यात है।

गजनी के वश ने पजाब पर अपना अधिकार कुछ दिन और कायम रक्खा। परन्तु इस वश के अन्तिम शासक खुसरो मलिक को मुहम्मद गोरी ने पराजित किया और सुबुक्तगीन के वश का अन्त कर दिया।

### सक्षिप्त सन्वार विवरण

| | |
|---|---|
| अलप्तगीन का गजनी पर अधिकार करना | ९३३ ई० |
| अलप्तगीन की मृत्यु | ९६३ ,, |
| सुबुक्तगीन का गद्दी पर बैठना | ९७७ ,, |
| जयपाल का गजनी पर धावा | ९८६ ,, |
| सुबुक्तगीन का खुरासान पर अधिकार करना | ९९४ ,, |
| महमूद की सीमान्त दुर्गों पर पहली चढाई | १००० ,, |
| महमूद की आनन्दपाल पर चढाई | १००८ ,, |
| महमूद का कन्नौज पर धावा | १०१८ ,, |
| महमूद की गण्ड से सन्धि | १०२१–२२ ,, |
| सोमनाथ का आक्रमण | १०२६ ,, |
| महमूद की मृत्यु | १०३० ,, |
| दूसरे महमूद की पराजय | १०४० ,, |
| अलाउद्दीन का बहराम को हराना | ११५० ,, |
| गयासुद्दीन की गजनी पर विजय | ११७३ ,, |

# अध्याय १५

## मुहम्मद ग़ोरी और उसकी भारतीय विजय

**प्रारम्भिक हमले**—गजनी में अपना प्रभुत्व स्थापित करने के बाद मुहम्मद गोरी ने हिन्दुस्तान की ओर ध्यान दिया। सन् ११७५ ई० में उसने उच्छ और मुलतान को जीत लिया। फिर गुजरात पर धावा किया परन्तु नहरवाल के राजा भीमदेव ने उसे पराजित किया। जैसा पहले कह चुके है, उसने सन् ११८६ में खुसरो मलिक को हराकर उससे पजाव छीन लिया और सुबुक्तगीन द्वारा स्थापित किये हुए राजवश का अन्त कर दिया। इस प्रकार पजाव और सिन्ध पर उसने अपना अधिकार जमा लिया।

**राजपूत-साम्राज्य का अन्त**—यद्यपि मुहम्मद गोरी ने सीमान्त-प्रदेश को जीत लिया था तो भी भारतवर्ष का अधिपति कहलाना अभी उसके लिए दूर की वात थी। भारत के भीतरी भागो में राज-पूतो के राज्य थे। वे जीते-जी एक अगुल ज़मीन भी किसी को न देनेवाले थे। वे शूरवीर, साहसी, युद्धप्रेमी थे और रणक्षेत्र में लडकर प्राण देने को हमेशा तैयार रहते थे।

पजाव की सरहद से आगे बढकर चौहान राजपूतो का विशाल राज्य था। इस समय पृथ्वीराज उनका राजा था, दिल्ली उसकी राज-धानी थी और अजमेर उसके राज्य का एक सरहदी सूवा था। पृथ्वी-राज अपने समय का एक प्रसिद्ध सेनानायक और योद्धा था। सन् ११९१ ई० में जव मुहम्मद गोरी ने सरहिन्द की ओर कूच किया तो उसे इस वीर राजा का सामना करना पडा। लडाई में मुहम्मद ग़ोरी वुरी तरह से पराजित हुआ और उसके कई घाव लगे। उसका एक स्वामिभक्त सिपाही उसे युद्धक्षेत्र से बचाकर वाहर ले गया नही

तो उसका प्राण वचना भी कठिन था। गोरी की सेना छिन्न-भिन्न हो गई और उसके सिपाही प्राण वचाने के लिए इधर-उधर भाग गये। इससे पहले कभी मुसलमानो ने हिन्दुओ से ऐसी हार नही खाई थी। मुहम्मद इस अपमान को न भूला और इसका वदला लेने के लिए उसने एक वहुत वडी सेना एकत्र की। जव सव तैयारियाँ हो गईं तो उसने १,२०,००० सवार लेकर सन् ११९२ ई० मे हिन्दुस्तान पर आक्रमण किया।

पृथ्वीराज इस चढाई का समाचार पाकर वडा चिन्तित हुआ। उसने भारत के अन्य राजपूत राजाओ से सहायता की प्रार्थना की। लगभग १५० राजा युद्ध के लिए तैयार होकर उसकी मदद के लिए आये। कन्नौज का राठौर राजा जयचन्द्र उससे शत्रुता रखता था। वह अलग ही रहा। दोनो दलो में फिर एक वार तराइन के रण-क्षेत्र में, सन् ११९३ ई० में, मुठभेड हुई परन्तु हिन्दुओ की हार हुई। चौहान-सम्राट् पृथ्वीराज पकड लिया गया और मारा गया।

चौहानो की पराजय राजपूतो की शक्ति के ह्रास का कारण सिद्ध हुई। हिन्दुओ का साहस जाता रहा। मुसलमानो ने थोडे ही दिनो में अजमेर, हाँसी, सरस्वती, दिल्ली और कोल (अलीगढ) पर अधिकार जमा लिया। मुहम्मद गोरी इस विजय के वाद भारतीय-राज्य का शासन-भार अपने गुलाम कुतुवुद्दीन ऐवक को सौंपकर गजनी को वापस चला गया।

कुतुवुद्दीन की विजय—एक-एक करके भारत के अनेक प्रदेशो पर मुसलमानी प्रभुत्व स्थापित करने में कुतुवुद्दीन अपने स्वामी से कुछ कम नही था। उसने हाँसी, मेरठ और दिल्ली को जीता और फिर दोआव में धावा करके कोल* पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। इनके एक ही दो महीने वाद वह अपने स्वामी मुहम्मद गोरी

---

* कोल सयुक्त-प्रान्त के अलीगढ जिले में है।

के पास जा पहुँचा, जब वह ११९४ ई० में एक बडी सेना लेकर कन्नौज के राठौर राजा जयचन्द्र से लडने के लिए भेजा गया।

**राठौरो की पराजय**—जयचन्द्र और उसके सिपाहियो ने यद्यपि बडी वीरता से शत्रुओ का सामना किया, फिर भी उनकी हार हुई। जयचन्द्र मारा गया और सारा खजाना, जो असी के किले में सुरक्षित था, मुसलमानो के हाथ आ गया। इस महान विपत्ति के बाद राठौर राजपूत राजपूताना को चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने जोधपुर में अपना नया राज्य स्थापित किया। राठौरो को पराजित करके मुहम्मद गोरी काशी की ओर बढा। वहाँ जाकर उसने नगर को खब लूटा और मन्दिरो को तुडवाकर मिट्टी मे मिला दिया। इस प्रकार दिल्ली से काशी तक का विस्तृत राज्य उसके अधिकार में आ गया।

**अन्य देशों की विजय**—जयचन्द्र को पराजित करने के बाद मुहम्मद गोरी ग़ज़नी को लौट गया। परन्तु उसके प्रतिनिधि (वाइस-राय) ने विजय का कार्यक्रम जारी रक्खा। अजमेर को जीतकर उसने पहले राजा को, जो सुलतान का आधिपत्य स्वीकार कर चुका था, वापस कर दिया। सन् ११९५ ई० मे उसने नहरवाला के राजा भीम-देव पर चढाई की और उसे युद्ध में पराजित किया। इसी समय उसने ग्वालियर, बियाना और अन्य कई देशो को भी जीत लिया।

**बिहार और बगाल की विजय**—एक ओर तो कुतुबुद्दीन ऐबक उत्तर-पश्चिमीय भारत में मुसलमानी राज्य का झण्डा फहरा रहा था और दूसरी ओर मुहम्मद का एक दूसरा सेनापति इख्तियार-उद्दीन मुहम्मद-बिन-बख्तियार बिहार और बगाल की विजय करने को अग्रसर हो रहा था। इख्तियारउद्दीन मुहम्मद ने सन् ११९७ ई० में २,००० सिपाहियो के साथ बिहार को जीता और वहाँ के बौद्ध-मन्दिरो और पुस्तकालयो को नष्ट किया। बिहार के बाद उसने बगाल पर चढाई की। उस समय बगाल का राजा लक्ष्मणसेन था जिसकी राजधानी नदिया (नवद्वीप) थी। मुहम्मद ने नदिया पर

एकाएक धावा किया। राजा लक्ष्मणसेन भाग गया। कहा जाता है कि मुहम्मद ने केवल १८ सवारो को लेकर नदिया पर अधिकार कर लिया था। परन्तु यह बात बिलकुल असत्य है। नदिया को जीतकर मुहम्मद ने गौड अथवा लखनौती को बगाल की राजधानी बनाया

सुलतान मुहम्मद ग़ोरी के समय का सिक्का

और खुतवे में मुहम्मद गोरी का नाम पढवा कर उसको बगाल का अधीश्वर स्वीकार किया।

**कालिजर की विजय**—सन् १२०२ ई० में उत्तरी भारत की शान्ति फिर एक बार भग हुई जब कुतुबुद्दीन ऐवक ने कालिजर के चन्देल राजा परमाल पर चढाई की। युद्ध में राजा पराजित हुआ और उसने ऐवक को कर देना स्वीकार कर लिया। किन्तु उसकी अकस्मात् मृत्यु हो जाने से फिर गडबडी मच गई। उसके मन्त्री ने सन्धि की शर्तों का पालन करने से इनकार कर दिया। उसे दण्ड देने के लिए ऐवक ने कालिजर के किले पर चढ़ाई की। किला सर हो गया और लूट में अपार धन उसके हाथ लगा। इसके बाद वह महोवा की तरफ बढा, और उसे जीतने में भी उसे ज़रा भी कठिनाई न हुई।

**सुलतान की मृत्यु**—सन् १२०५ ई० में सुलतान मुहम्मद ग़ोरी

खोखरो के विद्रोह को दबाने के लिए अपनी सेना के साथ फिर भारत में आया। विद्रोह को शान्तकर जब वह १२०६ ई० में गजनी लौट रहा था, मुलाहिदा सम्प्रदाय के एक आदमी ने उसको क़त्ल कर दिया।

**मुहम्मद गोरी की महमूद ग़ज़नवी से तुलना**—यद्यपि मुहम्मद गोरी में इतनी धार्मिक कट्टरता नही थी जितनी कि महमूद ग़ज़नवी में, फिर भी इस्लाम की उन्नति में गोरी ने गजनवी से अधिक सहायता पहुँचाई। मुहम्मद ग़ोरी खूब जानता था कि हिन्दुओ का राजनैतिक सगठन अच्छा नही है और भिन्न-भिन्न राजपूत-राजा परस्पर युद्ध कर निर्बल हो गये है। उसने हिन्दुओ की इस शोचनीय परिस्थिति से लाभ उठाकर भारतवर्ष में मुसलमानी साम्राज्य स्थापित करने का निश्चय कर लिया था। किन्तु महमूद का अभिप्राय कुछ दूसरा ही था। वह भारतवर्ष की अतुल सम्पत्ति को लेना चाहता था और उसे मध्यएशिया के आक्रमणो में खर्च करना ही अपना मुख्य उद्देश्य समझता था। गोरी की तरह वह हिन्दुस्तान में मुसलमानी राज्य स्थापित करना नही चाहता था। परन्तु गोरी ने शुरू से ही दूसरा रास्ता पकडा था। वह भारतवर्ष में मुसलमानो का राज्य स्थापित करना चाहता था। यही कारण है कि जिन देशो को उसने जीता उन्हें भली भाँति अपने अधीन कर लिया। इस कार्य में उसे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई और उसकी मृत्यु के समय तक सारा उत्तरी भारत उसके अधीन हो गया।

**मुसलमानो की सफलता के कारण**—भारतवर्ष में मुसलमानो की सफलता का कारण उनका बल नही वरन् हिन्दुओ में सगठन तथा एकता का अभाव था। असख्य राजपूत राजा स्वार्थ त्यागकर एक शत्रु के विरुद्ध कभी आपस में सगठित न हो सके। एक दूसरे पर रोब जमाने के लिए वे प्राय परस्पर लडने ही में लगे रहते थे। दिल्ली के चौहान और कन्नौज के राठौर आपस में इतने दिन तक लड़ते रहे

कि उनमे से एक भी बाहरी शत्रु का सामना न कर सका। हिन्दुओं मे राष्ट्रीयता का भाव बिलकुल नही था। विदेशी शत्रु के मुकाबिले के लिए राजपूत राजाओ ने जो संघ बनाया उसका उद्देश्य देश को स्वाधीन रखना नही वरन अपने राज्य को बचाने का स्वार्थ था। इसके विपरीत मुसलमानो का सगठन बहुत अच्छा था। धर्म के लिए प्राण देने को व सदा तैयार रहते थे। महमूद गजनवी और तैमूर जैसे प्रतिभाशाली सेनापति समय-समय पर अपने सिपाहियो को विचलित देखकर उन्हे धर्म के नाम से उत्तेजित करते थे।
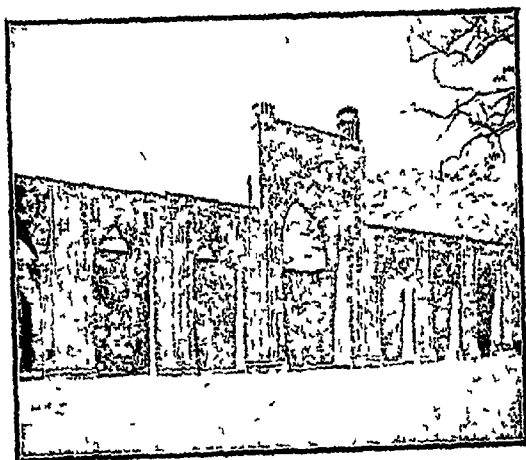
सुलतान ग़ोरी की कब्र के कमरे की भीतरी छत

राजनैतिक परिस्थिति की तरह हिन्दुओ की सामाजिक दशा भी बडी शोचनीय थी। वे भिन्न-भिन्न जातियो और उपजातियो में विभक्त थे और मिलकर काम नहीं कर सकते थे। लडने काम केवल एक ही जाति पर निर्भर था। अधिकाश लोग न तो युद्ध करना जानते थे और न लडने-भिडने मे ही उनकी रुचि थी। इसका परिणाम यह

हुआ कि युद्ध-काल में पर्याप्त सख्या में सिपाहियो का मिलना कठिन हो जाता था। साधारण जनता राजनैतिक विप्लवो से बिलकुल दूर रहती थी। उसको इस बात की कुछ भी परवाह नही थी कि किसका राज्य पलट रहा है या किसका नया राज्य स्थापित हो रहा है। किसान लोग केवल अपनी खेती की फिक्र करते थे। जब तक उनके व्यवसाय में कोई बाधा नही होती, राष्ट्रीय हलचल की ओर उनका ध्यान आकृष्ट नही होता था। मुसलमान एक होकर काम करते थे। उनमें जातिभेद नही था। समानता और भ्रातृभाव के कारण उनकी सामाजिक शक्ति, हिन्दुओ से कही अधिक थी। लडने में भी उनको बडी सुविधा रहती थी। पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष तथा जातीय भेद-भाव ने हिन्दुओ को अशक्त बना दिया था। वीरता में राजपूत कम नही थे। वे अद्भुत साहस और असाधारण पराक्रमवाले थे। बडे से बडे सकट के समय अथवा युद्ध-क्षेत्र में वे अपने प्राण देने को उद्यत रहते थे। इसको देखकर उनके शत्रु भी चकित रह जाते थे। परन्तु उनकी युद्ध करने की शैली मुसलमानो की-सी न थी। वे अपने हाथियो और पैदल सिपाहियो पर अधिक भरोसा रखते थे। इसके प्रतिकूल मुसलमानो के पास घुडसवारो की सेना थी। तुर्की घुडसवार जब चाहते तभी अपनी जगह छोडकर शीघ्रता से शत्रु पर, चारो ओर से, धावा कर सकते थे। वे चारो ओर से राजपूत सेना को दबाते और ज्योही हाथी, रथ और पैदल सिपाहियो के एक साथ सिमट जाने से गडबडी फैलती, त्योही वे बडे वेग के साथ उन पर टूट पडते और सैकडो को बात की बात में तलवार के घाट उतार देते थे।

राजपूत राजाओ के यहाँ कोई ऐसा दफ्तर न था जो विदेशी राज्यो का पूरा हाल जानता। पश्चिमोत्तर सीमा के बाहर के देशो का उनको कुछ भी ज्ञान न था। वे न यह जानते थे कि उनकी क्या स्थिति है और न यह जानते थे कि उनके पास कितनी सेना है और

क्या उनके पारस्परिक सम्बन्ध हैं। इससे उन्हें बडी हानि हुई। सीमा की रक्षा की ओर उन्होने कभी ध्यान नही दिया। जब एक बार विदेशी आक्रमणकारी देश मे घुस आये तो उन्हें रोकना असम्भव-सा हो गया।

**मुसलमानो की विजय किस प्रकार की थी?**—यद्यपि भारतवर्ष का एक बहुत बडा भाग मुसलमानो के अधिकार में आ गया था, परन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि हिन्दुओ की सभी सस्थाएँ नष्ट हो गई। मुसलमानो ने देश को जागीरो में बाँटकर अमीरो को दे दिया। अपने-अपने इलाको मे शान्ति रखना उनका काम था। बाकी छोटे-छोटे शासन के नियम जैसे हिन्दू राज्यो मे थे वैसे ही बने रहे।

मुसलमानी शासन इस काल मे फौजी था। मुसलमानो की लडने-भिडने में अधिक रुचि थी। इसलिए शासन-प्रबन्ध का काम प्राय हिन्दुओ द्वारा ही होता था। माल के महकमे और देहातो में हिन्दू अफसर ही सरकारी काम करते थे। वे ही लगान वसूल करते और प्रजा की रक्षा का उपाय करते थे। दोआब में बहुत से ऐसे राजा थे जो अपनी इच्छा के अनुसार दिल्ली के सुलतान को कर देते थे। केंद्रिक शासन के निर्बल होने पर वे उसकी आज्ञा की कुछ भी पर्वाह नही करते थे। साधारणत देश के भीतरी भागो में प्रजा के दिन शान्ति से बीतते थे। जब कोई अत्याचारी सूबेदार होता तो झगडा बढता था, नही तो लोग बे रोक-टोक अपना काम करते थे। परन्तु हिन्दू राज्यो की फूट का अभी अन्त नही हुआ था। वे तुर्की राज्य को पसन्द नही करते थे परन्तु सगठित होकर कभी सफलता के साथ उसका मुकाबला भी नही कर सकते थे।

## सक्षिप्त सन्‌वार विवरण

| | | |
|---|---|---|
| मुहम्मद गोरी का उच्छ और मुल्तान जीतना | .. | ११७५ ई० |
| मुहम्मद गोरी का खुसरो मलिक को पराजित करना | .. | ११८६ ” |

| | |
|---|---|
| मुहम्मद गोरी की सरहिन्द पर चढाई . .. .. | ११९१ ई० |
| मुहम्मद गोरी का भारत पर आक्रमण .. .. | ११९२ " |
| तराइन का युद्ध और पृथ्वीराज की पराजय .. .. | ११९३ " |
| मुहम्मद गोरी द्वारा जयचन्द्र की पराजय . . | ११९४ " |
| क़ुतुबुद्दीन का भीमदेव को पराजित करना .. .. | ११९५ " |
| बिहार की विजय .. .. .. .. | ११९७ " |
| परमाल की पराजय .. .. .. .. | १२०३ " |
| मुहम्मद गोरी की मृत्यु .. .. .. | १२०७ " |

# अध्याय १६

## गुलाम-वंश

(१२०६—१२९० ई०)

कुतुबुद्दीन ऐबक (१२०६-१२१० ई०)—मुहम्मद गोरी के कोई लडका न था जो उसकी मृत्यु के बाद राजसिंहासन पर बैठता। परन्तु उसे इस बात की ज़रा भी चिन्ता न थी, वह बहुधा कहा करता था—"क्या मेरे हज़ारो तुर्क गुलाम मेरे लडके नही है जो मेरे जीते हुए प्रदेशो पर राज्य करेंगे और मेरी मृत्यु के बाद खुतबे में मेरा नाम जारी रक्खेगे।" परन्तु उसके प्रतिनिधि (वाइसराय) कुतुबुद्दीन ने भारत मे सुलतान होने की घोषणा कर दी और दिल्ली का पहला मुसलमान बादशाह हो गया। वह स्वय गोरी सुलतान का गुलाम रह चुका था, इसलिए उसका वश गुलाम-वश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। कुतुबुद्दीन ऐबक बडा योग्य शासक था और वह प्रजा की सुख-सम्पत्ति के लिए प्रयत्न करता था। हिन्दुओ के साथ वह दया का बर्ताव करता था और न्याय करने में निष्पक्ष था। अपनी जड मजबूत करने के लिए उसने बडे-बडे अमीरो और सरदारो से वैवाहिक सम्बन्ध किये थे। उसने अपनी बहिन का ब्याह कुबाचा से किया था और अपने ही एक गुलाम ईल्तुतमिश को अपनी लडकी ब्याह दी थी। स्वय अपना विवाह उसने ताजुद्दीन एलदौज़ की लडकी के साथ किया था।

कुतुबुद्दीन अपनी उदारता और दानशीलता के लिए इतना प्रसिद्ध था कि उसे लोग "लाख-बख्श" अर्थात् लाख का दान देनेवाला कहते थे। कुतुबुद्दीन ने कुतुब मीनार का निर्माण आरम्भ किया

था किन्तु उसे पूर्ण करने के पहले ही वह मर गया। अन्त में उसे ईल्तुतमिश ने पूरा किया।
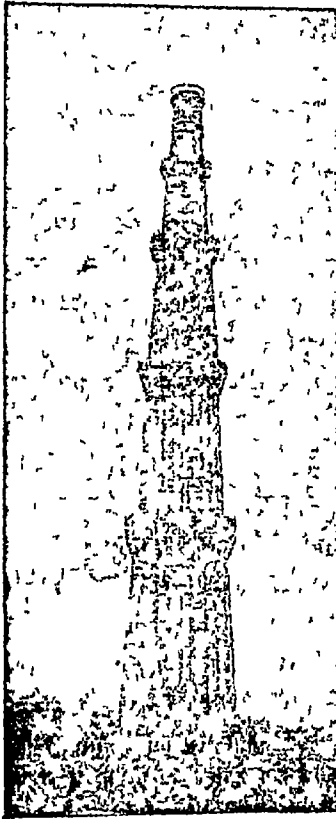
क़ुतुब-मीनार

सन् १२१० ई० में कुतुबुद्दीन चौगान खेलते समय अपने घोड़े से गिरकर मर गया। उसके बाद उसका बेटा आरामशाह गद्दी पर बैठा किन्तु एक वर्ष राज्य करने के बाद ईल्तुतमिश ने उसे पराजित करके गद्दी से उतार दिया। ईल्तुतमिश उस समय बदायूँ का सूबेदार था। इस समय मुसलमानो के भारतीय राज्य का सगठन धीरे-धीरे ढीला होने लग गया था। उनके चार स्वाधीन राज्य बन गये थे—सिन्ध में कुबाचा, दिल्ली में ईल्तुतमिश, बगाल में खिलजी मलिक (अमीर) और लाहौर में कभी गजनी और कभी दिल्ली के शासक राज्य करते थे।

शमसुद्दीन ईल्तुतमिश (१२११-१२३६ ई०)—ईल्तुतमिश, जिसका नाम यूरोपीय लेखको ने गलती से अल्तमश लिखा है, इलबारी

फिर्के का तुर्क था। उसे कुतुबुद्दीन ने खरीदा था। उसका जन्म एक उच्च वंश में हुआ था और अपनी योग्यता के कारण वह शीघ्र ही अपने स्वामी का स्नेह-भाजन बन गया था। सन् १२१० ई० मे उसने आरामशाह से दिल्ली का सिंहासन छीन लिया। वास्तव में दिल्ली का पहला सुलतान ईल्तुतमिश ही था। गुलामवंश के सुलतानो में वह सबसे प्रभावशाली था। उसमें एक वीर योद्धा और योग्य शासक के गुण भरे हुए थे। इसी लिए उसे राज्य की कठिनाइयों को दूर करने मे आसानी हुई। सबसे पहले उसने दिल्ली के विद्रोही अमीरो को दबाया और राज्य को पूर्ण रीति से अपने वश में किया। सन् १२१५ ई० मे उसने एलदौज को हराया। एलदौज युद्ध में मारा गया। फिर कुबाचा की बारी आई। सन् १२१७ ई० में उसकी पराजय हुई, परन्तु वह १० वर्ष तक लडता रहा और सन् १२२७ ई० में उसने ईल्तुतमिश की अधीनता स्वीकार कर ली।

अभी सुलतान अपने शत्रुओ को दबाने मे ही लगा हुआ था कि उसे एक भयंकर आपत्ति का सामना करना पडा। यह मुगलो का हमला था। मुगलो ने अपने सरदार चङ्गेजखाँ के नेतृत्व मे मंगोलिया, चीन और तुर्किस्तान आदि देशो को रौंद डाला था। अब वे ख्वारिज्म के बादशाह जलालुद्दीन का पीछा करते हुए भारत की सीमा तक आ पहुँचे। जलालुद्दीन ने ईल्तुतमिश से सहायता माँगी परन्तु उसने इनकार कर दिया। साथ ही जो राजदूत शाह के लिए मदद माँगने आया था उसे कत्ल करा दिया तब शाह ने जो कुछ सेना इकट्ठी की थी उसे साथ लेकर सिन्धु नदी के तट पर मुगलो से युद्ध किया। युद्ध में वह हार गया और फारस की तरफ भागा जहाँ उसके एक शत्रु ने उसे क़त्ल कर दिया। उसके बाद मुगल अपने घर को लौट गये। और भारत पर आई हुई एक भयंकर आपत्ति टल गई।

ईल्तुतमिश ने अब अपने भारतीय शत्रुओ को दबाने का प्रयत्न किया। सन् १२२५ ई० में उसने बंगाल को जीत लिया और १२२८ ई०

में सिन्ध को भी अपने राज्य में मिला लिया। राजपूतो को भी उसने कई युद्धो मे हराया और रणथम्भौर, मॉडू, ग्वालियर, मालवा और उज्जैन को जीत लिया। मेवाड राज्य को जीतने में वह असफल

ईल्तुतमिश की क़ब्र (बदायूं)
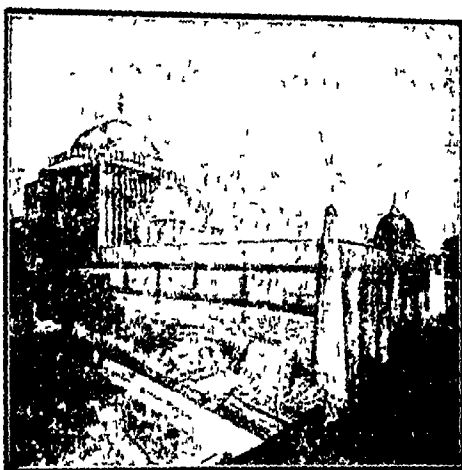
रहा। इस प्रकार १२२५ ई० में मरते समय वह सारे उत्तरी हिन्दुस्तान का मालिक था और उसका साम्राज्य उत्तर में हिमालय से लेकर नर्मदा नदी तक और पूर्व में बगाल से सिन्धु नदी तक फैला हुआ था।

ईल्तुतमिश के शासन-काल में एक महत्त्वपूर्ण घटना हुई। अब्बासी खलीफा ने मुसलमानो पर शासन करने का उसका अधिकार स्वीकार कर लिया। इस काल में खलीफा की स्वीकृति पाना सुलतानो के लिए आवश्यक होता था। महमूद ग़ज़नवी जैसे बड़े सुलतान ने भी

ईल्तुतमिश के समय में
दिल्ली साम्राज्य
गजनी
पेशावर
लाहौर
मुलतान
उच्छ
दिल्ली
बदायूँ
कन्नौज
अयोध्या
ग्वालियर
प्रयाग
बनारस
लखनौती
गौड़
अन्हिलवाड़
उज्जैन
भिलसा
गु ज रा त
सि ध
या द व
देवगिरि
एलिचपुर
वारंगल
का क ती य
रायचूर
अ र ब
सा ग र
ब गा ल
की
खा ड़ी

यह स्वीकृति प्राप्त की थी। भारतवर्ष के गुलाम वादशाह के लिए इसका प्राप्त करना और भी आवश्यक था। सन् १२२९ ई० में ईल्तुतमिश ने इसके लिए खलीफा से प्रार्थना की और उसने अपने दूत के हाथ खिलअत और फर्मान भेज दिये और ईल्तुतमिश का अधिकार स्वीकार कर लिया।

रजिया वेगम (१२३६-४०)—ईल्तुतमिश के सभी वेटे निकम्मे थे। उनमे इतने वडे साम्राज्य का प्रवन्ध करने की योग्यता न थी। इसी कारण ईल्तुतमिश ने अपनी वेटी रजिया को ही गद्दी

रजिया वेगम

की अधिकारिणी वनाया। परन्तु दरवार के अमीरो को एक स्त्री का गद्दी पर वैठना पसन्द नही आया। इसलिए उन्होने ईल्तुतमिश के

एक बेटे रुकनुद्दीन को बादशाह बनाया। परन्तु वह इतना विलासी और दुश्चरित्र निकला कि अमीरो को हताश होकर रजिया को राज-गद्दी देनी पडी।

रजिया का पहले अमीरो ने बडा विरोध किया परन्तु साहस और चतुरता से उसने सफलतापूर्वक इस परिस्थिति का सामना किया और राज्य मे शान्ति स्थापित रक्खी। वह एक बुद्धिमती स्त्री थी। प्रजा की उन्नति करना वह अपना प्रधान कर्त्तव्य समझती थी। वह बडी न्याय-प्रिय थी और अपने कर्त्तव्य का उचित पालन करती थी। उसने अपनी जनानी पोशाक छोड दी थी और मर्दाने कपडे पहनकर खुले दर्बार मे बैठती थी। किन्तु स्त्री होना उसका सबसे बडा अपराध था। वह याकूत नाम के एक गुलाम पर विशेप कृपा रखती थी। भला ये बातें अमीर कहाँ तक सह सकते थे? रजिया ने परिस्थिति बिगडती हुई देखकर अपनी शक्ति बढाने के लालच से अलतूनिया नाम के एक तुर्क सरदार के साथ विवाह कर लिया। इससे कुछ भी लाभ न हुआ। उसका अब अधिक विरोध होने लगा। रजिया और उसके पति दोनो को लोगो ने कैद कर लिया और सन् १२४० ई० में किसी हिन्दू ने उन्हें मार डाला।

**चालीस अमीरों का दल**—"चालीस अमीरो के दल" के सम्बन्ध में कुछ कहना ज़रूरी है। गुलाम-वश के सुलतानो के शासन-काल में इस दल का बडा ज़ोर था। यद्यपि गुलाम-वश के प्राय सभी सुलतान गद्दी पर आने के पहले गुलामी से मुक्त कर दिये जाते थे परन्तु फिर भी उन्हें तुर्की अमीरो से काम पडता था। इन तुर्की अमीरो में कितने ही पहले गुलाम रह चुके थे। उनको क़ाबू मे करना बडा कठिन हो गया था। उन्होने जागीरें आपस में बाँट ली थी और राज्य के सभी बडे-बडे पदो पर अधिकार कर रक्खा था। ईल्तुतमिश ने उन्हें बहुत कुछ दबाकर रक्खा था। परन्तु उसकी मृत्यु के बाद वे फिर शक्तिशाली हो गये। जब राज्य

शक्तिहीन और निकम्मे बादशाहो के हाथ में चला गया तब उनका हौसला और भी बढ गया। वे ऐसे शक्तिमान् हो गये कि उन्होने सुलतानो को कठपुतली बना दिया और राज्य का सारा अधिकार अपने हाथ में ले लिया।

नासिरुद्दीन महमूद (१२४६-६६ ई०)—रजिया के उत्तराधिकारी ऐसे कठिन समय में राज्य का प्रबन्ध करने में निकम्मे और अयोग्य सिद्ध हुए। उसका एक भतीजा और दो भाई थोडे ही दिनो मे गद्दी से उतार दिये गये और मार डाले गये। सन् १२४६ ई० में ईल्तुतमिश का बेटा नासिरुद्दीन महमूद राजसिंहासन पर बैठा। वह एक दरवेश की तरह जीवन व्यतीत करता था और शासन-कार्य के लिए सर्वथा अयोग्य था।

हिन्दुस्तान के लिए एक मुसलमानी शासन एक नई चीज़ थी और हिन्दुओ को अभी तक उससे सहानुभूति न हो पाई थी। दोआब के ज़मीदार बराबर विद्रोह करते थे। कर न देने के अलावा वे देश में लूट-मार भी करते थे। मुगलो ने लाहौर का शहर तो १२४१ ई० में पहले ही जीत लिया था। अब वे पश्चिमोत्तर-सीमा पर भी घात लगाये थे। सुलतान की सेना अव्यवस्थित थी। चालीस अमीरो का दल बडा शक्तिशाली हो गया। केन्द्रिक शासन के दुर्बल हो जाने के कारण सूबो के हाकिम बे रोकटोक मनमानी करने लगे। चारो ओर राज्य में षड्यन्त्र होने लगे। लोगो का सन्देह बढने लगा और शासन-प्रबन्ध कठिन हो गया।

नासिरुद्दीन को बडी विकट परिस्थिति का सामना करना पडा। परन्तु सौभाग्य से उसे एक योग्य मन्त्री मिल गया जिसने बिगडी हुई परिस्थिति को बडी बुद्धिमत्ता से सँभाल लिया। यह बलबन था। सबसे पहले उसने मुगलो के हमले रोके और फिर दोआब के विद्रोही राजा और ज़मीदारो पर कई बार चढ़ाई करके उन्हें परास्त किया।

उसने मेवाड को भी जीता और चन्देरी, मारवाड और कई अन्य प्रदेशो के राजाओ ने पराजित होकर उसकी अधीनता स्वीकार कर ली।

बलबन की सफलता के कारण कितने ही अमीर उससे ईर्ष्या करने लगे। उन्होने नासिरुद्दीन महमूद से चुगली खाई और बलबन को देश से बाहर निकलवा दिया। परन्तु उसके जाने के बाद ऐसी गड-बडी शुरू हुई कि महमूद को १२५५ ई० में बलबन को फिर वापस बुला-कर उसे पूर्ववत् सब अधिकार देने पडे। सन् १२६६ ई० में नासिरु-द्दीन की मृत्यु हो गई। उसके कोई बेटा न था। मौक़ा पाकर बलबन ने शीघ्र राजगद्दी पर अपना अधिकार कर लिया।

बलबन (१२६६-८६ ई०)—बलबन का शासन कठोर था। वह देश की दशा से खूब परिचित था और राजकार्य को अच्छी तरह सम-झता था। उसने दोआब के हिन्दुओ को बडी सख्ती से दबाया। जगलो को साफ कराकर उसने डाकुओ को मरवा डाला और रास्तो को शान्तिमय बनाया। सुलतान स्वय दोआब में गया और वहाँ उसने किले बनवाये और अपने सूबेदार नियुक्त किये। कटहर के ज़िले में इतने बाग़ी क़त्ल किये गये कि उनकी लाशो की दुर्गन्ध से गगा के पास तक की हवा खराब हो गई। मुग़लो से भी बलबन बडी कठोरता और साहस से लडा। उसने अपने बडे बेटे मुहम्मद को—जो एक बडा सुशील, विनम्र तथा सुशिक्षित राजकुमार था—सीमान्त प्रदेश की रक्षा के लिए पजाब की ओर रवाना किया। पुराने किले तुडवाकर उसने नये क़िले बनवाये और वहाँ सेना रख दी। सन् १२७६ ई० में बगाल के सूबेदार तुग़रिल खाँ ने विद्रोह का झडा खडा किया। एक बहुत बडी सेना लेकर बलबन बगाल को गया। तुग़रिल भाग गया। परन्तु शाही अफसरो ने उसे पकड लिया और मार डाला। उसके साथी लख-नौती के बाज़ार में ऐसी बुरी तरह से कत्ल किये गये कि देखनेवाले तक भय से बेहोश हो गये। अपने बेटे बुग़रा खाँ को बगाल का सूबेदार बना-कर बलबन दिल्ली लौट आया।

बलबन एक प्रतिभाशाली शासक था। उसने राज्य की भयकर स्थिति को देखा और उसे ठीक करने का पक्का इरादा किया। न्याय करने में वह किसी का पक्ष नही करता था। अमीर-गरीब सबको एक समान समझता था और किसी की रू-रियायत नही करता था। एक बार उसके एक अमीर ने किसी आदमी को मरवा डाला। बलबन ने उसको ५०० कोडे लगवाये और मृत व्यक्ति की स्त्री से उस अमीर के मारने के लिए कहा। बडी कठिनाई के बाद उस स्त्री का क्रोध शान्त किया गया और रुपया लेकर वह अमीर बचाया गया। बलबन का गुप्तचर-विभाग खूब सगठित था। ये ही गुप्तचर राज्य की सब खबर देते थे। उसने यह समझ लिया था कि उसकी बढती हुई शक्ति को रोकनेवाला ४० अमीरो का दल ही है। इसलिए उसने अमीरो को मरवा दिया और इस दल को जड से नष्ट कर दिया। इस प्रकार उसने अपने वश की रक्षा की। बलबन के दर्बार में बडी सख्ती रहती थी। वहाँ न कोई हँसी-मज़ाक़ कर सकता था और न कोई उसकी आज्ञा का उल्लङ्घन ही कर सकता था। लोग सुलतान से भयभीत हो गये और दिल्ली राज्य में शान्ति स्थापित हो गई।

ईल्तुतमिश के सोने का सिक्का

**बलबन का चरित्र**—बलबन बडे ठाट-बाट से रहता था। उसका दर्बार शान-शौकत के लिए समस्त एशिया में विख्यात था। दूर देशो से आये हुए लोगो को उसके दर्बार में हमेशा शरण मिलती थी। उसका शासन बडा कठोर था। वह नीचे दर्जे के लोगो को नौकरी भी नहीं

देता था। उसके दर्बार में असभ्य तथा निम्न श्रेणी के लोग नही जा सकते थे। यद्यपि बलवन स्वय एक योद्धा था। वह साहित्य-प्रेमी था और विद्वानो को आश्रय देता था। वह दीन और दुखियो की रक्षा करता था और हमेशा उनके सुख का ध्यान रखता था। यद्यपि वह निरकुश शासक था तथापि मित्रो और सम्बन्धियो से प्रेम करता था। वह अपने बेटे मुहम्मद को बहुत प्यार करता था और जब वह मुगलो के साथ सन् १२८५ ई० में युद्ध में मारा गया, तो बलवन के शोक का वारापार न रहा। वह अधिक दिन तक जीवित न रहा, और एक ही वर्ष बाद सन् १२८६ ई० में स्वर्गवासी हुआ।

**दिल्ली में विद्रोह और गुलाम-वश का अन्त**—बलवन की मृत्यु के बाद, अमीरो ने उसके दूसरे बेटे बुगरा खाँ को राजगद्दी पर बैठने को कहा, परन्तु उस निकम्मे शाहजादे ने दिल्ली-साम्राज्य के भार की अपेक्षा सुदूर बगाल में रहकर विलासिता का जीवन बिताना अधिक पसन्द किया। तब उसके स्थान में उसका बेटा कैकुबाद, जिसकी अवस्था केवल १६ वर्ष की थी, गद्दी पर बिठाया गया। कैकुबाद बडा विलासिता-प्रिय निकला। वह अय्याशी में डूबा रहता था और अपने कर्त्तव्य की ओर कुछ भी ध्यान नही देता था। उसके दर्बारियो ने भी ऐसा ही किया और राज्य का प्रबन्ध गडबड हो गया। राजमन्त्री इस दुर्दशा को देखकर दुखी होकर घर बैठ रहा। परन्तु कैकुबाद ने उसे घर से पकड मँगाया और एक साधारण अभियुक्त की तरह गधे पर सवार करके सारे नगर में घुमाया। बुगरा खाँ ये सब बातें सुनकर अपने बेटे को सदुपदेश देने को बगाल से दिल्ली आया। परन्तु उसके उपदेशो का कैकुबाद पर कुछ भी प्रभाव न पडा। अय्याशी का फल बादशाह को भोगना पडा और उसे लकवा मार गया।

इस गडबडी की हालत में अमीरो के दो दल बन गये। एक खिलजी और दूसरी तुर्क पार्टी थी। दोनो अपना-अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए परस्पर लडने लगे। खिलजी-दल का नेता जलालुद्दीन

फीरोज था। वह शाही फौज का बडा अफसर था। अपने जोर से खिलजी-दलवालो ने तुर्क-पार्टी को दबा दिया। एक मनुष्य न, जिसके पिता को कैकुबाद न मरवाया था, उसको शीशमहल में मार कर यमुना में फेक दिया। १३ जनवरी सन १२९० ई० को विना किसी विरोध के जलालुद्दीन फीरोज किलोखरी के महल में दिल्ली का सुलतान हो गया। बलबन के वश का एकमात्र उत्तराधिकारी मलिक छज्ज कडे का जागीरदार बनाकर अलग कर दिया गया। इस प्रकार बलबनी वश का अन्त हुआ और दिल्ली का राज्य खिलजियो के हाथ में चला गया।

संक्षिप्त सन्वार विवरण

| | |
|---|---|
| कुतुबुद्दीन की मृत्यु .. .. | १२१० ई० |
| ईल्तुतमिश द्वारा एलदोज की पराजय .. . | १२१५ „ |
| कुबाचा की हार . .. .. .. | १२१७ „ |
| चगेज खाँ का आक्रमण . .. .. .. | १२२१ „ |
| ईल्तुतमिश की बगाल पर विजय . .. .. | १२२५ „ |
| सिन्ध का दिल्ली-साम्राज्य में शामिल होना .. .. | १२२८ „ |
| ईल्तुतमिश का खलीफा से फर्मान पाना .. .. | १२२९ „ |
| ईल्तुतमिश की मृत्यु .. .. .. .. | १२३५ „ |
| रजिया की मृत्यु . .. .. .. | १२४० „ |
| मुग़लो का लाहौर पर अधिकार .. .. .. | १२४१ „ |
| नासिरुद्दीन महमूद की मृत्यु . .. .. | १२६६ „ |
| बलबन का दिल्ली का सुलतान होना .. .. | १२६६ „ |
| तुगरिल बेग का विद्रोह .. .. .. .. | १२७९ „ |
| बलबन की मृत्यु .. . .. .. | १२८६ „ |
| जलालुद्दीन फीरोज खिलजी का सुलतान होना .. | १२९० „ |

---

# अध्याय १७

## खिलजी-वंश—साम्राज्य-निर्माण

### (१२९०-१३२० ई०)

जलालुद्दीन फीरोज खिलजी (१२९०-९६)—दिल्ली के सिंहासन पर बैठने के समय जलालुद्दीन की अवस्था ७० वर्ष की थी। उसने तुर्की अमीरों के दल को दबाकर खिलजी-वंश का प्रभुत्व स्थापित किया था, इस कारण पुराना तुर्की दल हमेशा उससे ईर्ष्या रखता था। राज्य के अमीर दो दलों में विभक्त हो गये थे—बलबनी और जलाली। ये दोनों दल हमेशा एक दूसरे को सन्देह की दृष्टि से देखते थे। परन्तु जलालुद्दीन एक दयालु तथा उदार प्रकृति का मनुष्य था। पिछले राज-वंश के प्रति उसकी सहानुभूति थी, इसलिए वृद्ध अमीर उसकी तरफ आ गये और विरोधियों की संख्या धीरे-धीरे घटने लगी। सुलतान ने रुपया और जागीर देकर अपने शत्रुओं को भी अपना मित्र बना लिया। परन्तु उसकी नरमी के कारण देश में जगह-जगह राज-विद्रोह बढ़ने लगा। सन् १२९१ ई० में कड़ा के सूबेदार मलिक छज्जू ने विद्रोह किया और स्वतन्त्र शासक होने की घोषणा की। किन्तु वह पराजित हुआ और अपने साथियों के साथ पकड़ा गया। सुलतान ने पिछले सुलतानों के प्रति स्वामिभक्ति दिखाने के कारण उनकी प्रशंसा की और उन्हें कुछ भी सजा न दी। इस उदारता को खिलजी अमीरों ने नापसन्द किया और अहमद चप नामक एक अफसर ने सुलतान को सख्ती करने की सलाह दी। परन्तु उसने अपने व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं किया। ठगों और डाकुओं के साथ भी उसने वही उदारता और दया का बर्ताव जारी रक्खा।

सुलतान लड़ाई और खून-खच्चर से दूर रहना चाहता था इसी कारण मालवा और रणथम्भौर की चढ़ाई में उसे सफलता नही हुई। उसके समय मे केवल एक ही महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ। सन् १२९२ ई० में जब मुगलो ने भारत पर चढ़ाई की तो सुलतान ने उन्हें पराजित किया। बहुत से मुगल दिल्ली के करीब आकर बस गये और उनकी बस्ती का नाम 'मुगलपुर' पड़ा। उन्होंने इस्लाम धर्म स्वीकार किया और वे नौ-मुसलिम अर्थात् नये मुसलमान कहलाने लगे।

**अलाउद्दीन का देवगिरि पर हमला (सन १२९४ ई०)**—सुलतान जलालुद्दीन का भतीजा और दामाद अलाउद्दीन, जो कड़े का सूबेदार था, बड़े हौसले का आदमी था। दक्षिण मे यादवो की राजधानी देवगिरि के अपार धन और ऐश्वर्य की कहानियाँ सुनकर उसने उसे लूटने का निश्चय किया। इस इरादे का उसने अपने चचा तथा ससुर सुलतान जलालुद्दीन को कुछ भी पता न लगने दिया और यह बहाना करके कि वह मालवा पर चढ़ाई करना चाहता है सुलतान से दक्षिण की ओर जाने की आज्ञा प्राप्त करली। सन् १२९४ ई० में ८००० सवारो के साथ उसने देवगिरि के हिन्दू राजा रामचन्द्र पर चढ़ाई की और उसे पूर्ण रीति से पराजित किया। रामचन्द्र को सन्धि करनी पड़ी। अलाउद्दीन ने उससे एलिचपुर लेकर दिल्ली के साम्राज्य मे मिला लिया और कई मन सोना, मोती तथा अन्य बहुमूल्य चीजें और बहुत-से हाथी-घोड़े हरजाने के रूप में वसूल किये। इस बड़ी विजय के बाद अलाउद्दीन अपने सूबे को लौट आया।

**जलालुद्दीन का क़त्ल**—अलाउद्दीन की दक्षिण की विजय का समाचार पाकर सुलतान बहुत प्रसन्न हुआ। वह स्वय उसका स्वागत करने के लिए कड़े की ओर चल दिया। स्वामि-भक्त अहमद चप ने वहाँ न जाने का आग्रह किया। परन्तु सुलतान ने उसकी बात पर कुछ भी ध्यान न दिया। उधर अलाउद्दीन अपने चचा का वध करके राजसिंहासन छीन लेने का पहले ही से निश्चय कर चुका था।

एक क़िले पर मुग़ल-सेना का आक्रमण

जिस समय सुलतान और अलाउद्दीन कड़े में गगा के आमने-सामने के किनारो से आकर एक नाव में मिले, अलाउद्दीन ने सकेत किया और सुलतान का सिर उसके धड से अलग कर दिया गया। उसके सभी साथी कत्ल कर दिये गये। लोगो को यह दिखाने के लिए कि सुलतान वास्तव में मारा गया, अलाउद्दीन ने उसका सिर भाले में छेदकर लश्कर में घुमाया। १६ जुलाई सन् १२६६ ई० को अलाउद्दीन दिल्ली की गद्दी पर वैठा और सर्दारो तथा अमीरो ने उसकी अधीनता स्वीकार की।

अलाउद्दीन ख़िलजी (१२६६-१३१६ ई०)—अलाउद्दीन वादशाह तो हो गया परन्तु अभी उसकी स्थिति ठीक न थी। जलाली सर्दारो ने शीघ्र जलालुद्दीन के वेटो का पक्ष लिया और उनमें से एक को रुकनुद्दीन के नाम से गद्दी पर विठाया। उसने अलाउद्दीन को दिल्ली की ओर आने से भरसक रोकने का प्रयत्न किया, परन्तु थोडे ही समय के वाद उसके सहायको ने उसे धोका देना शुरू किया और उनमे से वहुत से अलाउद्दीन से जा मिले। रुकनुद्दीन मुलतान की ओर भाग गया और अलाउद्दीन ने वडी धूम-धाम के साथ दिल्ली नगर में प्रवेश किया। उसने रुकनुद्दीन के साथियो का धन और जागीरें छीन ली और उन्हें कत्ल करा दिया।

गुजरात की विजय (१२९७ ई०)—दिल्ली में अपनी स्थिति सँभालने के वाद अलाउद्दीन ने देशो को जीतने की इच्छा की। सन् १२९७ ई० में उसने अपने सेनापति उलुग खाँ और नुसरत खाँ को गुजरात के वघेल राजा कर्ण के विरुद्ध भेजा। राजा कर्ण रणक्षेत्र से भाग गया और उसने देवगिरि के राजा रामचन्द्र के यहाँ जाकर शरण ली। उसकी रानी कमलादेवी को शत्रुओ ने गिरफ्तार कर लिया। अन्हलवाड और खम्भात दोनो शहर खूब लूटे गये। नुसरत खाँ ने खम्भात की लूट में अपार धन प्राप्त किया और काफ़ूर नाम के एक गुलाम को १००० दीनार में खरीदा। इसी कारण

उसका नाम काफ़ूर हज़ार दीनारी (एक हज़ार दीनारवाला) पड़ा। काफ़ूर को आगे चलकर राज्य में बड़ा उच्च पद मिला और उसने अलाउद्दीन के लिए अनेक देश जीते।

**मुग़लों के आक्रमण**—यद्यपि मुग़ल भारत के किसी भी भाग को जीतकर उस पर अपना अधिकार स्थापित न कर सके तो भी उन्होंने आक्रमण करना बन्द नहीं किया। अलाउद्दीन के समय मे उनके आक्रमण साम्राज्य के लिए अनिष्टकारी प्रतीत होने लगे और उन्हें रोकने के लिए विशेष रूप से तैयारी करनी पडी। सन् १२९८ ई० मे मुगलो का सर्दार कुतुलुगख्वाजा मार्ग के देशो को लूटता हुआ भारतवर्ष पर चढ आया। आस-पास के लोगो ने भाग कर दिल्ली में शरण ली और कहा जाता है कि शहर में इतनी भीड हुई कि मसजिदो में भी जगह नही मिली। सुलतान की सेना ने फौरन मुग़लो का सामना किया और उन्हें देश से बाहर खदेड दिया। सन् १३०४ ई० में अलीबेग और ख्वाजाताश के सेनापतित्व में मुगलो ने फिर भारत पर चढाई की किन्तु इस बार भी वे हार गये और उन्हें बडी हानि उठानी पडी। मुगलो का अन्तिम आक्रमण सन् १३०७-८ ई० में इक़बालमदा की अध्यक्षता मे हुआ परन्तु फिर उनकी हार हुई और सीमान्त-प्रदेश को सुरक्षित रखने के लिए अलाउद्दीन ने उसी नीति से काम लिया जिस नीति से बलबन काम लेता था। उसने एक विशाल सेना का सगठन किया। सभी पुराने किलो की मरम्मत कराई और मुगलो के मार्ग में पडनेवाले स्थानो में नये किले बनवाये। इन क़िलो को उसने अनुभवी सेनानायको के सुपुर्द किया। उत्तर मे दिपालपुर की चौकी पर गाज़ी मलिक नियुक्त किया गया। वह जाडे के दिनो मे प्रतिवर्ष मुग़लों का सामना करने के लिए फ़ौज लेकर जाता था और उन्हें बडी हानि पहुँचाया करता था। यही ग़ाज़ी मलिक आगे चल कर सुलतान गयासुद्दीन तुगलक़ के नाम से दिल्ली का बादशाह हुआ। अलाउद्दीन के इस प्रबन्ध का

परिणाम यह हुआ कि जब तक वह जीवित रहा तब तक मुगलो ने फिर भारत पर आक्रमण करने का साहस नही किया और देश में शान्ति रही।

**अलाउद्दीन और नये मुसलमान**—पहले कह चुके है कि कुछ मुगलो ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था और वे दिल्ली के पास अपनी बस्ती बनाकर रहने लगे थे। ये नये मुसलमान बराबर असन्तुष्ट और अधीर रहा करते थे क्योकि राज्य में इन्हें ऊँचे पद नही मिलते थे। अलाउद्दीन उनसे अप्रसन्न हो गया और उसने सबको राज्य की नौकरी से अलग कर दिया। इस पर मुगलो ने सुलतान के मार डालने के लिये षड्यन्त्र रचा परन्तु किसी प्रकार इसका पता लग गया। सुलतान ने भयंकर बदला लिया। एक-एक करके नये मुसलमान मार डाले गये और कुल मिला कर दो-तीन हजार आदमी कत्ल करा दिये गये। उनकी स्त्रियाँ और बच्चे उनका वध करने-वालो को दे दिये गये। यह कहना पड़ेगा कि खिलजी-वंश के बाद-शाहो का शासन निस्सदेह महा कठोर था।

**अलाउद्दीन के हौसले**—अपने शासन-काल के प्रारम्भिक भाग में अनेक सफलताएँ पाने के कारण अलाउद्दीन की आकाक्षाएँ बहुत बढ़ गईं। उसने मुहम्मद साहब की तरह स्वयं एक नया धर्म चलाने और देशो को जीतकर मैसीडोनिया के सिकन्दर महान् की तरह विश्व-विजयी होने की इच्छा की। इस मामले में उसने दिल्ली के मोटे कोतवाल अलाउलमुल्क से परामर्श किया। कोतवाल ने सुल-तान को धार्मिक मामलो मे हाथ डालने के लिए मना किया और समझाया कि धर्म का प्रचार केवल पैगम्बरो का काम है। बादशाहो के लिए धर्म के मामलो में हस्तक्षेप करना सर्वथा अनुचित है। सुलतान के दूसरे इरादे के सम्बन्ध में उसने कहा कि यह सच है कि बादशाहो की प्रतिष्ठा देश जीतने ही से बढती है। परन्तु दिल्ली की स्थिति इस समय ठीक नही है। मुग़लो के बार-बार हमला करने

और लूट-मार से प्रजा निर्धन तथा दुखी हो रही है। उधर सुलतान की अनुपस्थिति में राज्य का काम-काज ठीक रखनेवाला कोई सुयोग्य मन्त्री भी नही है। इसके अलावा हिन्दुस्तान में ही रणथम्भौर, मेवाड, चन्देरी, मालवा आदि स्थान अभी जीतने को वाकी हैं। फिर वाहरी देशो की विजय किस प्रकार हो सकती है? सुलतान ने कोतवाल की बात मान ली और विश्वविजयी होने का इरादा छोड दिया, यद्यपि अपने सिक्को पर वह अपने नाम के साथ 'द्वितीय सिकन्दर' शब्द वरावर खुदवाता रहा। दिल्ली के सुलतानो में किसी ने अब तक ऐसी इच्छा नही की थी। अलाउद्दीन पहला ही वादशाह है जिसने एक विस्तीर्ण साम्राज्य वनाने का इरादा किया।

उत्तरी भारत में साम्राज्य का विस्तार—सवसे पहले अलाउद्दीन ने सन १२९९ ई० मे रणथम्भौर के प्रसिद्ध किले पर आक्रमण किया। राजपूतो ने डटकर मुसलमानो का सामना किया और उनके छक्के छुडा दिये। इस पर अलाउद्दीन स्वयं एक वडी फौज लेकर रणथम्भौर पहुँचा और सन् १३०१ ई० में उसने किले को जीतकर अपने एक सवेदार को सुपुर्द कर दिया। इसके वाद उसने मेवाड पर चढ़ाई की। कहा जाता है कि सुलतान मेवाड के राजा रत्नसिंह की रानी पद्मिनी को, जो भारत मे अपने सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध थी, लेना चाहता था। यह वात सत्य हो या न हो, इसमे सदेह नही कि आक्रमण वडे जोर का हुआ और सन १३०३ ई० मे एक भयकर युद्ध के वाद राजपूत पराजित हुए और किले पर मुसलमानों का अधिकार स्थापित हो गया। सुलतान अपने वडे वेटे खिज्र खाँ को चित्तौड का किलेदार वना कर दिल्ली लौट आया।

इसके वाद माँडू, उज्जैन और चन्देरी के राजाओ पर चढाई की गई। व एक के वाद एक युद्ध मे पराजित हुए और अलाउद्दीन का आधिपत्य स्वीकार करने पर विवश किये गये। इस प्रकार सन् १३०५ ई० के अन्त तक सारा उत्तरी भारत अलाउद्दीन के अधिकार में आ गया।

दक्षिण की विजय—सम्पूर्ण उत्तरी भारत को अपने अधिकार में कर लेने के वाद अलाउद्दीन ने दक्षिण-विजय की ओर ध्यान किया। विन्ध्याचल-पर्वत, गहरी खाइयाँ, सघन जगल और नदियो से अलग किये हुए दक्षिणी प्रदेशो पर चढाई करनेवाला यह पहला ही मुसलमान वादशाह था। दूर होने के अतिरिक्त देश की भौगोलिक परिस्थिति और वहाँ के हिन्दू राजाओ की शक्ति तथा सम्पत्ति ने अलाउद्दीन के लिए दक्षिण की विजय वहुत कठिन वना दी। परन्तु अलाउद्दीन कठिनाइयो मे घवडाकर आरम्भ किये हुए कार्य को छोडनेवाला न था।

इस समय दक्षिण में पाँच प्रसिद्ध और शक्तिशाली राज्य थे। पहला राज्य देवगिरि के यादव राजाओ का था। उसकी राजधानी देवगिरि थी और वहाँ राजा रामचन्द्र (१२७१-१३०९ ई०) राज्य कर रहा था। रामचन्द्र यादव वडा प्रतिभाशाली राजा था। दूसरा प्रसिद्ध राज्य काकतीय-वश का था। तेलगाना देश इस राज्य में शामिल था और वरगल उसकी राजधानी थी जो आजकल निज़ाम राज्य के अन्तर्गत है। प्रतापरुद्रदेव प्रथम तेलगाना का राजा था। यादवो और काकतीयो के राज्यो की सीमा एक ही थी, इस कारण उनमें प्राय युद्ध हुआ करता था।

तीसरा प्रसिद्ध वश होयसल राजाओ का था। वे लोग जिस भू-भाग पर राज्य करते थे वह आजकल मैसूर राज्य के अन्तर्गत है। उनकी राजधानी द्वार-समुद्र थी। इस समय होयसल-वश का राजा वीर वल्लाल था जो १२९१-९२ ई० में गद्दी पर वैठा था।

चौथा प्रसिद्ध राज्य पाण्ड्य वश का था जिसकी राजधानी मदुरा में थी। जिस देश में पाण्ड्यो का राज्य था उसे मुसलमान इतिहासकारो ने मावर लिखा है। कुलशेखर प्रथम (१२६८-१३११ ई०), जो इस समय उनका राजा था, वडा योग्य एव प्रभावशाली था। उसके शासन-काल में विदेशो के साथ व्यापार उन्नत हुआ और राज्य की शक्ति भी वहुत वढ गई। पांचवां राज्य चेर-वश का था। चोल-

वंश का पतन होने पर इसका अभ्युदय हुआ था। राजा रविवर्मन् के समय में चेर-राज्य का प्रभाव बढ़ गया। उसने चोल और पाण्ड्य राजाओं को युद्ध में पराजित किया।

दक्षिण के इन शक्तिशाली राज्यों का अलाउद्दीन को कुछ भी भय न हुआ। सबसे पहले उसके ग़ुलाम सेनापति काफ़ूर ने देवगिरि पर चढ़ाई की। राजा रामचन्द्र ने बहुत दिनों से दिल्ली कर नहीं भेजा था, इसलिए उसे यह सजा दी गई। राजा युद्ध में हार गया और उसका सारा देश उजाड़ दिया गया। उसने संधि की प्रार्थना की। काफ़ूर ने उसे दिल्ली भेज दिया और वहाँ उसके साथ शिष्टता का व्यवहार किया गया। सुलतान ने उसे 'राय रायान' की पदवी देकर अपने देश को लौटा दिया।

सन् १३०९ ई० में काफ़ूर ने तेलगाना के काकतीय राजा पर चढ़ाई की। प्रतापरुद्रदेव ने बहादुरी से मुसलमानों का सामना किया किन्तु उसकी हार हुई। उसने संधि की प्रार्थना की और काफ़ूर ने उसकी सारी सम्पत्ति ले कर उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। सन् १३१० ई० में काफ़ूर एक हज़ार, खज़ाने से लदे हुए, ऊँटों के साथ दिल्ली वापस आया।

देवगिरि और वरंगल की विजय के बाद अलाउद्दीन का अभिमान कई गुना बढ़ गया। उसने १३१० ई० में काफ़ूर को होयसल और पाण्ड्य राजाओं के विरुद्ध एक बड़ी सेना के साथ रवाना किया और देवगिरि और वरंगल के राजाओं ने भी उसकी मदद की। दिल्ली की सेना की शक्ति को देखकर राजा बल्लाल डर गया और उसने सन्धि की चर्चा की। काफ़ूर ने उसका सारा धन माँगा। राजा बल्लाल इसके लिए भी तैयार हो गया और अपनी सम्पत्ति देकर काफ़ूर से सन्धि कर ली। होयसल राजा से निपट कर काफ़ूर पाण्ड्य देश की ओर बढ़ा। पाण्ड्य राजा का भाई उससे लड़कर दिल्ली-दर्बार में चला गया था। यही काफ़ूर की चढ़ाई का बहाना हुआ।

दोनो सेनाओ में युद्ध हुआ। राय की सेना हार गई। विजयी काफूर पाण्ड्य राज्य को पराजित कर रामेश्वरम् तक पहुँच गया। वहाँ उसने प्राचीन मंदिर की जगह एक मसजिद बनाई। दक्षिण से वह सन् १३११ ई० मे लौटकर दिल्ली आया। चेर अथवा केरल राजा भी पराजित हुए और उन्होने सुलतान का आधिपत्य स्वीकार कर लिया।

रामचन्द्र की मृत्यु के बाद उसके बेटे शकरदेव ने दिल्ली कर भेजना बन्द कर दिया था। राजा शकरदेव अपने बाप से अधिक पराक्रमी और स्वाभिमानी था। इस बार फिर काफूर उसके विरुद्ध भेजा गया। युद्ध मे सन् १३१२ ई० में शकरदेव की मृत्यु हो गई। देवगिरि को मुसलमानी साम्राज्य मे मिलाने के बाद सारा दक्षिणी भारत विजयी काफूर की मुट्ठी मे आगया। अब अलाउद्दीन का साम्राज्य उत्तर मे दिपालपुर और लाहौर से दक्षिण मे मदुरा और द्वार-समुद्र तक, और पूर्व में बगाल से पश्चिम में सिन्ध और गुजरात तक फैल गया।

**दक्षिण के राज्यो के प्रति की सुलतान की नीति**—अलाउद्दीन दक्षिण के राज्यो को साम्राज्य में नही मिलाना चाहता था। उसकी इच्छा केवल उनके इकट्ठे किये हुए खजाने को ही लेने की थी। उसे एक विशाल सेना रखने तथा विद्रोहो का दमन करने के लिए धन की बड़ी आवश्यकता थी। इसका प्रमाण यह है कि सुलतान ने काफूर को हिदायत कर रक्खी थी कि साम्राज्य के लिए इतना ही काफी है कि पराजित राजा धन दें और उसका आधिपत्य स्वीकार करें। दक्षिणी राज्यो के साथ ऐसी ही नीति से काम लेना उपयक्त भी था। अलाउद्दीन ने यह अच्छी तरह समझ लिया था कि दिल्ली में बैठकर ऐसे दूर देशो का शासन-प्रबन्ध करना असम्भव है।

**शासन-प्रबन्ध**—वीर सिपाही और कुशल सेनाध्यक्ष होने के अतिरिक्त अलाउद्दीन एक प्रतिभाशाली शासक भी था। षड्यन्त्र

और राजद्रोह को अच्छी तरह दवाने के लिए उसने कठोर नियम जारी किये। राज्य की ओर से धार्मिक कामो के लिए वक्फ़ की हुई यानी बे लगानी ज़मीन उसने ज़ब्त कर ली। दोआब मे उसने पैदावार का ५० प्रति सैकडा ज़मीन पर कर लगाया और गाँव के नम्बरदारो से सख़्ती के साथ वसूली कर लेने के लिए उसने आमिलो (कलेक्टरो) को नियुक्त किया। इसके अतिरिक्त उसने मवेशियो पर चराई का कर लगाया। मकानो पर भी टैक्स लगाया गया। राज्य में बहुत से गुप्त-चर अर्थात जासूस थे जो सभी ज़रूरी घटनाओ और गुप्त वातो की खबर बादशाह को देते थे। राज्य की ओर से शराव पीने की सख्त मनाही थी। सुलतान की आज्ञा से, शहर के बाहर, वदायूं दर्वाज़े के करीब, एक वडा कुँआ खोदा गया था जिसमें शराव के क्रय-विक्रय करनेवाले सभी लोग पकडे जाने पर फेंक दिये जाते थे। अमीरो को अपने घरो में जलसे करने की मनाही कर दी गई और हुक्म दिया गया कि बिना सुलतान की अनुमति के वे लडके-लडकियो का विवाह न करें।

देश मे विद्रोह को शान्त करने तथा मुग़लो के आक्रमण को रोकने के लिए अलाउद्दीन को एक वडी मेना रखने की आवश्यकता हुई। परन्तु खाद्य पदार्थ, वस्त्र आदि जीवन की बहुत ज़रूरी चीज़ो के अतिरिक्त कुछ शौक की चीज़ो का भी निर्ख कम किये बिना अलाउद्दीन के लिए भी एक वडी सेना का रखना कठिन था। इस-लिए सुलतान ने वाज़ार की परिस्थिति को सँभालने के लिए कुछ नियम वनाकर सभी चीज़ो का भाव निश्चित कर दिया *।

अलाउद्दीन के सिक्के

* अलाउद्दीन के समकालीन इतिहास-लेखक ज़ियाउद्दीन बर्नी ने चीज़ो का भाव इस प्रकार दिया है—

गुलामो और मवेशियो का दाम भी निश्चित कर दिया गया था। एक खूबसूरत गुलाम बालक का दाम ३० तनका* तक और दूध देनेवाली गाय का २ या ३ तनका होता था। सुई, कघी, जूते और प्याली जैसी छोटी-छोटी चीज़ो तक का दाम सुलतान ने निश्चित कर दिया था। दोआब की मालगुज़ारी पैदावार के रूप में वसूल की जाती थी और इस प्रकार बहुत-सा अनाज सरकारी खत्तियो में जमा हो जाता था। सुलतान ने यह देखने के लिए, कि व्यापारी लोग उसके नियत किये हुए भाव से कम पर तो चीज़ें नही तौलते, ईमानदार अफसर नियुक्त कर दिये थे। यदि भाव मे ज़रा भी फर्क होता तो व्यापारी को कोडे लगाये जाते थे और कभी-कभी तो कम तौलनेवाले के शरीर से उतना ही गोश्त काट लिया जाता था।

---

| | | |
|---|---|---|
| गेहूँ | प्रति मन | ७½ जीतल |
| जौ | ,, | ५ ,, |
| धान | ,, | ५ ,, |
| उर्द | ,, | ५ ,, |
| चना | ,, | ५ ,, |
| मोठ | ,, | ५ ,, |
| शक्कर | प्रति सेर | १½ ,, |
| गुड़ | ,, | १⅓ ,, |
| घी | २½ सेर | १ ,, |
| तेल | ३ सेर | १ ,, |
| नमक | २½ सेर | ५ ,, |

उस समय का मन आजकल के मन के १४ सेर के लगभग होता था और एक जीतल का मूल्य वर्तमान १½ पैसे से कुछ अधिक था।

* एक तनका मूल्य में आजकल के रुपये से कुछ अधिक होता था।

सुलतान स्वय कभी-कभी इस बात की जांच करने निकलता था कि नियत भाव से कम पर तो चीजें नही बेची जा रही हैं। शहरो तथा देहातो के सभी व्यापारियो के नाम सरकार के दफ्तर में दर्ज थे। उन्हें अपना नाम दर्ज कराते समय राज्य से इस बात का इकरार करना पडता था कि वे निश्चित भाव पर ही चीजें बेचेंगे। हिन्दू मुसलमान मे भेद नही किया जाता था। वदायूं दर्वाज़े के समीपवाले मैदान का नाम 'सराय-अदल' रक्खा गया। वही पर सब सौदागर अपना-अपना सामान लेकर बेचने आया करते थे। मुलतानी व्यापारियो को व्यापार करने के लिए सरकारी खज़ाने से रुपया भी उधार दिया जाता था। बाज़ार के दीवान की आज्ञा लिये बिना कोई मनुष्य बहुमूल्य चीज़ें नहीं खरीद सकता था। खाने-पीने और दूसरी तरह की चीज़ो की कीमत सस्ती होने ही के कारण सुलतान की सेना में ५ लाख घुडसवार हो गये थे। अपने सिपाहियो और अमीरो को धोखा देने से रोकने के लिए उसने घोडो को दागने का नियम बनाया। अला-उद्दीन के बनाये हुए नियम अत्यत कठोर थे। इनका अधिक काल तक चलना कठिन था। उसकी मृत्यु होते ही सब नियम ढीले पड गये और लोग फिर पुराने रास्ते पर चलने लगे।

**राजत्व का आदर्श**—अलाउद्दीन के राजत्व के आदर्श के सम्बन्ध में कुछ जानना ज़रूरी है। अलाउद्दीन के पहले सुलतान कुरान शरीफ और हदीस के नियमो पर चलते थे और राज्य के मामलो में धर्म के आचार्यों से परामर्श करते थे। बात असल में यह थी कि वह ऐसा युग था जिसमें धर्म के आगे राजनीति कोई चीज़ नहीं समझी जाती थी। बादशाहो को सलाह देनेवाले प्राय मुल्ला मौलवी लोग ही होते थे। वे उन्हें हमेशा इस्लामी क़ानून का अनुसरण करने का आदेश करते थे। परन्तु अलाउद्दीन ने एक नया सिद्धान्त निकाला। उसने मुल्लाओ का निर्देश स्वीकार करने से इनकार कर दिया और साफ-साफ कह दिया कि उसकी समझ में राज्य के लिए जो बाते

अलाउद्दीन का साम्राज्य
काबुल
पंजाब
लाहौर
दिपालपुर
मुलतान
उच्छ
दिल्ली
मेवात
जैसलमेर
अजमेर
रणथम्भौर
सिन्ध
ठट्टा
चित्तौड़
चन्देरी
मालवा
प्रयाग
नागौर
कड़ा
अवध
अन्हलवाड़
गुजरात
भिलसा
उज्जैन
धार
नर्मदा
देवगिरि
वारंगल
तैलंगाना
कृष्णा
द्वारसमुद्र
मदुरा
रामेश्वर
लखनौती
गौड़
बंगाल
अरब सागर
बंगाल की खाड़ी
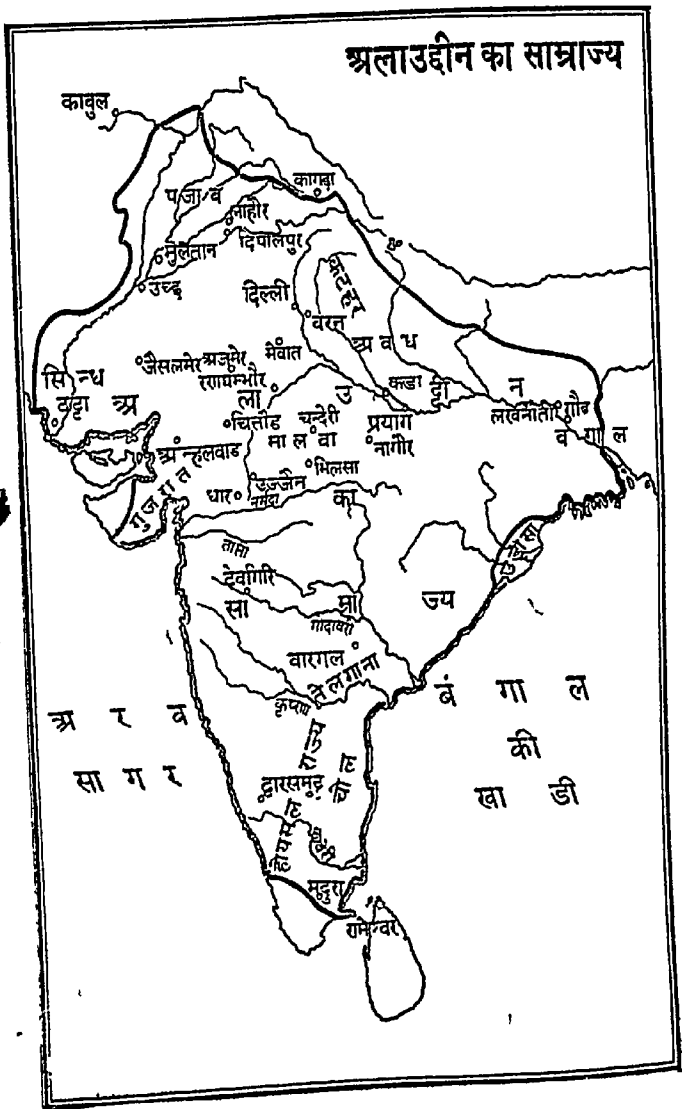
समयानुकूल और हितकर होगी उन्हें वह, किसी की सलाह लिये बिना, करेगा। इस प्रकार अलाउद्दीन के इस नये कार्य-क्रम ने राजनीति मे एक विशेष परिवर्तन कर दिया। राज्य की नीति धर्म से भिन्न हो गई। अलाउद्दीन ने कठोर दण्ड जरूर दिये परन्तु धार्मिक कट्टरता इनका कारण न थी, राज्य का हित ही उसका प्रधान लक्ष्य रहता था।

**अलाउद्दीन की मृत्यु**—अधिक शराब पीने और अनियमित रूप से जीवन व्यतीत करने के कारण अलाउद्दीन का स्वास्थ्य बिगड गया और लाचार होकर उसे राज्य का काम-काज बन्द कर देना पडा। उसका पारिवारिक जीवन भी सुखमय न था। उसकी स्त्री और लडके उसकी कुछ भी पर्वाह न करते थे। स्वामि-भक्त सेवको ने भी अपनी शक्ति बढाने के लिए षड्यन्त्र रचना आरम्भ कर दिया था। धीरे-धीरे सुलतान के कमजोर होते ही चारो ओर विद्रोह की आग भडकने लगी। गुजरात, मेवाड और देवगिरि के राजाओ ने विद्रोह का झडा खडा कर दिया। एक साथ ही इतनी कठिनाइयाँ उपस्थित हो जाने के कारण सुलतान कुछ भी न कर सका। उसका स्वास्थ्य दिन पर दिन बिगडता गया। अन्त में २ जनवरी सन् १३१६ ई० को उसकी मृत्यु हो गई।

**अलाउद्दीन का चरित्र**—अलाउद्दीन मनमानी करनेवाला निरकुश शासक था। वह अपने शत्रुओ पर जरा भी दया नही करता था और अपराधियो को अत्यत कठोर दड देता था। वह एक साहसी, वीर और पक्के इरादेवाला मनुष्य था। सेनाध्यक्षो मे वह अग्रगण्य था। अपने बाहुबल से ही उसने ऐसे विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी जिसमें लगभग सारा देश शामिल था। उसने मुगलो के आक्रमणो से देश की रक्षा की और शासन की ऐसी सुव्यवस्था की कि राज्य के कर्मचारी किसानो से एक कौडी भी अधिक नही ले सकते थे। परन्तु बाजार का प्रबन्ध करने और चीजो का निर्ख स्थिर करने में उसने अर्थशास्त्र के नियमो की ओर कुछ भी ध्यान न दिया।

इसका परिणाम यह हुआ कि सब नियम रद हो गये। यद्यपि अलाउद्दीन स्वय पढ़ा-लिखा नही था परन्तु विद्वानो और साधुओ का आश्रयदाता था। वह उन्हे जमीन और वजीफे देता था। अपनी विजयो और शासन-प्रबन्ध के कारण अलाउद्दीन की गणना भारतीय इतिहास के महान् शासको मे होती है।

**खिलजियो का पतन**—अलाउद्दीन की मृत्यु होते ही निरकुश शासन के दोष जोरो से प्रकट होने लगे और चारो ओर अशान्ति फैल गई। ऐसे शासन में सदा यह देखा गया है कि जब कोई योग्य एव प्रतिभाशाली मनुष्य राज्य-प्रबन्ध करने के लिए नही रहता तो सब काम-काज अव्यवस्थित हो जाता है। अलाउद्दीन ने जिन अमीरो और सुलतानो को अपने बल और धाक से दबा लिया था, समय पाते ही वे फिर अपनी पहले की शक्ति प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करने लगे। हिन्दू राजा और जमीदार, जिनके कर बढा दिये गये थे और जिनसे मन्त्री ने खूब रुपया वसूल किया था, इस कठोर शासन के अन्त की प्रतीक्षा कर रहे थे। राज्य के बडे-बडे पदाधिकारियो से लेकर गाँव के पटवारी और मुकद्दमो तक के हृदय पर सुलतान के शासन का आतक जमा हुआ था। उसके मरने पर उन्होने बडी खुशियाँ मनाईं; क्योकि उन्हें रिश्वतखोरी से रोकनेवाला अब कोई नही रहा। व्यापारियो की चीजो के भाव नियत हो जाने के कारण बडी हानि हुई थी। उन्हें भी अब बडा सन्तोष हुआ। अलाउद्दीन के बेटे निकम्मे थे। इतने बडे साम्राज्य का शासन-प्रबन्ध करने की उनमें योग्यता ही नही थी। न तो उन्हे ठीक शिक्षा मिली थी और न राजकार्य का ही उन्हें कुछ व्यावहारिक ज्ञान था। ऐसी दशा में साम्राज्य का पतन अवश्यम्भावी था।

मलिक काफूर ने सुलतान के बडे बेटे शाहजादा खिज्र खाँ को हटाकर शहाबुद्दीन उमर को, जो केवल पाँच-छ वर्ष का बालक था, गद्दी पर बिठा दिया। उसकी इच्छा राज्य का सारा अधिकार अपने

हाथ मे लेने की थी। परन्तु ३५ दिन के बाद वह मार डाला गया और अमीरो न अलाउद्दीन के एक दूसरे बेटे मुबारक खाँ को गद्दी पर बिठाया। इस सुलतान ने मुस्तैदी के साथ शासन-काय आरम्भ किया। उसन सबसे पहले अपने बाप के बाजारी नियमो को रद्द कर दिया और कदियो को छोड दिया। अलाउद्दीन न जिन लोगो की जागीरे जब्त कर ली थी, उन्हें वे फिर से वापस दे दी गइ। दूर के सूबो मे अमन-चैन स्थापित हो गया। सन १३१८ ई० में देवगिरि का विद्रोही राजा हरपालदेव पकडा गया और सुलतान की आज्ञा से जीते-जी उसकी खाल खीची गई। परन्तु इस समय सुलतान हसन नाम के एक आदमी के प्रभाव में आ गया था। हसन गुजरात का रहनेवाला एक नीच जाति का हिन्दू था और मुसलमान हो गया था। सुलतान ने उसे खुसरो खाँ की उपाधि दी और राज्य का प्रधान मन्त्री नियुक्त किया।

मुबारक की प्रारम्भिक सफलताओ ने उसका आचरण चौपट कर दिया। वह बिल्कुल बेहयाई के साथ विलासिता में लिप्त हो गया। वह दिन-रात मसखरो और नीच प्रकृति के दुराचारी चापलूसों से घिरा रहता था और राज्य के बडे-बडे अमीरो का अपमान करता था। दरबार की ऐसी उच्छृखलता का शासन पर बहुत बुरा प्रभाव पडा। हाकिम विद्रोही होने लगे। खुसरो ने भी राज्य को हडप लेने का षड्यन्त्र रचा और अपन नीच कृत्य में वह सफल हुआ। एक दिन रात के समय अपने साथियों को लेकर वह महल में घुस गया और उसने सुलतान को क़त्ल कर डाला। उसके साथियो ने बेगमों की बेइज्जती की, बच्चो को मार डाला और शाही खजाने को लूट लिया।

इस प्रकार खुसरो ने अपने स्वामी तथा उसके बच्चो की हत्या कर राज्य प्राप्त किया। सन् १३१६ ई० में उसने अपने को खलीफ़ा का 'दाहिना हाथ' घोषित किया और दो वर्ष बाद 'पृथ्वी और आकाश में खुदा का खलीफा' की पदवी ग्रहण की। यह एक ऐसी विचित्र

घटना थी जो दिल्ली-राज्य के इतिहास में पहले कभी नही हुई थी। यह नही कहा जा सकता कि खुसरो ने सनक में आकर अथवा अपने व्यक्तिगत दुराचारो को छिपाने के लिए धर्म का यह आडम्बर रचा था।

खुसरो नासिरुद्दीन के नाम से दिल्ली के सिंहासन पर बैठा और उसने अमीरों को दरबार में हाजिर होने के लिए विवश किया। अमीरो ने उसकी आज्ञा का पालन किया। परन्तु फखरुद्दीन जूना, जो आग चलकर इतिहास में सुलतान मुहम्मद तुगलक के नाम से प्रसिद्ध हुआ, किसी तरह दिल्ली से निकलकर अपने बाप गाजी मलिक के पास दिपालपुर पहुँचा। वहाँ जाकर उसने सारा हाल कह सुनाया। गाजी मलिक को दिल्ली की दुर्घटनाओ का हाल सुनकर बहुत दुख हुआ। कई मुसलमान इतिहासकारो ने लिखा है कि खुसरो छिपा हुआ हिन्दू था और उसने मसजिदो मे मूर्तियाँ स्थापित की थी, परन्तु यह बात गलत है। गाजी मलिक एक बडी सेना लेकर, खिलजी-वश के साथ किये गये अत्याचारो और अपमानो का खुसरो से बदला लेने के लिए, दिल्ली की तरफ रवाना हुआ। खुसरो ने अपनी सेना एकत्र की और दोनो का 'इन्दरपत' के मैदान में सामना हुआ। युद्ध में खुसरो की सेना पराजित हुई। खुसरो रणक्षेत्र से भागकर कही जा छिपा परन्तु पकडा गया और उसका सिर काट लिया गया।

दिल्ली के हजारखम्भोवाले महल में सभी अमीरो और सरदारो ने गाजी मलिक का हार्दिक स्वागत किया परन्तु उसने राज्य लेने की विशेष इच्छा प्रकट नही की। सुलतान अलाउद्दीन के वश में अब कोई नही रहा था, इसलिए सभी अमीरो ने एकमत होकर गाजी मलिक को दिल्ली का बादशाह बनाया। गाजी मलिक ने उनकी बात मान ली और शासन-भार अपने हाथ में ले लिया। इस घटना से यह बात सिद्ध होती है कि मुसलमान राज्याधिकार देते समय मनुष्य की योग्यता

पर ध्यान देते थे। वे उसके कुल अथवा वंश की कुछ भी पर्वाह नही करते थे।

संक्षिप्त सन्‌वार विवरण

| | |
|---|---|
| मुग़लो का भारत पर आक्रमण . .. .. | १२९२ ई० |
| अलाउद्दीन की देवगिरि पर चढाई . .. | १२९४ ,, |
| जलालुद्दीन का कत्ल और अलाउद्दीन का गद्दी पर बैठना | १२९६ ,, |
| गुजरात की विजय . . .. .. | १२९७ ,, |
| कुतलग़ ख्वाजा की चढाई . .. .. | १२९८ ,, |
| रणथम्भौर का घेरा .. .. .. | १२९९ ,, |
| चित्तौर की विजय . .. .. | १३०३ ,, |
| अलीबेग और ख्वाजा ताश का आक्रमण .. .. | १३०४ ,, |
| इक़बालमन्दा का आक्रमण .. .. | १३०७—०८ ,, |
| तेलङ्गाना की विजय .. .. | १३०९ ,, |
| होयसल और पाण्ड्य राजाओ की पराजय .. .. | १३१० ,, |
| शङ्करदेव की मृत्यु . .. .. | १३१२ ,, |
| अलाउद्दीन की मृत्यु .. .. | १३१६ ,, |
| देवगिरि के हरपालदेव का क़ैद होना .. .. | १३१८ ,, |
| खुसरो द्वारा कुतुबुद्दीन मुबारक का क़त्ल .. .. | १३२० ,, |
| ग़ाज़ी तुग़लक का सुलतान होना .. .. | १३२० ,, |

# अध्याय १८

## तुग़लक़-वंश

### (१३२०-१४१२ ई०)

गयासुद्दीन तुगलक़ (१३२०-२५ ई०)—गयासुद्दीन जिस समय दिल्ली का सुलतान हुआ, साम्राज्य बिलकुल छिन्न-भिन्न हो रहा था। शाही खज़ाना खाली था। राज्य की धाक जाती रही थी। नये सुलतान ने मुस्तैदी के साथ तुर्की अमीरो को अपनी ओर मिला लिया और राज्य में फिर शान्ति स्थापित की। वृद्ध फीरोज़ खिलजी की भाँति वह भी धार्मिक किन्तु अमन-चैन का प्रेमी मुसलमान था। उसे सादगी पसन्द थी और प्रजा के हित का बडा ध्यान था। खुसरो ने लोगो को अपना साथी बनाने के लिए शाही खज़ाने का धन बाँट दिया था। इस धन को वापस लेने का गयासुद्दीन ने प्रयत्न किया। बहुत से लोगो ने रुपया लौटा दिया परन्तु शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया नामक दिल्ली के एक प्रसिद्ध फ़क़ीर ने ऐसा करने से इनकार कर दिया जिससे सुलतान उससे अप्रसन्न हो गया। इसके अतिरिक्त निज़ामुद्दीन की चाल-ढाल उसे बिलकुल पसन्द न थी। उसने उसके सूफी अनुयायियो का गाना बन्द करने की आज्ञा निकाली। किन्तु शेख़ भी एक प्रभावशाली व्यक्ति था। इस सम्बन्ध में विचार करने के लिए धार्मिक पुरुषो की एक सभा हुई जिसमें सूफी फकीरो का यह व्यवहार गैरकानूनी नही ठहराया गया। लोगो का यह हाल देखकर सुलतान चुप हो गया।

कुतुबुद्दीन और खुसरो के समय में शासन-प्रबन्ध अत्यन्त शिथिल हो गया था। गयासुद्दीन ने दाग की प्रथा फिर जारी की और सेना का सङ्गठन किया। खेती की हालत सुधारने के लिए उसने भरसक प्रयत्न

किया और अपने अफसरों को ताकीद की कि किसानों से अधिक कर न लिये जायँ। उसने पैदावार का आधा भाग राज्य का अंश निश्चित किया था, परन्तु उसकी मृत्यु के बाद इसमें कुछ कमी हो गई थी। ग़यासुद्दीन ने आज्ञा दी कि प्रजा पर पैदावार के दसवें या ग्यारहवें भाग से अधिक लगान न बढ़ाया जाय। लगान की सुव्यवस्था की गई और ठेकेदारों की निगरानी का भी उचित प्रबन्ध हुआ। हर साल बन्दोबस्त करने का रवाज बन्द किया गया। मुखियों और मुकद्दमों की हालत सुधर गई और वे आराम से रहने लगे। सूबेदारों को आज्ञा मिल गई कि वे अपने वेतन के अतिरिक्त थोड़ी सी आमदनी कर लें। परन्तु ऐसा न हो कि किसानों को किसी प्रकार की असुविधा हो।

देश में शान्ति स्थापित कर देने के बाद गयासुद्दीन ने तेलङ्गाना के काकतीय राजवंश की ओर ध्यान दिया। राजा ने दिल्ली-सुल्तान को कर भेजना बन्द कर दिया था। सुलतान ने अपने बेटे जूना खाँ को एक बड़ी सेना के साथ वरङ्गल भेजा परन्तु किला जीतने के पहले यह अफवाह फैल गई कि दिल्ली में सुलतान की मृत्यु हो गई है। शाहजादा जूना तत्काल दक्षिण से चल दिया परन्तु दिल्ली पहुँचकर उसने देखा कि सुलतान जीवित है। जूना खाँ ने किसी तरह अपना अपराध सुलतान से क्षमा कराया और सन् १३२३ ई० में वह फिर तेलङ्गाना की ओर चल दिया। युद्ध में काकतीय राजा की हार हुई और किले पर मुसलमानों का अधिकार हो गया। राजा का कुटुम्ब तथा उसकी सारी सम्पत्ति मुसलमानों के हाथ लगी। वरङ्गल का नाम बदलकर सुलतानपुर रक्खा गया और शासन-प्रबन्ध के लिए मुसलमान अफसर नियुक्त किये गये। बङ्गाल में बलबनी-वंश के एक शाहजादा नासिरुद्दीन ने अपने भाई के विरुद्ध सुलतान से सहायता की प्रार्थना की। सन् १३२४ ई० में सुलतान बङ्गाल को रवाना हुआ। युद्ध में नासिरुद्दीन का भाई बहादुर पराजित हुआ और कैद किया गया। पश्चिमी बंगाल की राजगद्दी नासिरुद्दीन को मिल गई।

ग्यासुद्दीन तुग़लक़ की कब्र
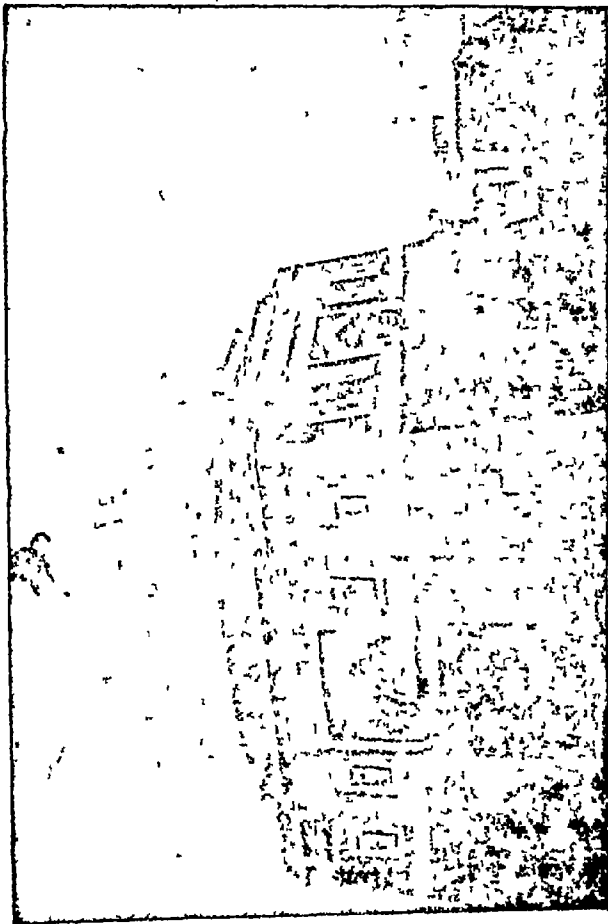
इधर राजधानी मे सुलतान की अनुपस्थिति से लाभ उठाकर उनके विरोधी दल ने एक भीषण षड्यन्त्र की तैयारी की। शाहज़ादा जूना राजसिंहासन पर बैठने के लिए अधीर हो रहा था। शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया उसका सहायक था। जिस समय सुलतान दिल्ली लौट रहा था, शाहज़ादा जूना ने दिल्ली से ६ मील की दूरी पर उसके स्वागत के लिए एक महल बनवाया। सुलतान आकर उस महल मे ठहरा। कहा जाता है कि इस महल को इस तरह बनाया गया था कि जूना ख़ाँ के सङ्केत करने पर सारी इमारत एकदम गिर पड़ी और सुलतान अपने एक दूसरे बेटे के साथ उसके नीचे दब कर मर गया। शेख़ औलिया की "हिनोज़ देहली दूरस्त" वाली भविष्य वाणी* सत्य सिद्ध हुई।

**मुहम्मद तुग़लक़ (१३२५-५१ ई०)**—अपने पिता गयासुद्दीन की मृत्यु के बाद शाहज़ादा जूना मुहम्मद तुगलक के नाम से दिल्ली की गद्दी पर बैठा। दिल्ली के सुलतानो मे वह सबसे अधिक विद्वान् और योग्य पुरुष था। उसकी स्मरण-शक्ति और बुद्धि अलौकिक थी और मस्तिष्क बड़ा परिष्कृत था। अपने समय की कला तथा विज्ञान का वह ज्ञाता था और बड़ी आसानी तथा ख़ूबी के साथ फारसी भाषा बोल और लिख सकता था। उसकी मौलिकता, वक्तृत्व और विद्वत्ता देखकर लोग दङ्ग रह जाते थे और उसे सृष्टि की एक अद्भुत चीज़ समझते थे। तर्कशास्त्र का वह बड़ा पण्डित था और उस विषय के प्रकाण्ड विद्वान् भी उससे शास्त्रार्थ करने का साहस नही करते थे।

वह अपने धर्म का पाबन्द था, परन्तु विधर्मियो पर अत्याचार नही करता था। वह मुल्लाओ और मौलवियो की राय की पर्वाह नही करता

---

* निज़ामुद्दीन औलिया से अप्रसन्न होकर सुलतान ने बङ्गाल से ख़बर भेजी थी कि दिल्ली पहुँचने पर शेख़ को दण्ड दिया जायगा। कहा जाता है कि यह बात सुनकर निज़ामुद्दीन ने अपने शिष्यो के सामने कहा था—"हिनोज़ देहली दूरस्त"—अर्थात् "अभी दिल्ली दूर है"।

था और प्राचीन सिद्धान्तो और परिपाटियो को आँख बन्द कर नही मानता था। उसने हिन्दुओ के साथ धार्मिक अत्याचार नही किया और सती की प्रथा को रोकने का प्रयत्न किया। वह न्याय करने में किसी की रू-रियायत नही करता था और छोटे बडे सबके साथ एक-सा बर्ताव करता था। विदेशियो के प्रति वह बडा औदार्य्य दिखलाता था। राज्य से उन्हें बडी-बडी जागीरे और ओहदे मिलते थे। परन्तु इन गुणो से मुहम्मद को कुछ लाभ नही हुआ। उसमें ठीक निश्चय तक पहुँचने की शक्ति की कमी थी और वह यह भी नही जानता था कि किस समय क्या करना चाहिए। उसे क्रोध जल्दी आता था और ज़रा-सी देर में वह आपे से बाहर हो जाता था। वह चाहता था कि लोग उसके सुधारो को शीघ्र स्वीकार कर लें। जब उसकी आज्ञा के पालन में आनाकानी होती अथवा विलम्ब होता था तो वह निर्दय होकर कठोर से कठोर दण्ड देने के लिए तैयार हो जाता था।

विद्वान् होने के साथ ही साथ मुहम्मद एक वीर सिपाही और कुशल सेनापति भी था। सुदूर प्रान्तो में कई बार उसने युद्ध में महत्त्वपूर्ण विजय प्राप्त की थी। कई आधुनिक इतिहास-लेखको ने उसे पागल और रक्त-पिपासु कहा है। परन्तु ऐसा कहने के लिए कोई प्रमाण नहीं है। अपने समकालीन लोगो को वह एक विचित्र आदमी मालूम होता था। उसमें भिन्न-भिन्न प्रकार के गुण तथा दोष मौजूद थे। वह कठोरहृदय होते हुए भी उदार था, अपने धर्म का पाबन्द होते हुए भी कट्टरता और पक्षपात से दूर रहता था और अभिमानी होते हुए भी उसका विनय प्रशसनीय था।

**साम्राज्य की सीमा**—गद्दी पर बैठने के कुछ ही वर्ष बाद सम्पूर्ण उत्तरी भारत तथा दक्षिण मुहम्मद के अधिकार में आ गया। उसका साम्राज्य उत्तर में लाहौर और दिल्ली से दक्षिण में द्वार-समुद्र तक; तथा पूर्व में बङ्गाल से पश्चिम में सिन्ध तक विस्तृत था। सारा राज्य २३ सूबो में विभक्त था जिनमें दिल्ली,
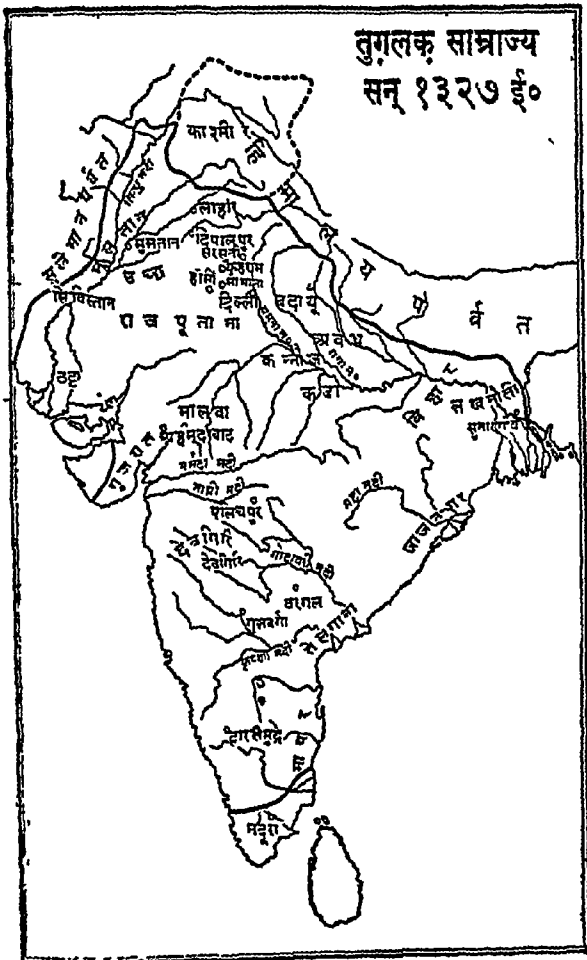
गुजरात, लाहौर, तिरहुत, लखनौती, कन्नौज, देवगिरि तथा मावर अधिक प्रसिद्ध थे।

**सुधारो की नवीन योजना—दोआबा में कर-वृद्धि**—सन् १३२६ ई० मे सिंहासनारूढ होते ही मुहम्मद ने दोआवे में कर वढा दिया। वास्तव में दोआवा एक उपजाऊ प्रदेश था और उससे राज्य को अच्छी मालगुज़ारी मिलने की सम्भावना थी, किन्तु दुर्भाग्य-वश जिस समय मुहम्मद ने दोआवे के किसानो का लगान वढाया उस समय वहाँ दुर्भिक्ष पड रहा था। किसान वेचारे लगान न दे सके और अफसरो के दुर्व्यवहार से वचने के लिए खेत छोडकर भाग गये। इस पर मुहम्मद के क्रोध का ठिकाना न रहा। उसने किसानो के साथ वडी क्रूरता का व्यवहार किया और वरन (आधुनिक वुलन्दशहर) के आसपास के ज़िलो के लोगो को महाकठोर दण्ड दिया। वास्तव में अकाल का समाचार मिलते ही सुलतान को कर में कमी कर देनी चाहिए थी परन्तु वह अपनी ज़िद पर अडा रहा। शीघ्र ही अफ़सरो की सख़्ती तथा दुर्भिक्ष की भयकरता के कारण प्रजा में हाहाकार मच गया और जव सुलतान ने इस दुर्दशा की ओर ध्यान दिया तव परिस्थिति क़ावू के वाहर हो गई।

**राजधानी का परिवर्तन**—लगभग इसी समय (१३२६-२७ ई०) मे सुलतान ने अपनी राजधानी दिल्ली से हटाकर देवगिरि ले जानी चाही। वास्तव में दिल्ली नगर, सुदूर उत्तर में होने के कारण, राजधानी के लिए उतना उपयुक्त न था। देवगिरि का शहर साम्राज्य के वीच में था। मुहम्मद ऐसी जगह चाहता था, जो साम्राज्य के भिन्न-भिन्न भागो से वरावर की दूरी पर हो। इसके अतिरिक्त वह समझता था कि दिल्ली से राजधानी हटाने मे अव कोई भय की वात भी नही थी क्योकि देश का उत्तरी भाग पूर्णतया अधीन हो चुका था और उत्तर-पश्चिम के कोने से मुगलो के आक्रमण का भय भी कम हो गया था। सुलतान ने पुरुष, स्त्री, वच्चे सवको देवगिरि के लिए रवाना करा दिया। देवगिरि

का नाम दौलतावाद रक्खा गया। रास्ते के कष्टों को दूर करने के लिए सुलतान ने यात्रियों की सुविधा का पूरा ध्यान रक्खा और उन्हें रुपया भी दिया। परन्तु लोगों ने इसे देश-निर्वासन ही समझा। परिणाम-स्वरूप इतना प्रयत्न करने पर भी सुलतान की योजना सफल न हुई। इस पर उसने फिर प्रजा को दिल्ली लौट जाने की आज्ञा दी। बहुत से लोग नैराश्य-ग्रसित होकर मर गये। सुलतान ने पुरानी राजधानी को एक बार फिर से आबाद करने की चेष्टा की परन्तु वह उसे पूर्ववत् सम्पन्न बनाने में असफल ही रहा।

**तांबे का सिक्का**—राजधानी हटाने में सुलतान को जो हानि हुई थी, उससे कई गुनी अधिक हानि तांबे के सिक्के चलाने से हुई। दोआबा में कर-वृद्धि से पैदा हुई हानि तथा राजधानी के हटाने के व्यय और सबसे अधिक सुलतान की उदारता के कारण शाही खज़ाने में से बहुत-सा रुपया निकल गया। परन्तु सुलतान की महान् अभिलाषाएँ तो अभी पूर्ण ही नही हुई थी। वह अपनी शक्ति की वृद्धि करके देशों को जीतने के लिए आतुर हो रहा था। खज़ाने की कमी को पूरा करने के अतिरिक्त तांबे के सिक्के चलाने का एक दूसरा कारण भी था। अब तक दिल्ली-साम्राज्य में सोने और चांदी के ही सिक्के चलते थे। अलाउद्दीन के शासन-काल में दक्षिण से दिल्ली में बहुत-सा सोना आने के कारण सोने-चांदी के मूल्य में बहुत फर्क आ गया था। इसके अलावा संसार में चांदी की कमी होने के कारण हिन्दुस्तान में भी चांदी कम हो गई। सिक्कों की वृद्धि करने के लिए सुलतान ने तांबे के सिक्के चलाये और सोने-चांदी के सिक्कों की तरह उन्हें स्वीकार करने की प्रजा को आज्ञा दी। इस नवीन योजना के कारण पहले तो प्रजा में बड़ी सनसनी फैली किन्तु टकसाल पर राज्य का सर्वाधि-

मुहम्मद तुग़लक़ का तांबे का सिक्का

कार न होने के कारण घर-घर में सिक्के बनने लगे। लोगो ने सोने-चाँदी के सिक्को को अपने घरो में छिपा लिया और राज्य का कर ताँबे के सिक्को में देना आरम्भ कर दिया। फलत व्यापार बन्द हो गया और राज्य को बडी हानि हुई। सुलतान प्रजा को धोखा देना नही चाहता था। जब उसने अपनी योजना को विफल होते देखा तो ताँबे के सिक्को का चलन बन्द कर दिया और हुक्म दिया कि जो चाहे ताँबे के सिक्को के बदले में सोने-चाँदी के सिक्के बदल ले जाय। देश के कोने-कोने से हज़ारो लोग आकर ताँबे के घटिया सिक्को के बदले मे शाही खज़ाने से सोने-चाँदी के सिक्के ले गये। तुगलकाबाद के पास ताँबे के सिक्को का ढेर लग गया, सुलतान को बडी निराशा हुई और प्रजा असन्तुष्ट हो गई।

शासन-प्रबन्ध—मुहम्मद स्वेच्छाचारी था परन्तु उसकी चित्तवृत्ति उदार थी। शासन-प्रबन्ध के सम्बन्ध में वह धर्माधिकारियो को जरा भी हस्तक्षेप नही करने देता था और हिन्दुओ के प्रति उसका व्यवहार अन्य सुलतानो की अपेक्षा अधिक निष्पक्ष और सौजन्य-पूर्ण था। वह बडा न्याय-प्रिय था। शासन के छोटे-बडे सभी कामो की स्वय देख-भाल करता था और फकीर तथा गृहस्थ सभी को न्याय की दृष्टि से समान समझता था। सुलतान की आज्ञा से अदालतो मे उसका भाई भी काज़ी के साथ बैठता था और शक्तिशाली अमीरो को कानून तोडने पर कडा दण्ड दिलवाने का विधान करता था। देश में उच्च श्रेणी की योग्यता का अभाव होने के कारण सुलतान विदेशियो को बडे-बडे ओहदे देता था। इसी कारण तुर्किस्तान, ईरान, खुरासान तथा एशिया के अन्य प्रदेशो से योग्य पुरुष उसके दरबार में आते और सम्मान पाते थे। उनके द्वारा राज्य का लाभ तो होता था परन्तु साथ ही उनका महत्त्व बढाने का एक घातक परिणाम भी था। प्राय वे अपना प्रभाव बढाने की चेष्टा करते थे और राज्य की सारी शक्ति को अपने हाथ में रखना चाहते थे। उनके षड्यन्त्रो के कारण कभी-कभी साम्राज्यो में उपद्रव भी उठ खड़े होते थे।

शासन के अतिरिक्त राज्य का ध्यान और भी उपयोगी कार्य्यों की ओर रहता था। व्यापार और कारीगरी को यथेष्ट प्रोत्साहन मिलता था। राज्य की ओर से दस्तकारी का अलग विभाग स्थापित था। सरकारी कारखानों में राजवंश के लोगों और अमीरो की पोशाकें और सामान तैयार होते थे।

दुर्भिक्ष का प्रबन्ध—जैसा कि पहले कहा जा चुका है, मुहम्मद के गद्दी पर बैठने के कुछ ही समय बाद दोआबे में भयङ्कर अकाल पड़ा था। एक मुसलमान इतिहास-लेखक का कहना है कि उसके कुछ ही वर्ष बाद फिर एक भयङ्कर अकाल पड़ा जो सात वर्ष तक रहा। दिल्ली में एक सेर अनाज सोलह-सत्रह जीतल का मिलने लगा। चारो ओर हाहाकार मच गया। कहते है कि क्षुधा-पीड़ित मनुष्य मनुष्य का मांस तथा चमड़ा उबालकर खा जाते थे। प्रजा की रक्षा के विचार से सुलतान अपना दर्बार दिल्ली से हटाकर फ़र्रुखाबाद ज़िले में 'सरगद्वारी' (स्वर्ग का फाटक) नामक स्थान को गया। वहाँ उसने अवध के ज़िलो से काफी अनाज और चारा मँगवाया। अकाल की भीषणता कम करने के लिए कुएँ खुदवाये गये और किसानो को तक़ावी बाँटी गई। 'सरगद्वारी' से दिल्ली लौट आने पर उसने कृषि-सुधार के लिए एक अफसर नियुक्त किया। किसानो को रुपया उधार दिया गया परन्तु सरकारी कर्म-चारी ऐसे लालची निकले कि वे उसे आपस ही में बाँटकर खा गये। प्रजा का कष्ट बराबर जारी रहा और सहस्रो स्त्री-पुरुष भूखो मर गये।

विदेशीय नीति—मुहम्मद एक उत्साही सेना-नायक था। अपने राज्य के प्रारम्भिक काल में उसने खुरासान की विजय का विचार किया था और युद्ध के लिए एक बड़ी सेना सङ्गठित करने में काफी रुपया खर्च किया था। परन्तु कई अड़चनो के कारण वह खुरासान पर चढ़ाई न कर सका। हाँ, हिमालय प्रदेश के एक राजा के विरुद्ध उसने सेना भेजी थी और उसे दिल्ली का आधिपत्य स्वीकार

करने के लिए विवश किया था। वास्तव में यह वही चढाई थी, जिसे अनेक इतिहासकारो ने गलती से मुहम्मद की चीन की चढाई लिखा है।

**साम्राज्य में विद्रोह**—अपनी योजनाओ के असफल होने के कारण मुहम्मद की धाक उठ गई थी। उधर दुर्भिक्ष पड जाने से किसानो से कर नही वसूल हुआ और सरकारी आय में कमी हो गई। सूबेदारो ने सुलतान की कठिनाइयो से लाभ उठाना आरम्भ कर दिया। सबसे पहले सन् १३३५ ई० और १३३७ ई० में मावर और बङ्गाल स्वतन्त्र हो गये। सन् १३३६ ई० में दक्षिण के हिन्दू सर्दारो ने विजयनगर का स्वाधीन राज्य स्थापित किया। सन् १३४०-४१ ई० मे अवध के सूबेदार ऐनुल्मुल्क के साथ सुलतान ने ऐसा वर्ताव किया कि उसे विद्रोह करना पडा। वह पराजित हुआ और अपने ओहदे से वञ्चित किया गया। इसके थोडे दिन वाद सिन्ध में भी विद्रोह हुआ परन्तु सुलतान ने उसे दवा दिया और शान्ति स्थापित कर दी।

दक्षिण की दशा अधिक शोचनीय थी। विदेशीय अमीर, जो राज्य के कर्मचारी थे, सदा झगडा किया करते और दूसरे अमीरो को विद्रोह के लिए उकसाया करते थे। सन १३४३ ई० में वरङ्गल में कृष्णनायक ने अपने देश को मुसलमानो से मुक्त करने के लिए हिन्दू राजाओ का एक सघ वनाया। कृष्णनायक अपने प्रयत्न में सफल हुआ और वरङ्गल, द्वार-समुद्र तथा कम्पिल दिल्ली-साम्राज्य से अलग हो गये। उधर विदेशीय अमीरो ने भी एका किया और दिल्ली-सुलतान के नियुक्त किये हुए अफसर को निकाल दिया और दौलतावाद पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया।

उन्होंने अपने एक नेता हसन कांगू को १३४७ ई० में राजा वनाया। उसने वहमनशाह की उपाधि धारण की और उसका राजवश वहमनी के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सुलतान इन अमीरो से निपटने के लिए आगे वढा परन्तु गुजरात में विद्रोह हो जाने के कारण उसे

तत्काल दौलताबाद से हट जाना पडा। जिस समय गुजरात के विद्रोहियो को खदेडकर वह सिन्ध में उनका पीछा कर रहा था, ठट्टा से कुछ मील की दूरी पर वह बीमार हो गया और वही सन् १३५१ ई० में मर गया।

असफलता के कारण—मुहम्मद को असाधारण कठिनाइयो का सामना करना पडा। उसके क्रोधी और उतावले स्वभाव तथा विचित्र योजनाओ के कारण प्रजा उससे अप्रसन्न हो गई। दुर्भिक्ष ने राज्य की सम्पूर्ण आय सोख ली जिससे सुधार-कार्य्य पूरा न हुआ। उधर सुलतान की निष्पक्षता और न्याय-प्रियता के कारण कट्टर मुल्ला लोग उससे मन ही मन जल रहे थे और उसका विरोध करते थे। मध्यभारत और गुजरात तथा दक्षिण मे विदेशी अमीरो ने विद्रोह किया और सन् १३४७ ई० तक सारे साम्राज्य में वगावत की आग फैल गई। इस विरोध से सुलतान रुष्ट हो गया। अपराधियो के प्रति नर्मी की अपेक्षा उन्हें निर्दयतापूर्वक दण्ड देना ही उसकी दृष्टि में विद्रोह के भयङ्कर रोग का एक मात्र उपाय था। परन्तु यह ओषधि रोग से भी अधिक अनिष्टकारी सिद्ध हुई। अपनी स्थिति सँभालने के लिए मुहम्मद ने खलीफा से फर्मान प्राप्त किया परन्तु तो भी साम्राज्य में शान्ति स्थापित न हो सकी।

इब्नवतूता—इब्नवतूता उत्तरी अफ्रीका के तजा नामक स्थान का रहनेवाला था। सन् १३३३ ई० में वह भारत आया और मुहम्मद तुगलक के दर्वार में पहुँचा। सुलतान ने उसके साथ वडी शिष्टता का व्यवहार किया और उसे दिल्ली का क़ाज़ी नियुक्त किया। सन् १३४२ ई० तक वह भारत में रहा और अपने देश में पहुँचने के वाद उसने अपनी यात्रा का विवरण लिखा। उसने मुहम्मद तुगलक के शासन तथा प्रजा की दशा का अच्छा वर्णन किया है। यद्यपि उसके वर्णन में विद्रोहो और षड्यन्त्रो का ही हाल अधिक मिलता है फिर भी वह पुस्तक वडी महत्त्व-पूर्ण है। उसमें शासन-प्रवन्ध, राज-दर्वार

तथा सामाजिक जीवन के सम्बन्ध में बहुत सी बातें मिलती है। इब्नबतूता ने जो कुछ लिखा है उसका अधिकाश भाग सत्य और प्रमाणित है।

**फीरोज का सिंहासनारोहण**—फीरोज, तुगलकशाह के भाई सिपहसालार रजब का बेटा था। उसका जन्म सन् १३०९ ई० में हुआ था। मुहम्मद तुगलक की उस पर बडी कृपा रहती थी। उसी के समय में उसने शासन का अनुभव प्राप्त किया था। मुहम्मद तुगलक के कोई बेटा न था, इस कारण उसने अपने चचेरे भाई फीरोज को ही अपना उत्तराधिकारी बनाया था। परन्तु फीरोज एक धार्मिक वृत्ति का मनुष्य था। वह साम्राज्य के शासन का भार उठाने के लिए तैयार न था। परन्तु अमीरो के बहुत समझाने-बुझाने पर उसने मुहम्मद की वसीयत स्वीकार की। राजगद्दी से उसे वञ्चित रखने के लिए दो षड्यन्त्र रचे गये परन्तु वे असफल रहे और फीरोज का राज्याभिषेक हो गया। अपने ३८ वर्ष के शासन-काल मे फीरोज ने साम्राज्य के विस्तार को बढाने का कोई प्रयत्न नही किया परन्तु उसने प्रजा के हित के लिए शासन-प्रबन्ध में कुछ आवश्यक सुधार किये।

**राजनीतिक आदर्श में परिवर्तन**—अलाउद्दीन और मुहम्मद तुगलक दोनो शक्तिशाली सुलतान थे। वे केवल राज्य के हित का ध्यान रखते थे और मुल्ला-मौलवियो की कुछ भी पर्वाह नही करते थे। परन्तु फीरोज एक दूसरी तरह का मनुष्य था। वह स्वय ही कहा करता था कि मुझे सुलतान के पद की अपेक्षा दरवेश का जीवन अच्छा मालूम होता है। वह अक्षरश कुरान का अनुसरण करता था और मौलवियो तथा मुफ्तियो की बात मानता था। वह पक्का सुन्नी था और शियाओ तथा प्रजा के बहकानेवाले फिर्कों के मुसलमानो का दमन करता था। कभी-कभी वह युद्ध मे अपनी विजय निश्चित समझकर भी मुसलमानो का खून बहाने से डरता था और पीछे

छूट जाता था। यह नीति अन्त में साम्राज्य के लिए अनिष्ट-कारी सिद्ध हुई।

**फीरोज का चरित्र**—फीरोज एक दयालु तथा उदार शासक था, जिसने प्रजा के लिए अनेक हितकर कार्य किये। परन्तु अलाउद्दीन अथवा मुहम्मद की तरह न तो वह वीर ही था और न हौसलामन्द। वह कमज़ोर तबीअत का आदमी था, इसी लिए उसके बहुत मे काम असफल होते थे। उसने महल की सजावट को वन्द किया और सोने-चाँदी के वर्तनो के स्थान में मिट्टी के बर्तनो का उपयोग किया। विना कुरान का फाल लिये वह कोई काम नही करता था। दरवेशो का वह सत्कार करता था। जब किसी दरवेश या फकीर के आने का समाचार पाता तो वह उससे मिलने जाता था। शिकार मे उसकी वडी रुचि थी। कभी-कभी वह वदायूं के जङ्गल में शिकार खेलने जाता था। उसे प्रजा के साथ वडी सहानुभूति थी। वह सदैव उसके हित का ध्यान रखता था। वह दानशील था और दीन, धन-हीन लोगो की मदद करता था। वह स्वय ईश्वर-भक्त था और दूसरो को भी ईश्वर की आराधना करने का आदेश करता था।

**विदेशी नीति**—सुलतान फीरोज वीर योद्धा नही था। उसने न तो देश जीते और न साम्राज्य का विस्तार ही वढाया। साम्राज्य बढाने की तो वात दूर रही, उसने खोये हुए सूबो तक को फिर से लेने का उद्योग नही किया। उसने दो वार वङ्गाल पर चढाई की परन्तु कुछ नतीजा न निकला। सन् १३५३ ई० में उसने हाजी इलियास के विरुद्ध सेना भेजी और इकदला के किले पर आक्रमण किया परन्तु स्त्रियो के रोने, चिल्लाने का सुलतान के कोमल हृदय पर इतना प्रभाव पडा कि सरदारो के लाख मना करने पर भी वह लडाई वन्द कर दिल्ली वापस चला आया। सन् १३५९-६० ई० में उसने एक वार फिर वगाल पर चढाई की, परन्तु अपनी कमज़ोरी के कारण उसे कोई सफलता प्राप्त न हुई। लौटने

के समय उडीसा के राजा और कई अन्य सरदारो ने सुलतान की अधीनता स्वीकार कर ली।

सन् १३६० ई० मे फीरोज़ ने नगरकोट के राय पर आक्रमण किया। छ महीने के घेरे के बाद राय पराजित हुआ। इस चढाई में सुलतान को कई अमूल्य पुस्तकें प्राप्त हुईं, जिनमें ज्योतिष का एक ग्रथ था। इस ग्रथ का बाद मे सुलतान ने फारसी में अनुवाद कराया।

सन् १३६२-६३ ई० में ठट्टा (सिंध) पर चढाई हुई। इस युद्ध से सिद्ध हो गया कि सुलतान के सेनाध्यक्षो में न सैनिक योग्यता थी और न उन्हें भौगोलिक ज्ञान था। रास्ता भूलकर छ महीनो तक सुलतान कच्छ के दलदल में भटकता फिरा। यदि उसका प्रधान मन्त्री दिल्ली में शासन-कार्य का समुचित प्रबन्ध न करता और रसद तथा सेना न भेजता तो सुलतान को बडी भयङ्कर परिस्थिति का सामना करना पडता। परन्तु सौभाग्य से उसे अधिक अडचन नहीं उठानी पडी। सिन्ध पर फिर हमला हुआ और वहाँ का राजा, पराजित होकर, दिल्ली चला आया और सुलतान ने उसकी पेन्शन नियत कर दी।

**फीरोज़ का शासन-प्रबन्ध**—गद्दी पर बैठते ही फीरोज़ को तीन कठिन समस्याओ का सामना करना पडा—(१) इस्लामी कानून के अनुसार राज्यप्रबन्ध, (२) राज्य की आय की वृद्धि, (३) प्रजा का कल्याण।

फ़ीरोज़ को सिंहासन पाने में अमीरो से अधिक सहायता मिली थी, इसलिए उसने उन्हें जागीरें प्रदान की जिससे अलाउद्दीन द्वारा बन्द की हुई जागीर-प्रथा का फिर से प्रचार हुआ। उसने सब अनुचित कर बन्द कर दिये और केवल चार कर रक्खे। किसानो की सुविधा के लिए उसने सतलज और यमुना नदियो में से चार नहरें खुदवाईं और दस फी सदी आबपाशी का कर लिया। बहुत सी बञ्जर ज़मीन आबाद की गई जिससे राज्य की आय मे वृद्धि हुई। सरकारी अफ़सरो को हुक्म हुआ कि प्रजा

से एक पैसा भी अधिक न लें। किसान सुखी हो गये और कृषि की उन्नति हुई।

प्रजा के हित का सुलतान को बराबर ध्यान रहता था। उसने कठोर शारीरिक यातनाओं को बन्द कर दिया और कानून की कठोरता को कम कर दिया। पिछले शासन में जिन लोगो की हानि हुई थी उनको उसने आर्थिक सहायता दी। उसने विद्वानो और फकीरो को वज़ीफे दिये, मदरसे बनवाये और बेकार लोगो को रोज़गार दिये। गरीब मुसलमानो की लडकियो के विवाह कराने के लिए उसने एक अलग दफ्तर कायम किया, जिसका नाम दीवान खैरात था। दिल्ली में उसने एक औषधालय भी खुलवाया था जहाँ दीन दुखियो को ओषधि और भोजन मुफ्त दिये जाते थे।

फीरोज़ को इमारत बनाने का भी बडा शौक था। उसने अनेक प्राचीन इमारतो की मरम्मत कराई और अनेक नवीन इमारतो का भी निर्माण कराया। उसने १२०० बाग़ लगवाये, अनेक महल और मसजिदें बनवाई और यात्रियो के आराम के लिए कितने ही तालाब खुदवाये। फतहाबाद, फीरोज़ाबाद और जौनपुर नगर उसने बसाये और आबाद किये।

**पिछले काल के तुगलक सुलतान और तैमूर का आक्रमण—** सन् १३८८ ई० में फीरोज़ तुगलक के मरते ही अशान्ति फैल गई। गद्दी के लिए कई शाहज़ादों में युद्ध आरम्भ हो गया। ऐसे अवसर पर राज-दरबार के अमीरो की बन आई। बादशाह बनाना या उसे गद्दी से उतारना उन्ही के हाथ का खेल हो गया। तुगलक-वंश का अन्तिम शासक महमूद तुगलक अयोग्य और शक्तिहीन था। अमीरो की दलबन्दी को तोडने या विद्रोही हिन्दू राजाओं और प्रान्तीय सूबेदारो को दबाने मे वह असमर्थ हुआ। इसी गडबडी के समय तैमूरलङ्ग ने भारत-वर्ष पर आक्रमण किया और तुगलक-वंश की रही-सही प्रतिष्ठा का नाश कर दिया।

तैमूर के आक्रमण के समय का भारत
काबुल
पेशावर
जम्मू
लाहौर
तुलम्बा
मुलतान
दिपालपुर
भटनेर
समाना
हरद्वार
दिल्ली
बदायूँ
कन्नौज
अयोध्या
आगरा
जौनपुर
कालपी
प्रयाग
गौड़
मालवा
माडू
बंगाल
गिरनार
खानदेश
गोंडवाना
असीरगढ़
ग्वालीगढ़
दौलताबाद
चौल
बहमनी
वारंगल
बीदर
गुलबर्गा
गोलकुंडा
रायचूर
विजयनगर
विजयनगर राज्य
अरब सागर
बंगाल की खाड़ी
तैमूर के आक्रमण का मार्ग

तैमूर बरलास वंश का तुर्की योद्धा था। वह एक महान् विजेता था, जिसने करीब-क़रीब समस्त पश्चिमी एशिया को जीतकर एक विस्तीर्ण साम्राज्य स्थापित किया था। एक बडी सेना लेकर वह समरकन्द से चला और सितम्बर सन् १३९८ ई० में सिन्धु नदी के तट पर आकर उसने घेरा डाल दिया। मुलतान को जीतकर उसने भटनेर पर चढाई की और उसे भी जीत लिया। इस संग्राम मे हिन्दुओ की बडी हानि हुई। भटनेर से चलकर तैमूर रास्ते के प्रदेशो को उजाडता हुआ दिल्ली पहुँचा। ४० हजार पैदल, १० हजार सवार और १२० हाथियो की एक विशाल सेना ने यहाँ उसका सामना किया, परन्तु तैमूर के तुर्कों न उसे हरा दिया। सुलतान महमूद तुगलक भयभीत होकर गुजरात की ओर भाग गया।

विजयी तैमूर ने नगर में प्रवेश कर एक दरबार किया जिसमे दिल्ली के प्रतिष्ठित पुरुष उपस्थित थे। नगर के दरवेशो ने उससे प्रार्थना की कि लोगो को प्राण-दण्ड न दिया जाय। उनकी प्रार्थना स्वीकार हुई परन्तु उसके सैनिको ने ख़ूब लूट-मार की और शहर के लोगो को कत्ल किया। दिल्ली के भव्य भवनो को देखकर तैमूर दङ्ग रह गया और अपने साथ अनेक भारतीय कारीगरो को ले गया जिन्होने समरकन्द में उसकी प्रसिद्ध मसजिद बनाई।

लौटते समय तैमूर ने मेरठ पर चढाई की और हरिद्वार के आस-पास के हिन्दुओ को पराजित किया। वहाँ से वह अपने देश को लौट गया। किसी आक्रमण में भारतवर्ष को धन, जीवन और सम्पत्ति की इतनी क्षति पहले कभी नही उठानी पडी थी।

तैमूर के आक्रमण का भयङ्कर परिणाम हुआ, देश में चारो ओर गडबडी फैल गई। दिल्ली नष्ट हो गई। तुर्कों ने सुन्दर भवनो और महलो को उजाड दिया। दुर्भिक्ष और महामारी के प्रकोप से लोगो को घोर कष्ट हुआ और सहस्रो काल के ग्रास हुए।

साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया और प्रान्तो के हाकिम स्वाधीन होने लगे। महमूद तुगलक ने फिर अपनी शक्ति को सँभालने का प्रयत्न किया परन्तु वह कुछ भी न कर सका। तैमूर के प्रतिनिधि पञ्जाब के सूबेदार खिज्र खाँ ने उसका सामना किया और उसे आगे बढने से रोका। अभागा महमूद २० वर्ष के असफल शासन के बाद कैथल में, सन् १४१२ ई० में, मर गया और उसकी मृत्यु के साथ ही तुगलक वश की राज्य-श्री सदा के लिए विदा हो गई।

**तुग़लक़-वश के पतन का कारण**—यद्यपि तुगलक-वश में कई योग्य और प्रतिभाशाली शासक हुए परन्तु वे स्थायी साम्राज्य न बना सके। इसके कई कारण हैं। मुहम्मद तुगलक की नीति से देश में अशान्ति फैल गई थी और राज-विद्रोह होने लगा था। साथ ही दुर्भिक्ष और दैवी-प्रकोप से प्रजा को अधिक दु ख हुआ। विदेशी अमीरो ने भी राज्य को बडी हानि पहुँचाई। उन्होने साम्राज्य के हित का कुछ भी खयाल नहीं किया और बराबर अपने षड्यन्त्र जारी रक्खे। फीरोज़ उदार और दयालु शासक अवश्य था परन्तु वह इरादे का पक्का न था और मुल्ला मौलवियो की सलाह से काम करता था। यही कारण है कि उसके सुधार अधिक लाभ-प्रद सिद्ध न हो सके। शासन-सूत्र ढीले पड गये। साम्राज्य का रोब-दाब जाता रहा। जिस साम्राज्य की धाक दिल्ली से मदुरा तक जमी हुई थी, उसकी अब दोआबे में भी कोई अधिक पर्वाह नही करता था। सुलतान का लोगो के हृदय में जरा भी डर न था। राज्य के बडे-बडे अफसर परस्पर लडते थे और मनमानी करते थे। गुलामो की सख्या १,८०,००० हो गई थी। इनका एक अलग दफ्तर था, जिस पर बहुत सा रुपया व्यय किया जाता था। गुलामो को बडे-बडे ओहदे दिये जाते थे जिसके कारण अमीरो तथा अन्य कर्म-चारियो में असन्तोष फैल गया था।

फीरोज़ के बाद के सुलतान बिलकुल ही अशक्त थे। वे दरबारी अमीरो की दलबन्दी को न रोक सके। केन्द्रिक शासन के दुर्बल होते

ही सूबेदारो ने अपने स्वाधीन राज्य स्थापित कर लिये और दिल्ली से सम्बन्ध तोड दिया। इन कारणो के अतिरिक्त, तुगलक-वंश के नाश के कुछ अन्य आभ्यंतरिक कारण भी थे। सन् १३२७ ई० में तुगलक-साम्राज्य दिल्ली से दक्षिण में द्वार-समुद्र तक और ठट्टा से पूर्व में गौड तक विस्तृत था। इतने विस्तीर्ण साम्राज्य के प्रान्तो की दूरी और एक स्थान से दूसरे स्थान को आने-जाने की कठिनाइयो के कारण सूबेदारो को स्वाधीन होने में आसानी होती थी और वे साम्राज्य से अलग हो जाते थे।

इसके अतिरिक्त हिन्दू राजा अपनी पराजय को भूल नही गये थे और अशान्ति से लाभ उठाना चाहते थे। साम्राज्य के प्रति उनकी कुछ भी श्रद्धा अथवा भक्ति नहीं थी। वे उसकी अवनति देखकर प्रसन्न होते थे और उसके नष्ट होने की बाट देखते रहते थे। सीमान्त-प्रदेश की चौकसी तो अलाउद्दीन के समय से ही बन्द थी। तुगलको का शायद यह विश्वास था कि पश्चिम के देशो से कोई खतरा नही बाकी रहा है। इसी लिए न तो उन्होने सीमा की रक्षा की ओर कुछ भी ध्यान दिया और न विदेशियो को देश में आने से रोका ही।

राज्य के अनेक कर्मचारियो में कोई भी ऐसा न था जो पश्चिमी एशिया के देशो की हालत से भली भाँति परिचित हो। इसका नतीजा यह हुआ कि जब तैमूर ने देश पर आक्रमण किया तो कोई उसे रोक न सका। इस काल में सुलतान की व्यक्तिगत योग्यता पर बहुत कुछ निर्भर था। उसकी शक्ति क्षीण होने पर राज-वंश का पतन अवश्यम्भावी था। कोई शक्तिहीन सुलतान लडने-भिडनेवाले विद्रोही राजाओ और सरदारो के बीच मे नही ठहर सकता था। इसके अतिरिक्त एक कारण यह था कि साम्राज्य का रूप वास्तव में फौजी था। बिना सैनिक शक्ति के, इसका स्थायी होना सर्वथा असम्भव था।

## संक्षिप्त सन्वार विवरण

| | | | |
|---|---|---|---|
| फीरोज़ तुगलक का जन्म | .. | .. | १३०६ ई० |
| तेलङ्गाना की विजय | .. | .. | १३२३ " |
| गयासुद्दीन तुगलक की मृत्यु | .. | .. | १३२५ " |
| राजधानी का दौलताबाद को बदलना | | .. | १३२६-२७ " |
| ताँबे के सिक्कों का चलन | .. | .. | १३३० " |
| इब्नबतूता का भारत में आना | | .. | १३३३ " |
| माबर की स्वाधीनता | .. | .. | १३३५ " |
| विजयनगर की स्थापना | .. | .. | १३३६ " |
| बङ्गाल की स्वाधीनता | .. | .. | १३३७ " |
| कृष्णनायक का विद्रोह | .. | .. | १३४३ " |
| बहमनी राज्य की स्थापना | .. | .. | १३४७ " |
| मुहम्मद तुगलक की मृत्यु | . | .. | १३५१ " |
| फीरोज की बङ्गाल पर पहली चढाई | | .. | १३५३ " |
| बङ्गाल की दूसरी चढाई | .. | .. | १३५९-६० " |
| नगरकोट की विजय | .. | .. | १३६० " |
| ठट्टा की चढाई | .. | .. | १३६२-६३ " |
| फीरोज की मृत्यु | .. | .. | १३८८ " |
| तैमूर का आक्रमण | .. | .. | १३९८ " |
| मुहम्मद तुगलक की मृत्यु और तुगलक-वंश का अवसान | | | १४१२ " |

# अध्याय १६

## प्रान्तीय राज्य

एकता का विनाश—तुगलक़-साम्राज्य के पतन के बाद भारतवर्ष अनेक स्वाधीन राज्यो में विभाजित हो गया, जिनमें से कई यथार्थत

अदीना मसजिद का भीतरी हिस्सा (पांडुआ)

बहुत विस्तृत और शक्ति-सम्पन्न थे। साम्राज्य के इस तरह छिन्न-भिन्न हो जाने के कारण देश की ऐक्य-सूत्रता का विनाश तो अवश्य हो,

गया, परन्तु अशान्ति और विप्लव नही फैलने पाये। इसका प्रधान कारण यह था कि इन नवीन राज्यो का शासन-प्रवन्ध समुचित तथा सुव्यवस्थित था। इन राज्यो से प्रान्तीयता की प्रवृत्ति अवश्य फैली जिससे उनमें परस्पर स्पर्धा और असहिष्णुता का भाव बढ गया और लडाई-झगडे अनिवार्य हो गये। प्रत्येक राज्य अपनी उन्नति का अलग मार्ग निश्चित करता था। इन प्रान्तीय राज्यो मे बङ्गाल, जौनपुर, मालवा, राजपूताना के राज्य और दक्षिण मे बहमनी तथा विजय-नगर के राज्य अत्यन्त प्रसिद्ध थे।
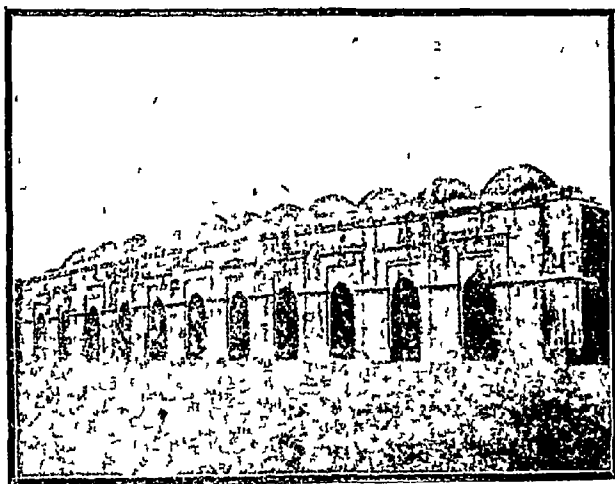
बडा सोना मसजिद—गौड

बंगाल—सुलतान मुहम्मद तुगलक के समय में बङ्गाल के स्वाधीन राज्य की स्थापना हुई। फीरोज ने बङ्गाल को दिल्ली-साम्राज्य में पुन मिला लेने का भरसक प्रयत्न किया था परन्तु उसके नम्र तथा अदूर-दर्शी स्वभाव के कारण विजय से कोई लाभ न हुआ और बङ्गाल फिर

भी स्वाधीन ही बना रहा। सन् १४९३ ई० में बङ्गाल में हुसैनशाह राज्य करता था, जिससे हुसैनी राजवंश की स्थापना हुई। हुसैनशाह एक योग्य और प्रतिभाशाली शासक था, उसके समय में देश मे पूर्ण शान्ति स्थापित थी। उसकी मृत्यु के बाद उसका बेटा नुसरतशाह (१५१८-३०
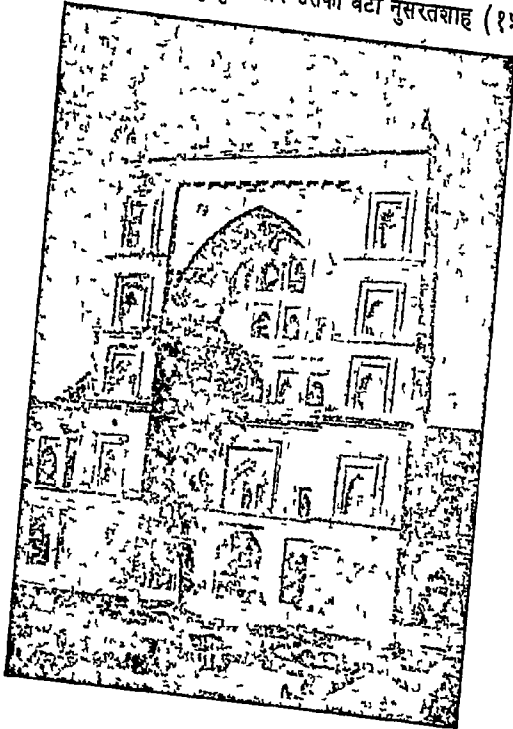
अटाला मस्जिद

ई०) गद्दी पर बैठा। नुसरतशाह ने तिरहुत को जीतकर अपने राज्य में मिलाया और दिल्ली के मुगल बादशाह बाबर से मैत्री का व्यवहार रक्खा। किन्तु नुसरतशाह के पश्चात् हुसैनी राजवंश के दुर्दिन आ गये और उसे

अशक्त पाकर शेरशाह सूरी ने बङ्गाल और बिहार पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। अफगानो ने कुछ दिन बङ्गाल को अपने अधिकार मे रक्खा। किन्तु अकबर ने सन् १५७६ ई० में उन्हे वहाँ से निकाल बाहर किया और बङ्गाल को मुगल-साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया।

बङ्गाल के सुलतान कला और विद्या के बडे प्रेमी तथा सरक्षक थे। उन्होंने अनेकानेक उत्कृष्ट मसजिदे बनवाई और दान की अनेक सस्थाएँ स्थापित की। गौड नगर के भव्य भवन उन्ही की कीर्ति के स्मारक है। वहाँ की प्रसिद्ध इमारतो में हुसेनशाह का मकबरा और कदम-रसूल
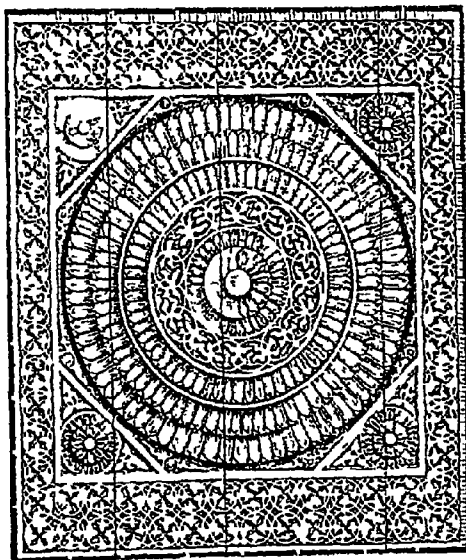
अटाला की मसजिद की बढिया सजावट

सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इनकी बनावट की विशेषता यह है कि इनमें अधिकाधिक इंट का ही प्रयोग किया गया है। अदीना की मसजिद भी

बनावट और सौन्दर्य में अद्वितीय है। साहित्य को भी इन सुलतानो ने बडा प्रोत्साहन दिया था। रामायण और महाभारत का बँगला अनुवाद इन्ही के सरक्षण में हुआ था। मालाधार वसु ने श्रीमद्भागवत का बँगला में अनुवाद किया और वह भी बङ्गाल के तत्कालीन सुलतान की सहायता से हुआ था। मैथिली के महान् कवि विद्यापति ने भी नुसरतशाह की प्रशसा में कुछ पद लिखे है।

जौनपुर—मलिक सरवर ख्वाजाजहाँ ने, जिसे महमूद तुग़लक ने सन १३९४ ई०, में कन्नौज से बिहार तक के विस्तृत देश का सूबेदार नियुक्त किया था, जौनपुर-राज्य की स्थापना की। सुलतान की ओर से उसे मलिक-उस्-शर्क (पूर्व के सरदार) की उपाधि मिली, जिसके कारण यह नवीन राजवश शर्की (पूर्वी) नाम से प्रसिद्ध हुआ। वास्तव में तैमूर के आक्रमण के बाद जो अराजकता फैली, उसके कारण मलिक सरवर को जौनपुर राजधानी बनाकर अपने को उस प्रदेश का स्वतन्त्र मालिक घोषित करने में बडी आसानी हुई। इस राजवश का सबसे प्रतिभाशाली शासक इब्राहीमशाह शर्की था। वह सन १४०२ ई० में गद्दी पर बैठा था। इब्राहीमशाह विद्या-व्यसनी तथा बुद्धिमान् पुरुष था। वह कला और विद्या का अनन्य प्रेमी था। उसने मालवा और दिल्ली के शासको से सग्राम किया और सुलतान मुबारकशाह को सन्धि करने पर विवश किया। इस वश का अन्तिम शासक हुसेनशाह हुआ। हुसेनशाह सुलतान बहलोल लोदी द्वारा युद्ध में पराजित हुआ और इसके बाद जौनपुर का राज्य दिल्ली-साम्राज्य में मिला लिया गया।

शर्की सुलतान विद्या के बडे प्रेमी थे। तैमूर के आक्रमण के समय दिल्ली से भागे हुए विद्वान् पुरुषो को इन्होने जौनपुर में आश्रय दिया और उन्हें सम्मान के साथ रक्खा, जिससे जौनपुर उस काल में विद्या का एक प्रधान केन्द्र हो गया और लोग उसे पूर्व का शीराज़ कहने लगे। शर्की सुलतानो को भी इमारत बनाने का बडा शौक था। उनकी बनाई हुई इमारतो में अटाला मसजिद, लालदर्वाज़ा मसजिद और जाममसजिद

अब भी विद्यमान है जो अपने सौंदर्य और बनावट के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध है। हाँ, शर्की सुलतानो के राज-महल अब मौजूद नही है क्योकि दिल्ली के लोदी सुलतानो ने उनको नष्ट कर डाला था। फिर भी जो कुछ अभी बचा है वह उनकी कीर्त्ति को बहुत समय तक अक्षुण्ण रखने में समर्थ है।
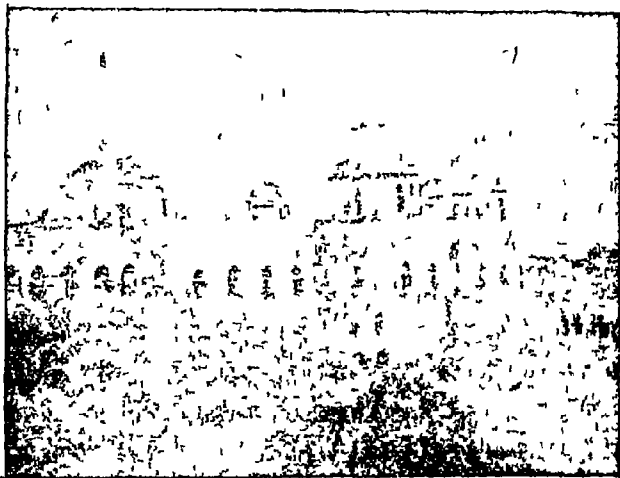
माँडू का महल

मालवा—तैमर के आक्रमण के बाद की अशान्ति के समय में ही मालवा के स्वतन्त्र राज्य की भी स्थापना हुई। इसका सस्थापक था दिलावर खाँ गोरी, जो अपने को मुहम्मद गोरी का वशज कहता था और जिसे फीरोज तुग़लक ने धार की जागीर दी थी। सन् १४०१ ई० में उसने मालवा पर अधिकार जमाकर एक स्वाधीन राज्य स्थापित किया। दिलावर शाह की मृत्यु के बाद उसका बेटा हुशङ्गशाह (१४०५–३४ ई०) गद्दी पर बैठा। उसने उज्जैन के स्थान में माँडू को अपनी राजधानी बनाया और उसे अनेकानेक भवनो से सुशोभित

किया। सन १४३५ ई० मे उसके मन्त्री महमूद खिलजी ने स्वय गद्दी को छीनकर उस पर अपना अधिकार जमाया और दिलावर खाँ के वश का अन्त कर दिया। महमूद खिलजी अपनी वीरता और सिपहगरी के लिए सारे हिन्दुस्तान मे प्रसिद्ध था। उसके शासन-काल मे मालवा
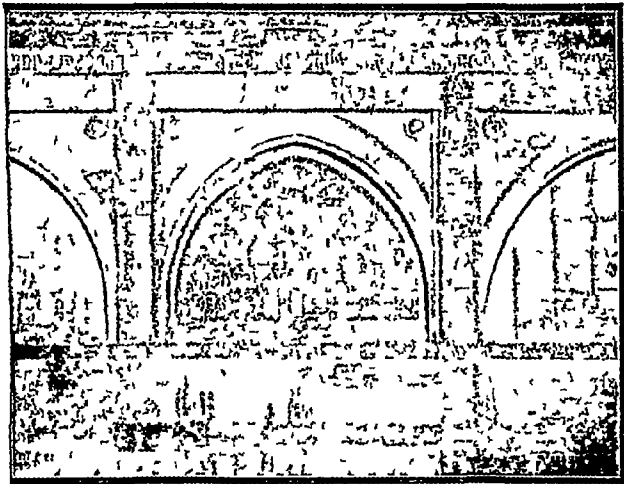
अहमदाबाद की मसजिद की बढिया सजावट

राज्य सम्पन्न तथा शक्तिशाली राज्य बन गया। सन् १५३१ ई० में महमूद द्वीतीय को गुजरात के बादशाह बहादुरशाह ने युद्ध में पराजित किया और इसके बाद मालवा का राज्य गुजरात मे मिला लिया गया। हुमायूँ द्वारा विजित होने के समय तक मालवा गुजरात-राज्य का ही एक अङ्ग बना रहा।

मालवा के शासको को भी इमारतें बनाने का बडा शौक था। उन्होने अपनी राजधानी माँडू को अनेकानेक इमारतो से सुसज्जित किया था, जिनमें हुसेनशाह का मकबरा, महमूदशाह की मसजिद, हिंडोला-महल

और जहाज-महल अत्यन्त प्रसिद्ध है। ये इमारतें लाल पत्थर की बनी हुई है और बीच-बीच में सजावट के लिए इनमें सङ्गमरमर का भी खूब प्रयोग किया गया है।

गुजरात—सन् १४०१ ई० में जफरखाँ ने, जिसे दिल्ली-सुलतान ने गुजरात का सूबेदार नियुक्त किया था, गुजरात पर अपना अधिकार जमाकर एक स्वाधीन राज्य स्थापित किया। उसकी मृत्यु के बाद सन् १४११ ई० में उसका बेटा अहमदशाह गद्दी पर बैठा। अहमदशाह वीर, युद्ध-कुशल सेनानायक तथा योग्य शासक हुआ। वास्तव में गुजरात की स्वतन्त्रता इसी के हाथो सुदृढ हुई। इसने साबरमती नदी के तट पर अहमदाबाद नगर बसाया और उसे अनेकानेक इमारतो से सुशोभित किया। सन् १४२१ ई० मे उसने मालवा के सुलतान को पराजित किया किन्तु खिराज देने का वादा करने पर उसे छोड दिया। अहमदशाह एक पक्का मुसलमान था। उसने हिन्दुओ के साथ युद्ध किया, उनके मन्दिर तुडवाये और उन्हें मुसलमान बनने के लिए प्रेरित किया।

गुजरात का सबसे प्रसिद्ध सुलतान महमद बीगड था जो सन् १४५९ ई० मे गद्दी पर बैठा। वह स्वय एक वीर योद्धा और सैन्यकला में दक्ष सिपाही था। उसने चम्पानेर और जूनागढ के राजपूत राजाओ को पराजित किया और उन्हें अपना आधिपत्य स्वीकार करने पर विवश किया। उसने गुजरात के समुद्री डाकुओ का भी दमन किया। परन्तु सन् १५०७ ई० में पुर्तगालियो द्वारा वह पराजित हुआ। उस समय भारत के पश्चिमी समुद्री तटो पर पुर्तगालियो की शक्ति बहुत बढी-चढी थी और वे समुद्री व्यवसाय पर अपना एकछत्र अधिकार स्थापित करने का उद्योग कर रहे थे। स्वतन्त्र गुजरात का अन्तिम प्रसिद्ध शासक बहादुरशाह (१५२६–३७ ई०) था। उसने मालवा के सुलतान को युद्ध में परास्त करके उसका राज्य गुजरात में मिला लिया और मेवाड के राना को भी पराजित किया। हुमायूँ को उसकी शक्ति और महत्त्वा-

काक्षा का बडा भय हुआ और उसने गुजरात पर चढाई कर दी किन्तु अन्त मे वह स्वय परास्त हुआ। बहादुरशाह ने पुर्तगालियो को गोआ से निकाल बाहर करने का भरसक प्रयत्न किया परन्तु वह अपने इस उद्योग में सफल न हो सका। पुर्तगालियो ने उसके विरुद्ध महान षडयन्त्र रचकर उसकी हत्या करा डाली। उसकी मृत्यु होते ही गुजरात में अशान्ति और गडबडी फैल गई। अन्त में (१५७२-७३ ई०) में मुग़ल-सम्राट अकबर ने गुजरात पर चढाई की और उसे अपने साम्राज्य में मिला लिया।

गुजरात के कई बादशाहो ने सुन्दर तथा भव्य इमारतें बनवाईं। मुसलमानो की गुजरात-विजय के पहले वहाँ जैनियो के बनवाये हुए पाँच प्रसिद्ध मन्दिर थे। मुसलमान शासको ने अपनी इमारतो के बनाने में उन मन्दिरो की सामग्री का प्रयोग किया। जिन कारीगरो से इमारतें बनवाई गईं उन्होने हिन्दू और मुसलमानी दोनो शैलियो का सम्मिश्रण करके वास्तु-कला की एक नवीन शैली का आविर्भाव किया, जिसे मुसलमानो ने पसन्द किया। गुजरात के शासको द्वारा बनवाई हुई इमारतें प्राय इसी शैली के अनुसार बनाई गई हैं। उनकी बनाई हुई बहुत-सी बावलियाँ, मकबरे, मसजिदें और महल अब भी विद्यमान है जिन्हें देखनेवाले उनकी उत्कृष्ट कला की प्रशसा किये बिना नही रह सकते। इन सुलतानो के समय में अहमदाबाद नगर की बडी उन्नति हुई और वह रुई तथा रेशम की कारीगरी और व्यवसाय का एक प्रसिद्ध केन्द्र बन गया।

**मेवाड का राजवश**—भारतवर्ष के अन्य भागो की तरह राजपूताना पर भी अलाउद्दीन ने आक्रमण किया था। उसने रणथम्भौर के दुर्ग पर अधिकार कर लिया था और राजपूताने के सबसे अधिक शक्तिशाली और प्रतिष्ठित राज्य मेवाड को भी जीता था, किन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् राजपूतो ने चित्तौड की मुसलमानी छावनी तोड डाली जिससे मेवाड की खोई हुई स्वाधीनता उसे पुन प्राप्त हो गई। राना हम्मीर

ने अपनी शक्ति का पर्याप्त सङ्गठन किया और कहा जाता है कि युद्ध में एक बार उसने या तो स्वय दिल्ली सुलतान को अथवा उसके किसी सेनापति को पराजित किया था। राना कुम्भा (१४३३–६८ ई०) के समय में मेवाड की शक्ति, बहुत बढ गई। इस राना ने मेवाड और गुजरात के मुसलमान शासको से अनेक बार युद्ध किया जिनमें विजय कभी उसकी और कभी उसके शत्रुओ की होती रही। सन् १४३७ ई० में राना कुम्भा ने मालवा के सुलतान महमूद खिलजी को पराजित करके उसे पकड लिया और बन्दी बनाकर वह चित्तौड ले गया। राना ने उसे ६ महीने तक चित्तौड के किले में कैद रक्खा और फिर बिना किसी प्रकार का हरजाना लिये ही उसे मुक्त कर दिया। मालवा और गुजरात के सुलतान मेवाड का उन्मूलर्न करने के इरादे से राना पर बराबर आक्रमण करते रहते थे किन्तु राना सदैव वीरतापूर्वक उनका सामना करके उन्हें पीछे खदेडता रहता था।

राना कुम्भा प्रतिभाशाली शासक था। वह रण-प्रवीण योद्धा और राजनीतिज्ञ होने के अतिरिक्त एक अद्वितीय विद्वान् और दार्शनिक भी था। कला और विज्ञान का स्वय ज्ञाता होने के कारण वह विद्वानो और गुणीजनो का समुचित आदर करता था। अनेक भिन्न-भिन्न विषयो पर उसकी लिखी हुई पुस्तके अब भी उपलब्ध हैं। वह काव्य की रचना कर लेता था और बाँसुरी बजाने मे अत्यन्त दक्ष था। उसने अनेक मन्दिर, तालाब और कुएँ बनवाये। उसकी बनवाई हुई इमारतो मे चित्तौड का 'जय-स्तम्भ' सबसे प्रसिद्ध है जो कितनी शताब्दियो बाद भी आज तक ज्यो का त्यो खडा-खडा उसकी विमल कीर्त्ति और महत्ता का मूक साक्ष्य दे रहा है।

राना कुम्भा के उत्तराधिकारियो में राना सग्रामसिंह (राना साँगा) का इतिहास मे विशिष्ट स्थान है। राना साँगा सन् १५०९ ई० में गद्दी पर बैठा। वह अभूतपूर्व साहसी और पराक्रमशील योद्धा था। उसने दिल्ली, मालवा और गुजरात के सुलतानो से अनेक बार युद्ध करके

उन्हें पराजित किया। उसकी वीरता की कहानियाँ चारो ओर प्रचलित थी और सारा हिन्दू-समाज उसे एक स्वर से अपना वीर नेता स्वीकार करता था। उसने स्वय एक बहुत बडी सेना का सङ्गठन किया था जिसकी सहायता से उसने राजस्थान के अनेक सरदारो को अपने अधीन किया था। सन् १५२६ ई० तक राना साँगा हिन्दुस्तान के राजाओ मे सबसे अधिक शक्तिमान और प्रभावशाली राजा हो गया था। उसकी शक्ति इतनी अधिक और महत्त्वपूर्ण थी कि मुगल-विजेता बाबर भी खानवा के रणक्षेत्र मे उससे युद्ध करते समय दहल गया था। बाबर उससे इतना प्रभावित हुआ कि उसने अपनी प्रसिद्ध 'आत्म-कथा' में राना साँगा का वर्णन किया है और उसे हिन्दुस्तान के प्रतिभाशाली शासको में स्थान दिया है।

जय-स्तम्भ—चित्तौड

उडीसा—उडीसा के राज्य पर गङ्ग जाति के राजपूत राजा राज्य करते थे। वे अपने को चन्द्रवशी कहते थे। इस वश का सबसे प्रसिद्ध राजा अनन्तवर्मन् चोड गङ्ग हुआ, जिसने अपनी शक्ति का सङ्गठन कर अपनी छोटी-सी रियासत को एक विस्तृत राज्य में परिवर्तित कर दिया। इसी महान् शासक ने जगन्नाथपुरी का प्रसिद्ध मन्दिर बनवाया। किंतु
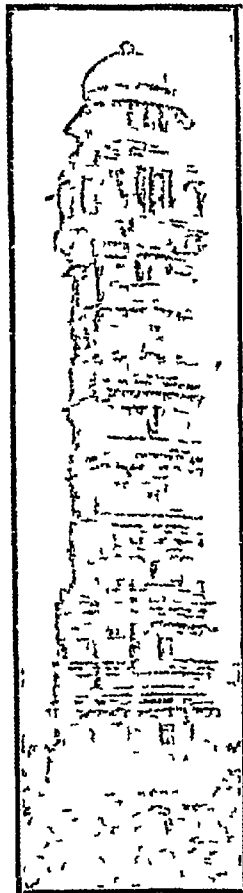
सन १४३४–३५ ई० में इस राज-वश का अन्त हो गया और राजगद्दी कपिलेन्द्र के हाथ मे चली गई। कपिलेन्द्र ने अपने राज्य की सीमा को गङ्गा से कावेरी नदी तक विस्तृत किया। सन् १५६८ ई० में वङ्गाल के मुसलमान वादशाहों ने उडीसा के राज्य को जीत लिया परन्तु उसके कुछ ही दिनो बाद अकवर ने उसे अपने अधीन कर मुगल-साम्राज्य में मिला लिया।

**बहमनीराज्य**—मुहम्मद- तुगलक के समय में सन १३४७ ई० में विदेशीय अमीरो ने सङ्गठित होकर दक्षिण में एक स्वाधीन राज्य स्थापित किया था। उन्होंने अपने नेताओ में से एक को, जिसका नाम हसन था, अपना वादशाह निर्वाचित किया था। हसन अपने को फारस के बहमन-विन-इसफन्दियार का वशज बतलाता था। इसी लिए उसने अलाउद्दीन बहमनशाह की उपाधि धारण की थी और उसके वश का नाम 'बहमनी' प्रसिद्ध हुआ। यह कहानी विलकुल गलत है कि हसन ने अपने वश का नाम 'बहमनी' दिल्ली के गगू नामक ब्राह्मण ज्योतिषी के सम्मान में रक्खा जिसने उसके उज्ज्वल भविष्य के सम्बन्ध में कुछ भविष्य-वाणी की थी।

हसन योग्य शासक था। उसने अपने नाम के सिक्के चलाये। राज्य को उसने चार सूबो (तरफ) में विभाजित किया और अपने अफसरो के अनुसरण के लिए कुछ नियमो का विधान किया। गुलबर्गा को उसने अपने राज्य की राजधानी बनाया।

किन्तु विजयनगर का नवीन साम्राज्य बहमनी राज्य का कठोर प्रतिद्वन्द्वी सिद्ध हुआ। विजयनगर-साम्राज्य की स्थापना, हरिहर और बुक्का नामक दो भाइयो ने सन् १३३६ ई० में की थी। विजयनगर और बहमनी राज्यो मे परस्पर बडी स्पर्धा थी। प्रभुत्व के लिए इनमें बराबर युद्ध होते रहते थे और जीत कभी इस पक्ष की और कभी उस पक्ष की होती थी।

बहमनी शासक विलकुल स्वेच्छाचारी तथा निरकुश थे। हसन

के उत्तराधिकारी, मुहम्मदशाह प्रथम (१३५८–७३ ई०) और फीरोज (१३९७–१४२२ ई०) दोनो ने, कृष्णा और तुङ्गभद्रा नदियो के मध्य की भूमि रायचूर-दोआब के लिए, विजयनगर के रायो से युद्ध किया। फीरोज के उत्तराधिकारी अहमदशाह (१४२२–३५ ई०) ने विजयनगर के राय और वरङ्गल तथा कोकण के सरदारो से युद्ध किया। इस युद्ध में उसने असख्य हिन्दुओ का वध किया और इस्लाम-धर्म के प्रति अपनी इस अपूर्व सेवा के उपलक्ष्य मे 'वली' की उपाधि धारण की। उसने गुलबर्गा को छोडकर बीदर को राजधानी बनाया और उसे अनेक इमारतो से अलकृत किया। किन्तु मुहम्मदशाह तृतीय (१४६३–८२ ई०) के शासन-काल मे बहमनी राज्य की अवनति के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे। उसका प्रधान वजीर महमूद गावान एक योग्य, सच्चरित्र तथा कुशल राजनीतिज्ञ था। शासन-सुधारो द्वारा उसने हुकूमत और अधिकार की बिखरी हुई डोर को समेटकर फिर सुलतान के हाथ में इकटठा कर दिया था। परन्तु दक्षिणी अमीरो ने षड्यन्त्र रचकर उसका विरोध किया और उसके तथा सुलतान के बीच मनोमालिन्य पैदा करा दिया। परिणाम-स्वरूप उसके शत्रुओ ने एक मिथ्या अपराध का आरोप करके उसे प्राणदण्ड दिलवा दिया।

महमूद गावान को कत्ल कराकर सुलतान ने राज्य के एक सच्चे सेवक और कुशल राजनीतिज्ञ को खो दिया। बहमनी राज्य की गिरती दशा को सुधारने की योग्यता रखनेवाला व्यक्ति उस समय महमूद गावान ही था। परन्तु मुहम्मदशाह को इसका क्या पता था? उसने इस बात की जाँच भी नही की कि मन्त्री का अपराध था भी या नही और बिना सोचे-समझे उसे दण्ड दे दिया।

महमूद गावान की गणना मध्य-युग के महान् राजनीतिज्ञो में होती है। उसका जीवन अत्यन्त पवित्र और आडम्बर-रहित था। वह सदा राज्य की शुभ-कामना में ही लीन रहता था। उसने बीदर में एक विद्यालय की स्थापना की थी और वही उसने अपने पुस्तकालय

की ३००० पुस्तके रख दी थी। विद्वान् और गुणी जनों के संसर्ग में रहना उसे बहुत प्रिय लगता था। अवकाश मिलने पर वह अपने विद्यालय में जाता और विद्वानो के साथ विविध विषयो पर वार्तालाप करता था।

मुहम्मद की मृत्यु के बाद सन् १४८२ ई० में उसका बेटा महमूद-शाह गद्दी पर बैठा। परन्तु वह बिलकुल निकम्मा और अयोग्य निकला। उसके सिंहासनारूढ होने के थोडे ही समय बाद बहमनी राज्य का पतन हो गया और उसके स्थान मे पाँच नये राज्य स्थापित हो गये —

(१) इमादुलमुल्क ने बरार में इमादशाही राज्य की स्थापना की। यह राज्य सन १५७४ ई० में अहमदनगर में मिला लिया गया।

(२) निज़ामशाह ने अहमदनगर मे, सन् १४९८ ई० में, निज़ाम शाही राज्य की स्थापना की। अकबर ने इसे मुगल-साम्राज्य में मिला लिया।

(३) आदिलशाह ने बीजापुर मे, सन १४८४ ई० में, आदिलशाही राज्य की स्थापना की। सन् १६८६ ई० में औरङ्गज़ेब ने इसे मुगल-साम्राज्य मे मिला लिया।

(४) कुतुबशाह ने गोलकुण्डा मे, सन् १५१८ ई० मे, कुतुबशाही राज्य की स्थापना की। सन् १६८७ ई० में औरङ्गज़ेब ने इसे मुगल-साम्राज्य मे मिला लिया।

(५) कासिम बरीद ने बीदर में, सन् १५२६ ई० में, बरीदशाही राज्य की स्थापना की। यह राज्य भी पीछे से बीजापुर में मिला लिया गया था।

यद्यपि बहमनी वश के सुलतानो की रुचि युद्ध और रक्त-पात में ही अधिक थी, फिर भी उनमें कई ऐसे थे जो विद्वानो और साधु पुरुषो को आश्रय देते थे। उन्होंने अनेक स्कूल स्थापित किये और उनके दिये हुए दानपत्र दक्षिण के गाँवो में कही-कही अब तक पाये जाते हैं उन्होंने अनेक किले बनवाये थे जिनमें ग्वालीगढ़ और नारनल्ला के

दक्षिण के पाँच मुसलमानी राज्य और विजयनगर राज्य
असीरगढ़
बुरहानपुर
नासिक
दौलताबाद
जालना
जुनार
पैठन
अहमदनगर
चौल
सोनपट
कन्धार
कोलास
इन्दुर
बीदर
गुलबर्गा
दमोल
बीजापुर
तालीकोट
मुदगल
रायचूर
गोआ
अनागुदी
विजयनगर
वारंगल
गोलकुंडा
राजमहेन्द्री
कोंडावीर
मछलीपट्टन
उदयगिरि
नीलोर
वेदनूर
पेन्नाकोंदा
काँची
कालीकट
त्रिचनापल्ली
तंजौर
नेगापट्टन
कोचीन
मदुरा
रामेश्वर
गोदावरी नदी
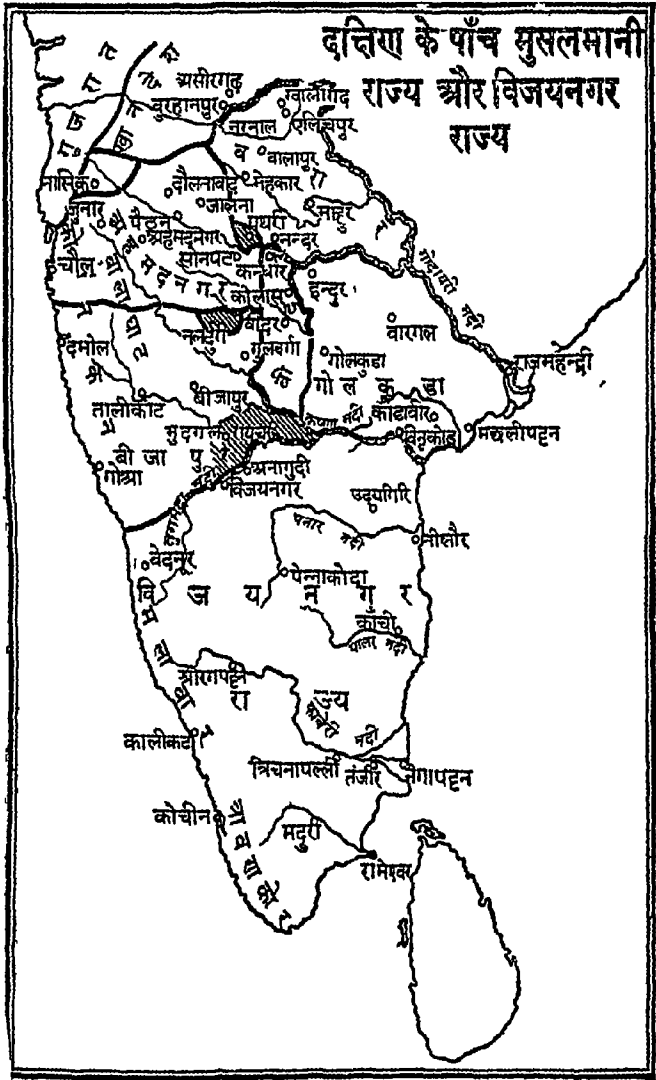
दुर्ग अव तक प्रसिद्ध है। अहमदशाह ने वीदर नगर वसाकर, उसे दक्षिण की राजधानियो में अत्यन्त सुन्दर वनाने के अभिप्राय से, वहाँ जितने सुन्दर भवन और अन्य इमारतें वनवाई, उनमें से अनेक अव भी दर्शनीय है।

**विजयनगर का राज्य**—जैसा पहले कहा जा चुका है, सन् १३३६ ई० में हरिहर और वुक्का न विजयनगर-राज्य की स्थापना की थी। वे अनागुदी के सरदार थ और दक्षिण में एक ऐसे शक्तिशाली राज्य की स्थापना करना चाहते थे, जिससे वहाँ के मुसलमानी वहमनी राज्य का प्रभाव सीमित रहे। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होने अपना शक्तिशाली राज्य वनाया था। थोडे ही समय मे विजयनगर-राज्य की आशातीत उन्नति हुई और अनेक हिन्दू राजाओ पर अधिकार जमा लेने के कारण शीघ्र ही यह एक विस्तृत साम्राज्य में परिणत हो गया। अपनी उन्नति की प्रौढावस्था मे यह साम्राज्य आजकल के मद्रास अहाता, मसूर तथा दक्षिण की कतिपय अन्य रियासतो के सम्मिलित विस्तार के वरावर था। इसकी सीमा पूर्व में कटक तथा पश्चिम में सालसट थी और दक्षिणी सीमा प्रायद्वीप (भारत) के सिरे को छूती थी। इस साम्राज्य की अभूतपूर्व उन्नति देखकर वहमनी शासको के हृदय में वडी ईर्ष्या उत्पन्न हुई और उसे दवाने के लिए वे वार-वार युद्ध करने लगे।

इस वश का प्रथम शासक हरिहर था। हरिहर की मृत्यु के वाद सन् १३५३ ई० में उसका भाई वुक्का गद्दी पर वैठा। वुक्का ने विजय-नगर को समाप्त किया और अनेक विजयो द्वारा उसकी प्रतिष्ठा को वढाया। वुक्का के वाद दूसरा प्रतिभाशाली शासक देवराय (सन १४१९-४९ ई०) हुआ उसके समय में दो विदेशी—निकोलो कौण्टी (Nicolo Conti) नामक एक इटली-निवासी और अब्दुर्रज्जाक नामक फारस का एक राजदूत—विजयनगर आये थे। दोनो विदेशी यात्रियो ने इस नगर के सौन्दर्य और समृद्धि का अत्यन्त सुन्दर वर्णन लिखा

है। देवराय के बाद उसके उत्तराधिकारी अपनी प्रतिष्ठा को स्थिर न रख सके और उनकी अयोग्यता के कारण सन् १५०५ ई० में साम्राज्य पर एक अन्य राजवश का अधिकार स्थापित हो गया।
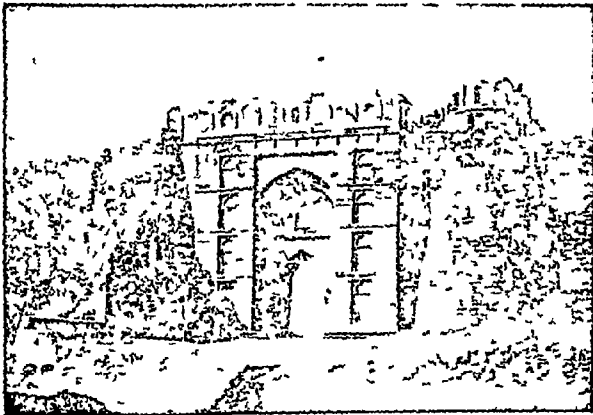
क़िले का फाटक (बीदर)

इस नवीन राजवश का सबसे योग्य राजा कृष्णदेवराय था। वह सन् १५०९ ई० में राजसिंहासनारूढ हुआ। वह एक गुणग्राही राजा था और विद्वानो तथा कवियो का आश्रयदाता था। उसका धार्मिक दृष्टिकोण उदार और सहनशीलतापूर्ण था। उसके दरबार में विदेशियो का आदर होता था। उसने उडीसा के राजा और बीजापुर के सुलतान को युद्ध में पराजित किया और पुर्तगालियो से मैत्री का व्यवहार रक्खा। सन् १५२९ ई० में, उसकी मृत्यु हो जाने के पश्चात्, शक्तिहीन राजाओ का शासन-काल आरम्भ हुआ। कृष्णदेवराय के एक उत्तराधिकारी सदाशिवराय के शासन मे, उसकी निर्बलता के कारण, उसके मन्त्री रामराजा ने सारा अधिकार अपने हाथ मे कर लिया। उसके अशिष्ट व्यवहार से शत्रु-मित्र सब उससे अप्रसन्न और असन्तुष्ट हो गये।
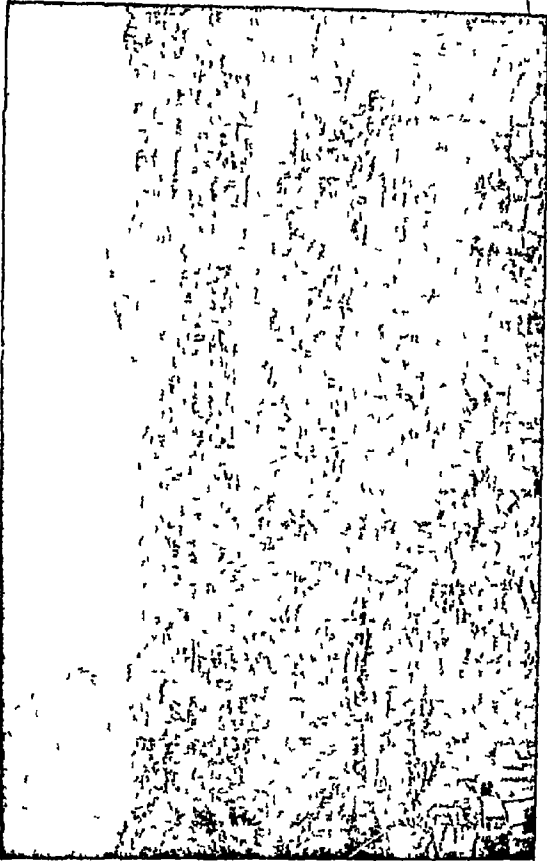
विजयनगर का ध्वसावशेष

वरार को छोडकर दक्षिण के अन्य चारो प्रधान मुसलमानी राज्यो ने, सघ बनाकर, विजयनगर के विरुद्ध युद्ध छेड दिया। उन्होने तालीकोटे के मैदान में, सन् १५६५ ई०, में राम राजा को भीषण पराजय दी। युद्ध में रामराजा की पराजय का प्रधान कारण, उसके दो असन्तुष्ट मुसलमान सेनाध्यक्षों का शत्रुओ से मिल जाना था। सेना की भगदड में रामराजा घायल हुआ। शत्रुओ ने उसका पीछा किया। वह पकडा गया और कत्ल कर दिया गया। विजयनगर के चारों ओर मुसलमान सेना ने घेरा डाल दिया और उसे जीतकर नगर की सुन्दर तथा विशाल इमारतो को ढहवा दिया। राजकीय कोष लूटा गया और विजयनगर का सर्वनाश हो गया।

तालीकोट की पराजय के बाद विजयनगर-साम्राज्य का ध्वस हो गया। किन्तु विजयनगर के उन्मूलन का मुसलमानो पर बडा ही घातक प्रभाव पडा। अब तक विजयनगर के अस्तित्व के कारण उन्हें सदा एक प्रबल शत्रु से भयभीत रहना पडता था, जिसके कारण परस्पर सहानुभूति रहने से आपस में वे ऐक्य-सूत्र से बँधे रहते थे, किन्तु विजयनगर का नाश होते ही उन्हें किसी बाह्य शत्रु का भय नही रह गया। धीरे-धीरे उनमें परस्पर कलह और द्वेष बढ़ने लगा। वे परस्पर लड-लड़कर निर्बल हो गये और उत्तर के मुग़ल सम्राटो को उन्हें अपने अधीन करने में कुछ भी कठिनाई न हुई।

**अब्दुर्रज्जाक़ का वर्णन**—जैसा पहले कहा जा चुका है, अब्दुर्रज्ज़ाक फारस का राजदूत था। वह सन् १४४२ ई० में विजयनगर आया था। उसने विजयनगर के ऐश्वर्य की बडी प्रशसा की है। उसका कहना है कि विजयनगर जैसा नगर न तो आँखो ने कही देखा और न कानो ने ससार मे कही सुना। रक्षा करनेवाली सात प्राचीरो के अन्दर यह नगर बसा हुआ है। बाज़ार के दोनो किनारो पर दूकानें लगी रहती है जिनमें हीरे, लाल, जवाहिर आदि बहुमूल्य माणिक जौहरियो द्वारा

खुले-आम विक्रय होते है। प्रत्येक वर्ग के व्यवसायियो और कारीगरो की दूकानें पास-पास रहती है।

वह लिखता है कि देश प्राय उपजाऊ और खेती से सम्पन्न है। साम्राज्य की सीमा के अन्तर्गत लगभग ३०० बन्दरगाह हैं। सेना की सख्या ११ लाख है। सारे भारतवर्ष में विजयनगर के राय के समान समृद्धिशाली तथा ऐश्वर्यवान् राजा कोई दूसरा नही है।

**शासन-प्रबन्ध**—विजयनगर-सम्राट् निरकुश तथा अपरिमित अधिकार रखनेवाले शासक थे। किन्तु इसके साथ ही उनकी सहायता के लिए भिन्न-भिन्न विभागो के कई मन्त्री हुआ करते थे, जो अपने विभाग की कार्यवाहियो पर पूरा अधिकार रखते थे। साम्राज्य अनेक प्रान्तो (नाडू) में विभक्त किया गया था, जिनकी सख्या लगभग २०० थी। इन ज़िलो में प्राय राजवश के लोग अथवा अन्य सरदार, सम्राट् के प्रतिनिधि की हैसियत से शासन-कार्य करने के लिए नियुक्त किये जाते थे। प्राय प्रजा से कर अधिक वसूल किया जाता था। ऐसे तो राज्य की सेना यो ही वहुत बडी थी, किन्तु युद्ध के समय उसकी सख्या बहुत बढ जाती थी। प्रान्तो के सूवेदारो को युद्ध-काल में सेना भेजनी पडती थी। 'दण्डनायक' अदालतो में न्याय करते थे और उनके फैसलो की अपील राय के दर्बार में हो सकती थी। फौजदारी का कानून बडा कठोर था। छोटे-छोटे अपराधो के लिए अभियुक्तो के हाथ-पैर काट लिये जाते थे। शारीरिक दण्ड का खूब प्रचार था। विजयनगर-साम्राज्य का उत्कर्ष होने पर देहात की प्राचीन पञ्चायत-प्रथा नष्ट हो गई। इसलिए गाँवो के मामले भी राज्य के अफसरो द्वारा ही तय होते थे। विजयनगर के शासक स्वय वैष्णव थे, किन्तु अन्य धर्म्मों के अनुयायियो को भी उन्होने पूर्ण स्वतन्त्रता दे रक्खी थी।

**सामाजिक जीवन**—विजयनगर में उच्च श्रेणी के लोगो का जीवन प्राय सुखी और विलासिता-पूर्ण था, किन्तु निर्धन जनता दु ख

और कष्ट का जीवन व्यतीत करती थी। साम्राज्य के अनेक भागो में अत्यधिक कर वसूल किया जाता था। व्यवसायो और कारीगरियो का वर्गों में सङ्गठन किया गया था और प्रत्येक वर्ग के मुखिया का राज-दर्बार मे वडा प्रभाव रहता था, जिससे वह अपने वर्ग के व्यवसाय अथवा दस्तकारी के करो को सरकार से कम करा लेता था। परन्तु किसानो
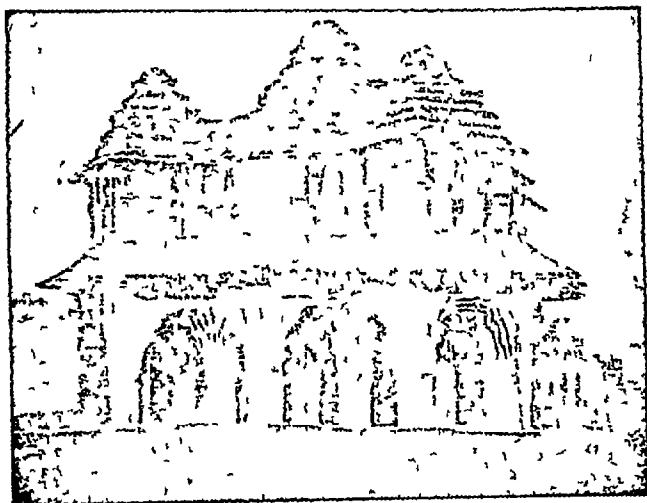
दर्बार-गृह (विजयनगर)

के करो में कमी कराने के लिए ऐसा कोई सङ्गठन नही था। समाज में ब्राह्मणो का अधिक सम्मान था। वे खूब धन-सञ्चय करते थे और राज्य में ऊँचे-ऊँचे पदो पर नियुक्त किये जाते थे। सती की प्रथा प्रचलित थी किन्तु स्त्रियो का समाज में वडा मान था। कितनी ही स्त्रियाँ विदुषी होती थी। वे सुन्दर कविताओ की रचना करती थी और वडे-वडे कवियो तथा नाटककारो की कृतियो को खूब समझती थी और उनका आशय वतला सकती थी। वे गाना-वजाना और नृत्य करना जानती

थी। उनमें से कुछ कुश्ती का भी अभ्यास रखती थी। एक वार एक स्त्री ने एक मन्दिर के सम्बन्ध मे देवराय द्वितीय से भेंट की थी और उससे मन्दिर के लिए एक गाँव प्राप्त किया था।

**कला और साहित्य**—विजयनगर-नरेशो को, अपने समकालीन हिन्दू-मुसलमान शासको की तरह, इमारतें बनाने का वडा शौक था। उन्होने अनेक मन्दिर, महल और किले वनवाये और चित्रकला की उन्नति मे वडा मनोयोग दिया। हाम्पी मे उनके महलो को जो ध्वसावशेप मिले है उनसे चित्रकारो और सगतराशो के उत्कृष्ट कला-कौशल का पता लगता है। इन विद्या-प्रेमी राजाओ के समय में साहित्य का भी अच्छा अभ्युदय हुआ। इन्ही के समय में सायण ने वेदो पर अपना अद्भुत भाष्य लिखा और माध्व के दर्शन-ग्रन्थ भी इसी समय लिखे गये।

## सक्षिप्त सन्वार विवरण

| | |
|---|---|
| मालवा के स्वतन्त्र होने की घोपणा .. | १४०१ ई० |
| गुजरात की स्वाधीनता .. | १४०१ " |
| इब्राहीमशाह शर्की का सिंहासनारूढ होना .. | १४०२ " |
| अहमदशाह का गुजरात की गद्दी पर बैठना .. | १४११ " |
| अब्दुर्रज्जाक की विजयनगर-यात्रा .. | १४२२ " |
| महमूद खिलजी का मालवा का राज्य हडपना .. | १४३५ " |
| महमूद वीगड का गद्दी पर वैठना .. .. | १४५६ " |
| आदिलशाही राज्य की स्थापना .. .. | १४८४ " |
| निज़ामशाही राज्य की स्थापना .. .. | १४६८ " |
| राना साँगा का सिंहासनारूढ होना .. .. | १५०६ " |
| कुतुवशाही राज्य की स्थापना .. .. | १५१८ " |

| | | |
|---|---|---|
| बरीदशाही राज्य की स्थापना | .. | १५२६ ई० |
| बहादुरशाह (गुजरात) का मालवा के महमूद द्वितीय को पराजित करना | .. | १५३१ " |
| तालीकोट का संग्राम | . | १५६५ " |
| बङ्गाल के मुसलमानी सुलतानों का उड़ीसा को जीतना | .. | १५६८ " |

# अध्याय २०

## सैयद और लोदी-वंश

### (१४१४–१५२६ ई०)

**सैयद सुलतान**—महमूद तुगलक की मृत्यु के बाद खिज्र ख़ाँ ने, जिसे तैमूर ने लाहौर और मुल्तान की जागीर दी थी, १४१४ ई० में दिल्ली की गद्दी पर अपना अधिकार जमा लिया। परन्तु यह अशान्ति और गड़बड़ी का समय था। दिल्ली-सुलतान की प्रतिष्ठा और धाक बिलकुल नहीं के बराबर थी। हिन्दू सरदार धीरे-धीरे अपनी विगत शक्ति को पुन प्राप्त करने का उद्योग कर रहे थे। सन् १४२१ ई० में खिज्र खाँ सैयद की मृत्यु के बाद उस वश के तीन और शासक दिल्ली के सिंहासन पर आसीन हुए, किन्तु वे सबके सब शक्ति-हीन और निकम्मे थे। उनमें से किसी में भी यह योग्यता न थी कि शान्ति स्थापित करके दिल्ली-सुलतान की पहले-जैसी मर्यादा फिर से स्थापित कर सके। इस वश का अतिम सुलतान आलमशाह था जो सन् १४४३ ई० में गद्दी पर बैठा था। परन्तु पञ्जाब के सूबेदार बहलोल लोदी ने उसका आधिपत्य स्वीकार करने से इनकार कर दिया। बहलोल लोदी ने सन् १४५१ ई० में दिल्ली का सिंहासन स्वय अपने अधिकार में कर लिया और सुलतान बन बैठा। आलम-शाह चुपचाप बदायूँ को चला गया और वहाँ शान्तिपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करने लगा। सन् १४७८ ई० में वही उसकी मृत्यु हो गई।

**बहलोल लोदी**—सुलतान बहलोल वीर तथा उदारहृदय मनुष्य था। युद्ध-कला का उसे अच्छा ज्ञान था। पिछले काल के तुग़लक़ सुल-

तानो की अपेक्षा वह कही अधिक योग्य शासक था। उसके सिंहासना-रोहण के साथ दिल्ली-साम्राज्य में एक नवीन जीवन का प्रवेश हुआ। सुलतान बहलोल ने अदम्य साहस के साथ विद्रोही अमीरो का दमन किया और अशान्ति को दूर किया। फिर से देश सुखी तथा समृद्धिशाली हो गया। आन्तरिक झगडो का विनाश कर लेने के बाद उसने निकटवर्ती राज्यो को दबाने का उद्योग किया। सबसे पहले उसने अपना ध्यान जौनपुर राज्य की ओर दिया। बहुत दिन तक दृढता के साथ युद्ध करने के बाद अन्त में उसने जौनपुर के शर्की सुलताल को पराजित किया और अपने बेटे बारबकशाह को जौनपुर का सूबेदार नियुक्त किया। सुलतान की इस विजय से उसकी शक्ति और प्रतिष्ठा दोनो बढ गईं। इसके बाद क्रमश कालपी, धौलपुर और अन्य कई स्थानो के विद्रोही सरदारो को भी सुलतान ने पराजित करके उन्हें अपनी अधीनता स्वीकार करने पर विवश किया।

बहलोल पवित्र विचारोवाला धार्मिक मुसलमान था। वह कुरान का अक्षरश अनुसरण करता था। वह सीधे स्वभाव का मनुष्य था और शाही शान-शौकत के प्रदर्शन से दूर रहता था। वह अपने पहले के साथियो के साथ बराबर पूर्ववत् व्यवहार करता और उन्हें कभी यह अनुभव नही होने देता था कि वह सुलतान है और वे उसकी प्रजा हैं। वह बडा न्याय-प्रिय था और प्रजा की फरियादो को स्वय सुनता था। वह दीनो के प्रति दया का व्यवहार करता और दान-पुण्य में पर्याप्त धन व्यय करता था। वह विद्वानो और सज्जनो के सत्सङ्ग का प्रेमी था और उनकी सहायता के लिए सदैव उद्यत रहता था।

**सिकन्दर लोदी**—सन् १४८८ ई० मे सुलतान बहलोल लोदी की मृत्यु के पश्चात् उसका बेटा निजाम खाँ, सिकन्दर लोदी के नाम से, सिंहासनारूढ हुआ। सुलतान सिकन्दर लोदी बडी तीव्र गति से काम करनेवाला व्यक्ति था। उसने शासन के भिन्न-भिन्न विभागो के सङ्गठन का कार्य बडी तत्परता से आरम्भ किया। उसके भाई बारबकशाह

ने दिल्ली की गद्दी पर अपना अधिकार करने की चेष्टा की और सुलतान की उपाधि ग्रहण की, परन्तु सिकन्दर लोदी ने उसे पराजित कर क़ैद कर लिया। इसके बाद उसने हुसेनशाह शर्की को बुरी तरह परास्त करके विहार को दिल्ली-साम्राज्य के अन्तर्गत मिला लिया। उसने बङ्गाल के सुलतान से सन्धि कर ली जिसके अनुसार दोनो में मैत्री स्थापित हो गई। अब सुलतान की धाक अच्छी तरह जम गई और धौलपुर, ग्वालियर, चन्देरी तथा अन्य स्थानो के राजाओ ने उसका आधिपत्य स्वीकार कर लिया। सन् १५०४ ई० में उसने उस स्थान पर, जहाँ वर्तमान आगरा नगर स्थित है, एक नवीन नगर की नीव डाली और उसे बसाकर अपनी राजधानी बनाया। सन् १५०५ ई० में एक भयङ्कर भूकम्प आया, जिसके कारण बहुत-सी इमारतो के गिरने और लोगो के मर जाने से इस नगर की बडी क्षति हुई।

वास्तव में सुलतान सिकन्दर लोदी सुलतानो में सबसे अधिक योग्य और प्रतिभाशाली शासक था। उसने विद्रोही अफगान अमीरो और अभिमानी सरदारो को दबाकर अपने अधिकार की अच्छी धाक जमाई। साम्राज्य में अमन-चैन स्थापित करने मे, उसे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। अपने पिता के विपरीत वह शान-शौकत के साथ दर्बार करता था और राजसी ठाट-बाट में क़िसी प्रकार की कमी नही होने देता था। उसके अफसर और अमीर, उससे भयभीत रहते थे और उसकी आज्ञा का हृदय से पालन करते थे। न्याय-प्रिय ऐसा था कि दीन-दुखियो की फरियाद वह स्वय सुनता था और उनकी सहायता का प्रबन्ध करता था। परन्तु सुलतान फीरोज तुगलक की तरह उसमें धार्मिक पक्षपात था। हिन्दुओ के प्रति उसका वर्ताव कठोर होता था। उसने अनेक मन्दिरो को गिरवाकर उनके स्थान पर मसजिदें बनवाई थी।

**इब्राहीम लोदी**—सन् १५१७ ई० में, सिकन्दर लोदी की मृत्यु के पश्चात्, उसका बेटा इब्राहीम लोदी गद्दी पर बैठा। कुछ स्वार्थी

अमीरो ने साम्राज्य को दो भागो में विभक्त कर देने का विचार करके इब्राहीम के छोटे भाई जलाल को जौनपुर की गद्दी पर बिठा दिया। परन्तु इब्राहीम ने शीघ्र बडे साहस के साथ इसको रोकने की चेष्टा की और उसके कारण स्वार्थी अमीरो का षड्यन्त्र सफल नही हुआ। जलाल युद्ध मे पराजित हुआ। वह रणक्षेत्र से भागा परन्तु पकडा गया और सुलतान की आज्ञा से कत्ल कर दिया गया। धीरे-धीरे इब्राहीम अत्यन्त अभिमानी और निर्दय हो गया और अफगान अमीरो के साथ अत्यन्त असभ्यता का व्यवहार करने लगा। वह उन्हें प्राय बिना हिले-डुले चुपचाप अपने सामने खडा रहने की आज्ञा देता था और बिना किसी अपराध के कैदखाने मे डाल देता था। अफगानो को अपने ऊपर सरदार या सुलतान का होना पसन्द होता है और वे भक्ति-पूर्वक उसकी आज्ञाओ का पालन भी करते है, परन्तु वे इब्राहीम जैसे किसी व्यक्ति का अपने ऊपर स्वामित्व सहन नही कर सकते। दरिया खाँ नामक एक प्रभावशाली अमीर ने बिहार में अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी। उधर पञ्जाब के सूबेदार दौलत खाँ ने, इब्राहीम के अत्याचारो से त्रस्त होकर, काबुल के अधिपति बाबर को भारतवर्ष पर आक्रमण करने का निमन्त्रण भेजा। सुलतान के चचा आलम खाँ ने भी काबुल पहुँचकर बाबर से अपने भतीजे के विरुद्ध सहायता माँगी। बाबर ने झटपट चढाई की तैयारी कर दी। वह एक बडी सेना लेकर हिन्दुस्तान के सुलतान के विरुद्ध काबुल से रवाना हो गया। सन् १५२६ ई० मे पानीपत के प्रसिद्ध मैदान में लडाई हुई। इब्राहीम लोदी की पराजय हुई और दिल्ली का साम्राज्य मुग़ल-विजेता के आधिपत्य मे चला गया।

**लोदी सुलतानो का पतन**—लोदी सुलतानो में न तो तुर्कों की सी राजनीतिक योग्यता थी और न उनमे वैसी सैनिक स्फूर्ति ही थी। वे शक्तिहीन शासक थे और सर्वदा अपने अमीरो और सरदारो से दबे रहते थे। उन्होने सारे साम्राज्य को अनेक जागीरो मे बाँट दिया था

और बहलोल लोदी की सादगी से जागीरदारो ने इतना लाभ उठाया था कि वे प्राय सुलतान की आज्ञा की अवहेलना किया करते थे। कभी-कभी केन्द्रीय सरकार की ओर से जब उन पर कुछ नियन्त्रण किया जाता तो वे मन ही मन कुढ जाते और सुलतान को हानि पहुँचाने का उपाय करने लगते थे। इब्राहीम की निर्दयता और दुराग्रह ने उसकी स्थिति को और भी खराब कर दिया। उसके दुर्व्यवहारो से उत्पीडित होकर अमीरो ने उसके विनाश के लिए षड्यन्त्र रचना आरम्भ कर दिया। परन्तु इब्राहीम को इतनी सुबुद्धि कहाँ कि वह उनके विरोधो का अर्थ समझकर सावधान हो जाता और अपनी नीति बदल देता। इसके विपरीत उसने अधिक दृढता के साथ उन्हे अपनी आज्ञा मानने के लिए विवश करना आरम्भ किया और सरकारी रुपये का हिसाब माँगने लगा। जिस आदमी को भी उसने अपना विरोधी समझा उसकी जागीर जब्त कर ली। परन्तु उसकी इस कठोरता का परिणाम और भी अनिष्टकारी सिद्ध हुआ। चारो ओर राजद्रोह अधिकाधिक फैलने लगा, जिससे साम्राज्य का पतन निश्चित हो गया।

## सक्षिप्त सन्‌वार विवरण

| | |
|---|---|
| खिज्र खाँ का दिल्ली राज्य पर अधिकार करना .. | १४१४ ई० |
| बहलोल लोदी का सुलतान होना .. .. | १४४३ " |
| आगरा की बुनियाद .. .. .. | १५०४ " |
| सिकन्दर का सिंहासनारोहण .. .. | १५१७ " |
| पानीपत की पहली लड़ाई .. .. | १५२६ " |

# अध्याय २१

## पूर्व-मध्यकालीन सभ्यता और संस्कृति

### (१२००—१५०० ई०)

शासन-प्रबन्ध—दिल्ली के सुलतान अपरिमित अधिकार रखनेवाले एक प्रकार के स्वेच्छाचारी सैनिक शासक थे। उनकी स्वेच्छाचारिता को रोकनेवाली यदि कोई शक्ति थी, तो वह थी 'शरियत' अथवा कुरान शरीफ। परन्तु अधिकाश सुलतान इस प्रतिबन्ध को भी कुछ नही समझते थे। कुछ सुलतान, खलीफा की प्रभुता स्वीकार करके, उसके प्रति सम्मान सूचित करते रहते थे, परन्तु व्यावहारिक बातो में वे सर्वथा निरकुश और स्वतन्त्र शासको की तरह कार्य करते थे। विरासत अथवा उत्तराधिकार का तुर्कों मे कोई खास नियम नही था, इसी कारण कभी-कभी सुयोग्य गुलाम भी बादशाह बना दिये जाते थे। कोई-कोई सुलतान तो अपने कर्तव्य का इतना उत्कृष्ट आदर्श सामने रखते थे कि अयोग्य होने के कारण अपने बेटो को भी राज्याधिकार से वचित कर देते थे। ईल्तुतमिश ने मरते समय वसीयत की थी कि राजगद्दी उसकी बेटी रजिया को दी जाय। राज्य में धार्मिक नियमो के ज्ञाता 'उलमा' (विद्वान्) कहलानेवाले लोगो का बडा प्रभाव था। वे सुलतान को राज्य के मामलो में परामर्श देते थे। प्राय सुलतान उन्ही की सलाह के अनुसार काम करते थे परन्तु अलाउद्दीन और मुहम्मद तुगलक ने उनकी सलाह की कभी पर्वाह नही की। वे 'राष्ट्र के हित को ही अपना लक्ष्य समझते थे। कभी-कभी 'उलमा' वर्ग का प्रभाव खराब सुलतानो को बुरे मार्ग में जाने से रोकता था परन्तु बहुधा उनका परामर्श राज्य के लिए हितकर नही होता था। ये लोग हिन्दुओ

लोदी साम्राज्य
काबुल
गज़नी
पेशावर
काश्मीर
पंजाब
लाहौर
मुलतान
दिपालपुर
अम्बाला
पानीपत
दिल्ली
हिमालय पर्वत
राजपूताना
सिकन्दरा
आगरा
कन्नौज
अजमेर
बियाना
इटावा
जौनपुर
सिन्ध
रणथम्भौर
ग्वालियर
बनारस
पटना
गौड
चित्तौड़
चन्देरी
मालवा
जबलपुर
बंगाल
गुजरात
अहमदाबाद
जूनागढ़
बुरहानपुर
खानदेश
असीरगढ़
गोंडवाना
अहमदनगर
बीदर
गोलकुंडा
गुलबर्गा
गोलकुंडा
बीजापुर
अरब सागर
बंगाल की खाड़ी
विजयनगर
विजयनगर

के प्रति धार्मिक सहिष्णुता दिखलाने तथा शासन-सुधार के विरोधी होते थे। फीरोज़ तुगलक और सिकन्दर लोदी के शासन-काल में इनका प्रभाव बहुत बढ गया था। इसका परिणाम राज्य के लिए बडा अनिष्ट-कारी सिद्ध हुआ। अन्याय और असहिष्णुता के वर्त्ताव के कारण इन दोनो सुलतानो की लोक-प्रियता घट जाने से उनकी स्थिति बहुत खराब हो गई थी।

माल और फौज के विभागो मे कोई खास अन्तर नहीं था। एक ही अफसर दोनो महकमो मे काम कर सकता था। सुलतान की सहायता के लिए वज़ीर (प्रधान मन्त्री), नायब (प्रतिनिधि), सदर (प्रधान न्यायाधीश), अरीज़-ए-ममालिक (प्रधान सेनाध्यक्ष), कोतवाल, अमीर आखुर (घुडसार का अध्यक्ष), अमीर कोह (कृषि-विभाग का प्रधान निरीक्षणकर्ता) और दबीर (सेक्रेटरी) आदि अफसर रहते थे। इन अफसरो के अतिरिक्त बहुत से अन्य ऊँचे दर्जे के कर्मचारी भी राज-काज की सहायता के लिए नियुक्त रहते थे। राज्य के कर्मचारी कई श्रेणियो में विभक्त थे जिनसे उनके दर्जे का पता लगता था। इन लोगो को कभी वेतन, कभी जागीर और कभी ज़मीन की मालगुज़ारी दी जाती थी। माल के महकमे के कर्मचारी प्राय हिन्दू ही होते थे। देहातो मे लगान वसूल करने का काम खुत, चौधरी और मकद्दम करते थे। ये लोग एक प्रकार के अर्ध-राजकीय कर्मचारी होते थ और इन्हें राज्य की ओर से, एक निश्चित दर के अनुसार, कमीशन दिया जाता था। बाज़ारो का निरीक्षण करने के लिए नियुक्त किये हुए सरकारी अफसर शहना-मण्डी कहलाते थे। वे व्यापारियो और दूकानदारो की देखभाल करते थे। राज्य की ओर से प्रजा के आचरण-सुधार के लिए 'मुहतसिब' नाम के अफसरो की नियुक्ति होती थी। मुहतसिब प्रजा के आचरण की देख रेख रखते थ। राज्य के अनेक निजी कारखाने थे। उनका प्रवन्ध करने के लिए, दान-पुण्य के विभाग की देख-रेख के लिए तथा इमारतो की रक्षा के लिए अलग-अलग अफसर नियत थ।

राज्य में ऊँची नौकरी प्राप्त करना वडी वात समझी जाती थी। परन्तु इन नौकरियो का कोई ठिकाना नही था। सुलतान के इच्छानुसार मनुष्य छोटे पद से उच्च पद पर और उच्च पद से नीचे पद पर कर दिया जाता था। यह वात अक्सर होती थी। जव कोई नया सुलतान गद्दी पर बैठता था तो वह पुराने अफसरो को निकाल देता था। प्राय विदेशी लोगो को सुलतान उच्च पदो पर नियुक्त किया करते थे। परन्तु वे राज्य के हित का कुछ भी खयाल नही करते थे और उनके षड्यन्त्रो से देश में अशान्ति फैलती थी।

साम्राज्य अनेक सूवो में विभक्त था। सूवे का प्रवन्ध एक अमीर करता था जिसे नायव (सुलतान का प्रतिनिधि) कहते थे। वह अपना खर्च काटकर केन्द्रीय सरकार को मालगुजारी का वाकी रुपया भेज दिया करता था। कभी-कभी सवसे अधिक रुपया देने का वादा करनेवाले व्यक्ति को ही सूवे का प्रवन्ध सौंप दिया जाता था। ज़मीन के कर का न तो कोई निश्चित नियम था और न वन्दोवस्त का ही कुछ प्रवन्ध था। ज़मीन के कर के अतिरिक्त अन्य अनेको कर वसूल किये जाते थे। हिन्दुओ से 'जज़िया' वसूल किया जाता था। ज़मीन के कर के लिए यद्यपि किसानो के साथ सख्ती की जाती थी तो भी राज्य की ओर से उनकी रक्षा का उचित प्रवन्ध किया जाता था और उनके साथ अन्याय करनेवाले को सुलतान दण्ड देता था। गाँवो के अधिकाश मामले पञ्चायतो द्वारा ही तय होते थे।

सुलतान के पास एक वडी सुसज्जित सेना रहती थी। युद्ध के समय सूवेदारो और अधीन हिन्दू राजाओ की सेनाओ के मिल जाने से उसकी सख्या कई गुनी वढ जाती थी। घोडो पर दाग लगाया जाता था और फौज की कवायद हुआ करती थी। घोडे, पैदल, हाथी (हय-दल, पैदल, गज-दल) ये सेना के तीन प्रधान अङ्ग होते थे। सीमा प्रदेश की चौकियो की चौकसी का काम वडे अनुभवी तथा कुशल सैनिको को ही सौंपा जाता था। मुगलो के आक्रमणो को रोकने के लिए अनेक किले

बनाये गये थे। सेना के अफसर माल के महकमे का भी काम किया करते थे। सुलतान के प्रति उनकी भक्ति इसी बात पर निर्भर थी कि वे उसका नमक खाते थे।

आज-कल की तरह उस समय कानून के ज़ाब्ते न थे। दीवानी के मामलो में हिन्दू और मुसलमान दोनो धर्मशास्त्र अथवा हदीस का अनुसरण करते थे। परन्तु फौजदारी के मामलो मे राज्य के कर्मचारी अपराध के अनुसार दण्ड देते थे। दण्ड प्राय कठोर दिये जाते थे। कभी-कभी अपराधियो को कठिन शारीरिक यन्त्रणाएँ भी दी जाती थी, यद्यपि लोकमत ऐसे दण्डो के विरुद्ध रहता था। इसी लिए फीरोज़ तुगलक न इन्हें बन्द कर देने का भरसक प्रयत्न किया था। अदालतो में क़ाज़ी इन्साफ करते थे और मुकदमा फैसल करने के आसान तरीको से काम लेते थे। जब कभी काज़ी को किसी बडे अमीर का मुकदमा करना होता तो मीरदाद नाम का अफसर उसकी सहायता करता था। क़ाज़ी के फैसले की अपील सुलतान के पास होती थी और उचित कारण होने पर उसमें वह उलट-फेर कर देता था।

**जनता की सामाजिक दशा**—मुसलमान अमीर शान-शौकत से जीवन व्यतीत करते थे। उनकी आमदनी भी बहुत थी। जुआ और शराबखोरी का रवाज था। कभी-कभी सुलतान की ओर से इनको रोकने के लिए कठोर दण्डो का विधान भी किया जाता था। दास-प्रथा थी। सुलतानो और अमीरो के निजी गुलाम हुआ करते थे। कभी-कभी उन्हें शिक्षा भी दी जाती थी और वे राज्य में ऊँचे-ऊँचे पदो तक पहुँच जाते थे। देश में अपार धन था। अलाउद्दीन के दक्षिण से अतुल धन ले आने और यहाँ से तैमूर के सोना-चाँदी तथा जवाहिरात की राशि ले जाने से यह बात भली भाँति सिद्ध होती है। दिल्ली के लोग ईंट-पत्थर के बने हुए पक्के मकानो में रहते थे जिनके फर्श सङ्ग-मरमर जैसे सफेद पत्थर के बने होते थे। मकान दोमंजिले प्राय बहुत कम होते थे। हिन्दू-मुसलमान दोनो पीर-औलिया की पूजा करते थ।

परन्तु कुछ सुलतानों ने फकीरो की दरगाहो में औरतो के जाने की मनाही कर दी थी। छोटी अवस्था में लडकी की शादी कर देना प्रतिष्ठा और सम्पन्नता की बात समझी जाती थी। सती की प्रथा थी, यद्यपि किसी-किसी सुलतान ने इसे बन्द करने का उद्योग किया था। कर्ज का कानून बडा कठोर था। महाजन अपने कर्जदार को गुलाम बनाकर बेच देते थे। जादू-टोने में लोग खूब विश्वास करते थे। कभी-कभी सुलतान भी हिन्दू योगियो की क्रियाएँ देखने जाते थे। दान का कार्य राजा और प्रजा दोनो की ओर से होता रहता था। कुछ सुलतानो को गरीबो और कङ्गालो की सहायता का विशेष ध्यान रहता था। वे साल मे दो बार गरीबो और मँगतो की फेहरिस्त बनवाते थे और छ महीने के लिए एक साथ ही उन्ह भोजन-वस्त्र प्रदान करते थे।

दुर्भिक्ष से प्रजा के धन-जन की प्राय क्षति होती रहती थी। राज्य की ओर से कृषि की उन्नति के लिए किसानो को अनेक उपाय बतलाये जाते थे और उन्हें कुँआ खोदने के लिए रुपया तथा बीज के लिए शाही खत्तियो से अनाज दिया जाता था। किसानो की सहायता के लिए मुहम्मद तुगलक ने ७० लाख तनका खर्च किया था। अच्छे समय में सुख-शान्ति अधिक रहती थी और प्रजा तथा राजा दोनो मिहमानो और विदेशी लोगो के साथ प्रेम का व्यवहार करते थे।

राज्य की ओर से अनेक कारखान खोले गये थे जहाँ सुलतान, उसकी बेगमों तथा अमीरो के लिए कमखाब आदि बहुमूल्य वस्त्र और अन्य ऐश्वर्य की सामग्रियाँ तैयार की जाती थी। उन कारखानो में सहस्रो कारीगर काम करते थे। एक समय शाही कारखाने में केवल सलमा-सितारे का सुनहला काम करनेवाले कारीगर ५०० थे। विदेशो की अपेक्षा भारत का व्यापार उन्नत दशा में था। सूरत और भडौच के बन्दरगाहो म दूर-दूर के देशो के व्यापारी भारतीय माल खरीदने के लिए उतरा करते थे।

**साहित्य**—मसलमान सुलतान विद्वानो के संरक्षक और आश्रय-

दाता थे। उनके समय में फारसी के अनेक प्रसिद्ध कवि हुए, जिनमे अमीर खुसरो, मीर हसन देहलवी और बदरचाच के नाम अधिक प्रसिद्ध हैं। हिन्दुओ के विपरीत मुसलमान विद्वानों में प्राय अनेक क्रम-बद्ध इतिहास के लेखक थे। उस समय के इतिहास-लेखको मे मिनहाज उस्-सिराज, जियाउद्दीन बर्नी और शम्स-सिराज अफीफ के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। धर्म, ज्योतिष और स्वास्थ्य-विज्ञान का अध्ययन लोग विशेष रूप से करते थे और उस समय इन विषयो पर अनेक पुस्तकें भी लिखी गई थीं। संस्कृत की अनेक पुस्तको का फारसी में अनुवाद किया गया। सिकन्दर लोदी ने वैद्यक के एक संस्कृत-ग्रन्थ का फारसी मे अनुवाद कराया और उसका नाम तिब्ब-सिकन्दरी रक्खा। फीरोज़ ने दिल्ली मे एक बहुत बडा विद्या-पीठ स्थापित किया था, जिसमे विद्यार्थियो और अध्यापको के रहने का प्रबन्ध था।

मिथिला (वर्तमान तिरहुत) मे संस्कृत-विद्या की खूब उन्नति हुई। अनेक विद्वानो ने मैथिली भाषा का अध्ययन किया। महा-कवि विद्यापति ने अपने पद मैथिली भाषा मे लिखे। संस्कृत का समुचित अध्ययन और अध्यापन दक्षिण में विजयनगर के अधिपतियो के संरक्षण मे होता था। उनके समय में संस्कृत मे अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ बने जिनका वर्णन पहले किया जा चुका है।

इस समय उत्तरी भारत मे हिन्दी-साहित्य की काफी वृद्धि हुई। पृथ्वीराज के दरबारी कवि चन्द बरदाई ने भी इसी काल में कविता की। हिन्दी भाषा का वह पहला कवि कहा जाता है। अमीर खुसरो की पहेलियाँ, जो हिन्दी-साहित्य मे सर्वदा अपना एक विशिष्ट स्थान रक्खेंगी, इसी समय लिखी गई थीं। गोरखनाथ तथा अन्य सिद्धो के दोहे, रामानन्द, कबीर और नानक के पद इसी समय कहे गये। ये जन-साधारण की भाषा में थे। बाद को उनके शिष्यो ने इन्हें लिपिबद्ध किया।

भिन्न-भिन्न प्रान्तो की जनता की भाषा और साहित्य की उन्नति

की ओर मुसलमान शासकों की बराबर सहानुभूति रहती थी बङ्गाल, गुजरात तथा जौनपुर के शासकों ने अपने प्रान्तों में साहित्य को बड़ा प्रोत्साहन दिया। उस समय दिल्ली, आगरा, जौनपुर, बदायूँ और बीदर विद्या के प्रसिद्ध केन्द्र थे। इनमें कुछ तो उतने ही प्रसिद्ध हो गये जितने कि एशिया के बुखारा, समरकन्द और शीराज़ आदि नगर थे।

कला—दिल्ली के सुलतानों को इमारतें बनाने का बड़ा शौक था। वास्तु-कला के सम्बन्ध में उनके अपने विचार थे। परन्तु, आरम्भ में उन्हें हिन्दू और जैन-मन्दिरों की सामग्री से काम लेना पड़ा और कारीगर भी हिन्दू ही मिले, इसलिए मुसलमानी और हिन्दू वास्तु-कला का सम्मिश्रण हो गया। इस सम्मिश्रण से एक नवीन कला का आविर्भाव हुआ जिसे 'हिन्दू-मुसलमानी' कला कहा जा सकता है।

कुतुबुद्दीन और ईल्तुतमिश के समय की इमारतों में अजमेर की मसजिद और दिल्ली की कुतबी मसजिद तथा कुतुब मीनार बहुत प्रसिद्ध हैं। कुतुब मीनार को, जिसकी ऊँचाई लगभग २४२ फीट है, कुतुबद्दीन ने बनवाना आरम्भ किया था परन्तु उसे ईल्तुतमिश ने पूरा किया। अलाउद्दीन एक युद्ध-प्रिय शासक था किन्तु उसने भी अपना ध्यान इमारतों के बनाने की ओर रक्खा और अनेक दुर्ग, महल तथा तालाब बनवाये। सन् १३११ ई० का बना हुआ 'अलाई दर्वाज़ा' उस समय की कला का सुन्दर नमूना है। अलाउद्दीन की मृत्यु के बाद तुगलकों के समय में वास्तु-कला में कुछ विशेष परिवर्तन हो गये। तुग़लकों के निर्माण किये हुए भवनों में प्रौढता और सादगी स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। तुगलकाबाद का किला और तुगलकशाह का मकबरा इस शैली के सर्वोत्कृष्ट नमूने हैं। फीरोज़ को इमारतों में बड़ी रुचि थी। उसने अनेक महल, मसजिदें और तालाब बनवाये और कई नगरों को आबाद किया।

प्रान्तो के स्वाधीन शासको ने अपनी-अपनी शैली के अनुसार इमारतें बनवाईं जिनका वर्णन पहले किया जा चुका है।

**इस्लाम का प्रसार**—१२वी शताब्दी के अन्तिम काल में दिल्ली की जीत के साथ-साथ देश में इस्लाम धर्म का बड़े जोरो से प्रसार होने लगा। इसकी उन्नति के प्रधान कारण ये थे—(१) इस्लाम धर्म की सादगी, उपासना के आडम्बर का अभाव और उसका एक ही ईश्वर के अस्तित्व पर जोर देना तथा यह कहना कि मनुष्य को केवल एक ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिए, (२) हिन्दुओ के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न जातियो का एक दूसरे पर अत्याचार करना, जिससे कितनी ही दलित जातियो के लोगो ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया, (३) इस्लाम धर्म को राष्ट्र से सहायता मिलना; (४) मुसलमान होने पर ऊँचे ओहदे और सम्मान प्राप्त करने की सम्भावना। इन कारणो के अतिरिक्त और भी कारण थे, जिनसे इस्लाम धर्म का प्रसार सुगम हो गया। हिन्दुओ और बौद्धो की तरह मुसलमानो मे भी सन्त (फ़क़ीर) होते थे जो त्याग और तपस्या का जीवन व्यतीत करते थे। ये सूफी थे और अपनी पवित्रता तथा सादगी से हिन्दू-मुसलमान दोनो के हृदयो को समान रूप से आकर्षित करते थे। १३वी और १४वी शताब्दी में ये लोग इस्लाम धर्म के प्रचार का कार्य बडी तत्परता से सम्पादित कर रहे थे। इस प्रकार के सन्तो में अजमेर के मुईनुद्दीन चिश्ती, पाकपाटन के फरीदुद्दीन, दिल्ली के निज़ामुद्दीन औलिया, नासिरुद्दीन चिराग़-ए-दिल्ली और दक्खिन के गीसू दराज़ का नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है। ये लोग जनता मे भगवान् के प्रेम और आराधना के तत्त्व का प्रचार करके हिन्दुओ और मुसलमानो के बीच का भेद-भाव दूर करने का प्रयत्न करते थे। उन्होने अपने-अपने पथ खड़े किये और अनेक शिष्यो को शिक्षा देकर इस योग्य बनाया कि वे उनकी मृत्यु के बाद उनके धर्म का प्रचार कर सकें। उनमे फरीदुद्दीन अतर और अमीर खुसरो जैसे कवि भी थे जिनकी साहित्यिक रचनाओ द्वारा इस्लाम की महिमा प्रकट करने में यथेष्ट सहायता मिली।

इन सन्तो और कवियो के अतिरिक्त मुसलमानो में अनेक धर्म और कानून के ऊँची श्रेणी के विद्वान् थे, जिनकी विद्वत्ता और प्रतिष्ठा के कारण लोग उनका हृदय से सम्मान करते थे।

**धर्मों का पारस्परिक सघर्ष**—पहले वहुत समय तक तो हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के कट्टर शत्रु वने रहे परन्तु वाद को धीरे-धीरे उन दोनो के मन में यह विचार पूरी तरह वैठ गया कि एक दूसरे का पूर्णतया विनाश कर सकने मे कभी समर्थ नही हो सकता। उधर नये मुसलमान अपनी सदा की हिन्दू-रीतियो को नही छोड सकते थे। इस प्रकार मुसलमानो ने भी वहुत-से हिन्दू रीति-रवाजो को जारी रक्खा। मुसलमान फकीरो के अनेक हिन्दू मुरीद हुआ करते थे और हिन्दू योगियो के अनेक मुसलमान शिष्य होते थे। इन लोगो के कारण हिन्दुओ को मुसलमानो के तथा मुसलमानो को हिन्दुओ के विचारो का आदर करने का मौका मिलता था। धीरे-धीरे हिन्दू-मुसलमान परस्पर के झगडो को भूलकर आपस मे प्रेम और मैत्री का व्यवहार करने लगे। एक धर्म का दूसरे धर्म पर प्रभाव पडे विना नही रह सका। हिन्दू-धर्म पर, विशेषत भक्ति-मार्ग पर, मुसलमानी धर्म का प्रभाव पडा। इस प्रभाव की झलक रामानन्द, नानक तथा कवीर के उपदेशो में दिखाई देती है।

**भक्ति-मार्ग**—भक्ति की चर्चा वास्तव में १४वी शताब्दी में कोई नई वात नही थी। भक्ति का मूलरूप उपनिषदो और भगवद्गीता में पहले ही से मौजूद है। १२वी शताब्दी में भी दक्षिण-भारत के महान् दार्शनिक तथा आचार्य रामानुज ने ब्रह्म अथवा ईश्वर के प्रति प्रेम और आराधना के सिद्धान्त का प्रचार किया था। उसके वाद उसके शिष्यो ने भी इस मत का प्रचार किया कि मनुष्य चाहे किसी जाति का हो, प्रेम और आराधना से भगवान् को पा सकता है। ये लोग ईश्वर की अद्वैत सत्ता पर जोर देते थे और यह उपदेश देते थे कि भिन्न-

भिन्न धर्म वास्तव में एक ही ईश्वर के पास पहुँचने के भिन्न-भिन्न मार्ग हैं।

उत्तर भारत में भक्ति के सबसे प्रसिद्ध प्रचारक रामानन्द, नानक और कबीर थे। इन महात्माओ ने अपने उपदेशो का प्रचार जनता की साधारण बोलचाल की भाषा में किया और यह कहा कि मुक्ति के मार्ग में जात-पाँत के कारण कोई बाधा उपस्थित नही हो सकती थी, अर्थात् नीच से नीच जाति का मनष्य भी सच्ची भक्ति के द्वारा मोक्ष प्राप्त कर सकता है। कबीर और नानक ने मूर्ति-पूजा, कर्म-काण्ड तथा पुजारियो और पुरोहितो के अभिमान और आडम्बर के विरुद्ध भी बहुत कुछ कहा। वे कहते थे कि हिन्दू और मुसलमान में कोई भेद नही है। अल्लाह, राम और ईश्वर एक ही शक्ति के भिन्न-भिन्न नाम है। उनकी यह भी धारणा थी कि व्रत, तीर्थ-यात्रा और नदियो के स्नान और मूर्ति-पूजन से मोक्ष-प्राप्ति में कोई सहायता नही मिल सकती।
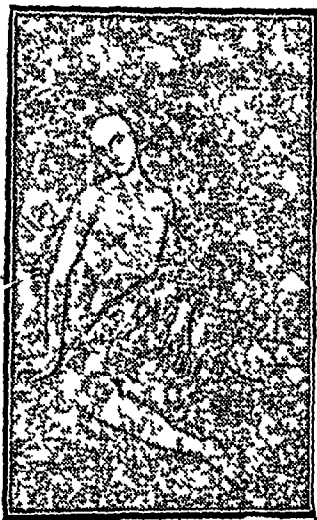
चैतन्य महाप्रभु

इसी तरह के उपदेशो का प्रचार महाराष्ट्र में नामदेव और एकनाथ ने किया। राजपूताने में मीराबाई ने और दक्षिण में बासव वामन और अन्य महात्माओ ने भक्ति के इन्ही मूल-तत्त्वो का उपदेश किया।

बङ्गाल में महाप्रभु चैतन्य ने भक्ति के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। वे स्वय ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए थे और धार्मिक ग्रन्थो तथा

शास्त्रो के प्रकाण्ड पण्डित थे। उन्होंने जात-पांत के कठिन नियमों का खण्डन किया और मनुष्य-मात्र के प्रति प्रेम और सौहार्द की शिक्षा दी। वे सबको समान दृष्टि से देखते थे। चाण्डाल भी उन्हें उतना प्रिय था जितना कि एक ब्राह्मण। उन्होंने कृष्ण-भक्ति का उपदेश किया और प्रेम को ही सृष्टि का व्यापक नियम बतलाया।

इन महात्माओ के प्रेम और भ्रातृभाव के सन्देश ने भारत के कोने-कोने में व्याप्त होकर मनुष्यो के पारस्परिक वैमनस्य, ईर्ष्या और द्वेष को दूर करने में सफलता पाई। इस प्रकार हिन्दू-धर्म और इस्लाम को एक दूसरे को समझने और परस्पर सहानुभूति प्रकट करने का अच्छा अवसर मिला। इस संघर्ष से दोनो के हेल-मेल का रास्ता निकल आया।

---

# अध्याय २२

## मुग़ल-साम्राज्य* की स्थापना[1]

सोलहवी श ाब्दी के प्रारम्भ का भारतवर्ष—इब्राहीम लोदी के समय में दिल्ली-साम्राज्य की सीमा अत्यन्त सकुचित हो गई थी। ऐसे तो पञ्जाव साम्राज्य का एक सूवा कहा जाता था, परन्तु पञ्जाव का सूवेदार दौलत खाँ अफगान वस्तुत एक स्वतन्त्र शासक वन वैठा था। पश्चिम में सिन्ध और मुलतान में तथा पूर्व में जौनपुर, वङ्गाल और उडीसा मे स्वाधीन राज्य स्थापित हो गये थे। राजपूताने का मेवाड-राज्य सीसोदिया राना के नेतृत्व में एक महान् शक्ति वन गया था। मध्य-देश मे मालवा और खानदेश की रियासतो में मुसलमान वादशाह राज्य करते थे। गुजरात का एक दूसरा स्वतन्त्र मुसलमानी राज्य था, जिसका अपने पडोसियो से प्राय युद्ध होता रहता था। वास्तव में ये सव राज्य एक दूसरे के देश पर अपना अधिकार जमाने के लिए सदैव परस्पर युद्ध किया करते थे।

विन्ध्याचल के दक्षिण के प्रदेश में अनेक शक्तिशाली राज्य थे। पन्द्रहवी शताब्दी में पाँचो मुसलमानी राज्य, जो वहमनी साम्राज्य के

---

*भारतवर्ष में वावर ने जिस साम्राज्य की स्थापना की थी उसे मुग़ल-साम्राज्य का नाम देना उचित नहीं है; क्योकि वावर मुग़ल नहीं था। वह तैमूर का वशज और तुर्क था। वह स्वय मुग़लो से घृणा करता था। परन्तु वावर और उसके वशजो को इतिहासकार वहुत दिन से मुग़ल कहते आये है। इसलिए पाठको की सुविधा के लिए उन्हें यहाँ पर मुग़ल ही लिखना अधिक उपयुक्त समझा गया है। वास्तव में मुग़ल-साम्राज्य तुर्कों का साम्राज्य था।

छिन्न-भिन्न होने पर स्थापित हु थे, उत्तर मे राज्य करते थे और दक्षिण का सारा देश विजयनगर-साम्राज्य में सम्मिलित था।

इस प्रकार एक वार फिर भारतवर्ष ऐक्य-रहित राज्यो का एक वण्डल वन गया था। सीमान्त-प्रदेशो की रक्षा का कोई प्रवन्ध नही था। देश के राजाओ तथा योद्धाओ को देश की मर्यादा का कुछ भी ध्यान न रह गया और विदेशी शासको को आक्रमण करने के लिए निमन्त्रण देने में उन्हें जरा भी सङ्कोच नही होता था। इसका परिणाम यह हुआ कि इब्राहीम लोदी के राज्य का अन्त हो गया और एक नवीन साम्राज्य स्थापित हो गया।

**राज्य का नवीन आदर्श**—लोदी-वश का पतन होते ही पुराने ढङ्ग की वादशाही का भी अन्त हो गया। इस वादशाही पर धर्म और सामन्त-प्रथा का वडा प्रभाव था। अव जो तुर्कों की नई वादशाहत स्थापित हुई उसमे देश की राजनीतिक शक्ति और ऐक्य का प्राधान्य था। तुर्क शासक वास्तव में वादशाह था। उसका अधिकार सर्वोपरि था और कोई वीर, सामन्त अथवा अमीर उसमें दखल नही दे सकता था। धार्मिक आचार्यों के उपदेश के प्रभाव से देश में एक नई लहर पैदा हो गई थी। हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के प्रति अधिक उदार तथा सहिष्णु हो गये थे। दोनो ने यह समझ लिया था कि सारे देश का धर्म एक नही हो सकता और इसकी चेष्टा करना व्यर्थ है। वादशाहो ने भी अपना दृष्टिकोण वदल दिया। इन नये वादशाहो ने केवल राज्य ही नहीं स्थापित किया, वरन् देश मे एक नई सभ्यता का प्रचार किया। उन्होने प्रजा के लाभार्थ अनेक सस्थाएँ स्थापित की, धार्मिक पक्षपात को दूर रखने की चेष्टा की और हिन्दू-मुसलमान दोनो के हित का न्याय रक्खा। इसी लिए मुगल-शासन-प्रणाली पूर्वकाल की शासन-प्रणाली से भिन्न है।

**वावर का प्रारम्भिक जीवन**—भारतवर्ष में इस नवीन राजवंश का सस्थापक जहीरुद्दीन मुहम्मद वावर था। उसका जन्म २४ फरवरी सन् १४८३ ई० को हुआ था। पिता की ओर से वह तैमूर की पाँचवीं

पीढी में था और मातृ-पक्ष मे उसका सम्बन्ध मुगल-विजेता चङ्गेज खाँ से था। उसका बाप तुर्किस्तान मे एक छोटी-सी रियासत फरगाना का मालिक था। पिता की मृत्यु के बाद जब यह राज्य बाबर को मिला, तब उसकी अवस्था केवल ११ वर्ष की थी। उसके चारो ओर प्रबल शत्रु थे, जिनमें सबसे शक्तिशाली शत्रु उजबेगो का सरदार शैबानी खाँ था। शैबानी खाँ कितने ही तैमूर-वशीय शाहज़ादो को पराजित करके उनके राज्य छीन चुका था। समरकन्द पर भी उसका अधिकार था। वीर बाबर न उजबेगो मे समरकन्द छीन लेने के अभिप्राय से उन पर चढाई कर दी। समरकन्द उसने जीत लिया। परन्तु उजबेगो ने उसे पराजित कर समरकन्द से निकाल दिया। बाबर ने दूसरी बार फिर आक्रमण किया और वह अपने प्रयत्न मे सफल हुआ। परन्तु वह वहाँ ठहर न सका। शत्रुओ से पराजित होकर निराश बाबर अपनी मातृ-भमि से चल दिया और बहुत दिनो तक इधर-उधर भटकता फिरा। अन्त मे उसके भाग्य ने एक बार फिर पलटा खाया। सन् १५०४ ई० में एक छोटी-सी सेना बनाकर उसने काबुल पर आक्रमण किया और उसे जीतकर वही अपना छोटा-सा राज्य स्थापित कर लिया।

भारतीय विजय—काबुल में अपनी जड जमा लेने के बाद बाबर ने सन् १५१० ई० में समरकन्द पर एक बार फिर आक्रमण किया। इस बार भी उसे सफलता हुई। परन्तु कुछ ही दिनो बाद फिर वहाँ से वह निकाल दिया गया। अब बाबर ने पश्चिम में अपने राज्य के विस्तार की आशा छोडकर पूर्व की ओर बढने का सङ्कल्प किया। उस समय दिल्ली में इब्राहीम लोदी राज्य कर रहा था। उसके बुरे बर्त्ताव से अफगान अमीर अप्रसन्न हो रहे थे और चुपचाप उसके विरुद्ध षड्यन्त्र रच रहे थे।

पञ्जाब के सूबेदार दौलत खाँ और इब्राहीम के चचा अलाउद्दीन आलम खाँ ने हिन्दुस्तान की सब खबर बाबर को दी और दिल्ली-सुलतान के विरुद्ध मदद माँगी। बाबर तो ऐसे अवसर की प्रतीक्षा

में बैठा ही था। शीघ्र उसने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। सन् १५२५ ई० के जाडो में, १२,००० सिपाहियो की सेना के साथ, वह हिन्दुस्तान की चढाई के लिए कावुल से रवाना हुआ। इस बीच में दौलत खाँ और बावर में अनवन हो गई थी, इसलिए उसकी पहली मुठभेड दौलत खाँ से ही हुई। लडाई में दौलत खाँ हार गया और लाहौर पर बावर का अधिकार हो गया।

लाहौर जीतने के बाद बावर दिल्ली की ओर चला। दिल्ली के कई अमीरो ने उसके पास सन्देश भेजा कि हम मदद करेंगे। इब्राहीम लोदी दूरदर्शी तो नही, परन्तु साहसी और शूर-वीर था। उसने सामना करने की तैयारी की। एक लाख सेना लेकर वह युद्ध के लिए रवाना हुआ। सुलतान की सेना ने अपूर्व साहस से युद्ध किया। सन् १५२६ ई० में, पानीपत के मैदान में, एक भीषण युद्ध हुआ। परन्तु अन्त में सुलतान की हार हुई और बावर की सेना, जो सख्या में छोटी थी, उत्तम सैन्य-सचालन और तोपखाने के कारण विजयी हुई। इब्राहीम रण-क्षेत्र में युद्ध करते हुए मृत्यु को प्राप्त हुआ। बावर ने तत्काल दिल्ली और आगरा पर अधिकार कर लिया और शाही खजाने का अपार धन उसके हाथ लगा। दोआवा के अनेक अफगान अमीरो और सरदारो ने उसका आधिपत्य स्वीकार कर लिया।

**बावर और राना साँगा**—यद्यपि दिल्ली और आगरा पर बावर का अधिकार हो गया, परन्तु वह अभी हिन्दुस्तान का सम्राट् नही हुआ था। अभी उसे राजपूतो और विशेषत मेवाड के शक्तिशाली राना साँगा (सग्रामसिंह) से युद्ध करना वाकी था। राना साँगा एक अद्भुत पराक्रमी योद्धा था। युद्ध में ही उसका एक हाथ, एक टाँग और एक आँख जाती रही थी। उसके शरीर में कई घावो के चिह्न थे जो उसकी युद्ध-प्रियता का साक्ष्य देते थे। उसने मालवा और गुजरात के वादशाहो तथा दिल्ली के सम्राट् तक को युद्ध मे पराजित किया था। बावर ने अपनी आत्म-कथा में लिखा है

कि जिस समय वह काबुल में था, उस समय राणा-साँगा ने उसके पास संदेश भिजवाया था कि यदि वह दिल्ली पर आक्रमण करे तो राना उसकी सहायता करेगा। परन्तु हिन्दुस्तान में आने पर बाबर को राना से कोई सहायता न मिली और उसे इब्राहीम से अकेले ही युद्ध करना पड़ा। कदाचित् राना ने यह सोच रक्खा था कि इब्राहीम को हराकर बाबर काबुल लौट जायगा और उसे अपनी इच्छा के अनुसार विजय करने का अवसर मिलेगा। परन्तु जब बाबर दिल्ली के सिंहासन पर जमकर बैठ गया तब राना के लिए बाबर से युद्ध करने के अतिरिक्त और कोई चारा ही नही रहा। अफगानों और राजपूतो की एक बडी सेना लेकर राना साँगा आगरा की ओर रवाना हुआ और उसने सीकरी के पास मैदान में डेरा डाल दिया। अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित राजपूत वीरो को देखकर बाबर और उसके साथियो के छक्के छूट गये। इसी समय उसने कुरान की क़सम खाकर शराब पीना छोडा और अपने कीमती बर्तन तोड डाले। अपने साथियो और सिपाहियो को एकत्र कर उसने हिम्मत बाँध कर अन्त तक लडने की प्रार्थना की और कहा कि सम्मान के साथ मरना अपमानित होकर जीवित रहने से कही अच्छा है। इन शब्दो का सेना पर बडा प्रभाव पडा। सबने कुरान शरीफ की शपथ खाई कि कुछ भी हो, लडने से न हटेंगे और अन्तिम समय तक अपने बादशाह का साथ देंगे।

सन् १५२७ ई० में सीकरी से १० मील दूर खानवा नाम के गाँव के पास दोनो दलो का सामना हुआ। लडाई में राना की हार हुई और बहुत-से राजपूत खेत रहे। राना स्वय घायल हुआ और उसके सिपाही किसी तरह रण-क्षेत्र से उसे निकाल ले गये। इस बार भी बाबर ने युद्ध की उन्ही तरकीबो से काम लिया जिनके कारण उसने पानीपत के युद्ध में विजय प्राप्त की थी।

वास्तव में खानवा की विजय ने बाबर को हिन्दुस्तान का बादशाह

बना दिया। अब उसे राजपूतों का कोई डर न रहा; क्योंकि खानवा की लडाई मे उनको शक्ति का पूर्ण ह्रास हो गया और राना साँगा का बनवाया हुआ संघ छिन्न-भिन्न हो गया। बाबर की स्थिति अब अधिक सुदृढ हो गई। हिन्दुस्तान के मामलों मे उसकी अधिक रुचि हो गई। अब काबुल नही वरन् दिल्ली नगर उसके राजनीतिक कार्यों का केन्द्र बन गया।

अपनी राजपूत-विजय को पूरी करने के लिए बाबर ने चन्देरी के किले पर आक्रमण किया और उसे सुरङ्ग लगाकर जीत लिया। दिल्ली छोडने के बाद लोदी अफगान पूर्व में जाकर बस गये थे। बाबर ने उन पर चढाई कर दी और सन् १५२९ ई० में, घाघरा के प्रसिद्ध युद्ध में, उन्हें पराजित करके दिल्ली पर पुन अधिकार प्राप्त करने की उनकी आशा को मिट्टी में मिला दिया।

बाबर की मृत्यु—बाबर का सारा जीवन परिश्रम करने में ही बीता था। पिछले वर्षों में उसका स्वास्थ्य एकदम गिरने लगा और वह बीमार हो गया। अपने प्रिय पुत्र हुमायूं के एकाएक सख्त बीमार हो जाने के कारण उसको इतना गहरा धक्का लगा कि अपने स्वास्थ्य को ठीक रखना उसके लिए दुस्साध्य हो गया। अन्त में सन् १५३० ई० मे आगरे में उसकी मृत्य हो गई। उसके इच्छानुसार उसकी लाश काबुल पहुँचाई गई और वहाँ एक बाग मे दफन कर दी गई।

बाबर का चरित्र—बाबर मध्यकालीन इतिहास के विचित्र पुरुषों में से है। वह अदम्य साहसी और शारीरिक बलवाला मनुष्य था। दो आदमियो को दोनो ओर अपनी बाँह के नीचे दबाकर वह बडी आसानी से किले की दीवार पर दौड सकता था। हिन्दुस्तान में, उसके मार्ग में, जितनी नदियाँ पडी थी उन सबको उसने तैरकर पार किया था। घोड़े की पीठ पर वह एक दिन में ८० मील तक चढा चला जाता था।
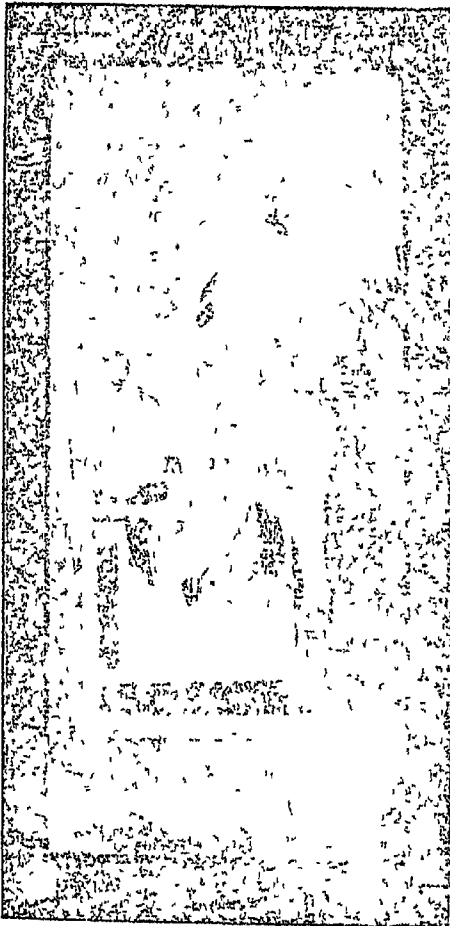
बाबर बादशाह् अपनी जीवनी लिखता रहा है

उसे आखेट से प्रेम था और तलवार तथा तीर चलाने में भी वह अत्यन्त कुशल था। एक वडा सैनिक होते हुए भी उसका हृदय कोमल था। विजय के वाद अपने सिपाहियो को वह कभी लूट-खसोट और अत्याचार नही करने देता था। अपने कुटुम्बियो के साथ वह प्रेम और दया का व्यवहार करता था। वह स्पष्टवक्ता, हँसमुख और अपनी वात का पक्का था। अपने शत्रुओ को दिये हुए वचन का भी पालन करता था। वह स्वय पक्का सुन्नी मुसलमान था, परन्तु अन्य धर्मवालो के साथ उदारता का वर्ताव करता था। उसे सङ्गीत-विद्या से वडा प्रेम था। आनन्द-प्रमोद के लिए एकत्र हुई मित्रमण्डली और प्रीति-भोजो मे उसे वडा आनन्द आता था।

इन गुणो के अतिरिक्त वावर में कुछ और भी गुण थे जो उस समय के अन्य वादशाहो मे नही पाये जाते। वह वडा विद्या-प्रेमी था और कविता भी करता था। उसके कसीदे और गजलें अव तक वडे प्रेम से पढी जाती है। वह प्रकृति के सौन्दर्य का अनन्य प्रेमी था। नदी अथवा पहाडो और झरनो के सुन्दर दृश्य को देखकर उसके प्रफुल्लित हृदय के भाव कविता के रूप में प्रकट हो पडते थे। वह गद्य भी खूव लिखता था। वह तुर्की और फारसी दोनो भापाएँ समान सुगमता के साथ लिख-पढ सकता था और एक अनुभवी साहित्य-मर्मज्ञ की भाँति अन्य साहित्यिको की रचनाओ की समालोचना करता था। वावर की सवसे महत्त्वपूर्ण गद्य-रचना उसकी ससार-प्रसिद्ध आत्मकथा अर्थात् "वावरनामा" है, जिसमें उसने अपने जीवन की कहानी वडी सचाई और स्पष्टता से लिखी है। इस पुस्तक के पढने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वावर की गणना ससार के अत्यन्त योग्य और प्रतिभाशाली वादशाहो में होनी चाहिए।

हुमायूं की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ—वावर की मृत्यु के वाद उसका वेटा नासिरुद्दीन हुमायूं सन् १५३० ई० में आगरा में गद्दी पर वैठा। उस समय उसकी अवस्था २३ वर्ष की थी। हुमायूं के

बाबर का साम्राज्य
सन् १५३० ई०
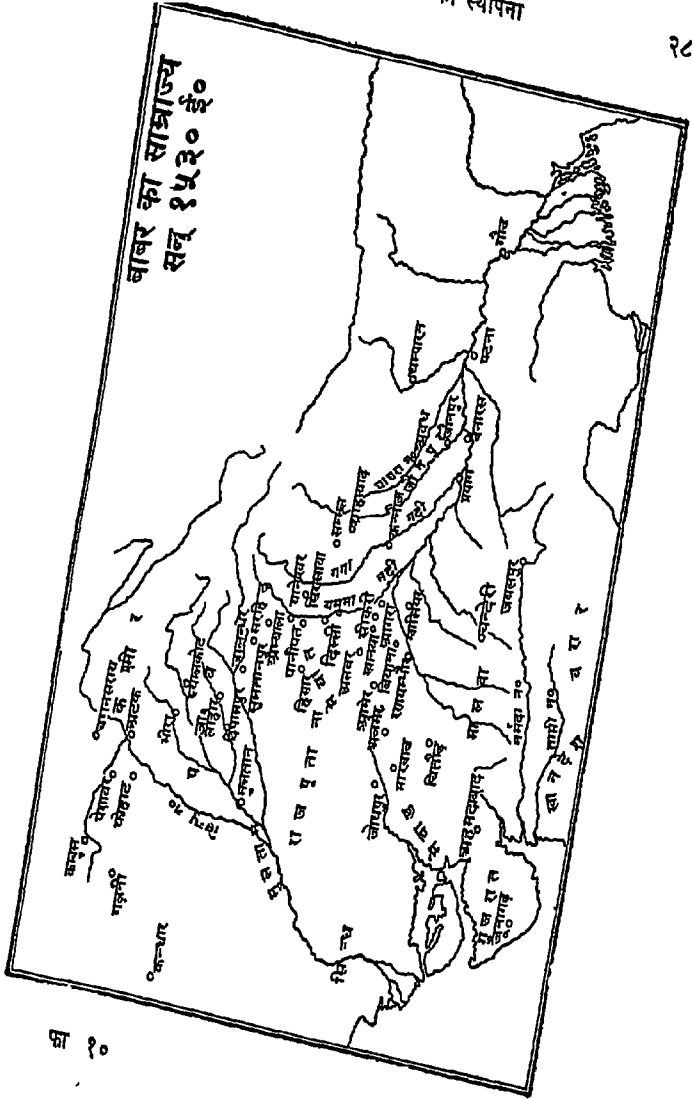
अतिरिक्त बाबर के तीन बेटे और थे—कामरान, अस्करी और हिन्दाल। मरते समय बाबर ने हुमायूँ से अपने भाइयो के साथ दया का बर्ताव करने का आदेश किया था। हुमायूँ ने पिता की अन्तिम इच्छा का बराबर ध्यान रक्खा। परन्तु उसके भाइयो ने उसे सदैव कष्ट दिया। तैमूर के वश की प्रथा के अनुसार बाबर की मृत्यु के बाद साम्राज्य चार भागो में विभक्त किया गया। साम्राज्य का अधिकाश भाग हुमायूँ को मिला। काबुल और कन्धार कामरान को, सम्भल अस्करी को और मेवात तथा अलवर हिन्दाल को दिये गये।

नये सम्राट् को बाह्य और आभ्यन्तरिक दोनो प्रकार की कठिनाइयो का सामना करना पडा। बाबर ने एक बहुत बडे राज्य को अवश्य जीता था परन्तु उसका यथोचित प्रबन्ध करने का उसे अवसर नही मिला था। देश मे छोटे-बडे अनेक राजा और सरदार थे जिनकी नये राजवश के साथ कुछ भी सहानुभूति न थी। उधर स्वय बादशाह के कुटुम्ब मे ही ईर्ष्या और वैमनस्य का प्राधान्य था। सम्राट् के भाई आपस में मिलकर उसे हिन्दुस्तान के साम्राज्य से वञ्चित करने का षड्यन्त्र रच रहे थे। सबसे अधिक विश्वासघाती कामरान सिद्ध हुआ। उसने पञ्जाब पर अधिकार स्थापित कर लिया और स्वतन्त्र शासक बन बैठा। सेना की स्वामि-भक्ति का कोई भरोसा नही था, क्योकि उसमें भिन्न-भिन्न देशो के सिपाही भर्ती किये जाते थे। तुर्क, उजबेग, मुगल और ईरानी सैनिको को प्रेम के एक ही धागे में सम्बद्ध करने का कोई साधन नही था। साम्राज्य के बाहरी शत्रु उसके सर्वनाश का अलग उपाय सोच रहे थे। बाबर से पराजित होकर अफगान थोडी देर के लिए दब अवश्य गये थे परन्तु उसके मरते ही वे बङ्गाल और बिहार मे जम गये थे और अपनी खोई हुई प्रतिभा को पुन प्राप्त करने का उपाय कर रहे थे। इसके अतिरिक्त गुजरात का सुलतान बहादुरशाह, जो एक वीर और हौसलामन्द शासक था, दिल्ली को जीतने की हार्दिक इच्छा रखता था।

हुमायूं और शेरशाह का युद्ध—हुमायूं ने सबसे पहले अफ़ग़ानो से निपटने की ओर ध्यान किया। सन् १५३१ ई० मे उसने अफगान सरदार महमूद लोदी को लखनऊ के समीप एक युद्ध में पराजित किया। लडाई में महमूद लोदी मारा गया। अब अफ़ग़ानो का नेतृत्व शेर खाँ को मिला। शेर खाँ मुगलों को हिन्दुस्तान से बाहर निकालने के लिए बहुत दिनो से उत्सुक था। हुमायूं ने शेर खाँ पर चढाई की परन्तु उसने अधीनता स्वीकार कर ली, इसलिए बादशाह दिल्ली वापस चला आया। हुमायूं के दिल्ली वापस आने का उस समय एक दूसरा कारण भी था। गुजरात के बादशाह बहादुरशाह ने पराजित होकर भागे हुए लोदी अफ़ग़ानों को अपने यहाँ शरण दे रक्खी थी, इसलिए हुमायूं को उसकी ओर से शङ्का थी। उसने शीघ्र गुजरात पर चढाई कर दी। बहादुरशाह पराजित हुआ और गुजरात पर हुमायूं का अधिकार हो गया। परन्तु अधिक समय तक स्थापित न रह सका। ज्योंही हुमायूं गुजरात से रवाना हुआ त्योंही बहादुरशाह ने आकर सारे देश पर पूर्ववत् अधिकार कर लिया। इसी समय मालवा भी मुगलो के हाथ से निकल गया।

शेर खाँ का असली नाम फरीद था। उसका बाप हसन, शाहाबाद जिले में, सहसराम का जागीरदार था। अपनी सौतेली माँ के दुर्व्यवहार से तङ्ग आकर फरीद घर छोडकर जौनपुर चला गया था और वहाँ उसने बडे परिश्रम और लगन से अरबी और फारसी का अध्ययन किया था। कुछ दिनो बाद जब वह घर लौटा तो उसके बाप ने उसकी योग्यता से प्रभावित होकर जागीर का सारा प्रबन्ध उसके सुपुर्द कर दिया। फ़रीद ने जागीर का बडा अच्छा प्रबन्ध किया। उसने विद्रोही ज़मींदारो को दबाया और नये सिरे से बन्दोबस्त करके किसानो की दशा सुधारने का उद्योग किया। परन्तु इस अच्छे काम के बदले, सौतेली माँ के कुचक्र के कारण, उसे फिर घर छोडकर बाहर जाना पडा। इस बार उसे बिहार के सूबेदार के यहाँ नौकरी मिल

हुमायूँ और शेरशाह का युद्ध
कन्नौज
टाण्डा
जौनपुर
बनारस
चुनार
सहसराम
रोहतासगढ़
चौसा
बक्सर
पटना
हाजीपुर
मुंगेर
तेलियागढ़ी
गौड़
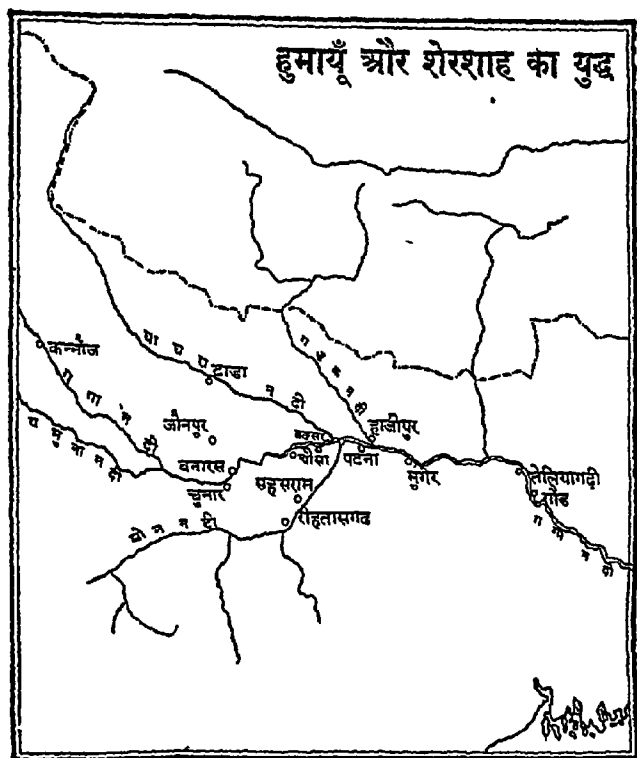
गई। यहीं उसे एक बार शेर के मारने पर शेर खाँ की उपाधि मिली। धीरे-धीरे अपनी योग्यता और शक्ति द्वारा उन्नति करते-करते उसने सारे बिहार पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया और सन् १५३५ ई० में बङ्गाल पर चढ़ाई कर दी। बङ्गाल के अफगान सुलतान ने उसे एक गहरी रकम दी, जिससे गौड की शहरपनाह के भीतर पहुँचकर भी वह वहाँ से वापस चला आया। लौटने पर उसने रोहतास के किले को जीतकर अपने अधिकार में कर लिया, जिससे उसकी शक्ति और भी बढ गई।

शेर खाँ की बढती शक्ति को देखकर हुमायूँ भयभीत हुआ। उसने झटपट बिहार की ओर कूच किया और चुनार के किले पर कब्ज़ा कर लिया। जब शेर खाँ ने देखा कि वह खुले मैदान में युद्ध में न जीत सकेगा तो उसने हुमायूँ को गौड की तरफ चला जाने दिया। परन्तु वहाँ पहुँचकर हुमायूँ अपनी स्वाभाविक काहिली के कारण बेकाम हो गया और उसने ऐश-आराम में बहुत-सा समय व्यर्थ नष्ट कर डाला। इतने में शेर खाँ ने हुमायूँ का दिल्ली आने का रास्ता बन्द कर दिया। जब हुमायूँ बिहार की ओर लौटा तो गङ्गा के तट पर चौसा नामक स्थान पर, सन् १५३९ ई० में, शेर खाँ ने उसे युद्ध में पराजित किया। हुमायूँ अपनी प्राण-रक्षा के लिए नदी में कूद पडा और एक भिश्ती ने बडी कठिनाई से उसकी जान बचाई। शेर खाँ सारे बङ्गाल और बिहार का मालिक हो गया और उसने शेरशाह की उपाधि धारण की।

हुमायूँ ने आगरा पहुँचकर अफगानो से लडने की तैयारी शुरू की। इधर शेरशाह कन्नौज तक आ गया था और गङ्गा के तट पर उसने डेरा डाल दिया था। हुमायूँ भी अपनी सेना के साथ उसी ओर चल दिया। मई सन् १५४० ई० में दोनो दलो का सामना हुआ और बडी घमासान लडाई हुई जिसमे मुगलो को बुरी तरह हारकर पीछे हटना पडा। हुमायूँ अपनी जान बचाने के लिए रण-क्षेत्र से भागा और दिल्ली तथा आगरा मे शेरशाह का आधिपत्य स्थापित हो गया।

**हुमायूँ का भागना**—हिन्दुस्तान का साम्राज्य खोकर हुमायूँ मारवाड और सिन्ध के मरुस्थल में मारा-मारा भटकता फिरा। जोधपुर के राजा मालदेव ने उसकी कुछ भी सहायता न की। वडी मुसीवत उठाता हुआ अन्त में वादशाह अमरकोट पहुँचा। वहाँ राना ने उसका स्वागत किया। यही पर १४ अक्टूवर सन् १५४२ ई० में, हमीदा वानू वेगम के गर्भ मे, मुगल-वश के सवसे प्रतिभाशाली सम्राट् अकवर का जन्म हुआ। निर्धन होने के कारण हुमायूँ पुत्र के जन्म पर कोई समुचित उत्सव न मना सका। अपने शत्रुओ से वचने के अभिप्राय से उसने कन्दहार मे अपने भाई के यहाँ शरण लेनी चाही, परन्तु वह उसका घोर शत्रु सिद्ध हुआ। अन्त मे दुखी और निराश होकर हुमायूँ फारस को चला गया।

**शेरशाह सूरी की अन्य विजयें**—दिल्ली का सिंहासन लेने के वाद शेरशाह ने अन्य देशो पर विजय प्राप्त करने का उद्योग किया। उसकी सेना ने घक्कडो के देश क उजाड दिया और उनके सरदारो का दमन किया। इसके वाद उसने मालवा, रायसीन और सिन्ध को जीतकर जोधपुर के राजा मालदेव पर चढाई की और उसे वडी चालाकी से युद्ध में पराजित किया। शेरशाह की अन्तिम चढाई कालिञ्जर के राजा पर हुई थी। जिस समय उसकी जीत होनेवाली थी, वारूद में आग लग जाने के कारण, उसका शरीर बुरी तरह जल गया और उसी दिन शाम को (२३ मई सन् १५४५ ई०) उसका प्राणान्त हो गया। शेरशाह की मृत्यु होने पर अफगान-साम्राज्य के कायम रहने की आशा जाती रही।

**शेरशाह सूरी का शासन-प्रवन्ध**—मध्यकालीन भारत के शासको में शेरशाह का नाम अग्रगण्य है। वह राजत्व का वहुत ऊँचा आदर्श रखता था और कहा करता था कि जितना ही वडा आदमी हो उसको उतना ही अधिक परिश्रम-शील होना चाहिए। उसके शासन के पाँच प्रधान लक्ष्य थे—(१) अत्याचार से प्रजा की रक्षा करना,

(२) जुर्मों का दमन, (३) साम्राज्य में सुख-शान्ति की स्थापना, (४) सड़को को सुरक्षित करना और (५) व्यवसायियो तथा सिपाहियो की सुविधा का प्रबन्ध करना।

सारा साम्राज्य 'सरकारो' में और 'सरकार' परगनो में विभाजित किये गये थे। प्रत्येक परगने में 'शिक़दार' और 'अमीन' दो प्रबन्ध-कर्ता होते थे। इनकी मदद के लिए दो मुंशी और एक खजानची होते थे। दो मुंशियो में से एक हिन्दी में और दूसरा फारसी में लिखता था। 'शिकदार' मालगुज़ारी का अफसर होता था। सम्राट् ने सारे देश की पैमाइश कराई थी और भूमि की नाप के अनुसार साम्राज्य भर में लगान की दर निश्चित की थी। केवल मुलतान के इलाके में यह नियम नही जारी किया गया था। वहाँ के स्थानीय अफ़सरो को रवाज के अनुसार लगान वसूल करने की आज्ञा थी। पैदावार का $\frac{1}{4}$ राज्य का भाग समझा जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि किसान इच्छानुसार नक़द रुपया अथवा जिंस के रूप में सरकारी लगान दे सकते थे। माल-गुज़ारी का ठेका अब भी दिया जाता था और ज़मीन देने की शर्तों में कोई रद्द-बदल नही किया जाता था। बाद को राजा टोडरमल ने शेरशाह द्वारा चलाई हुई इसी प्रणाली को अकबर के समय में उसके सारे साम्राज्य में प्रचलित किया था।

सेना और माल के दोनो विभाग साथ-साथ काम करते थे। प्रत्येक अमीर को एक निश्चित सेना रखनी पड़ती थी और उसे ठीक दशा में रखने की ताकीद की जाती थी। घोड़े के दागने की प्रथा फिर जारी की गई जिससे अमीर धोखा न दे सकें। बादशाह की स्थायी सेना में एक लाख सवार और २२ हज़ार पैदल थे। सिपाहियो को वह स्वय देखकर भर्ती करता था और उनकी जाँच करके वेतन नियत करता था। न्याय के विभाग का भी अच्छा प्रबन्ध था। देहात में अपराधो को रोकने की जिम्मेदारी मुखियो और मुकद्दमो पर थी। यदि अपराधी का पता मुखिया न लगा सकते तो उन्हें स्वय हरजाना देना पड़ता था। राज्य में बहुत-

से गुप्तचर थे जो साम्राज्य के प्रत्येक भाग की खबर वादशाह को देते थे। मनुष्य के धन और जीवन की पर्याप्त सुरक्षा थी, यहाँ तक कि यात्रियो को जङ्गल में ठहर जाने मे भी किसी प्रकार का भय अथवा अन्देशा नही था।

सेना को देश के एक भाग से दूसरे भाग मे शीघ्रता से ले जाने के लिए शेरशाह ने पुरानी सडको की मरम्मत कराई और कई नई सडकें वनवाई। एक सडक, जिसे आजकल 'ग्राण्ड ट्रङ्क रोड' कहते है, पञ्जाव से ढाके के पास सुनारगाँव तक जाती थी। एक दूसरी सडक आगरा से वुरहानपुर तक, तीसरी आगरा से जोधपुर और चित्तौड तक, और चौथी सीमान्त-प्रदेश की रक्षा के लिए लाहौर से मुलतान तक वनाई गई थी। सडको के किनारो पर हरे वृक्ष लगाये गये थे और सरायें वनाई गई थी, जहाँ हिन्दू और मुसलमान दोनो के लिए खाने-पीने का प्रवन्ध रहता था। इन सडको के वन जाने से व्यापार की काफी उन्नति हुई। चुङ्गी केवल दो वार ली जाती थी और इसके अतिरिक्त जो कर लिये जाते थे, वन्द कर दिये गये थे। ऐसी दशा मे व्यापार की अच्छी उन्नति हुई और देश मालामाल हो गया।

शेरशाह विद्वानो का आश्रयदाता था। उसने कई स्कूल और कालिज स्थापित किये और हिन्दू, मुसलमान दोनो की शिक्षा के लिए रुपया दिया। शेरशाह के नियमो में कोई नई वात नही थी। परन्तु इतना अवश्य है कि उसने शासन में इनका अनुसरण वडी सावधानी से किया। इसी लिए उसे सफलता भी अच्छी प्राप्त हुई। प्रान्तीय और केन्द्रीय दोनो सरकारें वडी मुस्तैदी से काम करती थी। खेद यही है कि शेरशाह अपना कार्य पूरा होने के पहले ही मर गया। परन्तु उसकी मृत्यु के वाद अकवर ने वडी सफलता के साथ उसी के नियमो से काम लिया। यह शेरशाह की प्रतिभा का एक ज्वलन्त प्रमाण है। यदि वह कुछ अधिक समय तक जीवित रहता तो मुगलो का फिर हिन्दुस्तान लौटना असम्भव हो जाता।

चरित्र—भारतीय इतिहास में शेरशाह की गिनती श्रेष्ठ बादशाहो में है। वह कहता था कि राजगद्दी ऐश-आराम के लिए नही बल्कि परिश्रम करने के लिए है। प्रजा के हित की उसे सदैव चिन्ता रहती थी और इसके लिए वह बराबर प्रयत्नशील रहता था। वह स्वय पक्का
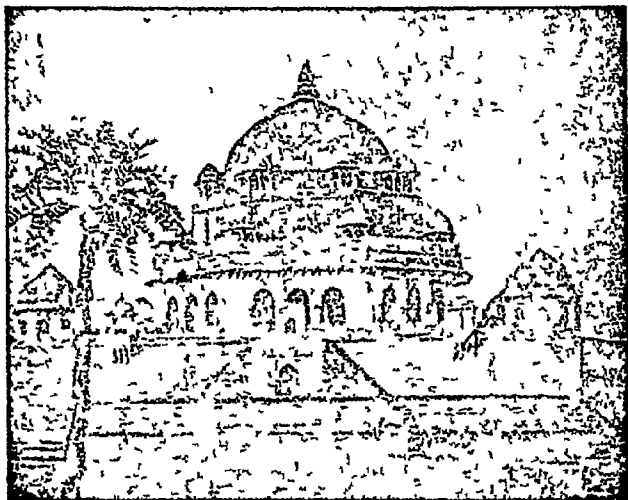
शेरशाह का मक़बरा

सुन्नी मुसलमान होते हुए भी धर्मान्ध नही था। हिन्दुओ के साथ उसका बर्ताव अच्छा था। उन्हें अपना धर्म पालने की पूरी स्वतन्त्रता थी। राज्य मे भी उन्हें बडे-बडे ओहदे दिये जाते थे। सुलतान नियम-पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करता था। वह प्रात काल उठता था। स्नान और नमाज़ से निश्चिन्त होकर राज्य के काम में जुट जाता था और सारे दिन काम करता रहता था। केवल भोजन करने के लिए थोडी देर तक काम बन्द कर देता था। वह न्यायप्रिय था और अपराधियो को कठोर दण्ड देता था। दीन और असहायो पर सदा दया करता था।

भूखे और दीन मनुष्यो को प्रति समय उसके भोजनालय से भोजन दिया जाता था। किसानो की रक्षा का वह सदैव ध्यान रखता था और खेती को हानि पहुँचानेवालो को कठिन दण्ड देता था।

शेरशाह के उत्तराधिकारी—शेरशाह की मृत्यु के वाद उसका छोटा वेटा जलाल सलीमशाह के नाम से गद्दी पर वैठा। सलीमशाह वडे उग्र स्वभाव का मनुष्य था और वलशाली शासन स्थापित करना चाहता था। उसने वडी निर्दयता के साथ अमीरो का दमन करना चाहा और उनके अधिकारो को छीन लिया। उसने उनकी सैनिक शक्ति कम कर दी और अपनी आज्ञाओ का ठीक पालन कराने के लिए जगह-जगह गुप्तचर तथा सैनिक रख दिये। सलीम ने अमीरो को तो दवा दिया परन्तु उसकी इस अदूरदर्शी नीति ने अफगानो के राष्ट्रीय ऐक्य का विनाश कर दिया।

सलीम की मृत्यु के वाद उसका वेटा फीरोज गद्दी पर वैठा। वह केवल १२ वर्ष का वालक था। सन् १५५४ ई० मे उसके मामा मुवारक खाँ ने उसका वध कर डाला और स्वय मुहम्मदशाह आदिल के नाम से गद्दी पर वैठ गया। आदिलशाह एक विलास-प्रिय मनुष्य था। उसने राज्य का सारा कार-वार हेमू नामक मन्त्री के सुपुर्द कर दिया था। हेमू वडा सच्चरित्र और योग्य पुरुष था। आदिलशाह की मूर्खता के कारण चारो ओर देश में विद्रोह फैलने लगा। राज्य के अनेक दावादार उठ खडे हुए। इब्राहीम ने दिल्ली और आगरे पर अधिकार कर लिया परन्तु सिकन्दर सूर ने उसे वहाँ से निकाल वाहर किया और गङ्गा और सिन्ध नदियो के वीच के समस्त देश पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। आदिलशाह चुनार को चला गया और वही रहने लगा। हुमायूँ के लौटने के समय अफगान-साम्राज्य की यह दशा थी।

हुमायूँ का लौटना—शेरशाह से पराजित होकर हुमायूँ फारस को चला गया था। वहाँ फारस के वादशाह ने उसके साथ सौजन्य-

पूर्ण व्यवहार किया और उसे ४ हज़ार सिपाहियों की सेना दी। उसकी सहायता से हुमायूँ ने कामरान को हराया और काबुल तथा कन्दहार पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। अफ़ग़ान देश को जीतने के बाद हुमायूँ ने हिन्दुस्तान को फिर से जीतने का विचार किया। उस समय आपस के झगड़ों के कारण अफ़गान शक्तिहीन हो गये थे। हुमायूँ ने पहले लाहौर पर धावा किया और उसे सुगमता से जीत लिया। इसके बाद उसने दिल्ली पर चढ़ाई कर दी। सरहिन्द के पास जून सन् १५५५ ई० में उसका सिकन्दर सूर से सामना हुआ। सिकन्दर सूर युद्ध में पराजित हुआ। इस प्रकार विजयी हुमायूँ ने १५ वर्ष के बाद दिल्ली नगर में प्रवेश किया। हुमायूँ की विजय तो हुई परन्तु वह अधिक काल तक
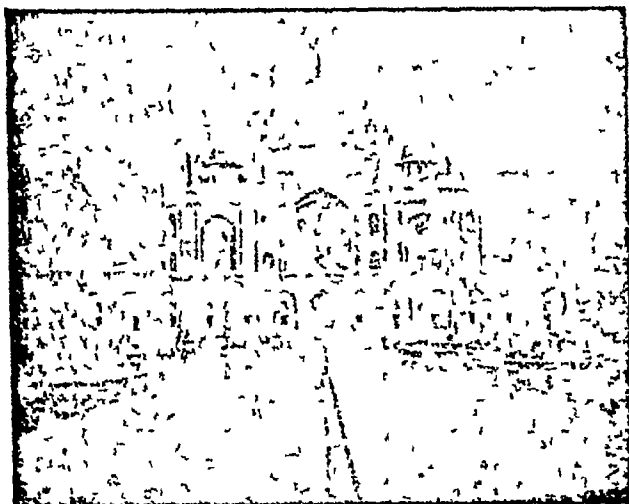
हुमायूँ का मकबरा

जीवित न रहा। अपने पुस्तकालय की सीढ़ियों से गिरकर चोट खा जाने से जनवरी सन् १५५६ ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

चरित्र—स्वभावत हुमायूँ वडा उदार और दयालु था। अपने कुटुम्बियो के साथ वह सदैव दया का वर्ताव करता था और, उनके विश्वास-घात करने पर भी, उनसे वदला लेने की इच्छा नही रखता था। वह साहसी और वीर था किन्तु आलस्य और विलास-प्रियता के कारण उसका उद्योग प्राय असफल रहता था। वास्तव में उसमें दृढ इरादे की कमी थी। जव तक एक काम पूरा नही हो पाता था, तव तक वह दूसरा आरम्भ कर देता था और इस प्रकार दोनो काम विगड जाते थे। वह अपने वाप की तरह कुशल सेनाध्यक्ष नही था। उसकी लडाइयों से उसकी सैनिक अयोग्यता प्रकट होती है। हाँ, वह विद्वान् अवश्य था। ज्योतिप और गणित में प्रवीण था। वह कविता करता था। उसके चरित्र में एक विशेपता थी। वह यह कि कठिन से कठिन आपत्ति आने पर भी वह घवडाता नही था और जो सङ्कट के समय उसके साथ नेकी करते थे उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता था।

## सक्षिप्त सन्‌वार विवरण

| | |
|---|---|
| वावर का जन्म | १४८३ ई० |
| वावर की कावुल-विजय | १५०४ " |
| समरकन्द की विजय | १५१० " |
| पानीपत का सग्राम | १५२६ " |
| खानवा का युद्ध | १५२७ " |
| घाघरा का युद्ध | १५२९ " |
| वावर की मृत्यु | १५३० " |
| हुमायूँ का महमूद लोदी को पराजित करना | १५३१ " |
| चौसा की लडाई | १५३९ " |
| गङ्गा का युद्ध | १५४० " |
| अकवर का जन्म | १५४२ " |
| शेरशाह की मृत्यु | १५४५ " |
| सिकन्दर सूर को सरहिन्द पर पराजित करना | १५५५ " |
| हुमायूँ की मृत्यु | १५५६ " |

# अध्याय २३

## ऐश्वर्य के युग का आरम्भ

### अकबर महान् ( १५५६-१६०५ ई० )

**अकबर की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ**—सन् १५५६ ई० में हुमायूँ की मृत्यु के बाद उसका बेटा जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर दिल्ली की गद्दी पर बैठा। उसकी अवस्था इस समय केवल तेरह वर्ष की थी। हिन्दुस्तान की राजनीतिक स्थिति भी सन्तोषजनक नही थी। उत्तर तथा दक्षिण में अनेक शक्तिशाली राज्य थे। हुमायूँ ने अपने साम्राज्य का केवल एक भाग ही प्राप्त किया था और उसकी विजय भी पूर्ण नहीं हो पाई थी। काबुल पर अकबर के सौतेले भाई मिर्ज़ा हकीम का अधिकार था और वह स्वतन्त्र शासक की तरह वहाँ राज्य कर रहा था। सिकन्दर सूर पञ्जाब में उत्पात मचा रहा था और आदिलशाह का मन्त्री हेमू अकबर से दिल्ली का साम्राज्य छीन लेने का प्रयत्न कर रहा था।

सबसे पहले अकबर ने सूर अफगानो की ओर ध्यान किया। अफगान-साम्राज्य को फिर स्थापित करने की इच्छा से हेमू ने एक बडी सेना लेकर आगरे पर अधिकार कर लिया। इसके बाद उसने दिल्ली पर चढाई की और बडी आसानी से मुग़ल सेनापति को पराजित कर दिल्ली को जीत लिया। ऐसी स्थिति में अकबर को कुछ लोगो ने काबुल चले जाने की सलाह दी परन्तु शिया अमीर बैरम ख़ाँ ने, जो उसका सरक्षक था, हेमू के साथ युद्ध करने का निश्चय किया। सन् १५५६ ई० में, पानीपत के मैदान में, दोनो दलो का सामना हुआ। युद्ध में अफ़ग़ानो की हार हुई। हेमू पकडा गया और बैरम ख़ाँ ने

उसे कत्ल कर दिया। दिल्ली और आगरा पर अकवर का अधिकार स्थापित हो गया।

अब राज्य में वैरम खाँ का प्रभाव वहुत वढ गया। अकवर के नावालिग होने के कारण वैरम खाँ ही राज्य का सर्वेसर्वा हो रहा था। वह शिया लोगो के साथ पक्षपात और अन्य अमीरो के साथ कठोरता का व्यवहार करने लगा। राज-द्रोह का सन्देह मात्र होने पर वह लोगो को मृत्यु-दण्ड दे देता था। इस प्रकार के वर्ताव से अप्रसन्न होकर अमीरों ने वैरम खाँ के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा और अकवर के पास जाकर उसकी सारी अनीतियो का वर्णन किया। अकवर शीघ्र दिल्ली पहुँचा और वहाँ घोषणा कर दी कि राज्य का काम अब उसने अपने हाथो में ले लिया है। वैरम खाँ ने यह देखकर, कि वादशाह का विरोध करना असम्भव है, अधीनता स्वीकार कर ली। अकवर ने उसे क्षमा प्रदान की और मक्का जाने की आज्ञा दे दी। परन्तु जिस समय वह मक्का जा रहा था, सन् १५६१ ई० में, उसको एक अफगान ने—जिसके वाप को वैरम खाँ ने फाँसी का दण्ड दिया था—गुजरात में मार डाला। वैरम खाँ का वेटा अवदुर्रहीम, जो अभी वालक था, दरवार में लाया गया। वादशाह ने उसके साथ प्रेम का वर्ताव किया और उसकी शिक्षा का प्रवन्ध कर दिया। धीरे-धीरे वह साम्राज्य का एक प्रभावशाली अमीर हो गया।

अकवर की विजय और साम्राज्य का विकास—अकवर की विजयो को तीन कालो में विभाजित किया जा सकता है। पहले काल में सन् १५७६ ई० तक उसने उत्तरी सूवे, राजपूताना और मध्य-प्रान्त की विजय समाप्त की थी। दूसरे काल के वीस वर्ष मे (सन् १५७६ से १५९६ ई०) वह विद्रोह के शान्त करने और उत्तरी सीमान्त-प्रदेश की उपद्रव करनेवाली जातियो के दमन करने में लगा रहा। तीसरे काल के नौ-दस वर्ष (सन् १५९६ से १६०५ ई०) उसने दक्षिण को जीतने में व्यतीत किये।

प्रथम काल—ससार के अन्य प्रसिद्ध शासको की तरह अकबर भी एक विशाल साम्राज्य बनाना चाहता था। उसके अधिकाश युद्ध साम्राज्य-विस्तार की ही अभिलाषा से किये गये थे। सबसे पहले उसने मालवा पर आक्रमण किया। सूर अफगानो के पतन के बाद मालवा स्वाधीन हो गया था और उसके शासक बाज़बहादुर ने सुलतान की उपाधि धारण कर ली थी। अकबर ने आदम खाँ के साथ एक बडी सेना बाज़बहादुर के विरुद्ध भेजी। उसने बाज़बहादुर को तो पराजित कर दिया परन्तु लूट के माल को स्वय हडप कर लिया। इस पर अकबर ने आदम खाँ को हटाकर उसके स्थान में दूसरा सेनापति नियुक्त किया और सन् १५६४ ई० में मालवा मुगल-साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया। मालवा के बाद गोडवाना की बारी आई। गोडवाना पर उस समय रानी दुर्गावती शासन कर रही थी। रानी दुर्गावती की बुद्धि, वीरता तथा शासन-सम्बन्धी प्रतिभा की कीर्ति चारो ओर फैल रही थी। वह युद्ध करते-करते वीर-गति को प्राप्त हुई और उसके पुत्र ने भी अपनी वीर-माता का अनुकरण कर मुगलो से लडकर युद्ध में प्राण विसर्जन किया। गोडवाना पर मुगलो का अधिकार हो गया और आसफ खाँ को बादशाह ने सूबेदार नियुक्त किया। परन्तु कुछ समय के बाद यह राज्य वही के एक राजा को दे दिया। उसने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली।

अकबर समस्त भारतवर्ष का सम्राट् होना चाहता था। उसने शुरू ही में इस बात को अच्छी तरह समझ लिया था कि हिन्दुओ की सहायता के बिना उसका मनोरथ सिद्ध न हो सकेगा। राजपूत हिन्दुओं के राजनीतिक नेता थे और बिना उनके सहयोग के उसकी इच्छा पूर्ण नही हो सकती थी। इसलिए जब आमेर के राजा भारमल ने सन् १५६२ ई० में अपनी बेटी का विवाह बादशाह के साथ करने की इच्छा प्रकट की तो वह शीघ्र इस सम्बन्ध के लिए तैयार हो गया। भारमल के वश का साम्राज्य में सम्मान बढा। उसके बेटे भगवानदास और पोते मान-

सिंह को वादशाह ने बडे-बडे ओहदो पर नियुक्त किया। इस विवाह का उसके व्यक्तिगत जीवन और राष्ट्रीय नीति पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पडा। इसी नीति के कारण उसे हिन्दुओ में से कई ऐसे सुयोग्य राजनीतिज्ञ और सेनाध्यक्ष मिले, जिनका मध्यकालीन भारत के इतिहास में एक विशिष्ट स्थान है।

आमेर की मित्रता अकवर की विशाल योजना का केवल एक अश मात्र थी। उसने सोचा कि जव तक मेवाड का सीसोदिया राना आधिपत्य स्वीकार न करेगा और चित्तौड तथा रणथम्भौर के किलो पर अपना अधिकार स्थापित न होगा तव तक हिन्दुस्तान का सम्राट् होना कठिन है। इसलिए सन् १५६७ ई० में स्वय एक वडी सेना लेकर उसने चित्तौड पर चढाई की और घेरा डाल दिया। उस समय चित्तौड में राना उदयसिंह राज्य करता था। वह भयभीत होकर पहाडो में जा छिपा, परन्तु उसके वीर सरदार जयमल ने वडी वीरता से मुगलो का सामना किया। जव जयमल मारा गया तो कोई नेता न रहने से राजपूतो का साहस टूट गया। वे जौहर करके शत्रुओ से लडने के लिए निकल आये और वीरता के साथ युद्ध करते हुए मारे गये। सन् १५६९ ई० में चित्तौड के किले पर अकवर का अधिकार हो गया।

चित्तौड की पराजय होते ही रणथम्भौर और कालिजर के किलो पर अधिकार करने में अकवर को विशेष कठिनाई नही हुई। राजपूताना में उसकी धाक जम गई। वीकानेर, जैसलमेर और राजस्थान के अन्य कई राजाओ ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली।

परन्तु मेवाड की लडाई का अभी अन्त नही हुआ। सन् १५७२ ई० में उदयसिंह की मृत्यु के वाद उसका वेटा प्रतापसिंह मेवाड का राना हुआ। उसने चित्तौड को जीतकर फिर अपने जातीय गौरव को स्थापित करने का सङ्कल्प किया। राना प्रतापसिंह राजस्थान में एक अद्वितीय योद्धा था। राना कुम्भा और राना साँगा के पराक्रम का

दिल्ली
मथुरा
आगरा
बियाना
धौलपुर
ग्वालियर
मेवात
आमेर
अजमेर
नागौर
फलौदी
जैसलमेर
जोधपुर
माण्डलगढ़
रणथम्भौर
बूंदी
गागरौन
चित्तौरगढ़
सिरोही
गोगूंदा
हल्दीघाटी
उदयपुर
खामनौर
डूंगरपुर
बांसवाड़ा

हल्दीघाटी की लड़ाई
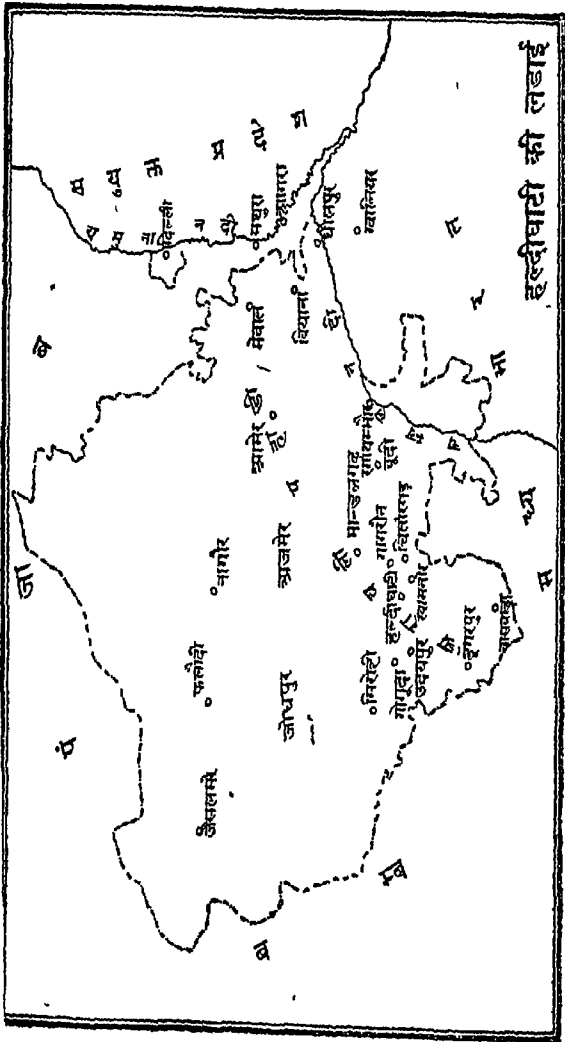
वृत्तान्त सुनकर उसका उत्साह कई गुना बढ गया था। उसने मुगलों के साथ मेल करने से इनकार कर दिया और, थोडी सेना रहते हुए भी, युद्ध की तैयारी कर दी। अकबर ने मानसिंह और आसफ खाँ को सन् १५७६ ई० में एक बहुत बडी सेना के साथ राना प्रताप के विरुद्ध भेजा। प्रताप बडी वीरता से लडा परन्तु राजपूतों और मुगलो की सम्मिलित सेना ने उसे हल्दीघाटी के प्रसिद्ध युद्ध में पराजित किया। राना प्रताप हारकर पहाडो पर निवास करने लगा और मुसलमानो ने एक-एक करके उसके सभी किलो पर अधिकार कर लिया। किन्तु इस आपत्ति-काल में भी उसका वीर हृदय जरा भी विचलित नही हुआ। अकबर केवल नाम-मात्र की अधीनता स्वीकार करने पर भी सन्तुष्ट हो जाता परन्तु राना ने अपने महान् आदर्श की रक्षा के लिए जीवन-पर्यन्त युद्ध करना ही अधिक श्रेयस्कर समझा। धीरे-धीरे उसने अपने कई किले शत्रुओ से छीन लिये, परन्तु चित्तौड गढ अभी मुसलमानो ही के हाथ में रहा। सन् १५९७ ई० में राना की मृत्यु हो गई। राना प्रताप ने देशभक्ति का जो उज्ज्वल आदर्श उपस्थित किया वह सदैव हमारे लिए गौरव का कारण रहेगा।

अकबर के सोने के सिक्के

इस काल में अकबर ने कई अन्य महत्त्वपूर्ण विजयें प्राप्त कीं। गुजरात पहले दिल्ली-साम्राज्य का ही एक भाग था और साम्राज्य को उसके बन्दरगाहो से काफी आमदनी होती थी। परन्तु वहाँ के राजवश के आपस के झगड़ो के कारण अकबर को हस्तक्षेप करने का अच्छा
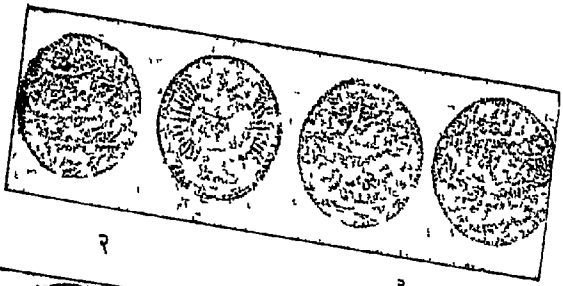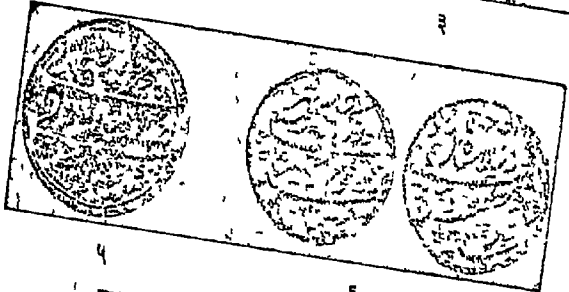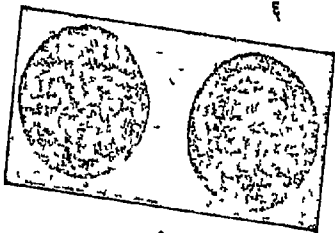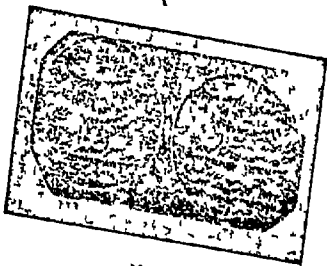
१ अकबर २ जहांगीर ३ नूरजहाँ और जहांगीर ४ शाहजहाँ
५ औरगजेब ६ मुहम्मदशाह

अवसर मिल गया। सन् १५७२ ई० में वादशाह ने स्वय एक सेना लेकर गुजरात पर चढाई कर दी और उसे जीत लिया। वहाँ के सुलतान की पेंशन नियत कर दी गई और शासन-प्रवन्ध के लिए एक सूबेदार नियुक्त कर दिया गया। परन्तु ज्योही अकवर वहाँ से वापस हुआ, फिर उत्पात आरम्भ हो गये। मिर्जा लोगो ने, जो सुलतान के सम्वन्धी थे, विद्रोह का झण्डा खडा किया। यह खबर पाते ही अकवर बडी शीघ्रता के साथ गुजरात में फिर पहुँचा और उसने मिर्जाओ को पराजित किया। गुजरात दिल्ली-साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया और राजा टोडरमल वहाँ की आर्थिक व्यवस्था के लिए नियुक्त किया गया। गुजरात के वाद वङ्गाल की वारी आई। अपने बाप सुलेमान के मरते ही दाऊद खाँ सन् १५७२ ई० में स्वाधीन सुलतान हो गया था और उसने कई वादशाही किलो पर अधिकार कर लिया था। मुग़ल-सेना के सामने युद्ध में वह हार गया और पकडे जाने पर सन् १५७६ ई० में कत्ल कर दिया गया। इस प्रकार वङ्गाल के स्वाधीन राज्य का अन्त हो गया।

द्वितीय काल—इस काल में वादशाह का सारा समय विद्रोहो का दमन करने में व्यतीत हुआ। सवसे पहले विद्रोह वङ्गाल और विहार में आरम्भ हुआ। नये दीवान ने कुछ ऐसे नये नियम जारी किये, जिनसे प्रजा में बडा असन्तोष फैला। इसके अलावा उसने जागीरदारो के अधिकारो और पदो की जाँच-पडताल कराई, जिससे वे बडे भयभीत हुए। दीवान की आज्ञाओ से लाभ उठाकर लालची अफसरो ने खूब मुट्ठियाँ गरम की। ऐसी परिस्थिति के कारण, शीघ्र ही चारो ओर अशान्ति फैल गई। उधर मुसलमान लोग भी यह सुनकर, कि वादशाह इस्लाम की अवहेलना करता है, वहुत व्याकुल हो रहे थे। वे उसे धर्म से वहिर्मुख (वेदीन) समझकर काबुल के शासक मिर्जा हकीम*

* मिर्जा हकीम अकवर का सौतेला भाई था।

के प्रति श्रद्धा रखने लगे और उसे दिल्ली की गद्दी पर बिठाने के लिए षड्यन्त्र रचने लगे। इसी समय सन् १५८० ई० मे जौनपुर के काज़ी ने यह फतवा (धर्माज्ञा) दिया कि सम्राट् मुसलमान नही रहा, इसलिए उसके विरुद्ध विद्रोह करना धर्मानुकूल है। वास्तव मे यह एक बडी कठिन परिस्थिति थी। परन्तु बादशाह अपने सिद्धान्त पर डटा रहा। उसने बडी वीरता से विद्रोहियो का दमन आरम्भ किया और उसकी सेना ने शीघ्र ही विद्रोह का अन्त कर दिया।

षड्यन्त्रकारियो से प्रोत्साहन मिलने पर सन् १५८० ई० में मिर्ज़ा हकीम ने १५००० सवारो के साथ स्वय पजाब पर चढाई कर दी। इधर अकबर भी झटपट एक बडी सेना लेकर उसका सामना करने के लिए आ गया और हकीम का पीछा करता हुआ काबुल तक पहुँच गया। हकीम ने विवश होकर बादशाह की अधीनता स्वीकार कर ली। थोडे ही दिन बाद सन् १५८६ ई० में, उसकी मृत्यु हो गई और, काबुल का सूबा मुग़ल-साम्राज्य में सम्मिलित हो गया।

काबुल के झगडो का निपटारा कर लेने के बाद अकबर ने पश्चिमोत्तर प्रदेश की परिस्थिति पर ध्यान दिया। अफग़ान प्रदेश से आगे चलकर तूरान में एक नया राज्य स्थापित हो गया था, जिससे मुग़ल-साम्राज्य को बडा खतरा था। तूरान के बादशाह अबदुल्ला उजबेग ने अपने पराक्रम से अपनी शक्ति बहुत बढा ली थी। उसे देशो को जीतने की ऐसी प्रबल इच्छा थी कि अकबर भी उससे डरता था। इसके अतिरिक्त, सीमान्त देशो पर यूसुफजाइयो और रोशनिया सम्प्रदाय के अनुयायियो ने बडा उत्पात मचा रक्खा था। इनका दमन करने के लिए बादशाह ने राजा बीरबल को भेजा। यद्यपि राजा बीरबल शत्रुओ के हाथ से मारा गया फिर भी शाही सेना ने इन आततायियो को कुचलकर उनकी शक्ति का नाश कर दिया। सन् १५८६ ई० में काश्मीर भी मुग़ल-साम्राज्य में मिला लिया गया। और उसके थोडे ही दिनो बाद सन् १५९१ ई० में मुलतान और सिन्ध पर भी मुग़लो का अधि-

कार स्थापित हो गया। विलोचिस्तान तथा कन्धार सन् १५६५ ई० में जीत लिये गये और इनकी विजय के बाद पश्चिमोत्तर सीमा की रक्षा का प्रश्न पूर्णतया हल हो गया। सन् १५६२ ई० में उडीसा को साम्राज्य में मिला लेने से पूर्वीय सीमाओ की रक्षा का भी उपाय हो गया। सयोग से १५६८ ई० में अवदुल्ला उजवेग की मृत्यु हो जाने से अकवर की चिन्ता का अन्त हुआ, क्योकि उससे वादशाह सदा भयभीत रहता था। अव मध्य-एशिया की ओर से आक्रमण होने की आशङ्का न रही।

तृतीय काल—इस प्रकार उत्तरी भारत में अपने साम्राज्य को पूर्णतया सुदृढ़ कर लेने के वाद अकवर ने दक्षिण के मुसलमानी राज्यो को जीतने का सङ्कल्प किया। तुर्किस्तान की विजय का इरादा उसने कुछ समय के लिए स्थगित कर दिया। दक्षिण की चढाई का कारण राज्य-विस्तार के अतिरिक्त कुछ और भी था। दक्षिणी समुद्र-तट पर पुर्तगालियो ने अपनी शक्ति वहुत वढा ली थी। यह वात अकवर को अच्छी न लगी। उसका खयाल था कि दक्षिण के राज्यो को अपने अधिकार में कर लेने के वाद-पुर्तगालियो की शक्ति को तोडना कठिन न होगा। इसलिए पहले उसने इन राज्यो के पास अपना प्रभुत्व स्वीकार करने के लिए पत्र भेजा परन्तु जब उनकी ओर से कोई सन्तोषजनक उत्तर न मिला तो उसने वल से काम लेने का निश्चय किया। इस समय इन राज्यो में परस्पर वैमनस्य वढा हुआ था, इस कारण अकवर को अपने काम में वडी आसानी हुई। सवसे पहले अहमदनगर पर धावा हुआ परन्तु निजामशाही सुलतान की वहन चाँदवीवी ने, जो वीजापुर की रानी थी, वडी वीरता से मुग़लो का सामना किया और उनके सेनापति शाहजादा मुराद को सन्धि करने पर विवश किया। सन् १५६६ ई० में दिल्ली-सम्राट् और अहमदनगर-सुलतान के वीच सन्धि हो गई, जिसके अनुसार वादशाह को वरार का सूबा अहमदनगर की ओर से प्राप्त हुआ। थोड़े ही दिनो वाद फिर

युद्ध आरम्भ हो गया। अब की बार अकबर स्वयं सेना लेकर अहमद-नगर पहुँचा और उसने १५९९ ई० मे बुरहानपुर को जीत लिया। अहमदनगरवाले, परस्पर दलबन्दी हो जाने के कारण, अपनी रक्षा का उचित प्रबन्ध न कर सके। उधर चाँदबीबी के शत्रुओ ने उसकी हत्या कर डाली, जिसके कारण मुग़ल-सेना ने आसानी से अहमदनगर पर अधिकार कर लिया।

सन १६०१ ई० में खानदेश राज्य का प्रसिद्ध क़िला असीरगढ, क़िलेदार को घूस देकर, जीत लिया गया। इसके बाद खानदेश भी साम्राज्य मे सम्मिलित हो गया। दक्षिण के राज्यो के बादशाह ने तीन सूबे बना दिये—बरार, अहमदनगर और खानदेश।

**साम्राज्य का विस्तार**—अब अकबर के साम्राज्य में सम्पूर्ण उत्तरी हिन्दुस्तान, उत्तर-पश्चिम मे अफग़ान देश से लेकर पूर्व में आसाम तक और उत्तर में काश्मीर से लेकर दक्षिण में बीजापुर और गोलकुण्डा की सरहद तक शामिल था। सम्राट की मृत्यु के समय साम्राज्य १५ सूबो में विभक्त था। ये सूबे इस प्रकार थे—(१) काबुल, (२) लाहौर, (३) मुलतान, (४) दिल्ली, (५) आगरा, (६) अवध, (७) अजमेर, (८) गुजरात, (९) मालवा, (१०) इलाहाबाद, (११) बङ्गाल, (१२) बिहार, (१३) खानदेश, (१४) बरार तथा (१५) अहमदनगर। एक डच-लेखक का अनुमान है कि सन् १६०५ ई० में इन सूबो से १७ करोड ४५ लाख रुपये की आय साम्राज्य को होती थी।

**सलीम का विद्रोह**—अकबर के तीन बेटे थे जिनमें से दो—मुराद और दानियाल—अधिक मद्यपान के कारण क्रमश १५९९ और १६०४ ई० में मर गये थे। सबसे बडा बेटा सलीम भी बहुत शराब पीता था परन्तु अपने छोटे भाइयो की तरह वह मृत्यु का शिकार नही हुआ। बहुत दिन तक सिंहासन पाने की प्रतीक्षा करते-करते वह ऊब गया था। इसलिए जिस समय अकबर दक्षिण में असीरगढ़ का क़िला

अकबर का साम्राज्य
सन् १६०५ ई०
काबुल
गज़नी
कन्धार
सिवी
मुलतान
पानीपत
दिल्ली
आगरा
सेहवान
अजमेर
चित्तौड़
पाटन
मालवा
अहमदाबाद
उज्जैन
खम्भात
खानदेश
असीरगढ़
सूरत
बालापुर
अहमदनगर
ग्वालियर
इलाहाबाद
अयोध्या
पटना
बिहार
टाँडा
बंगाल
गोंडवाना
पुरी
गोलकुण्डा
गोआ
मंगलौर
कालीकट
कोचीन
मदुरा
त्रिचनापल्ली
१५ सूबे
१ काबुल
२ लाहौर
३ मुलतान
४ दिल्ली
५ आगरा
६ अवध (अयोध्या)
७ इलाहाबाद
८ अजमेर
९ गुजरात
१० मालवा
११ बिहार
१२ बंगाल
१३ खानदेश
१४ बरार
१५ अहमदनगर
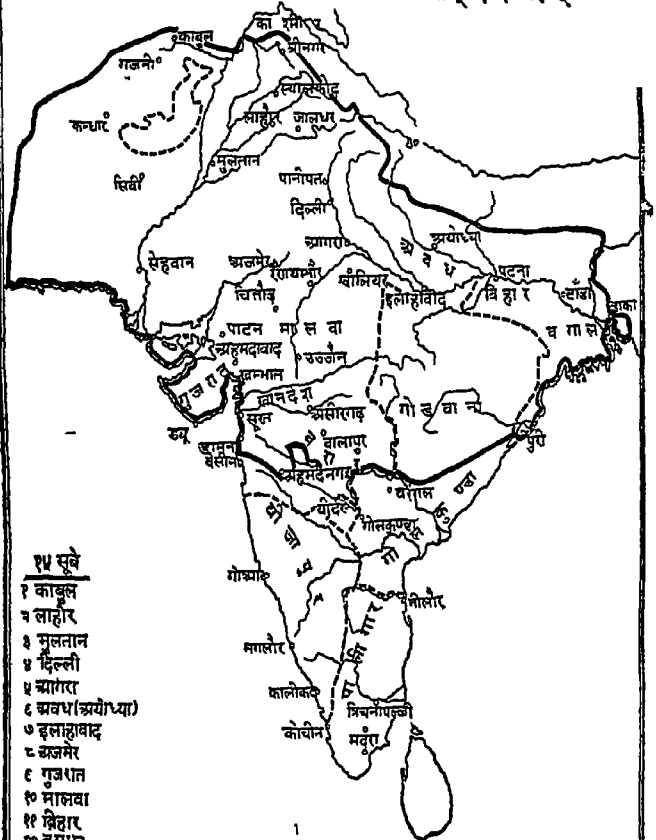
जीत रहा था, उसी समय उसने इलाहाबाद में अपने स्वतन्त्र होने की घोषणा कर दी। अकबर यह समाचार पाते ही विद्रोह का दमन करने के लिए दक्षिण से चल दिया, परन्तु सलीम ने उसे भीषण दुःख देने के लिए एक नया षड्यन्त्र रचा। अगस्त सन् १६०२ ई० में, जब अकबर का प्रिय मन्त्री अबुलफ़ज़ल दक्षिण से लौट रहा था, सलीम ने ओरछा के राजा वीरसिंह बुन्देला के हाथ से उसको कत्ल करा दिया। इस घटना से बादशाह अत्यन्त दुखी हुआ और सलीम से अप्रसन्न हो गया। बेगमो के प्रयत्न से फिर बाप-बेटे मे मेल हो गया। अकबर ने सलीम के सारे अपराध क्षमा कर दिये और उसे अपना उत्तराधिकारी बनाया।

सन् १६०५ ई० मे अकबर को सग्रहणी का रोग हो गया और कुछ महीनो के बाद उसकी मृत्यु हो गई। मरते समय उसने, सङ्केत द्वारा, अपने दर्बारियो को आदेश किया कि सलीम उसका उत्तराधिकारी स्वीकार किया जाय। इसी समय सलीम को गद्दी से वञ्चित करने और उसके बेटे खुसरो को राजसिंहासन पर बिठाने के लिए राजा मानसिंह आदि अमीरो ने षड्यन्त्र रचा परन्तु वह निष्फल सिद्ध हुआ। बिना किसी प्रकार के विरोध के सलीम अकबर का उत्तराधिकारी स्वीकार कर लिया गया।

**समाज-सम्बन्धी सुधार**—अकबर केवल एक प्रतिभाशाली शासक ही नहीं था, वरन् समाज-सशोधक भी था। वह जानता था कि जातीयता का भाव पैदा करने के लिए सामाजिक रीति-रवाजो में सुधार करना तथा हिन्दू और मुसलमानो को एकता के सूत्र में बाँधना आवश्यक है। उसने युद्ध में पकडे हुए शत्रुओ को गुलाम बनाने की प्रथा को बन्द कर दिया और एक फर्मान निकाला कि विजित शत्रुओ की स्त्रियो और सन्तानो पर सिपाही किसी प्रकार का अत्याचार न करें। आमेर की राजकुमारी से विवाह होते ही उसने, सन् १५६३ ई० में, हिन्दुओ से तीर्थ-यात्रा का कर हटा लिया और एक वर्ष बाद जजिया बिलकुल

वन्द कर दिया। वादशाह के इस कार्य से हिन्दुओंको अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उसने सती की कुप्रथा को वन्द करने का भी उद्योग किया और यह कानून वना दिया कि कोई भी स्त्री इच्छा के विरुद्ध जीवित न जलाई जाय। सम्राट् ने स्वय एक वार एक राजपूत स्त्री की प्राण-रक्षा की, जिसे उसके सम्वन्धी उसकी इच्छा के विरुद्ध जीवित जलाना चाहते थे। उसने वाल-विवाह का निषेध किया और वेजोड विवाहो को वन्द करने के लिए कई नियम वना दिये। हिन्दुओ के साथ उसने अच्छा वर्त्ताव किया। हिन्दू-रानियो के प्रभाव से हिन्दुओ को पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता मिल गई और वादशाह स्वय हिन्दू महात्माओ के उपदेशो और विद्वानो के शास्त्रार्थ में दिलचस्पी लेने लगा। उसकी हिन्दू रानियाँ भी महल में मुसलमान वेगमो की भाँति सम्मान पाती थी। उसने वहुत से हिन्दू रवाजो को भी अपनाया। हिन्दू प्रथा के अनुसार वह तुला-दान करता था और वहुत-सा चाँदी-सोना दान करता था। कभी-कभी वह हिन्दुओ की तरह माथे पर तिलक लगाता और सूर्य की उपासना करता था।

**अकबर की धार्मिक नीति**—यूरोप और एशिया दोनो महाद्वीपो में सोलहवी शताब्दी में वडी धार्मिक हलचल मच रही थी। यूरोप मे उस समय एक धार्मिक आन्दोलन हो रहा था। लोग ईसाई-धर्म की वुरी वातो को हटाकर उसे श्रेष्ठ और पवित्र तथा सरल वनाने की चेष्टा कर रहे थे। भारत में भी धार्मिक सुधार की आवश्यकता प्रकट थी। पन्द्रहवी शताब्दी मे कवीर, नानक और चैतन्य आदि महात्माओ ने प्रेम और भक्ति का उपदेश देकर भिन्न-भिन्न मतो में धार्मिक प्रीति-भाव स्थापित करने का उद्योग किया था। उन्होने धार्मिक आडम्वरो को मिथ्या वताया और जनता को, उसकी वोलचाल की भाषा में, यह उपदेश किया कि सारे धर्म ईश्वर के पास पहुँचने के भिन्न-भिन्न मार्ग-स्वरूप है। अकवर स्वभावत जिज्ञासु प्रवृत्ति का मनुष्य था। उसे सत्य को जानने की प्रवल इच्छा थी। वह चाहता था कि भिन्न-भिन्न

धर्मों में किसी प्रकार एकता स्थापित हो। धर्म के कारण द्वेष और वाद-विवाद को देख कर उसके हृदय को बड़ा दुःख होता था। मुल्लाओं और मौलवियों का पक्षपात उसे बुरा लगता था, इसलिए वह सत्य और शान्ति की खोज में दत्तचित्त हो गया।

अकबर की इस प्रवृत्ति के तीन प्रधान कारण थे। हिन्दू राजकुमारियों के साथ विवाह होने के कारण उसकी चित्त-वृत्ति में एक बड़ा परिवर्तन हो गया था और वह हिन्दू-धर्म का हृदय से आदर करने लग गया था। दूसरे शेख मुबारक और उसके बेटे फैजी और अबुलफजल जैसे विद्वान सूफियों के सम्बन्ध से उसके विचार बहुत कुछ बदल गये थे। तीसरे, सत्य का अनुसन्धान करने की बादशाह को उत्कट इच्छा रहती थी और वह धार्मिक झगड़ों को बन्द कर, सहिष्णुता तथा शान्ति (सुलह-कुल) स्थापित करना चाहता था।

सत्य की जानकारी के लिए वह भिन्न-भिन्न धर्मों के आचार्यों से मिलकर उनकी बातें सुनता और उनके साथ वाद-विवाद करता था। सन् १५७५ ई० में उसने अपनी नई राजधानी फतहपुर में 'इबादतखाना' (पूजा-गृह) नामक मकान बनवाया, जहाँ अनेक धर्मों के प्रतिनिधि एकत्र होकर शास्त्रार्थ करते थे। कट्टर मुसलमान, ब्राह्मण, जैन, सिक्ख, पारसी, ईसाई इत्यादि सब यहाँ मौजूद होते थे। शेख मुबारक और उसके बेटे भी इस वाद-विवाद में भाग लेते थे और बादशाह को सच्चे ज्ञान और शान्ति का मार्ग बतलाते थे। ब्राह्मण पण्डित उसे हिन्दू-धर्म की बातें बतलाते और आवागमन के सिद्धान्त की व्याख्या करते थे। इसमें उसकी विशेष रुचि थी। इसी प्रकार अन्य धर्मवाले भी अपने-अपने धर्मों की व्याख्या करते थे। शास्त्रार्थ सुनते-सुनते बादशाह की यह धारणा हो गई कि सभी धर्मों में अच्छी बातें है परन्तु मनुष्य केवल धर्मान्धता और कट्टरपन के ही कारण सच्चे ज्ञान को प्राप्त नही कर सकता। सन् १५७९ ई० में मुसलमान आचार्यों ने मिलकर उसे इमाम-आदिल अर्थात् इस्लाम के सिद्धान्तो का अन्तिम निर्णय करने-

अकबर का दर्बार

वाला घोषित कर दिया। इस व्यवस्था से कट्टर मुसलमानो में बडी खलबली मच गई। परन्तु मार्के की बात यह हुई कि बादशाह को धार्मिक झगडो का निर्णय करने का अधिकार मिल गया। हाँ, एक शर्त जरूर थी। वह यह कि बादशाह का निर्णय कुरान शरीफ के नियमो के विरुद्ध नही हो सकता था। यदि होता तो मुसलमान उसे मानने के लिए बाध्य नही थे।

अपने धार्मिक विचारो को निश्चित रूप प्रदान करने के अभिप्राय से अकबर ने सब धर्मों की अच्छी बातो को मिला कर 'दीन-इलाही' नाम का एक नया मत चलाया। वास्तव में यह कोई नया धर्म नही था। इसमें वे सब लोग शामिल हो सकते थे जो बादशाह के विचारो को मानते थे और धार्मिक-स्वतन्त्रता के प्रेमी थे। इस मत के अनुयायी एक दूसरे का, मिलने पर, 'अल्लाहो अकबर' और 'जल्लजल्लालहू' कहकर अभिवादन करते थे। उन लोगो को मास खाने तथा नीच लोगो के साथ भोजन करने की आज्ञा नही थी। बादशाह के प्रति भक्ति प्रकट करने के चार तरीक़े थे। इनके अनुसार सम्पत्ति, प्राण, प्रतिष्ठा और धर्म चारो उसे समर्पित किये जाते थे।

अकबर ने कभी 'दीन-इलाही' को फैलाने का प्रयत्न नही किया। उसने न किसी पर जोर डाला और न ओहदे अथवा पद का किसी को प्रलोभन दिया। यही कारण है कि उसके अनुयायियो की सख्या केवल १८ थी। उसके हिन्दू दरबारियो में केवल राजा बीरबल ने दीन-इलाही स्वीकार किया था। परन्तु यह कहना कि अकबर ने इस्लाम धर्म छोड दिया था, उचित नही है। हाँ, इतना अवश्य है कि वह अन्य धर्मों के प्रति आदर का भाव रखता था। यह बात उसके समकालीन मुसलमानो को अप्रिय थी, इसलिए वे उस पर तरह-तरह का सन्देह करते थे।

कुछ इतिहासकारो का यह कहना, कि उसने गर्व और अहङ्कार से प्रेरित होकर' दीन-इलाही की स्थापना की थी, ठीक नही है। यह

मत केवल बौद्धिक प्रकाश द्वारा धार्मिक सिद्धान्तो का अध्ययन करने-वाले व्यक्तियो का एक समुदाय मात्र था। अकबर बडे नम्र स्वभाव का आदमी था। यदि उसके भक्तो ने उसे ईश्वर अथवा देवता बनाने का प्रयत्न किया तो इसमें उसका क्या दोष है। भिन्न भिन्न धर्मों में बाहरी भेद-भाव होते हुए भी उसने असली एकता को जानने का प्रयत्न किया। उसका यह प्रयत्न सर्वथा श्लाघ्य है। मनुष्य मात्र के प्रति सहिष्णुता और प्रेम का उपदेश करना उसकी अपूर्व प्रतिभा और राज-नीतिक कौशल का सदैव ज्वलन्त प्रमाण रहेगा।

**अकबर का चरित्र**—अकबर की गणना ससार के महान् शासको में है। समकालीन इतिहासकारो ने उसके गुणो का वर्णन किया है जिसका उसके दर्बार में आये हुए विदेशी यात्री भी समर्थन करते हैं। उसकी आकृति आकर्षक और प्रभावपूर्ण थी। अपरिचित व्यक्ति भी उसे देखते ही जान लेता था कि वह बादशाह है। वह कद में ५ फीट ७ इञ्च लम्बा था। उसका शरीर न तो बहुत स्थूल था और न बहुत दुर्बल। उसका माथा चौडा और खुला हुआ था। उसकी आँखें ऐसी तेज़ और चमकीली थीं कि वे सूर्य के प्रकाश में समुद्र की तरह मालूम होती थी। उसका रङ्ग गेहुँआँ और आवाज़ बुलन्द तथा गम्भीर थी। वह दिल खोलकर हँसता, मजाक करता और सभी प्रकार के उत्सवो में आनन्द मनाता था। परन्तु जिस समय वह किसी से अप्रसन्न होता तो उसके क्रोध का ठिकाना नही रहता था। उसका स्वभाव नम्र और शिष्ट था। एक जेसुइट पादरी लिखता है कि वह बडो के सामने बडे और छोटो के सामने छोटे की तरह बर्त्ताव करता था। उसकी बुद्धि ऐसी तीक्ष्ण थी कि कठिन से कठिन समस्याओ को वह हल कर लेता था और यह कभी नही पूछता था कि उसके लिए क्या भोजन तैयार किया गया है। हिन्दू मित्रो के खयाल से उसने गो-मास, लहसुन, प्याज़ आदि पदार्थों का परित्याग कर दिया था। मास उसे अच्छा नही लगता था और जीवन के अन्तिम भाग में तो उसने

मास-भक्षण बिलकुल बन्द कर दिया था। रात में वह थोडी देर तक सोता था और अधिकाश समय धार्मिक चर्चाओ में बिताता था। दिन में वह राज्य का काम करता था और छोटी से छोटी बातों की भी स्वय देख-रेख करता था। उसका हृदय प्रेम का अनन्त स्रोत था। अपने सम्बन्धियो और कुटुम्बियो के प्रति वह सदा दया-पूर्ण बर्त्ताव करता था। उसकी स्मरण-शक्ति अद्भुत थी। इसी लिए उसे अनेक विषयो का ज्ञान प्राप्त करने में कुछ भी कठिनाई नही हुई। वह कला का प्रेमी था। गान-विद्या और चित्र-कला की ओर उसकी विशेष अभिरुचि रहती थी। इसलिए इन कलाओ के विशेषज्ञो को उसने अपने दरबार में रक्खा था। उसमें असीम शारीरिक बल था। भयङ्कर जानवरो का शिकार करने का उसे बडा शौक था। मनोविनोद के लिए वह युद्ध देखता था और स्वय वीरता तथा पराक्रम के कार्य करने के लिए सदा उद्यत रहता था।

उसके समान सैनिक तथा शासन-प्रबन्ध-कर्त्ता कोई दूसरा न था। जिस समय वह राजगद्दी पर बैठा, उसके चारो ओर सङ्कट के बादल छाये हुए थे। परन्तु अपनी प्रतिभा और योग्यता से उसने थोडे ही दिनो मे कठिनाइयो को दूर कर दिया और एक महान् साम्राज्य की स्थापना की। अपनी विजयो-द्वारा उसने सारे हिन्दुस्तान में अपना सिक्का जमा दिया और लडाइयो में बड़ी कुशलता दिखलाई। उसमें एक पैदायशी सेनापति का अदम्य साहस था और उसकी सूझ-बूझ तथा सहन-शक्ति को देखकर उसके शत्रु भी चकित हो जाते थे। उसने अपने समय के प्रसिद्ध हिन्दू तथा मुसलमान योद्धाओ को अपनी सेना में रक्खा। उन्होने भी कन्धे से कन्धा मिलाकर उसकी साम्राज्य-वृद्धि के लिए भयङ्कर युद्ध किये। शासन-प्रबन्ध में उसने कभी हिन्दू मुसलमान का भेद नही किया। इस सिद्धान्त के अनुकूल व्यवहार करने के कारण उसके साम्राज्य का प्रभाव बढ़ा और प्रजा का भी कल्याण हुआ।

किन्तु इन गुणो के अतिरिक्त उसमें एक और विशेषता थी। वह सबके साथ इन्साफ करना चाहता था। उसकी इच्छा थी कि उसकी सारी प्रजा एकता के सूत्र में बँध जाय और हिन्दू-मुसलमान दोनो की सभ्यताओ का सम्मिश्रण हो। इसकी पूर्ति के लिए उसने जीवन-पर्यन्त प्रयत्न किया। जिस समय यूरोप के ईसाई अपने विरोधियो को कत्ल करने और उन्हें जीवित जलाने में तल्लीन थे उस समय भारतवर्ष मे अकबर ने धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की और यह घोषणा की कि भिन्न-भिन्न धर्मो की सच्चाई को जानकर, मनुष्य ईश्वर की वास्तविक महिमा का अनुमान कर सकता है। यह सच है कि उसके सदुद्देश्यो को सफलता नही मिली, परन्तु ससार के इतिहास में उसका स्थान सदैव ऊँचा रहेगा।

**मुगल-शासन का ढङ्ग**—मुगलो का शासन न तो पूर्णतया भारतीय था न पूर्णतया विदेशी। मुगलो के पूर्ववर्ती तुर्क सुलतान अपने साथ राजनीतिक आदर्श लाये थे, जिन्हे उन्होने देश की परिस्थिति के अनुसार लागू किया था। उन्होने कुछ भारतीय तरीको को भी ग्रहण किया जिससे उनका शासन भारतीय और विदेशीय दोनो शैलियो का एक प्रकार का सम्मिश्रण था। मुगल-शासन का स्वरूप भी वहुत कुछ वैसा ही रहा। मुगल-राज्य को चारो ओर से शत्रु घेरे हुए थे। देश मे एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने का सुभीता न था। विद्रोह का प्रति क्षण भय रहता था। इसलिए मुगल-सम्राट् को निरकुश नीति से काम लेना पडता था। राज्य मे उसी का वोल-वाला था। युद्ध मे उसे सेना लेकर उपस्थित होना पडता था और उसकी सफलता या विफलता पर ही राज-वश का उत्कर्ष अथवा पतन निर्भर होता था। राज्य-सम्वन्धी मामलो की वातचीत करने के लिए अफसर आसानी से एक दूसरे से मिल नही सकते थे, इसलिए लिखा-पढी वहुत होती थी और लम्वे-चौडे पत्र और फर्मान लिखे जाते थे। यही कारण है कि मुगल-राज्य को कागजी राज्य कहा गया है।

**शासन-प्रबन्ध**—जैसा पहले कह चुके है, बादशाह शासन का प्रधानाध्यक्ष था। वह निरकुश तो अवश्य था परन्तु लोक-मत सदा उसके लिए प्रतिबन्ध का काम करता था। यह सत्य है कि धार्मिक आचार्य कुरान के नियमो का पालन न करने पर उसे गद्दी के अयोग्य ठहरा देते थे। परन्तु इस प्रकार के फतवे को कार्यान्वित करने की उनमें शक्ति नही थी। ऐसी अवस्था में जब तक कोई दूसरा राज्य का अधिकारी सेना की सहायता से उसे निकाल बाहर न करे, निकम्मे बादशाह भी राज्य करते रहते थे।

बादशाह के नीचे कई अन्य अधिकारी होते थे जिनमें से मुख्य ये है—(१) वकील—प्रधान मन्त्री, (२) वजीर—अर्थमन्त्री, (३) बख्शी—जो सभी अधिकारियो का वेतन वितरण करता था और सेना का भी निरीक्षण करता था, (४) प्रधान काजी—जो राज्य का सबसे प्रधान न्यायाधीश था, (५) खानसामा—शाही बावर्चीखाने का प्रधानाध्यक्ष तथा (६) सदर—जो दान के लिए दिये हुए धन और जायदादो का निरीक्षण करता था।

शहरो में अमन-चैन रखना कोतवाल का कर्त्तव्य था। कोतवाल पुलिस और मजिस्ट्रेट दोनो का काम करता था। वह दूकानदारों के बाटों की जाँच करता और गुप्तचरो द्वारा नगर का सारा हाल मालूम करता रहता था। क़ाज़ी मुक़दमो का फैसला करता था और मीर-अदल और मुफ्ती क़ानून की व्याख्या करते थे। क़ानून की कोई लिखित नियमावली न होने के कारण काज़ी को न्याय करने में कुरान की सहायता लेनी पडती थी। हिन्दुओ के मामलो में उनके रीति-रवाज का भी खयाल किया जाता था। प्राय: दण्ड बहुत कठोर दिये जाते थे और जुरमाने भी भारी होते थे। बादशाह स्वय भी अदालत में बैठता था और बडे-बडे मुकदमो का फैसला करता था। दरबार-आम में बैठकर वह नीचे की अदालतो की अपीलें सुनता था और उनके फ़ैसलों में रद्द-बदल कर देता था।

गाँव मे स्थानीय मामलो का फैसला करने के लिए पञ्चायतें स्थापित थी।

**शाही नौकरी**—राज्य के काम के लिए अनेक कर्मचारियो की आवश्यकता थी। अकबर जागीर-प्रथा के दोषो को खूब समझता था। इसलिए उसने 'मनसबदारी' प्रथा को प्रचलित किया। 'मनसब' शब्द का अर्थ है दर्जा अथवा रुतबा। सेना का विभाग अलग नही था। इसलिए एक ही अफसर माल और फौज दोनो विभागो का काम कर सकता था। अफसरो के कई दर्जे थे और उनका वेतन आदि बादशाह स्वय निश्चित करता था। मनसबदार को आवश्यकता पडने पर राज्य की सेवा के लिए सेना देनी पडती थी। 'मनसब' के ३३ दर्जे थे। १० से लेकर १० हजार तक के 'मनसबदार' हुआ करते थे। दस-हजारी मनसबदार का दर्जा सबसे अधिक प्रतिष्ठित समझा जाता था और यह पद प्राय राजवश के ही लोगो को प्रदान किया जाता था। मनसबदार को अपने दर्जे के अनुसार निश्चित सिपाही रखने पडते थे। परन्तु वास्तव मे ऐसा होता था या नही, यह एक विवादास्पद विषय है। मनसबदारो का वेतन शाही खजाने से नकद दिया जाता था। कभी-कभी उन्हे जमीन की मालगुजारी भी बता दी जाती थी। परन्तु ऐसा बहुत कम होता था।

इस प्रथा मे अनेक दोष थे। प्राय सैन्य-प्रदर्शन के दिन मनसबदार किराये के घोडो और सिपाहियो को एकत्र करके राज्य को धोखा दिया करते थे। इससे बचने के लिए घोडो को दागने और सिपाहियो के हुलिया का रजिस्टर रखने का नियम बनाया गया था। किन्तु इसके होते हुए भी लोग धोखाधडी से काम लिया करते थे।

नौकरियो के कोई नियम नही थे। सब कुछ बादशाह की इच्छा पर निर्भर था। वह किसी व्यक्ति को अपने इच्छानुसार ऊँचे से ऊँचे पद पर नियुक्त कर सकता था अथवा उच्च पद से निकाल सकता था। योग्यता की परख का भी कोई नियम नही था। कर्मचारी एक विभाग

से दूसरे विभाग में बदल दिये जाते थे। हिन्दुओ को भी बडे-बडे ओहदे दिये जाते थे। अफसरो की मृत्यु के बाद उनकी सारी सम्पत्ति शाही खजाने में चली जाती थी। इसका परिणाम यह होता था कि राज्य के पदाधिकारी खर्च खूब करते थे और ऐश-आराम के लिए पानी की तरह रुपया बहाते थे।

भूमिकर अर्थात् लगान का प्रबन्ध—शेरशाह ने भूमिकर के नियमो को सुव्यवस्थित करने का उद्योग किया था, परन्तु उसकी शीघ्र मृत्यु हो जाने से काम पूरा न हो सका था। उसके समय में जमीन का लगान पैमाइश के अनुसार निश्चित किया गया था। वेतन के बदले में भूमिकर देने की प्रथा उसके समय में प्रचलित थी और बाद में इस्लाम-शाह ने नकद रुपया देना आरम्भ कर दिया था, परन्तु यह प्रथा स्थायी न हो सकी। जागीरदार और मुकद्दम किसानो को प्राय सताया करते थे और उनसे वाजिब से अधिक रुपया वसूल किया करते थे। उन्हें खेती की उन्नति का कुछ भी ध्यान नही था। बेचारे किसान दो पाटो के बीच पिसा करते थे। एक तो उन्हें अनिश्चित लगान देना पडता था, दूसरे इसका कोई ठिकाना न था कि जमीन पर उनका कब तक अधिकार रहेगा।

अकबर ने भूमिकर का नये सिरे से प्रबन्ध किया। पहले पैमाइश करने में रस्सियो से काम लिया जाता था। ये गर्मी और बरसात के दिनो में घट-बढ जाती थी, जिससे जमीन की नाप ठीक नही होती थी और किसानो की हानि होती थी। टोडरमल ने बांसो की बनी और लोहे के छल्लो से जुडी हुई जरीब से पैमाइश करने का नियम निकाला। सरकारी कर्मचारी बोई हुई जमीन, अनाज की किस्म तथा जमीन की जांच करते थे। गांव के मुखिया को इस बात का प्रतिज्ञा-पत्र लिखना पडता था कि वह बोई हुई जमीन और फसल का पूरा-पूरा हाल बतावेगा। यह सब करने के बाद, उस समय के भाव के अनुसार, पैदावार का मूल्य निश्चित करके राज्य का भाग तय किया जाता था।

इससे बचने के लिए टोडरमल ने पिछले दस वर्ष की पैदावार की औसत के अनुसार खेतो का लगान नकद रुपये में निश्चित कर दिया। भिन्न-भिन्न किस्म की फसलो के लिए भिन्न-भिन्न लगान लगाया गया। बोवाई हो जाने के वाद फसल के अनुसार नियत दर से सरकारी मालगुजारी निश्चित कर दी जाती थी। इस तरह फसल कटने के पहले ही यह मालूम हो जाता था कि भूमिकर से राज्य को कितनी आमदनी होनेवाली है। सरकार पैदावार का एक तिहाई लेती थी। यह भाग नकद रुपये के रूप में निश्चित किया जाता था। परन्तु किसानो को आज्ञा थी कि चाहे वे लगान नकद रुपये में दें, चाहे अनाज के रूप में। ईख और नील आदि कीमती फसलो का लगान हमेशा नकद रुपये में लिया जाता था। राज्य के कर्मचारी लगान सीधा प्रजा से वसूल करते थे और इस कार्य में गाँव के मुखिया और पटवारी उनकी मदद करते थे। किसान शाही खजाने में स्वय रुपया जमा कर सकते थे और उन्हें वहाँ से रसीद भी दी जाती थी।

इस प्रथा का सक्षेप में इस प्रकार वर्णन किया जा सकता है —

(१) खेतो के बोने के वाद राज्य के कर्मचारी देहातो में जाकर बोई हुई भूमि के क्षेत्रफल का हिसाब कर लेते थे और फसल का एक खुलासा तैयार करते थे। किसी दैवी घटना से यदि फसल खराव हो जाती, तो वे उसकी रिपोर्ट केन्द्रीय सरकार के पास भेज देते थे।

(२) पैदावार के मूल्य का अनुमान पहले से निश्चित की हुई दरों अर्थात् शरहो के अनुसार किया जाता था।

(३) इसके वाद उसका तीसरा भाग किसानो से वसूल किया जाता था।

अकबर किसानो की भलाई का सदैव ध्यान रखता था। अपने कर्मचारियो की सुविधा के लिए वह हुक्म जारी करता था। लगान वसूल करनेवालो को आदेश किया जाता था कि वे प्रजा के साथ मित्रता का व्यवहार करें और समय के पहले लगान न माँगें।

अनाज सस्ता होने पर और दुर्भिक्ष के समय किसानो को छूट दी जाती थी। अकाल के समय बीज और बैल के लिए तकावी दी जाती थी। अफसरो को ईमानदारी से काम करने, खेती का क्षेत्रफल बढाने और प्रजा की सुख-शान्ति का ध्यान रखने के लिए बराबर निर्देश दिया जाता था।

**प्रान्तीय शासन***—साम्राज्य सूबो मे और सूबे सरकारो में तथा सरकार परगनो अथवा महालो में विभाजित किये गये थे। प्रत्येक सूबे में एक सिपहसालार होता था जो माल तथा फौज दोनो विभागो का काम करता था। सिपहसालार प्राय राज-घराने का कोई पुरुष अथवा बादशाह का विश्वास-पात्र अफसर होता था। सिपहसालार के नीचे दीवान (अर्थमन्त्री), आमिल (भूमिकर वसूल करनेवाला प्रधान कर्मचारी) तथा फौजदार (प्रान्तीय सेना का अध्यक्ष) होते थे। इनके अतिरिक्त वाकअनवीस नामक एक अन्य कर्मचारी होता था जो केन्द्रीय सरकार के पास गुप्त रीति से सूबे का हाल भेजा करता था।

**सेना का सगठन**—शाही सेना के तीन भाग थे—(१) बादशाह का आधिपत्य स्वीकार करनेवाले राजाओ और सरदारो की सेना, (२) मनसबदारो की सेना, (३) बादशाह की स्थायी सेना जिसका वेतन सीधा सरकारी खजाने से दिया जाता था। स्थायी सेना की सख्या अधिक नही थी। इनके अतिरिक्त दो तरह के सैनिक और थे जिन्हें 'दाखिली'

---

* साम्राज्य १५ सूबो में विभक्त था। ये सूबे निम्न लिखित थे—(१) काबुल (२) लाहौर (३) मुलतान (४) दिल्ली (५) आगरा (६) अवध (७) अजमेर (८) गुजरात (९) मालवा (१०) इलाहाबाद (११) बगाल (१२) बिहार (१३) खानदेश (१४) बरार (१५) अहमदनगर।

अकबर झेलम नदी में नावों के पुल पर हाथियों का युद्ध देख रहा है।

और 'अहदी' कहते थे। दाखिली, सिपाहियो की एक प्रकार की अतिरिक्त सेना होती थी जिसे राजकीय कोष से वेतन मिलता था और जो मनसवदारो की अध्यक्षता मे काम करती थी। अहदी, बादशाह के शरीर-रक्षक होते थे और उनकी नियुक्ति बादशाह स्वय करता था। अहदियो को मामूली सिपाहियो से अधिक वेतन मिलता था। कभी-कभी तो उनका वेतन पाँच सौ रुपया मासिक तक होता था। मनसवदारो के सिपाहियो को अपने ज़िरह्-बख्तर का प्रबन्ध अपने पास से करना पडता था।

शाही सेना के मुख्य अङ्ग थे तोपखाना, हाथी और नावें। पैदल सेना का विशेष सम्मान नही था। तोपखाना भी बहुत अच्छा नहीं था यद्यपि अकबर ने उसका सुधार करने का उद्योग किया था। तोपखाने का प्रधान अफसर 'मीर-आतिश' कहलाता था जो एक पञ्ज-हज़ारी मनसवदार होता था। सेना का मुख्य अङ्ग अश्वारोही-दल था। अकबर ने उसे अत्यन्त शक्तिशाली बना दिया था। युद्ध में हाथियो से भी काम लिया जाता था। बादशाह के यहाँ एक बहुत बडा हाथियो का तबेला था और मनसवदारो को भी हाथी रखने पडते थे।

मुगल-सम्राटो की समुद्री शक्ति अधिक नही थी, किन्तु अकबर ने इस ओर कुछ ध्यान दिया था। युद्ध के अवसर पर काम आने के लिए उसने जङ्गी नावो का एक बेडा तैयार कराया और उसके प्रबन्ध के लिए एक अलग महकमा बना दिया था।

## संक्षिप्त सन्‌वार विवरण

| | | |
|---|---|---|
| पानीपत का द्वितीय सग्राम | .. .. | १५५६ ई० |
| बैरमखाँ का कत्ल | .. | १५६१ " |
| अकबर का आमेर की राजकुमारी से विवाह | .. | १५६२ " |
| मालवा का साम्राज्य में मिलना .. | .. | १५६४ " |

| | | | |
|---|---|---|---|
| चित्तौड की चढाई | .. | .. | १५६७ ई० |
| गुजरात की विजय | .. | .. | १५७२ " |
| उदयसिंह की मृत्यु | .. | .. | १५७२ " |
| बङ्गाल की विजय | .. | .. | १५७५ " |
| मिर्ज़ा हकीम की पञ्जाब पर चढाई | | .. | १५८० " |
| काश्मीर-विजय | .. | .. | १५८६ " |
| सिन्ध का साम्राज्य में मिलना | .. | .. | १५९१ " |
| उडीसा का साम्राज्य में मिलना | .. | .. | १५९२ " |
| बिलोचिस्तान और कन्दहार की विजय | | .. | १५९५ " |
| राना प्रताप की मृत्यु | . | .. | १५९७ " |
| अब्दुल्ला उजबेग की मृत्यु | . | .. | १५९८ " |
| बुरहानपुर पर मुगलो का अधिकार | | .. | १५९९ " |
| असीरगढ की विजय | .. | .. | १६०१ " |
| अबुलफज़ल की मृत्यु | .. | .. | १६०२ " |
| अकबर की मृत्यु | .. | .. | १६०५ " |

# अध्याय २४

## विलासप्रियता और शान-शौकत का युग

### ( १६०५—१६५८ ई० )

### जहाँगीर और शाहजहाँ

जहाँगीर का सिंहासनारोहण—अपने पिता की मृत्यु के बाद राजकुमार सलीम, नूरुद्दीन मुहम्मद जहाँगीर बादशाह ग़ाज़ी के नाम से, ३६ वर्ष की अवस्था में, २४ अक्टूबर सन् १६०५ ई० को गद्दी पर बैठा। वह एक सुन्दर युवा पुरुष था। उसका क़द लम्बा, रङ्ग गोरा और आँखें तेज़ और चमकीली थी। वह गलगुच्छियाँ भी रखता था। उसके आकर्षक शिष्टाचार, स्पष्ट स्वभाव तथा वाक्-पटुता के कारण सब लोग उससे मिलकर प्रसन्न होते थे। गद्दी पर बैठते ही उसने उन लोगो को, जिन्होंने उसके विरुद्ध षड्यन्त्र किया था, क्षमा प्रदान कर दी, निर्धनो को बहुत-सा धन बटवाया और कैदियो को मुक्त कर दिया। उसने यह विश्वास दिलाया कि इस्लाम धर्म के प्रतिकूल कोई काम नही किया जायगा। इससे प्रकट होता है कि अकबर का कट्टर-विरोधी दल, उसके मरते ही, फिर प्रभावशाली हो गया था। परन्तु जहाँगीर ने इस बात की घोषणा कर दी कि राजनीतिक मामलो में वह अपने पिता की ही नीति का अनुसरण करेगा। इस सम्बन्ध में उसने बारह हुक्म जारी किये। न्याय-प्रिय वह ऐसा था कि आगरे के किले में उसने एक ज़ञ्जीर लटकवा दी थी जिसे खीचकर लोग बादशाह से फरियाद कर सकते थे। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि या तो बादशाह के या उसके दरबारियो के भय के कारण ज़ञ्जीर बहुत कम खीची जाती होगी। बादशाह ने

वहुत से गैरकानूनी कर वन्द कर दिये और अपने अफसरो को प्र॰ न करने के लिए उनका वेतन वढा दिया।

खुसरो का विद्रोह—खुसरो जहाँगीर का सवसे वडा वेटा था। वह एक चतुर और होनहार शाहजादा था। अकवर उससे वहुत प्रेम करता था। जहाँगीर के विद्रोह करने पर, दरवार के सभी लोगो की कल्पना थी कि अकवर का उत्तराधिकारी खुसरो ही होगा। राजा मानसिंह और अजीज कोका ने मिलकर, सलीम को हटाकर खुसरो को अकवर का उत्तराधिकारी वनाने के लिए, एक षड्यन्त्र भी रचा था परन्तु वह सफल न हुआ। इस षड्यन्त्र के कारण वाप-वेटे में परस्पर वडा वैमनस्य हो गया। जव जहाँगीर गद्दी पर वैठा तो उसने खुसरो को नजरवन्द कैदी वनाकर रक्खा। इससे दुखी होकर वह एक दिन सन्ध्या-समय (अप्रैल सन् १६०६ ई०) ३५० सवारो के साथ किले से वाहर निकल भागा और उसने खुल्लमखुल्ला विद्रोह का झण्डा खडा कर दिया। वह पञ्जाव की ओर गया और लाहौर पर अधिकार स्थापित कर लिया। लाहौर में उसकी सिक्खो के गुरु अर्जुन से भेंट हुई। गुरु ने उसकी दशा पर दया करके उसे आशीर्वाद दिया। जहाँगीर स्वय पञ्जाव की तरफ रवाना हुआ और युद्ध में खुसरो को पराजित कर उसे कैद कर लिया। उसके वहुत से साथियो को वादशाह ने कठोर दण्ड दिया। गुरु अर्जुन को फाँसी दी गई और उसकी सारी सम्पत्ति छीन ली गई। गुरु अर्जुन के कत्ल का चाहे राजनीतिक कारण रहा हो, परन्तु इसका परिणाम अनिष्टकारी हुआ। सिक्ख लोग मुगलो के शत्रु हो गये और साम्राज्य का विरोध करने लगे।

नूरजहाँ—जहाँगीर के जीवन की सवसे महत्त्व-पूर्ण घटना नूरजहाँ के साथ उसका विवाह है। नूरजहाँ का वचपन का नाम मिहरुन्निसा था। वह मिर्जा गयास की वेटी थी। मिर्जा गयास तेहरान का रहनेवाला था और नौकरी की तलाश मे हिन्दुस्तान आया था। यहाँ अकवर ने उसे नौकरी दी और, थोडे ही दिनो में, वह और उसके

बेटे राज्य मे ऊँचे पदो पर पहुँच गये। नूरजहाँ जब सयानी हुई तो उसका विवाह अली कुली इस्तालजू के साथ हो गया। अली कुली को शेर अफगन की उपाधि मिली और वर्दवान मे एक जागीर दी गई। बङ्गाल इन दिनो राजद्रोह का केन्द्र हो रहा था। शेर अफगन पर भी राजद्रोह का सन्देह किया गया। बादशाह ने बङ्गाल के सूबेदार कुतुबुद्दीन को उसे गिरफ्तार करने की आज्ञा दी। कुतुबुद्दीन ने शेर अफगन के साथ कुछ अशिष्टता का व्यवहार किया, जिससे वह बडा क्रोधित हुआ और दोनो आपस में लडकर मर गये। मिहरुन्निसा दरबार मे भेज दी गई और मार्च सन १६११ ई० में उसके साथ जहाँगीर का विवाह हो गया। अब वह बादशाह की प्रधान बेगम हो गई और उसे नूरमहल तथा नूरजहाँ की उपाधियाँ मिली। कहा जाता है कि जहाँगीर बहुत दिनो से नूरजहाँ पर आसक्त था और उससे विवाह करने के अभिप्राय से ही उसने शेर अफगन को कत्ल कराया था। एक आधुनिक लेखक ने इस मत का यह कह कर खण्डन किया है कि तत्कालीन इतिहासो मे इस बात का जिक्र नही है कि शेर अफगन के कत्ल में जहाँगीर का हाथ था। कुछ भी हो, जिस परिस्थिति मे शेर अफगन का कत्ल हुआ वह ऐसी है कि हम यह नहीं कह सकते कि यह सन्देह सर्वथा निर्मूल है।

नूरजहाँ एक बुद्धिमती स्त्री थी। राज्य की कठिन से कठिन समस्याओ को वह शीघ्र ही समझ जाती थी। जहाँगीर राज्य का सारा काम उसी पर छोडकर ऐश-आराम में डूबा रहता था। वास्तव में नूरजहाँ ही राज्य की मालिक थी। सिक्को तथा शाही फरमानो पर उसका नाम निकलता था। बडे-बडे अमीर अपनी उन्नति के लिए उसकी कृपा प्राप्त करने का उद्योग करते थे। वह दीनो पर दया करती और अनाथ मुसलमान लडकियो के विवाह के लिए आर्थिक सहायता देती थी। निर्बल और सताये हुए लोगो की रक्षा के लिए वह सदैव तैयार रहती थी। फारसी-साहित्य का उसे अच्छा ज्ञान था। वह

स्वय फारसी में कविता भी करती थी। वह हमेशा सुन्दर चीजें पसन्द करती थी। उसने नई तरह की पोशाकें निकाली और महल को सजाने के नये ढङ्ग वतलाये। यही कारण था कि जहाँगीर पूर्णतया उसके वश में हो गया। उसका प्रभाव वढ जाने के कारण दरवार में एक ऐसा दल वन गया जिसकी स्वार्थ-पूर्ण नीति ने साम्राज्य में अशान्ति पैदा कर दी।

**युद्ध और विजय (१६१२-२६ ई०)**—सन् १६१२ ई० में वङ्गाल में उसमान खाँ ने विद्रोह किया परन्तु वह वडी निर्दयता के साथ दमन कर दिया गया। वीर-शिरोमणि राना प्रताप की मृत्यु के वाद सन् १५६७ ई० में उसका वेटा अमरसिंह मेवाड की गद्दी पर वैठा। मेवाड के विरुद्ध युद्ध जारी रहा परन्तु उसमें अधिक सफलता नही प्राप्त हुई। जहाँगीर ने अपने वाप की नीति का अनुसरण किया और मेवाड के विरुद्ध एक वडी सेना भेजी। इस वार मुगल-सेना ने राजपूतो को खूव दवाया और उनकी दुर्दशा कर डाली। सन् १६१४ ई० में नये राना ने आत्म-समर्पण करके वादशाह की अधीनता स्वीकार कर ली। राना के साथ अच्छा वर्ताव किया गया और उसने तथा मुगल-सेनाध्यक्ष शाहजादा खुर्रम ने परस्पर अभिवादन किया। मेवाड के अधीन होने का समाचार सुनकर जहाँगीर के हर्ष का ठिकाना न रहा। उसने न तो राना से वदला लेने की इच्छा प्रकट की और न उसे दरवार में स्वय उपस्थित होने तथा वैवाहिक सम्वन्ध करने के लिए विवश किया। इस समय से औरङ्गजेव के समय तक मेवाड-नरेश मुग़ल-सम्राट् के मित्र वने रहे।

दक्षिण में भी जहाँगीर ने अपने वाप की नीति का अनुसरण किया। इस समय अहमदनगर के निज़ामशाही राज्य का प्रवन्ध एवीसीनिया-निवासी मलिक अम्वर के हाथ में था। वह वडा योग्य और प्रतिभाशाली शासक था। उसने शासन में अनेक परिवर्तन किये और टोडरमल की तरह भूमिकर की फिर से व्यवस्था कर राज्य की

जड को मजबूत किया। मलिक अम्बर मुग़लो की अधीनता से मुक्त होना चाहता था। अन्त में, उसने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा की। उसके विरुद्ध कई मुगल-सेनाध्यक्ष रवाना किये गये परन्तु वे असफल रहे। अन्त में, शाहज़ादा खुर्रम एक बडी सेना के साथ उसके विरुद्ध भेजा गया। उसने मलिक अम्बर को सन् १६१७ ई० में सन्धि करने पर विवश किया। जहाँगीर खुर्रम की सफलता से बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उसे 'शाहजहाँ' की उपाधि प्रदान की।

दक्षिण के राज्य बराबर उत्पात किया करते थे, जिसके कारण मुग़ल-सेना को बराबर उनके साथ युद्ध करना पडता था। उत्तर की राजनीतिक हलचल और शाहजहाँ के विद्रोह के कारण उनका साहस अधिक बढ गया। मलिक अम्बर की युद्ध-प्रणाली से मुगलो को बडी हानि हुई, परन्तु सन् १६२६ ई० में उसकी मृत्यु हो जाने से फिर उनकी परिस्थिति सँभल गई। उसके उत्तराधिकारी हमीद खाँ को रिश्वत देकर मुगलो ने अहमदनगर के क़िले तक के सारे देश पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया।

**शाहजहाँ का विद्रोह (१६२२-२५ ई०)**—शाहजहाँ का विद्रोह जहाँगीर के शासन-काल के अन्य विद्रोहो से अधिक भयङ्कर था। उस राजकुमार का जन्म लाहौर में सन् १५९२ ई० में हुआ था। उसे शिक्षा अच्छी मिली थी। बीस वर्ष की अवस्था में आसफ खाँ की बेटी अर्जुमन्द बानू बेगम के साथ, सन् १६१२ ई० में, उसका विवाह हुआ था। शुरू में वह ऐसा दृढचरित्र था कि २३ वर्ष की अवस्था तक उसने शराब को चक्खा तक नही और बडी कठिनाई के बाद जहाँगीर उसे पीने के लिए राजी कर सका। जब वह बडा हुआ तो उसमें वीर सेनापति और राजनीतिज्ञ के गुण प्रकट होने लगे और बादशाह ने उसे बडी-बडी सेनाओ का अध्यक्ष बनाकर भेजा। पहले तो कुछ दिनो तक नूरजहाँ और शाहजहाँ में मेल रहा परन्तु बाद में दोनो में अनबन हो गई। नूरजहाँ सारा अधिकार अपने हाथ मे रखना चाहती थी। इस

लिए वह, शाहजहाँ को हटाकर, जहाँगीर के छोटे बेटे शहरयार को उसका उत्तराधिकारी बनाना चाहती थी। नूरजहाँ की लडकी, जो शेर अफगन से पैदा थी, शहरयार के साथ व्याही थी। सन् १६१२ ई० में ईरानियो ने कन्दहार पर कब्जा कर लिया। जहाँगीर ने एक वडी सेना लेकर शाहजहाँ को जाने का हुक्म दिया। शाहजहाँ ने यह सोचकर कि उसकी अनुपस्थिति में नूरजहाँ उसके विरुद्ध षड्यन्त्र रचेगी, कन्दहार की चढाई पर जाने से इनकार कर दिया। इसके अतिरिक्त शाहजहाँ डरता था कि यदि वह ईरानियो से हार गया तो उसकी वडी वदनामी होगी। नूरजहाँ ने 'शाहजहाँ की खूब निन्दा की और वादशाह को उसकी जागीर छीनने के लिए राजी कर लिया। अब शाहजहाँ को यह निश्चय हो गया कि उसकी तलवार ही उसकी रक्षा कर सकती है। उसने शीघ्र आगरे पर चढाई कर दी और फिर दिल्ली की ओर रवाना हुआ। विलोचपुर में शाही सेना से उसकी मुठभेड हुई और वह पराजित हुआ। वहाँ से हार कर मालवा, गुजरात होता हुआ वह दक्षिण पहुँचा। गुजरात में उसे कोई सहायता न मिली। दक्षिण से वह तेलङ्गाना को वापस आया और सन् १६२४ ई० में वङ्गाल पहुँचा। वङ्गाल में परवेज और महावत खाँ ने उसे पराजित कर, फिर दक्षिण की ओर भगा दिया। शाहजहाँ के साथियो ने उसे धोखा दिया और शाही सेना से अकेले युद्ध करना उसके लिए असम्भव हो गया। निदान, सन् १६२५ ई० में उसने क्षमा की प्रार्थना की और वादशाह के साथ उसका मेल हो गया। दण्ड के रूप में उसे कई किले देने पडे और जमानत के तौर पर अपने बेटे दारा और औरङ्गजेब को दरवार में भेजना पडा।

**महावत खाँ का विद्रोह**—नूरजहाँ अपना अधिकार स्थापित रखने के लिए, शहरयार को वादशाह का उत्तराधिकारी वनाना चाहती थी। शाहजहाँ को तो नीचा देखना पडा था परन्तु महावत खाँ एक शक्तिशाली अमीर था और विना उसे दबाये नूरजहाँ की योजना सफल

नही हो सकती थी। इसलिए उसने धीरे-धीरे उसकी जड काटनी शुरू कर दी। शाहजहाँ के विद्रोह को दमन करने में महावत खाँ ने वडा योग दिया था परन्तु वादशाह ने इसका कुछ भी खयाल नही किया और उस पर राज्य का रुपया खा जाने का अभियोग चलाया। महावत को दरवार में आने की आज्ञा हुई, परन्तु वह इस अपमान को न सह सका और उसने विद्रोह कर दिया। अपने राजपूतो की मदद से उसने वादशाह को, जो झेलम के किनारे डेरा डाले पडा था, कैद कर लिया। नूरजहाँ ने इस विकट परिस्थिति मे वडे धैर्य्य और साहस से काम लिया। पहले तो उसने बादशाह को मुक्त करने का उद्योग किया, परन्तु जब उसे सफलता न मिली तो वह कैद में चली गई। महावत खाँ ने निश्चिन्त होकर चौकसी मे ढील-ढाल कर दी। मौका पाकर एक दिन नूरजहाँ वादशाह को लेकर निकल गई। महावत खाँ दक्षिण की तरफ भाग गया और शाहजहाँ से जा मिला।

जहाँगीर की मृत्यु—नूरजहाँ की विजय अधिक लाभ-प्रद नही हुई। बादशाह वहुत दिनो से वीमार था। उसका स्वास्थ्य विलकुल विगड गया और दमा रोग ने उग्र रूप धारण कर लिया। जल-वायु वदलने के लिए वह काश्मीर गया, परन्तु कुछ लाभ न होने पर उसने फिर लाहौर लौटने का विचार किया। लौटते समय रास्ते में भिम्वर नामक स्थान पर २८ अक्टूबर सन् १६२७ ई० को, २२ वर्ष राज्य करने के वाद, उसकी मृत्यु हो गई।

जहाँगीर का दरवार और यूरोप के यात्री—जहाँगीर के शासन-काल मे अनेक यूरोपीय यात्री भारत में आये। उन्होने जहाँगीर के दरवार तथा जनता के विषय मे वहुत-सी वातें लिखी है। सन् १६०८ ई० में इँगलैंड के वादशाह जेम्स प्रथम का एक पत्र लेकर कप्तान हाकिन्स, व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए, मुगल-दरवार मे आया। उसके बाद सन् १६१५ ई० मे सर टामस रो आया। उसने सूरत में व्यापार करने के लिए वादशाह से एक फरमान प्राप्त किया। उसकी

डायरी में मुगल-दरबार तथा देश की दशा का वर्णन मिलता है। सर टामस रो उसमें बादशाह तथा उसके दरबारियो के मद्यपान का सविस्तर वर्णन करता है। वह लिखता है कि बादशाह के पास अपार दौलत थी और विदेशियो का सम्मान किया जाता था। शासन-प्रबन्ध अकबर के समय की तरह सुव्यवस्थित नही था। रिश्वत का बाज़ार गर्म था और बडे-बडे अमीर भी रिश्वत लेने में सङ्कोच नही करते थे। सडको पर, विशेषत दक्षिण में, डाकुओ का बडा डर था। दस्तकारी उन्नत दशा में थी और देश में धन-धान्य की कमी न थी।

जहाँगीर का चरित्र—जहाँगीर एक बुद्धिमान् और दूरदर्शी शासक था। वह शराब बहुत पीता था, परन्तु केवल रात के समय। दिन में यदि किसी के मुँह से शराब की बदबू आती तो वह उसे कडी सज़ा देता था। युवावस्था में उसमें शारीरिक बल काफी था और उसे शिकार का भी बडा शौक था, परन्तु अधिक शराब पीने के कारण उसका स्वास्थ्य बिगड गया था। यद्यपि कभी-कभी वह बडी निर्दयता दिखलाता था परन्तु न्याय-प्रिय था और अत्याचार को रोकने के लिए सदा उद्यत रहता था। वह उदारहृदय और दानशील था और दीन-दुखियो पर दया करता था। उसमें धार्मिक पक्षपात नही था और वह हिन्दुओं के साथ अच्छा बर्त्ताव करता था। पवित्र और विद्वान् पुरुषो का समागम उसे अच्छा लगता था। हिन्दू साधुओ से वह बराबर मिलता-जुलता रहता और उनकी प्रशसा करता था।

उसे फारसी-साहित्य का अच्छा ज्ञान था। स्वय भी वह फारसी में गज़लें और कसीदे लिखता था। तुर्की वह खूब बोलता था और हिन्दी-गीतो से भी वह बडा प्रेम करता था। प्राकृतिक सौन्दर्य का वह अनन्य उपासक था। उसने अपनी आत्म-कथा में जीव-जन्तुओ और फूल-पत्तो का वर्णन एक वैज्ञानिक की तरह किया है। चित्र-कला से उसे विशेष प्रेम था और एक अनुभवी कला-विद् की तरह वह चित्रो के गुणो का

विवेचन करता था। उसकी लिखी हुई आत्म-कथा "तुजुक जहाँगीरी" उसके जीवन का अमूल्य इतिहास है।

जहाँगीर में सबसे बडी कमजोरी यह थी कि वह शीघ्र दूसरो के प्रभाव में आ जाता था। दिन-रात ऐश-आराम में मग्न रहने के कारण राज्य के काम की ओर वह बहुत कम ध्यान देता था। इसका परिणाम यह हुआ कि उसके समय में कई वार राज्य की शान्ति भङ्ग हुई और शासन-सम्बन्धी कोई महान् कार्य न हो सका।

शाहजहाँ का गद्दी पर बैठना—जहाँगीर की मृत्यु होते ही नूरजहाँ ने शहरयार को आगे वढाने की चेष्टा की। उसने भी शीघ्र लाहौर में वादशाह की उपाधि ले ली। परवेज सन् १६२६ ई० में पहले ही मर चुका था, इसलिए शाहजहाँ ही उसका एकमात्र प्रतिद्वन्द्वी था, जिससे उसे भय हो सकता था। शाहजहाँ उस समय दक्षिण में था। परन्तु उसका श्वशूर आसफ खाँ उसका सबसे बडा सहायक था। उसने हर तरह अपने दामाद की रक्षा के लिए प्रयत्न किया। खुसरो के एक बेटे को गद्दी पर वैठाकर उसने शाहजहाँ के पास खबर भेजी कि शीघ्र दिल्ली आओ। युद्ध में शहरयार पराजित हुआ और अन्धा कर दिया गया। शाहजहाँ सन् १६२८ ई० में गद्दी पर वैठ गया और इसके वाद उसने अपने सभी प्रतिद्वन्द्वियो को मरवा डाला। नूरजहाँ राज-काज से अलग हो गई और उसे दो लाख रुपया सालाना पेंशन दी गई। अब उसने सफेद वस्त्र धारण कर लिये और अपनी वेटी के साथ लाहौर में रहने लगी। सन १६४५ ई० मे उसकी वही मृत्य हो गई।

नये शासन का रूप—शाहजहाँ का शासन-काल मुग़ल-इतिहास में एक वडा भव्य-युग समझा जाता है। उसके अपार धन और शक्ति तथा अनुपम इमारतो ने देश-देशान्तर में उसकी कीर्ति को फैला दिया। परन्तु अकबर और जहाँगीर की धार्मिक नीति को छोडकर उसने साम्राज्य का बड़ा अहित किया। वह पक्का सुन्नी मुसलमान

था और अन्य धर्मवालो के साथ असहिष्णुता का वर्ताव करता था। इसका परिणाम यह हुआ कि सुन्नी मुसलमानो का प्रभाव बढ गया और औरङ्गजेब के समय में उन्होने बडा जोर पकडा। वास्तव में औरङ्गजेब की धार्मिक नीति का सूत्रपात शाहजहाँ के ही शासन-काल में हुआ था।

**राज-विद्रोह**—शाहजहाँ के गद्दी पर वैठने के थोडे ही दिनो वाद, दक्षिण के मुगल सूवेदार खानजहाँ लोदी ने विद्रोह किया। किन्तु वह पराजित हुआ और मारा गया और सन् १६३१ ई० में विद्रोह शान्त कर दिया गया। दूसरा बडा विद्रोह अबुलफजल को कत्ल करनेवाले वीरसिंहदेव के पुत्र जुझारसिंह बुन्देला का था। जुझारसिंह युद्ध में वादशाही सेना का सामना न कर सका और पकडकर मार डाला गया। बादशाह ने जुझारसिंह के सम्वन्धियो के साथ वडी निर्दयता का व्यवहार किया।

**गुजरात और दक्षिण में दुर्भिक्ष**—सन् १६३१-३२ में गुजरात, खानदेश और दक्षिण में भयङ्कर दुर्भिक्ष पडा। सहस्रो मनुष्य भूखो मर गये और अनाज की ऐसी कमी हुई कि मनुष्य मनुष्य को खाने लगा। दुर्भिक्ष-पीडित प्रजा की दुर्दशा देखकर वादशाह वडा दुखी हुआ। उसने स्थान-स्थान पर वावर्चीखाने अथवा लङ्गर स्थापित कराये, जहाँ से गरीवो को भोजन मुफ्त मिलता था। अहमदावाद में दुर्भिक्ष-पीडितो की सहायता के लिए शाही खजाने से एक वडी रकम मञ्जूर की गई। इसके अतिरिक्त, वादशाह ने ७० लाख रुपया लगान भी माफ कर दिया।

**पुर्त्तगालियो के साथ युद्ध**—बङ्गाल के पहले सुलतानो की आज्ञा से हुगली मे पुर्तगाल-निवासी आकर वस गये थे। उन्होने धीरे-धीरे अपनी शक्ति वढा ली और अपनी वस्तियाँ वना ली। इनकी रक्षा के लिए उन्होने पर्याप्त सैनिक सामग्री भी एकत्र कर ली। इसके अतिरिक्त, उन्होने अपने अफसरो-द्वारा, चुङ्गी आदि वसूल करना

आरम्भ कर दिया जिससे साम्राज्य की हानि होने लगी। लोगो को ईसाई बनाने के लिए वे भाँति-भाँति का प्रलोभन देते थे और कभी-कभी ज़बर्दस्ती भी करते थे। बादशाह इन बातो से अप्रसन्न हुआ परन्तु जब उन्होने मुमताज़महल की दो लौंडियो को पकड़ लिया तब तो उसके क्रोध की सीमा न रही। उसने उन्हें दण्ड देने का पक्का इरादा कर लिया। बङ्गाल के सूबेदार क़ासिम ख़ाँ ने हुगली पर चढ़ाई की। पुर्तगालियो ने भरसक अपनी रक्षा का उपाय किया, परन्तु वे पराजित हुए (सन १६३२ ई०) और उनकी बड़ी हानि हुई। लगभग दस हज़ार पुर्तगाली मारे गये और बहुत-से क़ैद किये गये। शाहजहाँ ने उन्हें जो दण्ड दिया वह अवश्य कठोर था, परन्तु यह मानना पड़ेगा कि उनकी बेईमानियाँ ऐसी थी कि बादशाह के लिए उनका दमन करना ज़रूरी हो गया।

मुमताज़महल की मृत्यु—मुमताज़महल का प्रारम्भिक नाम अर्जमन्द बानू बेगम था। वह नूरजहाँ के भाई आसफ ख़ाँ की बेटी थी। उसमें अपने वश के सभी अच्छे-अच्छे गुण मौजूद थे। शाहजहाँ उससे बड़ा प्रेम करता था और हर मामले में उसकी सलाह लिया करता था। जिस समय वह बुरहानपुर में था, उसके चौदहवाँ बच्चा पैदा हुआ। बेगम प्रसव-पीड़ा से एकाएक बीमार हो गई और जून सन् १६३१ ई० में उसका शरीरान्त हो गया। लाश आगरे लाई गई और यमुना के किनारे दफ़न की गई। इसी स्थान पर बाद को शाहजहाँ ने जगत्प्रसिद्ध मक़बरा ताजमहल बनवाया। यह मक़बरा दाम्पत्य प्रेम का अद्भुत स्मारक है और आज तक मौजूद है।

शाहजहाँ और दक्षिण के राज्य—दक्षिण के राज्य अधिक शक्तिशाली नही थे। मुग़ल-सेना का सामना करना उनकी शक्ति के बाहर था। शाहजहाँ ने सबसे पहले अहमदनगर पर आक्रमण किया। अहमदनगर पर शीघ्र चढ़ाई करने का कारण यह था कि निज़ामशाह ने ख़ानजहाँ लोदी को सहायता दी थी। मुग़ल-

सेना ने निज़ामशाह को पराजित किया और सन् १६३३ ई० में अहमदनगर मुगल-साम्राज्य मे मिला लिया गया। इसके वाद शाहजहाँ ने वीजापुर और गोलकुण्डा के राज्यो की ओर ध्यान दिया। वास्तव में दिल्ली के मुगल-सम्राटो और दक्षिण के मुसलमान सुलतानो की शत्रुता के कारण राजनीतिक तथा धार्मिक दोनो थे। मुगल वादशाह सुन्नी मुसलमान थे और दक्षिण के सुलतान शिया थे। वे लोग फारस के शाह को शिया मुसलमानो का पेशवा समझकर उसी को अपना अधीश्वर स्वीकार करते थे। इस वात को शाहजहाँ अपना अपमान समझता था। वह चाहता था कि वे उसकी अधीनता स्वीकार करें। वीजापुर के सुलतान ने तो शाहजहाँ का आधिपत्य स्वीकार कर लिया और वार्षिक कर (खिराज) देना स्वीकार कर लिया, परन्तु गोलकुण्डा के सुलतान ने युद्ध करने का निश्चय किया। शाही सेना ने उसके सारे देश को रौंद डाला। अन्त में सन् १६३६ ई० में विवश होकर सुलतान ने भारी हरजाना दिया और सन्धि करके मुग़ल-सम्राट् का आधिपत्य स्वीकार कर लिया। शाहजहाँ ने अपने तीसरे वेटे औरङ्गज़ेव को, जिसकी अवस्था इस समय केवल १८ वर्ष की थी, दक्षिण का सूवेदार वनाकर भेजा। वरार, खानदेश, तेलङ्गाना और दौलतावाद, इन चार सूवो का प्रवन्ध उसके सुपुर्द किया। इसी समय शाहजी भोसला ने भी वादशाह से सन्धि कर ली।

औरङ्गज़ेव सन् १६४४ ई० तक दक्षिण में रहा। इसके वाद उसने अपने पद से इस्तीफा दे दिया। वहाँ से वह गुजरात भेजा गया और गुजरात से वलख और वदख्शाँ को उसकी वदली की गई। सन् १६५२ ई० में वह फिर दक्षिण का सूवेदार वनाया गया। इस समय दक्षिण की हालत वहुत खराव हो रही थी। खेती की दुर्दशा थी और किसानो की कोई परवाह नही करता था। वहुत-सी वोई हुई ज़मीन लापरवाही के कारण जङ्गल हो गई थी और राज्य की आमदनी भी वहुत घट गई थी। ऐसी हालत में काफी रुपया न होने के कारण

शासन का काम-काज चलाना कठिन हो गया था। औरङ्गज़ेब ने आर्थिक सहायता के लिए पत्र लिखा परन्तु शाहजहाँ ने उत्तर में उसे धमकी दी और उसकी अयोग्यता को उसकी कठिनाई का कारण बतलाया। औरङ्गज़ेब ने फिर भी देश की दशा सुधारने का उद्योग किया। अपने योग्य दीवान मुर्शिद क़ुली ख़ाँ की सहायता से उसने लगान के नियमो को सुव्यवस्थित किया। ज़मीन की पैमाइश के लिए ईमानदार कर्मचारियो को नियुक्त किया, गाँवो के मुखियो को खेती की उन्नति करने का आदेश किया और दीन किसानो को बीज तथा बैल के लिए रुपया क़र्ज़ दिया गया।

इस प्रकार आर्थिक दशा का सुधार करके औरङ्गज़ेब ने दक्षिण के राज्यो को जीतने की फिर चेष्टा की। गोलकुण्डा पर चढाई करने का यह बहाना था कि उसने बहुत दिनो से नियत राज-कर (खिराज) नही दिया था। इसके अलावा एक और भी कारण था। सुलतान ने मीरजुमला नाम के अपने एक अफ़सर के साथ बडा दुर्व्यवहार किया। मीरजुमला ने भागकर सन १६५६ ई० में मुग़ल-दरबार में शरण ली।

मुग़ल-सेना ने गोलकुण्डा पर चढ़ाई की और शहर को घेर लिया। लोगो को यह निश्चय हो गया कि किला जीत लिया जायगा और गोलकुण्डा मुग़ल-साम्राज्य में मिला लिया जायगा, परन्तु वहाँ के सुलतान के साथ कठोर व्यवहार करने के कारण शाहजहाँ औरङ्गज़ेब से नाराज़ हो गया और उसने शीघ्र हुक्म दिया कि युद्ध बन्द कर दिया जाय। इस सम्बन्ध में मीरजूमला को उसकी सेवा के लिए पुरस्कार दिया गया।

इसके बाद औरङ्गज़ेब ने बीजापुर पर चढ़ाई की। इस बार भी, जब कि विजय होने ही वाली थी, दारा के कहने से शाहजहाँ ने औरङ्गज़ेब को बीजापुर का घेरा बन्द कर देने की आज्ञा दे दी थी (१६५७ ई०)। औरङ्गज़ेब को बादशाह की आज्ञा माननी पड़ी। वास्तव

शाहजहाँ के दरबार-आम में दूत का आना
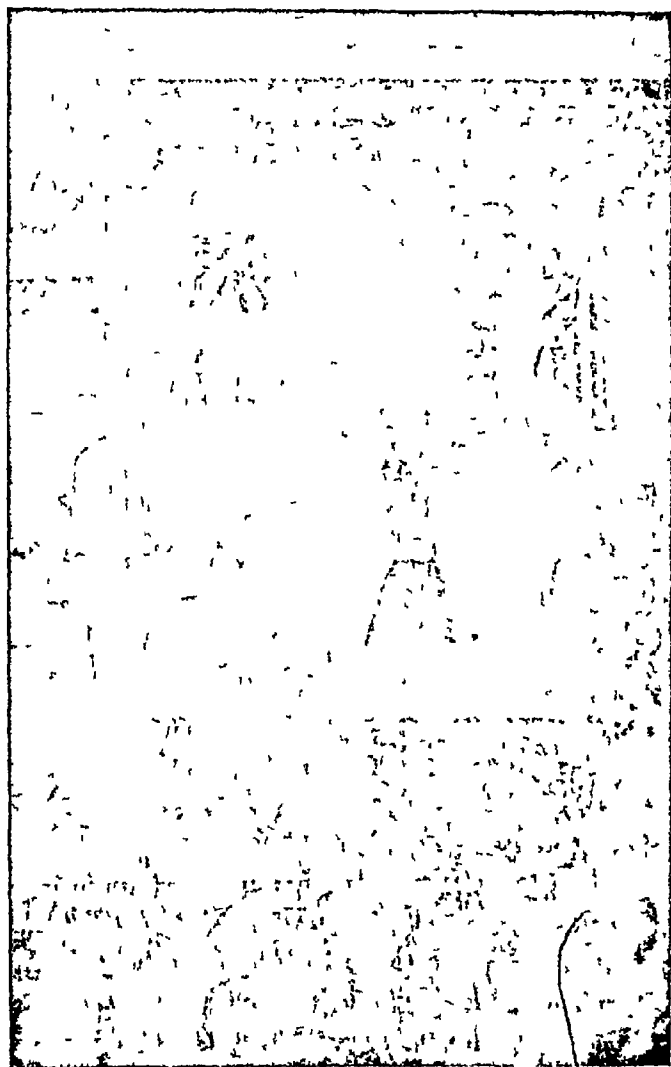
में दारा औरङ्गज़ेब से उसकी सफलताओ के कारण ईर्ष्या करने लगा था। इसलिए उसने शाहजहाँ के कान भरे और ऐसी आज्ञा प्राप्त कर औरङ्ग-ज़ेब की सारी योजनाओ को नष्ट कर दिया।

**पश्चिमोत्तर-सीमा तथा मध्य एशिया-सम्बन्धी नीति**—उत्तर-पश्चिम में कन्दहार के सूबे को, जो अकबर के समय मे मुगल-साम्राज्य में मिला लिया गया था, फारस के शाह ने सन् १६२३ ई० में जीत लिया। शाहजहाँ ने अपनी कूटनीति से कन्दहार के ईरानी सूबेदार अली मर्दान खाँ को रिश्वत देकर अपनी ओर मिला लिया और एक बार फिर सन १६३८ ई० में कन्दहार मुगलो के अधिकार में आ गया। अली मर्दान खाँ का शाहजहाँ ने बडा सम्मान किया और उसे बडे-बडे ओहदे दिये। उसने भी बडी योग्यता से काम किया। लाहौर के शालामार बाग़ उसी ने लगवाये और एक बडी नहर भी खुदवाई। इनके कारण अब तक उसका नाम याद किया जाता है।

तैमूर-वंशीय अन्य बादशाहो की तरह अपने पूर्वपुरुषो की जन्मभूमि तुर्किस्तान को जीतने की शाहजहाँ की भी प्रबल इच्छा थी। इस समय बलख और बदख्शाँ के राजवंशो में झगडा हो रहा था। इससे लाभ उठाकर शाहजहाँ ने शाहज़ादा मुराद और अली मर्दान खाँ को, एक बडी सेना के साथ, सन् १६४५ ई० में रवाना किया। किन्तु उज़बेगो ने डटकर उनका सामना किया और उन्हें सफलता न मिली। तब शाहजहाँ ने औरङ्गज़ेब को भेजा। औरङ्गज़ेब का उद्योग भी असफल रहा और उसे १६४७ ई० में वहाँ से वापस होना पडा। आक्रमण की सारी योजना व्यर्थ और हानिकारक सिद्ध हुई। साम्राज्य का बहुत-सा रुपया खर्च हो गया और एक इन्च भी ज़मीन् न मिल सकी।

उधर ईरानी कन्दहार के हाथ से निकल जाने को नहीं भूले थे। शाह अब्बास तृतीय ने अपनी सेना का सङ्गठन करके कन्दहार पर चढाई कर दी और मुगल-सेना से सन् १६४९ ई० में किला छीन लिया। बादशाह की ओर से सन् १६४९, १६५२ और १६५३ ई०

में तीन बार कन्दहार को फिर जीतने की चेष्टा की गई, परन्तु सफलता प्राप्त न हुई। पहली दो चढाइयों मे औरङ्गज़ेब गया परन्तु वह असफल रहा। उसकी अपेक्षा अपने को अधिक योग्य सेनाध्यक्ष सिद्ध करने के लिए दारा ने कन्दहार पर फिर आक्रमण करने का बादशाह से अनुरोध किया। वह स्वय एक बडी सेना लेकर गया। परन्तु सात महीने के घेरे के बाद कोई विजय के लक्षण दिखाई न पडे। निराश होकर दारा वापस लौट आया और उस दिन से शाहजहाँ ने कन्दहार पर पुन अधिकार स्थापित करने की आशा छोड दी।

शासन-प्रबन्ध—शासन-प्रणाली का ढाँचा करीब करीब अकबर के समय का-सा ही था, यद्यपि अपनी सुविधा के लिए शाहजहाँ ने कुछ परिवर्तन किये थे। सारा साम्राज्य २२ सूबों मे विभक्त था, जिनसे प्रतिवर्ष ८८० करोड दाम अर्थात २२ करोड रुपये की आमदनी होती थी। भूमिकर के अतिरिक्त आय के और भी साधन थे। अफ़सरो के मरने के बाद उनकी सारी सम्पत्ति राज्य को मिल जाती थी। इनके अलावा चुङ्गी, लडाई की लूट, अधीनस्थ राजाओ का खिराज और दूसरे करो से शाही खज़ाने में अपार धन आता था। इस प्रकार शाह-जहाँ की आय अकबर तथा जहाँगीर के समय से बहुत बढ गई थी। यही कारण था कि आगरा और दिल्ली में विशाल तथा अनुपम इमारतें बनाने मे वह समर्थ हुआ। साम्राज्य की फौजी शक्ति काफी थी। सेना मे पैदल, तोपखाना तथा जङ्गी बेडे के अतिरिक्त १,४४,५०० अश्वारोही थे। अश्वारोही-सेना के सुसङ्गठन की बर्नियर ने भी बडी प्रशसा की है। परन्तु सेना पहले की तरह शक्तिशाली नहीं थी। इसके कई कारण थे—(१) जागीर-प्रथा का फिर से प्रचलित होना, (२) नाबालिगो को मनसबदार बनाना, (३) दाग की प्रथा में ढील-ढाल और सेना में नियमो का अभाव इत्यादि। सेना की सख्या बहुत बढ़ गई थी और उसका एक स्थान से दूसरे स्थान को जाना कठिन था। खुले मैदान में तो वह खूब युद्ध कर सकती थी

किन्तु ऊँचे-नीच पहाडी देश में वह अपनी शक्ति का पूरा प्रयोग नही कर सकती थी।

शाहजहाँ न्याय करने के लिए प्रसिद्ध था। वडे-वडे मुकदमो का वह स्वय फैसला करता और अपीलें सुनता था। लोगो की फरियाद सुनने के लिए उसने एक दिन नियत कर दिया था और वडी सावधानी से फैसले देता था। अपराध सिद्ध हो जाने पर वह राज्य के वडे-वडे अधिकारियो को भी दण्ड देने में सङ्कोच नही करता था। छोटे अपराधो के लिए भी कठोर दण्ड दिया जाता था और वडे अपराधो के लिए फाँसी अथवा कारागार या जन्म-कैद की सजा दी जाती थी।

शाहजहाँ ने लगान के प्रवन्ध में कुछ परिवर्तन किये थे। अकबर जागीर-प्रथा का विरोधी था और अपने कर्मचारियो का वेतन नक़द रुपये मे देता था। परन्तु जहाँगीर के समय मे ज़मीन और नकद रुपया दोनो दिये जाते थे। शाहजहाँ के समय में ज़मीन का ठेका दिया जाने लगा। मोरलैंड लिखता है कि साम्राज्य का ७/१० भाग ठेके पर दे दिया गया था और खालसा की जमीन वहुत कम रह गई। ये ठेकेदार किसानो से लगान वसूल करके राज्य को एक निश्चित सालाना रक़म दिया करते थे। वडे-वडे मनसवदार भी अपनी ज़मीन को ठेके पर उठाया करते थे। लगान निश्चित करने के ढङ्ग में भी कुछ उलट-फेर किया गया था। अकवर के समय में लगान का निश्चय वहुत कुछ रैयतवाडी वन्दोवस्त के अनुसार हुआ करता था। परन्तु शाहजहाँ के समय में एक किसान का नही, वरन् सारे गाँव या गाँवों के एक समुदाय की मालगुज़ारी निश्चित की जाती थी। अकवर के समय में पैदावार का तीसरा भाग राज्य का अश समझा जाता था। उसकी मृत्यु के वाद सम्भव है, राज्य का भाग और वढा दिया गया हो, परन्तु इसका कोई निश्चित प्रमाण नही कि राज्य पैदावार का आधा भाग लेता था। शाहजहाँ किसानो का हित चाहता था। उसका वज़ीर

सादुल्ला खाँ कहता था कि जो दीवान प्रजा के साथ बेईमानी करे उसे, कलम-दावात लेकर बैठा हुआ एक राक्षस समझना चाहिए। शाहंशाह ने किसानों के लाभ के लिए अनेक नियम बनाये थे। उनकी सहायता के लिए नहरे खुदवाई थी। जो अफसर अपने इलाके में खेती की उन्नति करता था, उसे पुरस्कार दिया जाता था। किसानो की दशा अच्छी थी, परन्तु बर्नियर के लेखो से पता चलता है कि शाहजहाँ के शासन के उत्तरार्द्ध मे खेती की अवनति आरम्भ हो गई थी। रिश्वत का रवाज था और बादशाह तथा उसके अधिकारी भेट लेते थे और ये अपने मातहतो से रुपया लेकर अपनी कमी को पूरा करते थे। बडे-बडे कर्मचारियो के पारस्परिक झगडो के कारण राज-प्रबन्ध भी बिगड गया था।

शाहजहाँ पक्का सुन्नी मुसलमान था। वह धार्मिक पक्षपात करता था और कभी-कभी हिन्दुओ के साथ कठोर व्यवहार करता था। परन्तु कही-कही पर औदार्य भी दिखलाता था। यूरोपीय यात्री डैला-वैली लिखता है कि खम्भात के हिन्दुओ से रुपया पाने पर उसने वहाँ गो-हत्या बन्द करा दी थी। पादरी मैनरीक का लेख है कि बादशाह ने एक फरमान द्वारा कुछ हिन्दू-जिलो मे पशु-वध बिलकुल बन्द करा दिया था। यूरोपीय यात्रियो ने शाहजहाँ के शासन के सम्बन्ध मे बहुत-सी परस्पर विरोधात्मक बाते लिखी है। टैवर्नियर ने लिखा है कि शाहजहाँ का शासन वैसा ही था जैसा कि पिता का अपने बच्चो पर होता है। किन्तु पीटरमण्डी और बर्नियर का लेख इसके विरुद्ध है। वे प्रान्तीय सूबेदारो के अत्याचार और धींगा-धींगी का वर्णन करते है और लिखते है कि देश मे प्रजा की रक्षा का प्रबन्ध काफी नही था। ये लेख विशेष स्थानो के बारे में हैं। इनमे यह नतीजा नही निकाला जा सकता कि सारे देश में घोर अत्याचार होता था।

राजगद्दी के लिए संग्राम—शाहजहाँ के चार बेटे थे—दारा, शुजा, औरङ्गजेब और मुराद। परन्तु बादशाह दारा से विशेष प्रेम करता

था और उसे हमेशा दरबार में रखता था। बाकी तीन बेटो को तीन सूबे दिये गये थे। शुजा बङ्गाल में, औरङ्गजेब दक्षिण मे और मुराद गुजरात में नियुक्त था। दारा उदार स्वभाव का मनुष्य था। वह विद्वान हिन्दुओ और ईसाइयो से बराबर सम्पर्क रखता था। उसने उपनिषदो का फारसी मे अनुवाद कराया था। उसके विचार स्वतन्त्र थे और वह वेदान्तियो तथा सूफियो के सिद्धान्तो को आदर की दृष्टि से देखता था। परन्तु वह अभिमानी था और उसके विचार-स्वातन्त्र्य के कारण दरबार के सुन्नी लोग उससे असन्तुष्ट रहते थे। शुजा भोग-विलास में अपना अधिकाश समय व्यतीत करता था, परन्तु वह एक वीर और बुद्धिमान पुरुष था। इसके अतिरिक्त वह शिया था, इसलिए सुन्नी-समुदाय उससे भी दारा की तरह असन्तुष्ट रहता था। मुराद शराबी और मूर्ख था और उसम विचारशीलता की ऐसी कमी थी कि जो कुछ मन मे आता, वही कर डालता और कह डालता था। परन्तु औरङ्गजेब इन सब शाहजादो से अधिक कुशल राजनीतिज्ञ था। वह एक वीर सिपाही और अनुभवी सेना-नायक था। वह अपने हृदय के भावो को गुप्त रखने मे दक्ष था। वह पक्का सुन्नी मुसलमान था और दरबार के सुन्नी अमीर उसके साथ सहानुभूति रखते थे। ऐसी परिस्थिति मे यह निश्चय था कि यदि दैवात् शाहजहाँ के बाद राज्य के लिए कोई झगड़ा खडा हुआ तो सुन्नी अमीर औरङ्गजेब का ही साथ देंगे।

सन् १६५७ ई० के आरम्भ में शाहजहाँ बीमार पड़ा और राजगद्दी के लिए झगडा होने लगा। उसने अपनी वसीयत मे दारा को उत्तराधिकारी बनाया और उसे खुदा को प्रसन्न करने और प्रजा की सुख-सम्पत्ति बढाने का आदेश किया। परन्तु इसके पहले ही शाह-जहाँ ने दारा को 'शाह बुलन्द इकबाल' (उन्नत भाग्यवाला राजकुमार) की उपाधि दे दी थी और सभी व्यावहारिक बातो में वह गद्दी का अधिकारी शाहजादा समझा जाता था। राजधानी में रहकर शाहशाह

के नाम से वह सब राज-काज चलाने लगा। परन्तु चारो ओर यह अफवाह फैल गई कि बादशाह की मृत्यु हो गई और दारा इस बात को छिपाना चाहता है। शाहजहाँ दिल्ली से आगरे चला आया और वही रहने लगा।

वास्तव में चारो शाहज़ादे हौसलेवाले थे और प्रत्येक दिल्ली के सिंहासन पर बैठना चाहता था। मुराद और शुजा दोनो ने अपने-अपने सूबे में बादशाह होने की घोषणा कर दी। कुछ समय के बाद औरङ्गज़ेब ने मुराद के साथ समझौता कर लिया और यह शर्त ठहरी कि औरङ्गज़ेब को दिल्ली का राज्य मिलेगा और मुराद को पंजाब, सिन्ध, अफगानिस्तान और काश्मीर देश दिये जायँगे। तीनो शाहज़ादे अपनी-अपनी सेनाएँ लेकर राजधानी की ओर रवाना हुए। शाहजहाँ की हालत इस समय कुछ अच्छी हो गई थी। उसने शुजा के विरुद्ध एक सेना भेजी जिसने उसे बनारस के पास पराजित किया। एक दूसरी सेना जसवन्तसिंह और कासिम खाँ की अध्यक्षता में औरङ्ग-ज़ेब और मुराद को रोकने के लिए भेजी गई। परन्तु दोनो भाइयो की सम्मिलित सेनाओ ने १५ अप्रैल सन् १६५८ ई० को बादशाही सेना को उज्जैन के पास, धरमत नामक स्थान पर, बुरी तरह पराजित किया। दोनो राजकुमार आगे बढते आये और उन्होने चम्बल को पार कर लिया। दारा उनसे युद्ध करने के लिए दिल्ली से रवाना हुआ। परन्तु २९ मई (१६५८ ई०) को वह सामूगढ की लडाई में हार गया। सामूगढ की पराजय ने दारा और शाहजहाँ दोनो के भाग्य का निर्णय कर दिया। औरङ्गज़ेब ने आगरा शहर मे प्रवेश किया और जमुना से किले मे पानी जाना बन्द करके शाहजहाँ को किला उसके हवाले कर देने के लिए मजबूर किया। शाहजहाँ अब कैद हो गया और दारा राज्य की आशा छोडकर भाग गया।

औरङ्गज़ेब और मुराद ने दारा का पीछा किया। वह आगरे से दिल्ली की ओर भागा था। दिल्ली के रास्ते में औरङ्गज़ेब ने मुराद

को, मथुरा के पास अपने डेरे में, दावत के लिए निमन्त्रित किया। जब वह शराब पीकर बेहोश हो गया तो औरङ्गज़ेब ने उसके पैरों में बेड़ियाँ डलवा दी और उसे क़ैद करके ग्वालियर के किले में भेज दिया। वहाँ सन् १६६१ ई० मे उस पर क़त्ल का अभियोग चलाकर उसे फांसी की सज़ा दे दी।

दिल्ली में औरङ्गज़ेब ने राज्याभिषेक करने के बाद फिर दारा का पीछा किया। दारा पञ्जाब और सिन्ध होता हुआ गुजरात की ओर भाग गया। थोडे समय के लिए औरङ्गज़ेब ने दारा की ओर से ध्यान हटाकर शुजा का पीछा किया और उसे ५ जनवरी सन् १६५६ ई० को खजवा के युद्ध में परास्त किया। उधर गुजरात के सूबेदार ने दारा की अच्छी आवभगत की, परन्तु इतने में राजा जसवन्तसिंह का निमन्त्रण पाकर वह अजमेर की ओर चल दिया। अजमेर में एक बार वह फिर पराजित हुआ। वहाँ से सिन्ध की तरफ भाग गया और दादर के एक बलूची सरदार मलिक जीवन के यहाँ उसने शरण ली। मलिक जीवन को एक बार उसने बादशाह के क्रोध से बचाया था। परन्तु बलूची सरदार निर्दयी तथा विश्वासघाती निकला। उसने अभागे शाहज़ादे को कैद करके औरङ्गज़ेब के हवाले कर दिया। औरङ्गज़ेब ने उसे चिथडे पहना कर एक मैले-कुचैले हाथी पर बिठाकर दिल्ली के बाज़ारो में घुमाया और फिर अगस्त सन् १६५६ ई० में उसे कत्ल करा दिया। शुजा अराकान की ओर भाग गया और वहाँ के निवासियो के हाथ से मारा गया। इस प्रकार अपने भाइयो को हटाकर औरङ्गज़ेब हिन्दुस्तान का सम्राट् हुआ।

इस युद्ध में औरङ्गज़ेब की विजय के कारण स्पष्ट है। वह एक वीर सेना-नायक था और युद्ध में कभी घबडाता नही था। युद्ध-कला से भी वह भली भाँति परिचित था। उसकी सेना सुव्यवस्थित और पूर्णत स्वामि-भक्त थी। इसके विपरीत दारा के सेनाध्यक्ष विश्वास-घाती थे और रुपया लेकर शत्रु से मिल जाते थे। औरङ्गज़ेब धर्म

का पावन्द था, इसलिए दरबार का सुन्नी-दल हमेशा दारा के विरुद्ध उसकी मदद करता था और दरबार की सभी कार्यवाहियो की खबर उसे देता था। शाहजहाँ कैद होकर आगरे के किले में रहने लगा। उसन अपना शेष जीवन कुरान शरीफ के पढने और ईश्वर के ध्यान मे विताया। औरङ्गज़ेव ने उसके निरीक्षण का काफी प्रवन्ध किया था। जनवरी सन् १६६६ ई० मे वही, ७४ वर्ष की अवस्था मे, उसकी मृत्यु हो गई और अन्त में उसे अपनी प्रिय पत्नी के प्रसिद्ध मकवरे मे शरण मिली।

**शाहजहाँ का चरित्र**—अपने जीवन के प्रारम्भिक दिनो में शाहजहाँ एक वीर योद्धा था। उसने दूर देशो मे कठिन लडाइयाँ लडी थी और सफलता प्राप्त की थी। यह सच है कि उसने अपने कुटुम्बियो का रक्त वहाकर सिंहासन पाया था, परन्तु फिर भी उसमें कृपालुता और दानशीलता का अभाव नही था। निर्धन और दुखी लोगो पर वह हमेशा दया करता था और न्याय करते समय छोटे-वडे तथा अमीर-गरीव सवको समान समझता था। जहाँगीर की तरह वह भी फारसी-साहित्य का ज्ञाता था, तुर्की वडी आसानी से वोल सकता था और हिन्दी का भी ज्ञान रखता था। शान-शौकत उसे प्रिय लगती थी, जैसा कि उसकी इमारतो से प्रकट होता है। गान-विद्या का वह वडा प्रेमी था और स्वय कितने ही वाजो को वडी निपुणता से वजाता था। जवाहिरात इकट्ठे करने का उसे वडा शौक था और एक कुशल जौहरी की तरह वह उनकी परख करता था। अपने परिवार से और विशेषत अपनी पत्नी से उसे अनन्य प्रेम था। धार्मिक मामलो मे वह पक्का सुन्नी मुसलमान था और हिन्दू, शिया तथा ईसाइयो के प्रति उसका वर्त्ताव अकवर अथवा जहाँगीर का-सा नही था। परन्तु उसने कभी हिन्दुओ के साथ अत्याचार नही किया। हिन्दुओ ने कभी उसकी मदद करने से हाथ नहीं खीचा। रमजान के महीने मे वह बहुत दान करता था और मक्का तथा मदीने को वहुत सा रुपया भेजता था।

अवस्था बढने पर शाहजहाँ की परिश्रम करने की शक्ति जाती रही। वह अपने बेटो को काबू में न रख सका और राज्य का अधिकार धीरे-धीरे उसके हाथ से निकल गया। विलास-प्रियता के कारण वह इस बात को भूल गया कि निरकुश शासक के चारो ओर कैसे भयङ्कर खतरे मौजूद रहते है। इसका परिणाम यह हुआ कि जब सङ्कट का समय आया तो उसके अफसरो ने विश्वासघात किया और उसके अहसानो की कुछ भी परवाह न की। कैदखाने मे इस दु खमयी वृद्धावस्था मे उसे अपनी प्यारी बेटी जहाँनारा से बडी सान्त्वना मिली। वही उसके साथ आगरे के किले मे रही और जीवन-पर्यन्त उसकी सेवा-शुश्रूषा करती रही।

## सक्षिप्त सन्वार विवरण

| | | |
|---|---|---|
| खुसरो का विद्रोह | .. | १६०६ ई० |
| विलियम हाकिंस का मुगल-दरबार मे आना | .. | १६०८ ,, |
| जहाँगीर का नूरजहाँ के साथ विवाह | .. | १६११ ,, |
| बङ्गाल मे उस्मान का विद्रोह | .. | १६१२ ,, |
| मेवाड के राना की पराजय | .. | १६१४ ,, |
| सर टामस रो का मुगल-दरबार मे आना | .. | १६१५ ,, |
| मलिक अम्बर के साथ सन्धि | .. | १६१७ ,, |
| शाहजहाँ का विरोध | .. | १६२३ ,, |
| कन्दहार पर ईरानियो का अधिकार | .. | १६२३ ,, |
| जहाँगीर की मृत्यु | .. | १६२३ ,, |
| खानजहाँ लोदी का विद्रोह | .. | १६३१ ,, |
| मुमताजमहल की मृत्यु | .. | १६३१ ,, |
| पुर्तगालियो की पराजय | .. | १६३२ ,, |
| अहमदनगर का साम्राज्य में मिलाया जाना | .. | १६३३ ,, |

| | | | |
|---|---|---|---|
| क्रन्दहार का ईरानियों के हाथ में चला जाना | | .. | १६४९ ई० |
| मीरजुमला का मुगलो की शरण में जाना | | .. | १६५६ ,, |
| धरमत की लडाई | .. | .. | १६५८ ,, |
| मुराद की कैद | .. | .. | १६६१ ,, |
| खजवा की लडाई | .. | .. | १६५९ ,, |
| शाहजहाँ की मृत्यु | .. | .. | १६६६ ,, |

# अध्याय २५

## औरङ्गज़ेब का शासन-काल

### (१६५८–१७०७)

**शासन-काल के दो भाग**—औरङ्गज़ेब का शासन-युग पच्चीस-पच्चीस वर्ष के दो कालो मे विभाजित किया जा सकता है। प्रथम काल में सन् १६५८ से १६८२ ई० तक बादशाह उत्तरी भारत में ही राज-कार्य में सलग्न रहा और दक्षिण की ओर उसने कुछ भी ध्यान नही दिया। परन्तु द्वितीय काल में सन् १६८२ से १७०७ ई० तक वह दक्षिण ही में रहा और उसने अपना सारा समय मरणपर्यन्त शिया-राज्यो तथा मराठो के साथ युद्ध करने में व्यतीत किया। इस काल में उत्तरी भारत में शासन-प्रबन्ध बिगड गया और दरबार का सरक्षण न रहने से, व्यापार तथा कारीगरी की दशा खराब हो गई और जनता निर्धन हो गई। इस अव्यवस्था का खेती पर भी घातक प्रभाव पडा और उसकी अवनति होने लगी। देहातो में बेकारी बढ़ जाने से देश के अनेक भागो में अराजकता फैल गई। सच तो यह है कि इसी समय की शासन-सम्बन्धी अव्यवस्था, सामाजिक ह्रास और आर्थिक सङ्कीर्णता ने आगे चलकर १८वी शताब्दी की अराजकता के लिए मार्ग तैयार किया।

**औरंगजेब की समस्याएँ**—औरङ्गज़ेब का पहला राज्याभिषेक जुलाई सन् १६५८ ई० में और दूसरा १३ मई १६५६ ई० को बड़े समारोह के साथ दिल्ली में हुआ। उसने अबुल मुजफ्फर मुईनुद्दीन मुहम्मद औरङ्गज़ेब आलमगीर बादशाह गाजी की उपाधि धारण की। कवियो ने अपनी उत्तमोत्तम रचनाओ द्वारा बादशाह का गुणगान किया और दरबारियो ने एक दूसरे से बढ़कर उत्सव मनाया। बादशाह

ने प्रजा में बाँटने के लिए, शाही कोप से वहुत-सा रुपया मन्जूर किया, परन्तु उसे एक विचित्र समस्या का सामना करना पडा। वहुत-से लोग, शाहजहाँ को गद्दी से उतारकर राज्य प्राप्त करने के कारण, उससे असन्तुष्ट थे। दूसरे, सन् १६५८ ई० मे शासन की दशा भी अच्छी न थी। सेना भी अव्यवस्थित थी और उत्तराधिकार के युद्ध का बुरा प्रभाव उसके प्रवन्ध पर पडा था। शाहजहाँ और दारा के सहायक नये शासन से भयभीत थे और सुन्नी-दल का प्रभाव वढते देखकर हैरान थे। दारा का विरोधी होने के कारण औरङ्गज़ेब को सुन्नियो से मदद लेनी पडी। उसके लिए सभी अधिकारो को अपने हाथ मे रखना आवश्यक था, क्योकि उसने अपने भाइयो से युद्ध करके राज्य प्राप्त किया था और उस सन्देह-पूर्ण वातावरण मे किसी का सहसा विश्वास करना उसके लिए सम्भव नही था। अपनी परिस्थिति ठीक करने के लिए उसने निरकुशता और अविश्वास की नीति से काम लेने का निश्चय किया।

गद्दी पर वैठते ही उसने अनेक कर वन्द कर दिये और अपने सहायको को प्रसन्न करने के लिए कई फर्मान जारी किये। उसने नौरोज का जलसा वन्द कर दिया और जनता के चरित्र की देख-भाल के लिए अफसर नियुक्त किये। भङ्ग आदि नशीली चीजो के इस्तेमाल की उसने विलकुल मनाही कर दी।

**मीरजुमला की आसाम पर चढाई**—अन्य सम्राटो की तरह औरङ्गज़ेव भी पूर्व की ओर अपने साम्राज्य को वढाना चाहता था। उसने अपने सेनापति मीरजुमला को, जिसने दक्षिण की लडाइयो में साम्राज्य की वडी सेवा की थी, वङ्गाल का सूवेदार नियुक्त किया। मीरजुमला ने सन् १६६१ ई० में आसाम पर चढाई की, क्योकि वहाँ के राजा ने मुग़ल-साम्राज्य की कुछ भूमि पर अधिकार कर लिया था। अपनी सेना की मदद से उसने कूच विहार को जीत लिया और सन् १६६२ ई० मे आसाम की राजधानी गढ़गाँव का मुहासरा किया। दुर्भिक्ष

और महामारी के कारण मुग़ल-सेना की बड़ी क्षति हुई। अन्त में राजा ने सन्धि कर ली और वार्षिक कर और हरजाना देना स्वीकार किया। मीरजुमला ढाका को लौटते समय रास्ते में मर गया। उसके उत्तराधिकारी शायस्ता खाँ ने युद्ध जारी रक्खा और अराकान के राजा से चटगाँव छीन लिया।

राजविद्रोह—शासन के प्रारम्भिक भाग में, सन् १६५९ ई० में चम्पतराय बुन्देला ने, जो पहले मुग़लों की नौकरी में था, विद्रोह किया परन्तु लड़ाई में हारा और मारा गया। दो वर्ष तक वह एक स्थान से दूसरे स्थान को भागता रहा और उसका पीछा होता रहा। अन्त में पकड़ जाने के भय से उसने कटार भोंककर आत्म-हत्या कर ली। उसकी मृत्यु के बाद उसके बेटे छत्रसाल ने मुग़लों से लड़ना आरम्भ कर दिया। पहले राजा जयसिंह के अनुरोध से उसने औरङ्गज़ेब की नौकरी कर ली परन्तु बाद में उसकी धार्मिक नीति से असन्तुष्ट होकर इस्तीफ़ा दे दिया और मुगलों के विरुद्ध बुन्देलखण्ड में विद्रोह का झण्डा खड़ा किया। कई स्थानों पर मुगल-सेना को पराजित करने के कारण, अन्य हिन्दू सरदार उसकी सहायता के लिए तैयार हो गये। औरङ्गज़ेब इस समय दक्षिण में था इसलिए वह छत्रसाल को दबा न सका और अपने अफसरों के कहने से सन् १७०५ ई० में उसने सन्धि कर ली। छत्रसाल को एक मनसब दिया गया और वह डेढ़ वर्ष तक शान्त रहा। परन्तु औरङ्गज़ेब के मरते ही उसने अपने धावे फिर आरम्भ कर दिये और मुग़ल-सेना की निर्बलता के कारण उसे सफलता प्राप्त हुई।

सन् १६६९ ई० में मथुरा में जाटों का एक भयङ्कर विद्रोह हुआ। मथुरा के मुग़ल सूबेदार ने, शहर के बीच में, एक मन्दिर के खँडहरों पर मसजिद बनवाई और केशवदेव के मन्दिर के पत्थर के घेरे को, जिसे दारा शिकोह ने भेंट किया था, वहाँ से उठवा मँगाया। यही विद्रोह का कारण था। जाटों ने गोकुल नामक एक जाट के नेतृत्व

में बलवा कर दिया। आस-पास के गाँवो के किसानो ने विद्रोहियो का साथ दिया और उनकी संख्या २० हज़ार हो गई। परन्तु मुगल-सेना ने उन्हें हरा दिया और गोकुल मारा गया। किन्तु उसके मरने से विद्रोह का अन्त नही हुआ। सन् १६८६ ई० में, जब औरङ्गज़ेब दक्षिण में था, जाटो ने भयङ्कर विद्रोह किया परन्तु राजपूतो की सहायता से वह भी शान्त कर दिया गया। जाटो के दूसरे नेता चूरामन ने फिर मुगलो को तङ्ग करना शुरू किया और सरकारी मालगुज़ारी को लूट लिया। औरङ्गज़ेब की मृत्यु के बाद उसकी शक्ति बढ गई और उसने भरतपुर के जाट-राज्य की स्थापना की।

दूसरा विद्रोह सतनामियो का था। सतनामी नारनौल के रहने-वाले थे और रैदासी-सम्प्रदाय से मिलते-जुलते एक धार्मिक पन्थ के अनुयायी थे। मुसलमान इतिहास-लेखक ख्वाफी खाँ लिखता है कि वे अच्छे चरित्र के लोग थे और उनमें अधिकाश किसान और व्यापारी थे। सन् १६७२ ई० में एक सतनामी और मुगल-सेना के किसी पैदल सिपाही मे झगडा हो गया और मामला यहाँ तक बढा कि, उसने एक भयङ्कर धार्मिक-विद्रोह का रूप धारण कर लिया। हज़ारो सतनामी अस्त्र-शस्त्र लेकर लडने के लिए तैयार हो गये और उन्होने युद्ध में मुगल-सेना को पराजित कर दिया। लोग उन्हे जादू की शक्ति रखनेवाले कहने लगे। परन्तु औरङ्गज़ेब, जो ज़िन्दा पीर (जीवित सन्त) कहलाता था, कम जादू नही जानता था। उसने भी जन्त्र-मन्त्र से काम लिया। विद्रोही हार गये और बहुतो को मुगल-सेना ने तलवार के घाट उतार दिया और विद्रोह शान्त हो गया।

**राजपूतो के साथ युद्ध (१६७८-१७०६ ई०)**—सन् १६७८ ई० में पश्चिमोत्तर सीमान्त देश में, जमरूद नामक स्थान पर, जोधपुर-नरेश जसवन्तसिंह का देहान्त हो गया। उसने अपना कोई वारिस नही छोडा था, इसलिए औरङ्गज़ेब ने मारवाड को साम्राज्य में मिला लेने का अच्छा अवसर समझा। उसने देश पर अधिकार करने और

वहाँ के भूमि-कर का अनुमान करने के लिए फौरन् मुसलमान अधिकारियो को भेज दिया। इतने में खबर मिली कि राजा की मृत्यु के बाद उसकी विधवा रानियो के लाहौर में दो पुत्र हुए, जिनमे से एक तो कुछ ही सप्ताह के बाद मर गया और दूसरा अजीतसिंह गद्दी का अधिकारी होने के लिए जीवित रहा। रानियाँ अपने सिपाहियो के साथ दिल्ली पहुँची और वहाँ उन्होने औरङ्गज़ेब से अपने बेटे को मारवाड का राजा बनाने की प्रार्थना की, तो उसने कहा कि अजीतसिंह का पालन-पोषण शाही महल में होगा और बालिग होने पर उसका राज्य उसे लौटा दिया जायगा। राजपूतो को औरङ्गज़ेब की ईमानदारी पर सन्देह हुआ और उन्होने अपने देश की रक्षा के लिए प्राण देने का सङ्कल्प किया। उनका वीर नेता दुर्गादास किसी प्रकार दिल्ली से अजीतसिंह को लेकर निकल आया और मारवाड में उसने खुल्लम-खुल्ला विद्रोह का झण्डा खडा किया। अजीत की माता सीसोदिया वश की राजपूतनी थी। उसने मेवाड के राना से सहायता की प्रार्थना की। राना ने उसको सहायता देने का वचन दिया। औरङ्गज़ेब ने शाहज़ादा अकबर को दुर्गादास के विरुद्ध भेजा परन्तु राजपूतो ने उसे अपनी ओर मिला लिया। इस विश्वासघात से औरङ्गज़ेब बडा चिन्तित हुआ और उसने राजपूतो का षड्यन्त्र भङ्ग करने के लिए एक विचित्र उपाय सोचा। उसने अकबर को एक पत्र लिखा कि 'शाबाश बेटे, तुमने राजपूतो को खूब मूर्ख बनाया है' और ऐसा प्रबन्ध कर दिया कि वह पत्र दुर्गादास के डेरे में डाल दिया गया। पत्र के पढते ही अकबर के राजपूत सहायको मे झगडा हो गया और उसकी सारी योजनाएँ विफल हुई। किन्तु दुर्गादास का भाव अकबर की ओर पूर्ववत् बना रहा। उसने उसे दक्षिण में पहुँचा दिया और वहाँ शाहज़ादे ने शिवाजी के बेटे शम्भुजी के यहाँ शरण ली। मेवाड के साथ सन् १६८१ ई० में सन्धि हो गई, किन्तु मारवाड में अभी युद्ध होता रहा। शम्भुजी और अकबर के मेल से औरङ्गज़ेब बहुत डरा

और इसी लिए उसने अपना सारा ध्यान दक्षिण की ओर लगा दिया। इधर दुर्गादास ने ३० वर्ष तक युद्ध जारी रक्खा। जब औरङ्गज़ेब की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी बहादुरशाह ने सन् १७०९ ई० में अजीतसिंह को मारवाड का राजा स्वीकार कर लिया तब मारवाड और दिल्ली के झगडो का अन्त हुआ।

राजपूत-युद्ध के कारण साम्राज्य की बडी आर्थिक हानि हुई और बादशाह की प्रतिष्ठा भी कम हो गई। इसके अतिरिक्त, उसे सेना के लिए वीर राजपूत सिपाहियो का मिलना कठिन हो गया। राजपूतो की साम्राज्य के साथ सहानुभूति न रही और इसका परिणाम यह हुआ कि बादशाह को दक्षिण में मराठो के साथ अकेले ही युद्ध करना पडा।

**मराठे और सिक्ख**—मराठो ने शिवाजी के नेतृत्व में सङ्गठित होकर मुगल-राज्य पर धावा करना आरम्भ किया। वे औरङ्गज़ेब से उसकी मृत्युपर्यन्त लडते रहे और उनके साथ युद्ध करने में साम्राज्य की बडी हानि हुई। उधर सिक्ख, जो वास्तव में एक धार्मिक पथ के अनुयायी थे, गुरु गोविन्दसिंह के नेतृत्व में एक शक्तिशाली सैनिक जाति बन गये। उन्हे भी मुगलो का सामना करना पडा। कई वर्ष तक वे उनके साथ युद्ध करते रहे। इन राज्यो की उत्पत्ति तथा अभ्युदय का और मुगल-साम्राज्य के साथ इनके युद्धो का वर्णन आगे किया जायगा।

**पश्चिमोत्तर सीमा**—औरङ्गज़ेब के शासनकाल में यह सबको भली भाँति मालूम हो गया था कि बादशाह विद्रोहियो को कठोर दण्ड देने में ज़रा भी सङ्कोच नही करेगा। सीमान्त प्रदेश के अफगानो को, जो अकबर के समय से बराबर उत्पात करते आये थे, कह दिया गया था कि सीमा पर लूट-मार कभी सहन नही की जायगी। परन्तु एक वीर और साहसी जाति होने के कारण उन लोगो पर इन चेतावनियों का कोई प्रभाव नही पडा। आजकल स्वात और बजीर की उपत्य-

काओ तथा उत्तरी पेशावर के मैदानो मे रहनेवाले यूसुफज़ाइयो ने सबसे पहले विद्रोह किया। अकबर के समय में भी उन्होने उत्पात किया था परन्तु उसने उनके साथ सन्धि कर ली थी। जहाँगीर और शाहजहाँ ने भी इसी नीति का अनुसरण किया परन्तु औरङ्गज़ेब के शासन मे उन्होने अधिक उद्दण्डता दिखलाई। सन् १६६७ ई० मे सिन्धु नदी को पार करके उन्होने मुगल-छावनियो पर धावा किया और देश में लूट-मार की। सन् १६७१ ई० में एक बडी लडाई के बाद वे पराजित हुए और राजा जसवन्तसिंह राठौर को जमरूद की छावनी का प्रबन्ध सौंपा गया।

सन् १६७२ ई० में अफरीदियो और खतको ने एक भयङ्कर विद्रोह किया। उनके नेताओ ने अपनी शक्ति बढा ली और शाही फौज को पीछे खदेड दिया। औरङ्गज़ेब ने यह समझ लिया कि इनके साथ युद्ध करना व्यर्थ है। उसने अफगानो को आपस मे लडाने की तरकीब सोची और कुछ कबीलो को रुपया देकर अपनी ओर मिला लिया। इस प्रकार अफगान तो शान्त हो गये परन्तु लडाई में बहुत-सा रुपया खर्च हो गया। इसके दो बुरे प्रभाव हुए। एक तो यह कि बादशाह राजपूतो के विद्रोह को दबाने मे अफग़ानो की सहायता नही प्राप्त कर सका, दूसरे उनके साथ युद्ध करने मे मुग़ल-सेना के उत्तर मे फँसे रहने के कारण शिवाजी को अपनी शक्ति बढाने तथा मुग़ल-राज्य पर छापा मारने का अच्छा अवसर मिल गया।

**औरङ्गज़ेब और मराठे**—मराठे दक्षिण में महाराष्ट्र नामक देश के निवासी है। महाराष्ट्र देश वह त्रिभुजाकार प्लेटो है जो उत्तर तथा दक्षिण की तरफ तो सह्याद्रि पर्वत-श्रेणियो से और पूर्व तथा पश्चिम में विन्ध्याचल तथा सतपुडा पर्वत-मालाओ से घिरा हुआ है। उस त्रिकोणाकार प्लेटो की तीसरी भुजा नागपुर से करवार तक एक असरल रेखा के खींचने से दिखाई जा सकती है। इस देश के तीन भाग है—(१) हिन्द महासागर (अरब-समुद्र) तथा घाटो के बीच

का सकरा भूमि-भाग जिसे कोकन कहते हैं, (२) सह्याद्रि पर्वत-श्रेणियो का मावल देश और (३) 'देस' अथवा दक्षिणी मैदान का काली मिट्टीवाला विस्तृत प्रदेश। मराठे पहले दक्षिण के मुसलमानी राज्यो की प्रजा थे परन्तु उन राज्यो के निर्बल होने पर उन्होने ज़ोर पकडना शुरु किया। उनके देश की प्राकृतिक परिस्थिति उन्हें सादा तथा मिहनती स्वभाववाला वनाने मे सहायक थी। इसी कारण ऐश-आराम तथा काहिली के वातावरण में पले हुए लोगो पर विजय प्राप्त करने में उन्हे आसानी होती थी। इसके अतिरिक्त महाराष्ट्र के पहाडी किलो से उन्हें वडी मदद मिली। इनमे वैठकर वे अपने उत्तरी आक्रमणकारियो की ज़रा भी पर्वाह नही करते थे। उनके स्वावलम्ब, साहस और दृढता ने मुगलो का सामना करने मे उनको वडी सहायता दी।

सबसे पहले मराठो मे जातीयता का प्रादुर्भाव धार्मिक विप्लव के कारण हुआ। इस विप्लव का केन्द्र पण्ढरपुर नामक स्थान था। यहाँ पर कई महात्माओ ने भक्ति के सिद्धात का प्रचार किया। देश के कोने-कोने से यही पर विठोवा (कृष्ण) की आरावना के लिए सहस्रो नर-नारी एकत्र होते थे और ज्ञानदेव के उपदेशो को सुनते थे। इन धार्मिक सुधारको ने आडम्बर को मिथ्या वतलाया और जीवन को पवित्र तथा प्रेममय वनाने का आदेश किया। इन्ही के गीतो और भजनो द्वारा पन्द्रहवी तथा सोलहवी शताब्दी में एक सुन्दर मराठी-साहित्य का जन्म हुआ। सत्रहवी शताब्दी में महाराष्ट्र मे तुकाराम, रामदास, वामन पण्डित और एकनाथ जैसे महात्माओ ने पारस्परिक भेद-भाव को निन्द्य कहा और सवको प्रेम के धागे मे वँध जाने का उपदेश दिया। मराठो के उत्कर्ष का तीसरा कारण उनकी राजनीतिक दक्षता थी, जिसे उन्होने दक्षिणी राज्यो में नौकरी करके प्राप्त किया था। वे वहुधा माल के महकमे मे नियुक्त किये जाते थे और कभी-कभी उन्हें ऊँचे ओहदे भी दिये जाते थे। पहले वहमनी सेना मे और वाद में दक्षिणी

राज्यो की सेना में उनकी बराबर भर्ती होती थी। इस प्रकार वे कुशल सैनिक बन गये थे। औरङ्गजेब और दक्षिणी राज्यो से युद्ध छिड जाने के कारण, जब देश में अशान्ति फैली तो मराठो ने उससे खूब लाभ उठाया और अपनी शक्ति काफी बढा ली। इन सब बातो से राष्ट्रीय अभ्युदय का मार्ग भली भाँति तैयार हो गया। अब उन्हें केवल एक ऐसे प्रतिभा-शाली नायक की आवश्यकता थी, जो ठीक मार्ग पर ले जाकर उनकी शक्तियो के विकास मे सहायक बनता। शाहजी भोसले के बेटे शिवाजी ने इस कार्य को पूरा किया। इतिहास में उसी को मराठो के राष्ट्र का मूलनिर्माता कहते है।

इस अभ्युदय में भोसले-वंश ने बडा महत्त्वपूर्ण भाग लिया। पहले भोसले लोग खेती का काम करते थे और अपने परिश्रम तथा धार्मिकता के लिए प्रसिद्ध थे। निजामशाही राज्य के अध पतन तथा मुगलो के युद्धो के कारण, उन्हे शक्ति-सचय का अच्छा अवसर मिला। शाहजी भोसले पहले निजामशाही सुलतान का एक उच्च कर्मचारी था। उसे राज्य की ओर से एक जागीर मिली थी। अहमदनगर-राज्य का अन्त हो जाने पर उसने बीजापुर-नरेश के यहाँ नौकरी कर ली। शिवाजी की लूट-मार के कारण बीजापुर के सुलतान ने अप्रसन्न होकर, सन् १६४८ ई० में, शाहजी को कैदखाने मे डाल दिया परन्तु बीजापुर के दो मुसलमान अमीरो के बीच में पडने से वह मुक्त कर दिया गया। शिवाजी अपने बाप की अपेक्षा अधिक योग्य और कुशल था और राज-नीतिक दाव-पेचो को खूब समझता था। उसने दक्षिण के मुसल-मानी राज्यो की कमजोरी अच्छी तरह जान ली थी और मराठो का सङ्गठन कर दक्षिण में उसने एक नया राज्य स्थापित करने का दृढ सङ्कल्प कर लिया था।

शिवाजी का जीवन—सन् १६२७ ई० में पहाडी दुर्ग शिवनेर में शिवाजी का जन्म हुआ था। लडकपन मे उसकी माता जीजाबाई ने बडे प्रेम और यत्न से उसका लालन-पालन किया था। जीजाबाई

वडी बुद्धिमती तथा धार्मिक स्त्री थी। हिन्दू-धर्म में उसकी अपार श्रद्धा थी और रामायण तथा महाभारत का उसे पूरा-पूरा ज्ञान था। शिवाजी वचपन में उसके मुँह से प्राचीन युग के हिन्दू वीरो तथा महात्माओ की कहानी वडी उत्सुकता से सुना करता था और उसके हृदय में उनका अनुकरण करने की इच्छा तभी से जाग्रत् हो रही थी। वीरोचित व्यायामो मे उसका मन अधिक लगता था और थोडे ही समय में उसने घोडे पर चढना, तलवार चलाना तथा अन्य शस्त्रो का प्रयोग करना खूब सीख लिया। सौभाग्य से उसे दादाजी कोडदेव जैसा विद्वान् गुरु भी मिल गया। दादाजी उसको अधिक किताबी शिक्षा तो न दे सके परन्तु उन्होने उसे एक कर्मशील व्यक्ति वना दिया। शिवाजी अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए सहायको की खोज मे मावल देश मे घूमने लगा। इसी प्रकार धन, शक्ति तथा देश प्राप्त करने की इच्छा करनेवाले मावले युवक उसके झण्डे के नीचे एकत्र होने लगे। शिवाजी के पास आकर उनका साहस वढ गया और वे सहर्ष उसकी सेना में भर्ती हो गये। अपने भविष्य का कार्य-निश्चय करने में शिवाजी के ऊपर उसकी माता के साहस तथा चरित्र का गहरा प्रभाव पडा। उसे दक्षिण के सुलतानो की नौकरी से घृणा हो गई और उसने अपने लिए एक स्वाधीन राज्य स्थापित करने का पूरा निश्चय कर लिया। जीवन के इस प्रारम्भिक भाग में हिन्दू-धर्म का रक्षक वनने की भावना उसके हृदय में उत्पन्न नही हुई थी।

सन् १६४६ ई० में उसने तोरना के दुर्ग पर अधिकार कर लिया और कोन्दना तथा अन्य दुर्गो को भी जीत लिया। सन् १६४७ ई० से अपने वाप के क़ैद होने पर, सन् १६५५ ई० तक वह चुपचाप रहा और इस खयाल से, कि वीजापुर का सुलतान अप्रसन्न न हो, उसने किसी नये दुर्ग पर धावा नही किया। किन्तु इसके वाद सन् १६५६ ई० में उसने जावली राज्य को जीत लिया। जावली का राजा वीजापुर के सुलतान के अधीन था। जावली जीत लेने से शिवाजी को दक्षिण

तथा पश्चिम की ओर अपने राज्य का विस्तार करने का अच्छा अवसर मिला और इसके अतिरिक्त वहाँ से चुने हुए सिपाहियो के प्राप्त करने में उसे बहुत सुविधा हो गई। जावली के बाद उसने राजगढ जीता। इसी राजगढ को उसने बाद में अपनी राजधानी बनाया। औरङ्गज़ेब उस समय दक्षिण का सूबेदार था। शिवाजी ने यह अच्छी तरह समझ लिया था कि मुगलो से लडना उसके लिए अभी उचित नहीं था। इसी लिए वह उनसे सन्धि करने के लिए तैयार हो गया किन्तु किसी निश्चित सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर न होने पाये थे कि राजसिंहासन के लिए युद्ध छिड जाने के कारण औरङ्गज़ेब उत्तर की ओर रवाना हुआ।

सन् १६५७ ई० मे शिवाजी ने कोङ्कन पर धावा किया और अपने राज्य मे कुछ और भी देश मिला लिया। बीजापुर के सुलतान ने शाहजी से शिवाजी को रोकने के लिए कहा परन्तु उसने अपनी असमर्थता प्रकट की। तब सुलतान ने शिवाजी के विरुद्ध अफज़ल खाँ को रवाना किया। अफज़ल खाँ शिवाजी के हाथ से मारा गया और उसकी सेना तितर-बितर होकर भाग गई (१६५६ ई०)।

इस विजय से अधिक प्रोत्साहित होकर शिवाजी ने मुगल-राज्य पर भी छापा मारना आरम्भ कर दिया। औरङ्गज़ेब ने उसकी बढती हुई शक्ति से भयभीत होकर अपने मामा शायस्ता खाँ को उसे दबाने के लिए भेजा। मुगल-सेना ने सारे देश को रौंद डाला और पूना, चकन तथा कल्याण पर कब्ज़ा कर लिया। शायस्ता खाँ बरसात के दिनो में पूना मे ठहरा, परन्तु शिवाजी ने मुग़ल-सेना पर हमला करके एक बडी सख्या में उसे कत्ल कर डाला। शायस्ता खाँ बहादुरी के साथ अपनी जान लेकर भागा परन्तु उसका पुत्र इस गडबडी में मारा गया। मुगल-सेना तितर-बितर होकर चारो तरफ भाग गई और मराठों ने पूर्ण विजय प्राप्त की। सन् १६६४ ई० मे शिवाजी ने सूरत पर चढाई की और चार दिन चार रात तक शहर पर घेरा डाल रक्खा। वहाँ से उसने लगभग एक करोड रुपये की लूट की।

शायस्ता खाँ की पराजय तथा शिवाजी द्वारा सूरत की लूट ने औरङ्गजेब को अधिक चिन्तित कर दिया। उसने राजा जयसिंह तथा शाहज़ादा मुअज्ज़म को शिवाजी का सामना करने के लिए रवाना किया। इस बार मुगलो ने अनेक दुर्ग लेकर पुरन्दर के क़िले पर घेरा डाला और रायगढ पर हमला करने की धमकी दी। शिवाजी ने मुगलो के विरुद्ध लडना व्यर्थ समझ कर सन्धि की इच्छा प्रकट की। सन् १६६५ ई० में पुरन्दर की सन्धि हुई, जिसके अनुसार शिवाजी ने बीजापुर के सुलतान के विरुद्ध मुगलो को सहायता देने का वचन दिया। जयसिंह मनुष्यो को अपने वश मे लाने तथा कूटनीति में वडा दक्ष था। उसने शिवाजी को शाही दरवार में चलने के लिए तैयार कर लिया। शायद राजा ने उसे दक्षिण का सूवेदार वनाने का लालच दिया। पहले तो शिवाजी हिचकिचाया किन्तु जव जयसिंह ने शपथपूर्वक उसके सकुशल दक्षिण वापस होने का जिम्मा लिया तव वह जाने के लिए तैयार हो गया। सन् १६६६ ई० में शिवाजी आगरे पहुँचा और दरवार-आम मे उपस्थित होने की उसे आज्ञा मिली। परन्तु वादशाह ने दरवार में उसे पजहजारी मनसवदारो के वीच मे खडे होने का इशारा किया। इस अपमान से शिवाजी इतना क्रोधित हुआ कि उसे अपने ऊपर कावू न रहा और उसने वादशाह को अविश्वासी कहकर कठोर वचन सुनाये। वादशाह ने वाप-वेटे दोनो को कावू मे रक्खा परन्तु वडी चालाकी से दोनो कैदखाने से निकलकर कुशल-पूर्वक दक्षिण मे पहुँच गये। जसवन्तसिंह और शाहज़ादा मुअ-ज्ज़म के प्रयत्न से शिवाजी के साथ सन्धि हो गई और औरङ्गजेब ने उसकी राजा की पदवी स्वीकार कर ली। उसका वेटा शम्भुजी पजहज़ारी मनसवदार वनाया गया और उसे एक हाथी तथा जडाऊ तलवार दी गई।

यह सन्धि अधिक दिन तक कायम न रही। औरङ्गजेब को अपने वेटे की ओर से वरावर सन्देह रहता था। वह शिवाजी के साथ

उसकी मित्रता को अनिष्टकारी समझता था और उसे अपने काबू में रखना चाहता था। आर्थिक कारणों से उसने मुगल-सेना में बहुत कमी कर दी। परन्तु निकाले हुए सिपाही शिवाजी के यहाँ चले गये और उसने उनके साथ अच्छा व्यवहार किया। औरङ्गज़ेब ने बचत करने के विचार से शिवाजी की बरार की जागीर उससे वापस ले ली। बादशाह के इस वर्ताव से सन्धि टूट गई और सन् १६७० ई० में फिर युद्ध आरम्भ हो गया। मुगल-सेना के सेनापति परस्पर झगड़ा किया करते थे, जिससे शिवाजी को उनकी फूट से लाभ उठाने का अच्छा अवसर मिला। उसने सन् १६७० ई० में सूरत पर दूसरी बार छापा मारा। सूरत के बाद खानदेश पर आक्रमण किया और बगलाना को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया। सन् १६७४ ई० में बड़ी शान-शौकत के साथ शिवाजी का रायगढ़ में राज्याभिषेक हुआ और उसने 'छत्रपति' की उपाधि धारण की। राज्याभिषेक के कारण उसका खज़ाना खाली हो गया और उसने फिर बगलाना और खानदेश पर धावा किया। बीजापुर के सुलतान के साथ सन्धि हो गई परन्तु बहुत थोड़े समय तक कायम रही। सन् १६७५ ई० में गोआ के पास बीजापुर राज्य के दुर्ग फोंडा पर उसने क़ब्ज़ा कर लिया और 'कनारातट' (समुद्री किनारा) को अपने राज्य में मिला लिया। दो वर्ष बाद उसने कर्नाटक-प्रदेश पर आक्रमण किया और गोलकुण्डा के सुलतान ने, जो उसके आक्रमणों का हाल सुनकर भयभीत हो गया था, उसके साथ मित्रता कर ली। सन् १६७७ ई० में उसने जिञ्जी के क़िले पर अधिकार कर लिया और कुछ दिन बाद वेलोर भी उसके कब्ज़े में आ गया।

सन् १६७८ ई० में मुग़लों से फिर युद्ध आरम्भ हो गया। शाही सेनाध्यक्ष दिलेर ख़ाँ, यह देखकर कि शम्भुजी अपने बाप का साथ छोड़कर मुगलों से आ मिला है, बहुत प्रसन्न हुआ। शिवाजी ने मुगल-राज्य पर धावा किया किन्तु उसे सफलता नहीं मिली। इसी समय उसने औरङ्गज़ेब को अपना वह प्रसिद्ध पत्र लिखा, जिसमें उसने धार्मिक

पक्षपात के अनर्थों का वर्णन किया था। अभी युद्ध जारी ही था कि शिवाजी ५३ वर्ष की अवस्था में, सन् १६८० ई० में, स्वर्गवासी हुआ।

शिवाजी के राज्य का विस्तार बढने से उसके लिए बम्बई से ४५ मील दक्षिण के पहाडी टापू, जिञ्जीरा मे रहनेवाले अबीसीनिया-वासियो का सामना करना अनिवार्य हो गया। अबीसीनिया-वासियो की शक्ति समुद्री थी, इस कारण मराठो को भी उनसे लडने के लिए एक जङ्गी-बेडा तैयार करना पडा, किन्तु इसमे उन्हे कभी पर्याप्त सफलता नही मिली।

**शिवाजी का राज्य-विस्तार**—शिवाजी द्वारा स्थापित 'स्वराज' के अन्तर्गत उत्तर में सूरत एजेन्सी की वर्तमान धरमपुर रियासत से लेकर दक्षिण मे करवार तक का सारा प्रदेश, और पूर्व मे बगलाना से कोलापुर तथा बगलाना से तुङ्गभद्रा के तट तक का पश्चिमी कर्नाटक प्रदेश सम्मिलित था।

इन प्रदेशो के अतिरिक्त वर्तमान मैसूर-राज्य तथा मद्रास अहाते का बहुत-सा भाग उसके राज्य के अन्तर्गत था। इन सब प्रदेशो के अतिरिक्त एक दूसरे विस्तृत भूमि-भाग पर उसका आधिपत्य था, जिसे 'मुगलाई' कहते थे और वह वस्तुत मुगल-साम्राज्य का भाग था, जिससे मराठे 'चौथ' वसूल किया करते थे। 'चौथ' उस देश की कुल माल-गुज़ारी का चतुर्थांश होता था, परन्तु मराठे हमेशा चतुर्थांश से अधिक वसूल कर लेते थे। देश को मराठा सवारो के धावो से बचाने का एक-मात्र उपाय चौथ देना ही था।

**शिवाजी का शासन-प्रबन्ध**—शिवाजी शासन-प्रबन्ध में बडा प्रवीण था। वह समय की गति को देखकर उसके अनुरूप काम करता था। उसने राष्ट्रीय ढङ्ग पर मराठा-राज्य की स्थापना की थी। राज्य का सबसे बडा कार्यकर्त्ता राजा था, जो तत्कालीन अन्य शासको की तरह ही सब कामो का सर्वेसर्वा था। राज्य का सारा अधिकार उसी के हाथो में रहता था। बडे-बडे कर्मचारियो की नियुक्ति करना, राज्य के खर्च

शिवाजी का राज्य
सन् १६८० ई०
नर्मदा न०
ताप्ती न०
सूरत
नासिक
औरंगाबाद
कल्याण
अहमदनगर
पूना
रायगढ़
प्रतापगढ़
सतारा
नलदुर्ग
शोलापुर
भीमा न०
हैदराबाद
गोदावरी न०
कोल्हापुर
बीजापुर
बेलगांव
रायचूर
कृष्णा न०
गोआ
बेलारी
बेदनोर
सिरा
मदरास
बंगलोर
वेलोर
आरनी
जिंजी
कावेरी
मैसूर
पोर्टो नोवो
त्रिचनापल्ली
तंजोर
मदुरा
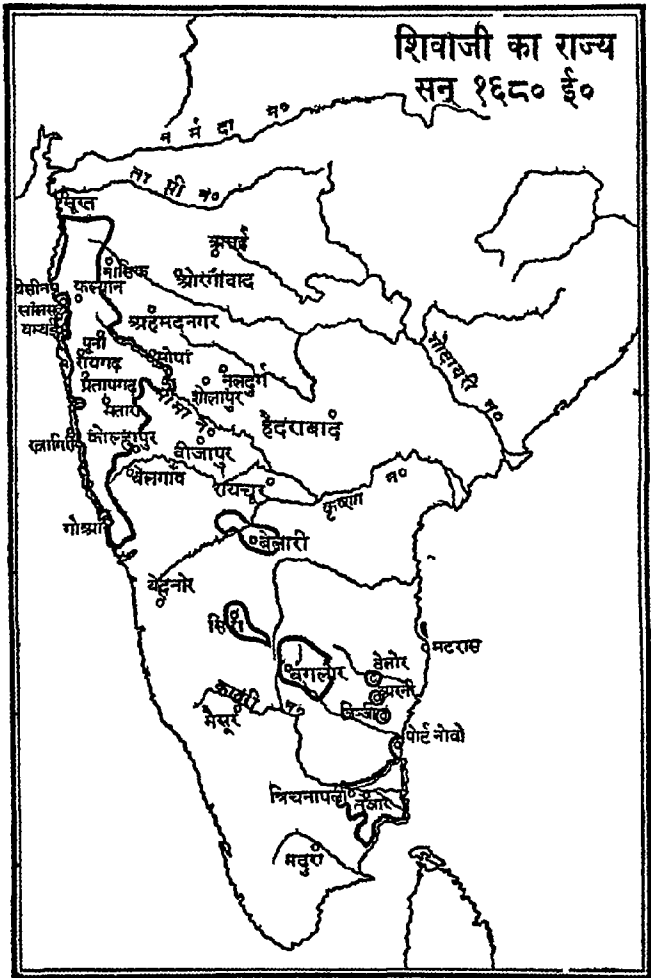
की व्यवस्था करना और युद्ध तथा सन्धि करना उसी का काम था। मराठा-राज्य की राष्ट्रीय तथा पर-राष्ट्रीय नीति का निश्चय करना भी उसी के अधिकार में था। किन्तु व्यवहारिक बातो में राजा की सहायता के लिए एक मन्त्रिमण्डल था जिसे 'अष्ट प्रधान' कहते थे। ये आठ मन्त्री इस प्रकार थे —

(१) मुख्य प्रधान अथवा प्रधान मन्त्री, (२) अमात्य—जो राज्य के आय-व्यय के सभी हिसाबो की जाँच करता था, (३) मन्त्री—जो राजा के नित्य के कार्यों और दरबार की कार्यवाहियो का ब्योरा तैयार करता था, (४) सचिव—जो सभी राजकीय पत्रो का मसविदा तैयार करता था, (५) सुमन्त—जो परराष्ट्रीय मामलो में राजा को सलाह देता था, (६) सेनापति अथवा प्रधान सेनाध्यक्ष, (७) पण्डित राव अथवा दानाध्यक्ष—जो धार्मिक कार्यों का प्रधानाध्यक्ष था, (८) न्यायाधीश*।

प्रधान सेनाध्यक्ष को छोडकर शेष सभी सचिव ब्राह्मण होते थे। इस सचिव-मण्डल का काम केवल सलाह देना भर था। राजा इनकी सलाहो को स्वीकार करने के लिए किसी प्रकार बाध्य नही था। सारा राज्य ज़िलो मे विभाजित किया गया था और कई ज़िलो का एक प्रान्त होता था जिसका शासन करने के लिए सूबेदार नियुक्त होता था।

शेरशाह और अकबर की तरह शिवाजी ने भी जागीर-प्रथा बन्द कर दी थी और कर्मचारियो को नकद वेतन दिया करता था। राज्य की कोई नौकरी पुश्तैनी नही थी। ज़मीन की पैमाइश की जाती थी और पैदावार का ⅖ भाग राज्य को दिया जाता था। किसानो के साथ सख्ती नही की जाती थी और कृषि की उन्नति की ओर काफी ध्यान दिया जाता था। शिवाजी की उदारता और दयालुता की कहानियाँ

---

* इन अधिकारियो के फारसी नाम इस प्रकार थे:—

(१) पेशवा, (२) मजुमदार, (३) वाकानवीस, (४) शुरूनवीस, (५) दबीर, (६) सर-ए-नौबत, (७) सद्र, (८) काज़ी-उल-कुज़ात।

अब भी महाराष्ट्र में प्रचलित है। उसका इन्साफ करने का ढङ्ग पुराना था। गांवो मे दीवानी के मामले पञ्चायतो द्वारा तथा फौजदारी के मुकदमे पटेलो द्वारा तय किये जाते थे। इन दोनो प्रकार के मुकदमो की अपीले न्यायाधीश सुनता था और धर्मशास्त्र के अनुसार फैसला देता था।

महाराष्ट्र की भूमि से पर्याप्त आय न होने के कारण शिवाजी को धन के लिए दूसरी तरफ आँख उठानी पडती थी। अपने सवारो द्वारा धावा किये जानेवाले देशो से वह 'चौथ' और 'सरदेशमुखी' वसूल करता था। 'चौथ' राज्य की मालगुज़ारी का चतुर्थांश होता था और 'सरदेश-मुखी' उसके अतिरिक्त १० फी सदी का एक दूसरा कर था। इन करो को वसूल करके ही मराठे अपने राज्य के वाहर के देशो पर भी अपना रोब जमाने में समर्थ होते थे।

शिवाजी मे नेता बनने की स्वाभाविक योग्यता थी। उसके शत्रुओ ने भी उसके रण-कौशल की मुक्तकण्ठ से प्रशसा की है। उसमे सङ्ग-ठन की अपूर्व क्षमता थी। उसके अधिकार में अनेक किले थे, जिन्हें उसने सुयोग्य तथा अनुभवी सेना-नायको के सुपुर्द कर रक्खा था। मराठे इन दुर्गो को अपनी 'माता' समझते थे क्योकि युद्ध के समय वे इनके भीतर शरण लेते थे।

शिवाजी की सेना शक्तिशाली और सुव्यवस्थित थी। उसकी मृत्यु के समय तोपखाने तथा जङ्गी वेडे के अतिरिक्त, उसकी सेना में ३० से ४० हज़ार तक अश्वारोही, एक लाख पैदल और १२६० हाथी थे। सारी सेना का भिन्न-भिन्न श्रेणियो में विभाजन किया गया था। सबसे छोटी २५ सिपाहियो की पल्टन होती थी जिसका प्रधान 'हवल-दार' होता था। पाँच हवलदारो के ऊपर एक 'जुमलादार', दस जुमला-दारो के ऊपर 'हज़ारी', पाँच हज़ारियो के ऊपर 'पञ्जहज़ारी' होता था। पञ्जहज़ारियो के ऊपर एक सर-ए-नौबत अथवा प्रधान सेनाध्यक्ष होता था। इसी प्रकार पैदल सेना मे भी भिन्न-भिन्न श्रेणियाँ थी।

तोपखाना सुसङ्गठित नहीं था। इसके कार्य-सञ्चालन के लिए विदेशियों पर अवलम्बित रहना पडता था।

सभी जाति तथा धर्म के लोग सेना में भर्ती किये जाते थे। मुसलमान भी सेना में लिये जाते थे। सिपाहियो को नकद तनख्वाह दी जाती थी। वे अस्त्र-शस्त्र से भली भाँति सुसज्जित रहते थे। सेना में नियमो पर वडा ध्यान दिया जाता था। दासियो अथवा नाचनेवाली स्त्रियो को सेना में जाने की आज्ञा नही थी और सिपाहियों को हुक्म था कि शत्रु की स्त्रियो तथा वच्चो को किसी प्रकार का कष्ट न दें। राज्य के अधिकारी तथा अन्य सभी लोग सादगी से जीवन व्यतीत करते थे और कठोर से कठोर कष्ट सहने के लिए सदैव तैयार रहते थे। मराठा-सेना में एक विशेषता थी। मुगल-सेना वहुत भारी-भरकम थी, किन्तु मराठा-सेना अधिक फुर्तीली थी और झटपट एक जगह से दूसरी जगह जा सकती थी और मुगलो को खूब हैरान कर सकती थी। मराठे खुले मैदान में कभी युद्ध नही करते थे और अपनी लुक-छिपकर लडने की प्रथा का अनुसरण करते थे। वे शत्रु पर हमला करके उसकी सेना में खलवली पैदा कर देते थे। मराठा-सेना केवल वर्षाकाल में छावनी मे रहती थी। शेष दिनो मे वह पास-पडोस के देशो पर छापा मारने में व्यस्त रहती थी।

अपने समय के अन्य शासको के विपरीत शिवाजी की धार्मिक नीति उदार थी। वह मन्दिर मसजिद दोनों के खर्च के लिए रुपया देता था और विद्वानों को पुरस्कार देता था। वेदो का अध्ययन करनेवालों का वह महान् संरक्षक था। प्रतिवर्ष पण्डितराव विद्वानो की परीक्षा लेता था और योग्यतानुसार उन्हें पुरस्कार देता था। शिवाजी के चरित्र पर समर्थ गुरु रामदास का वडा प्रभाव पडा था। वह उनको अपना धर्म-गुरु मानता था।

जिस कसौटी से हम वर्तमानकालीन राज्यों का अवलोकन करते हैं उस कसौटी पर, शिवाजी की हुकूमत को कसना उचित न होगा।

शिवाजी का समय युद्ध और संघर्ष का समय था। मुगलों के भय तथा अपने निकटवर्त्ती राज्यो के द्वेष और षड्यन्त्रो के कारण उसे अपनी सेना पर अधिक ध्यान देना पडता था। वह सामाजिक सुधारो अथवा प्रजातन्त्रीय सस्थाओ की स्थापना का समय नहीं था। अपनी बढी-चढी सस्कृति तथा सुव्यवस्थित शासन-पद्धति के होते हुए मुगल-सम्राट् भी इस प्रकार की सस्थाएँ स्थापित न कर सके। उस समय लोग केवल शान्ति के इच्छुक थे और मुसलमानी राज्यो के उत्पीडन मे सुरक्षित रहना चाहते थे। शिवाजी के शासन से प्रजा को ये दोनो सुविधाएँ हुई और जनता को लाभ पहुँचानेवाली अनेक सस्थाएँ स्थापित हुईं। इसी प्रकार के अन्य राज्यो की तरह उसके राज्य के पतन का कारण भी उसके उत्तराधिकारियो की दुर्बलता, आर्थिक असयम, पारस्परिक फूट और शत्रुओ के आक्रमण थे।

**शिवाजी का चरित्र और पराक्रम**—शिवाजी मध्यकालीन भारत के हिन्दू शासको में अग्रगण्य है। वह एक वीर सेनानायक तथा कुशल राजनीतिज्ञ था। उसने एक छोटी-सी जागीर को एक महान् राज्य में परिणत कर दिया और मुगल-सम्राट तथा दक्षिण के शिया-राज्यो के साथ उसने बराबरी का युद्ध किया। वह एक वीर एव निर्भीक योद्धा था और बडी-बडी सेनाओ के सामने अपनी छोटी सेना लेकर युद्ध करने से कभी विचलित नही होता था। वह अपने सिपाहियो से प्रेम करता और सदा उनके हितो की रक्षा करता था। उसके अदम्य साहस और शौर्य्य ने महाराष्ट्र-युवको को एक वीर-जाति में परिणत किया था। उसमें क्रियात्मक प्रतिभा अधिक मात्रा में मौजूद थी, जिससे उसन बिखरी हुई मराठा-जाति को एक राष्ट्र में सम्बद्ध कर दिया था। उसके सैनिक बडे स्वामि-भक्त थे और उसके लिए जी-जान देने के लिए तैयार रहते थे। राजनीति की बारीक बातो को वह अच्छी तरह समझता था और वह अपने चातुर्य, कूटनीतिज्ञता और व्यावहारिक कुशलता की मदद से विकट परिस्थितियों में भी सफलता प्राप्त करने मे समर्थ होता था।

उसका लक्ष्य उत्तम था। उसका आचरण सर्वथा प्रशसनीय था। अपने धर्म का पावन्द होते हुए भी वह मुसलमान फकीरो का आदर करता था और उनकी दरगाहो के लिए ज़मीन और रुपया दिया करता था। मुसलमान इतिहास-लेखक ख्वाफी खाँ ने लिखा है कि उसने न तो कभी किसी मस्जिद को तोडा और न कभी किसी मुसलमान स्त्री के साथ अनुचित व्यवहार किया। यदि कभी उसके हाथ मे कुरान की कोई पुस्तक पड जाती तो वह उसका आदर करता था और उसे मुसलमानो को दे देता था।

**औरङ्गज़ेब और दक्षिणी राज्य**—अकवर के समय से ही दक्षिणी राज्यो को साम्राज्य में मिला लेने की मुगलो की हार्दिक कामना थी। अपने पूर्वजो की तरह औरङ्गज़ेब भी दक्षिण की विजय के लिए वरावर चिन्तित रहता था परन्तु उत्तरी भारत के उपद्रवो के कारण उसे अभी तक अपनी इच्छा पूर्ण करने का अवसर नही मिला था। शाहज़ादा अकवर के शम्भुजी से जा मिलने के कारण दक्षिण की समस्याएँ अधिक जटिल हो गई थी। औरङ्गज़ेब ने इस घटना को एक वडा अपमान समझा था। सन् १६८१ ई० मे उदयपुर के राना के साथ सन्धि हो गई। इसके वाद वादशाह दक्षिण को रवाना हो गया और अपने जीवन के शेष २५ वर्ष उसने दक्षिणी राज्यो तथा मराठो का दमन करने के प्रयत्न मे व्यतीत किये।

सवसे पहले वीजापुर पर मुगलो का आक्रमण हुआ। लडाई के कई कारण थे। वीजापुर का सुलतान शिया-मत का अनुयायी था। सन् १६५७ ई० की सन्धि की शर्तों का उसने अभी तक पालन नही किया था। वादशाह ने जव सहायता माँगी तो बीजापुर के सुलतान ने आनाकानी की। इसके अतिरिक्त औरङ्गज़ेब को यह भी विश्वास हो गया कि शम्भुजी को आदिलशाह (वीजापुर) से मदद मिली थी। शाहज़ादा आज़म एक वडी सेना के साथ वीजापुर पर आक्रमण करने के लिए रवाना हुआ परन्तु उसके किये कुछ न हुआ। तव औरङ्गज़ेब

स्वय वहाँ जा पहुँचा। बीजापुर-नरेश ने शम्भुजी और गोलकुण्डा के सुलतान से सहायता माँगी और उन्होंने उसकी प्रार्थना स्वीकार की। कुछ दिनो तक मुहासिरा जारी रहा, परन्तु अन्त में हिम्मत हारकर १६८६ ई० के सितम्वर में सिकन्दर ने अपने को शत्रुओ के अर्पण कर दिया। औरङ्गज़ेव ने उसे गद्दी से उतार दिया और बीजापुर-राज्य दिल्ली-साम्राज्य में मिला लिया गया। सिकन्दर की युवावस्था और सुन्दरता देखकर औरङ्गज़ेव का भी हृदय पिघल गया। उसने उसके साथ अच्छा वर्त्ताव किया और उसकी पेन्शन मजूर कर दी। सन् १७०० ई० मे बीजापुर में उसकी मृत्यु हो गई।

बीजापुर की विजय के वाद गोलकुण्डा पर चढाई की गई। सुलतान अवुलहसन विलासी प्रकृति का मनुष्य था और राज्य का काम उसने अपने मन्त्रियो के हाथ में छोड रक्खा था। इसका परिणाम यह हुआ कि शासन-प्रवन्ध गडवड हो गया और सरकारी अफसर बेईमान और निकम्मे हो गये। औरङ्गज़ेव को गोलकुण्डा के धन की वडी इच्छा थी, इसलिए इधर-उधर का झूठ-मूठ वहाना कर उसने चढाई कर दी। घेरा सन् १६८७ ई० में आरम्भ हुआ और कुतुवशाह के अब्दुर्रज़्ज़ाक नामक योद्धा ने वडी वीरता के साथ नगर की रक्षा का उपाय किया। मुगलो ने उसे रुपये का लालच देकर अपनी ओर मिलाना चाहा परन्तु उसने उनके प्रस्ताव को अपमान के साथ ठुकरा दिया। मुगलो की असख्य सेना पर वह पागल की तरह टूट पडा। अवुलहसन की सेना की हार हुई और गोलकुण्डा जीतकर मुग़ल-साम्राज्य में मिला लिया गया। अवुलहसन कैदी वना कर दौलतावाद भेज दिया गया और वही, ५० हजार रुपया सालाना पेंशन पर, उसने अपने जीवन का शेष भाग गहरी श्वास ले-लेकर विता दिया।

इन मुसलमानी राज्यो का नाश करने में औरङ्गज़ेव ने वडी भारी भूल की। जव तक ये राज्य मौजूद रहे, मराठो की रोक-थाम होती रही; परन्तु अव उन्हें लूट-मार करने का पूरा मौका मिल गया।

**मराठो के साथ युद्ध (१६८९-१७०५ ई०)**—दक्षिण के शिया

राज्यो को विजय कर लेने के बाद औरङ्गजेब ने मराठो की ओर ध्यान किया परन्तु मराठो को दवाना सुगम काम नही था। औरङ्गजेब की सेना बहुत बडी थी, उसके साधन पर्याप्त थे और उसके अफसर वीर तथा अनुभवी थे, परन्तु मराठो के लडने का ढङ्ग ऐसा था कि अधिक सफलता होने की आशा न थी। मराठे खुले मैदान में युद्ध नही करते थे, और लुक-छिप कर शत्रु पर आक्रमण करते थे। दुर्भाग्य से उनका राजा शम्भु निकम्मा और विलास-प्रिय था। वह अपना सारा समय भोग-विलास में व्यतीत करता था। उसी की अकर्मण्यता के कारण औरङ्गजेब दक्षिण के राज्यो को जीतने में सफल हुआ था। शम्भुजी ने मुग़लो का सामना करना आरम्भ किया परन्तु सन १६८६ ई० में वह पकडा गया और औरङ्गजेब के हुक्म से कत्ल कर दिया गया। उसका बेटा शाहू, जो अभी बालक ही था, अक्टूबर सन् १६८६ ई० में रायगढ़ की विजय के बाद मुगल छावनी में भेज दिया गया और वहाँ मुसलमान राजकुमारो की तरह उसका पालन-पोषण हुआ। परन्तु मराठो की हिम्मत किसी प्रकार कम न हुई। शिवाजी का दूसरा बेटा राजाराम, जो शाहू का अभिभावक होकर राज्य का काम चला रहा था, मुग़लो के विरुद्ध युद्ध करता रहा। वह जिन्जी को चला गया और मराठा सेनानायक साताजी घोरपड़े तथा धानाजी जादव ने सारे देश को रौंदकर मुग़लो के डेरो को लूटना आरम्भ किया। मुगल-सेनापतियो के परस्पर विश्वासघात के कारण, बहुत दिनो तक जिन्जी का घेरा असफल रहा। अन्त में सन् १६९८ ई० मे मुगलो का किले पर अधिकार हो गया और राजाराम सतारा की ओर चला गया।

इस समय औरङ्गजेब की अवस्था ८१ वर्ष की थी। उसने स्वय शत्रुओ का सामना करने का निश्चय किया। सात वर्ष तक उन्हें दबाने का उसने शक्ति भर प्रयत्न किया परन्तु सफलता न मिली। सन् १७०० ई० में राजाराम की मृत्यु हो गई। किन्तु उसके बाद उसकी रानी ताराबाई ने युद्ध जारी रक्खा। ताराबाई बडी बुद्धिमती तथा दूरदर्शिनी महिला थी। वह राज्य के मामलो को खूब समझती थी। उसकी अध्यक्षता में

औरंगजेब का साम्राज्य
सन् १७०७
पेशावर
कोहाट
गजनी
बन्नू
मुलतान
सिन्धु न०
दिल्ली
यमुना
गंगा न०
आगरा
सामूगढ़
जोधपुर
अजमेर
ग्वालियर
उदयपुर
धरमठ
अहमदाबाद
नर्मदा न०
बुरहानपुर
ताप्ती न०
दौलताबाद
बेसीन
सालसट
बम्बई
औरंगाबाद
अहमदनगर
पूना
बीदर
गोलकुण्डा
गोदावरी न०
सतारा
बीजापुर
कोल्हापुर
कृष्णा
गोआ
बेलारी
मदरास
बंगलोर
माही
पांडीचेरी
कोचीन
मदूरा
त्रिचनापल्ली
नेगापट्टन
मछलीपट्टम
प्रयाग
बनारस
पटना
राजमहल
ढाका
चन्द्रनगर
कलकत्ता
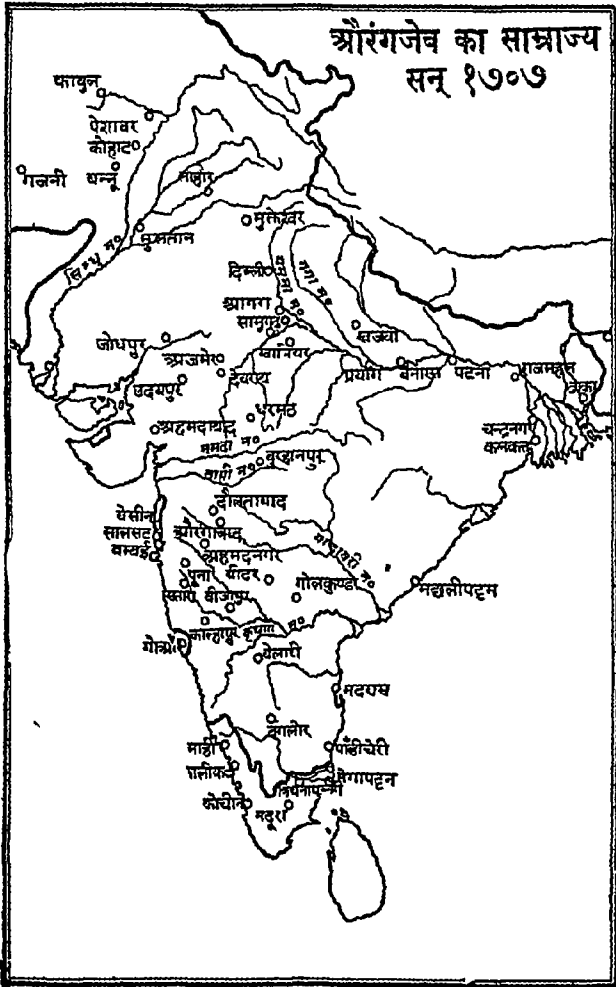
मराठे बडे साहस तथा उत्साह से लडे। लगभग ६ किलों पर मुगलों ने अधिकार कर लिया परन्तु इन विजयों से उनकी स्थिति मे कोई विशेष फर्क नही पडा। मुगल-सेना की दशा उस समय खराब थी। उसकी सख्या बहुत बढ गई थी और सङ्गठन ठीक न था। बादशाह कब्र की तरफ पैर बढा रहा था। अक्टूबर सन् १७०५ ई० मे वह बीमार पडा और अपने मन्त्रियो की सलाह से अहमदनगर को लौटा। वहाँ २० फरवरी सन् १७०७ ई० को उसकी मृत्यु हो गई। उसका जनाज़ा बहुत सादगी से निकाला गया और बिना किसी शान-शौकत के वह दौलताबाद मे दफन कर दिया गया।

**मराठा-पद्धति में परिवर्तन**—शिवाजी की मृत्यु के बाद मराठों का ढङ्ग बदल गया। धीरे-धीरे वे अपने नेता के आदर्शो को भूलने लगे और उनकी सस्थाएँ दुर्बल हो गई। शिवाजी के उत्तराधिकारियो के समय में दलबन्दियों के कारण राज्य की एकता टूट गई और शासन-प्रबन्ध बिगड गया। राजाराम की नीति का परिणाम यह हुआ कि एक सुसङ्गठित राज्य की जगह कई राज्य बन गये। जागीर-प्रथा का फिर से प्रचार हो गया और मराठे लूट-खसोट को अपना एक व्यापार समझने लगे। मुगलों का भय न रहने से अब वे स्वच्छन्द दक्षिण मे धावा करने और 'चौथ' वसूल करते थे। उनके युद्ध करने का तरीका भी अब बदल गया था। शिवाजी के समय के सिपाहियो की तरह वे अब छापा मारकर पहाडो और जङ्गलों में नही छिपते थे। अब उनके पास बडी बडी सेनाएँ थी। परन्तु न उनकी व्यवस्था ठीक थी और न उनमें पहले की तरह स्वामि-भक्ति थी। राजा और पेशवा की दो-अमली हुकूमत के कारण शासन निर्बल हो रहा था। पेशवा की शक्ति धीरे धीरे बढ रही थी और एक शक्तिशाली केन्द्रीय शासन न होने के कारण, सैनिक नेताओं ने अपने लिए अलग-अलग राज्य स्थापित कर लिये थे। फलत १८ वी शताब्दी में यह गडबडी और भी बढ गई और देश मे अराजकता के चिह्न दिखाई देने लगे।

**सिक्खो का उत्कर्ष**—औरङ्गजेब की धार्मिक नीति से सिक्खो में बडा असन्तोष फैल गया। सिक्ख गुरु नानक* के अनुयायी थे। नानक

जी ने ईश्वर की एकता और जीवन की पवित्रता पर बडा ज़ोर दिया था। उन्होने जाति-पाँत को बुरा बतलाया और कहा कि मोक्ष-प्राप्ति के लिए पण्डे पुजारियो की मदद की आवश्यकता नही है। पाँचवें गुरु अर्जुन (१५८२–१६०७ ई०) ने आदि ग्रन्थ का सङ्कलन किया और अपने अनुयायियो को स्वराज्य का उपदेश किया। उसने उन्हें घोडो का व्यापार करने की आज्ञा दी और सासारिक कार्यो की ओर उनका ध्यान आकृष्ट किया। उसने अमृतसर को सिक्ख-धर्म का मुख्य स्थान बनाया। परन्तु जब गुरु ने शाहज़ादा खुसरो को मदद दी तो जहाँगीर ने उसे क़त्ल करा दिया।

गुरु हरगोविन्द ने गुरु-प्रथा में बहुत-कुछ परिवर्तन कर दिया। उन्होने मासाहार की आज्ञा दे दी और अमृतसर में एक क़िला बनवा कर वे राजसी ठाटबाट से रहने लगे। सिक्ख उन्हें "सच्चा बादशाह" कहते थे। उनके यहाँ राजाओ की तरह दरबार लगता था और इन्साफ होता था। वे अस्त्र-शस्त्र धारण करते थे और आत्म-रक्षा के लिए उन्होने एक छोटी-सी सेना भी सङ्गठित की थी। जहाँगीर उनसे प्रसन्न हो गया और उसने उनकी पेन्शन नियत कर दी। परन्तु बाद में हरगोविन्द से बादशाह अप्रसन्न हो गया और इसके फलस्वरूप वे बारह वर्ष तक ग्वालियर के किले में कैद रहे। वहाँ से छुटकारा पाने के बाद, उन्होने मुगलो के साथ युद्ध किया और अन्त मे वे पहाडो की ओर चले गये। वहाँ सन् १६४४ ई० में उनकी मृत्यु हो गई।

हरगोविन्द के बाद हरराय गुरु हुए। हरराय शान्तिप्रिय थे। जिस समय दाराशिकोह पञ्जाब मे भटक रहा था, हरराय ने उसे सहायता दी थी। इस कारण औरङ्गज़ेब उससे अप्रसन्न हो गया था। हरराय के बाद उसके दो पुत्रो में से बडा हरकिशन, जो ६ वर्ष का बालक था, गद्दी पर बैठा। परन्तु सन् १६६४ ई० में चेचक से उसकी मृत्यु हो गई। उसके बाद सिक्खो ने उसके छोटे भाई तेगबहादुर को गुरु स्वीकार किया। औरङ्गज़ेब ने अप्रसन्न होकर तेगबहादुर को दरबार में बुलाया और चमत्कार दिखाने को कहा

परन्तु गुरु ने अपना भेद देने के वदले, अपना सिर देना कही अच्छा समझा (सिर दिया सार ना दिया)। सन् १६७५ ई० में वादशाह की आज्ञा से उनका सिर उडा दिया गया।

तेगबहादुर के वाद उनके पुत्र गोविन्दसिह गद्दीनशीन हुए। उन्होने मुगलो से अपने वाप की मृत्यु का वदला लेने का सङ्कल्प किया। परन्तु मुगलो से लडना उनके लिए असम्भव था। इसलिए वे पहाडो में चले गये और वहाँ २० वर्ष तक भजन-ध्यान मे मग्न रहे। उन्होने खूब विद्या पढी और निरन्तर आराधना-द्वारा भवानी का इष्ट प्राप्त किया। उन्होने अपने शिष्यो के सम्मुख एक उत्कृष्ट आदर्श रक्खा, उन्हें शरीर पर लोहा धारण करने को आज्ञा दी और खालसा का सङ्गठन किया। गुरु साहव ने उनके मन में यह वात विठा दी कि वे अजेय हैं। अर्थात् उन्हें कोई जीत न सकेगा। पहुल अर्थात् सिक्खो के दीक्षा सस्कार की प्रथा का आरम्भ गुरु गोविन्दसिंह ने ही किया। दीक्षा लेनेवाले को कृपाण से हिला हुआ जल पीना पडता था। खालसा के सदस्यो मे जाति-पाँत का भेद-भाव नही किया जाता था। सव लोग समान समझे जाते थे। ईश्वर की उपासना और गुरु का आदर तथा सेवा करना शिष्य का प्रधान कर्त्तव्य था। उनको अपने शरीर पर पाँच चीज़े अर्थात् कडा, केश, कच्छ (जाँघिया), कङ्घी तथा कृपाण सदैव धारण करने पडते थे।

इस प्रकार गुरु गोविन्दसिंह ने एक धार्मिक सम्प्रदाय को सैनिक जाति मे परिणत कर दिया। औरङ्गज़ेब की असहिष्णुता के साथ साथ इन सिक्खो का जोश और साहस भी वढता गया। गुरु गोविन्दसिंह ने राजा की तरह आचरण करना आरम्भ कर दिया। उन्होने किले वनाये और सिक्खो तथा पठानो की एक सेना रक्खी। उन्होने पहाडी सरदारो के साथ युद्ध छेड दिया और मुगलो से भी झगडा शुरू कर दिया। औरङ्गज़ेव ने सरहिन्द के सूवेदार को गुरु पर चढाई करने का हुक्म दिया। इस समय गुरु साहव को वडी मुसीवतो का सामना करना पडा। दोनो ओर से वड़े ज़ोर के साथ कुछ दिन तक युद्ध होता रहा। अन्त में तङ्ग आकर औरङ्गज़ेव

ने गुरु को दक्षिण में मिलने के लिए बुलाया। परन्तु उनके पहुँचने के पहले ही बादशाह की मृत्यु हो गई। गुरु गोविन्दसिंह अब शान्तिपूर्वक रहने लगे। परन्तु एक पठान ने, जिसके बाप को उन्होने मारा था, सन् १७०८ ई० मे मरेग नामक स्थान पर उन्हें कत्ल कर दिया। गुरु गोविन्दसिंह की मृत्यु से सिक्खो का उत्साह कम न हुआ। वे उत्तरोत्तर अपनी सैनिक शक्ति को बढ़ाते रहे और अन्त में पञ्जाब में ऐसे प्रभावशाली हो गये कि सब उनसे डरने लगे।

**औरङ्गजेब का शासन-प्रबन्ध**—जिस शासन-प्रणाली का मुगल-बादशाहो ने अब तक अनुसरण किया था उसका औरङ्गजेब ने परित्याग कर दिया। वह अपने धर्म का पाबन्द था और उसकी राजनीति पर उसके धार्मिक विचारो का बहुत प्रभाव पड़ा था। दक्षिण में उसके २५ वर्ष रहने, उसकी वृद्धावस्था तथा धार्मिक पक्षपात ने अकबर द्वारा स्थापित की हुई सस्थाओ की उपयुक्तता नष्ट कर दी और यही अन्त में साम्राज्य के पतन तथा विनाश का कारण हुआ।

सारा साम्राज्य २१ सूबो में विभाजित था। सूबो का शासन पहले ही का-सा था परन्तु केन्द्रीय सरकार अधिक मजबूत हो गई थी। औरङ्गजेब बडा सुशिक्षित एव अनुभवी शासक था। वह राज्य के कामो को बड़े ध्यान से देखता था और विदेशी राज्यो को जो फर्मान और पत्र भेजे जाते थे, उन्हें स्वय लिखवाता था। वह स्वयं मन्त्री का काम करता था। उसके अफसर हर एक मामले में उसकी सलाह लेते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि उनका स्वावलम्बन नष्ट हो गया और वे काम में देर करने लगे। चूँकि वह कुरान शरीफ के अनुसार राज्य करना चाहता था, इसलिए अधिकारियों के कार्य का क्षेत्र विस्तृत हो गया। लोगो से धार्मिक नियमो का अनुसरण कराने के लिए, चाल-चलन की देख-रेख करने के लिए, एक अलहदा विभाग की स्थापना की गई। योग्यता के अनुसार सरकारी नौकरी देने का कोई प्रबन्ध नही था। ल ग केवल अपने धार्मिक वि ारो के कारण ही बड़े-बड़े ओहदे पा जाया कर्त थे।

किसानो के हित का औरङ्गज़ेब सदैव ध्यान रखता था। अपने शासन के प्रारम्भिक भाग मे उसने खेती की उन्नति करने तथा किसानो से निश्चित कर लेने के लिए कई नियम बनाये थे। लगान नियत करने के तरीके में विशेष परिवर्तन नही किया गया था। जहाँ किसान गरीब होते थे वहाँ स्थानीय परिस्थितियो का विचार करके राज्य का भाग निर्दिष्ट किया जाता था। राज्य का भाग पैदावार का आधा, तिहाई, $\frac{2}{5}$ और कभी इससे भी कम होता था। लगान वहुधा कई गाँवो का इकट्ठा निश्चित किया जाता था। साल के शुरू में अमीन एक गाँव या परगने की सरकारी मालगुजारी नियत करता था। अकबर के समय से अब लगान अधिक लिया जाता था। कभी-कभी किसानो को पैदावार का आधा राज्य को देना पडता था। लगान प्राय. नकद लिया जाता था परन्तु जिन्स के रूप मे लेने की भी आज्ञा थी। राज्य के कर्मचारियो को किसानो के साथ सद्व्यवहार करने का आदेश था। यदि कोई चौधरी, मुकद्दम अथवा पटवारी प्रजा पर अत्याचार करता तो उसे दण्ड दिया जाता था। सरकारी लगान से एक रुपया भी अधिक किसानो से नही लिया जाता था। प्रान्तीय दीवानो को लगान वसूल करने-वाले अधिकारियो की ईमानदारी की, केन्द्रीय सरकार के पास, रिपोर्ट भेजने का हुक्म था।

परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि धीरे-धीरे किसानो की दशा बिगडती जा रही थी। खेती छोडकर वे बोझा ढोते और मजदूरी करते थे। बर्नियर का लेख है कि किसी महामारी के कारण नही, वरन् राज्य की कठोरता के कारण ही किसानो की सख्या में कमी हो गई थी। देहातो में मजदूरो की तथा खेती की अवनति के कारण दरिद्रता फैल रही थी। गरीब किसान, निर्धनता के कारण, जब लगान नही दे सकते थे तब उनके लडके छीन लिये जाते थे और गुलाम बनाकर बेच दिये जाते थे। कूच के समय पल्टनो के सिपाही, बिना किसी भय के, किसानो की फसल को रौंदते चलते थे। मनसबदारो के पास इतना रुपया नही था कि वे अपने इलाको मे शान्ति स्थापित रखते।
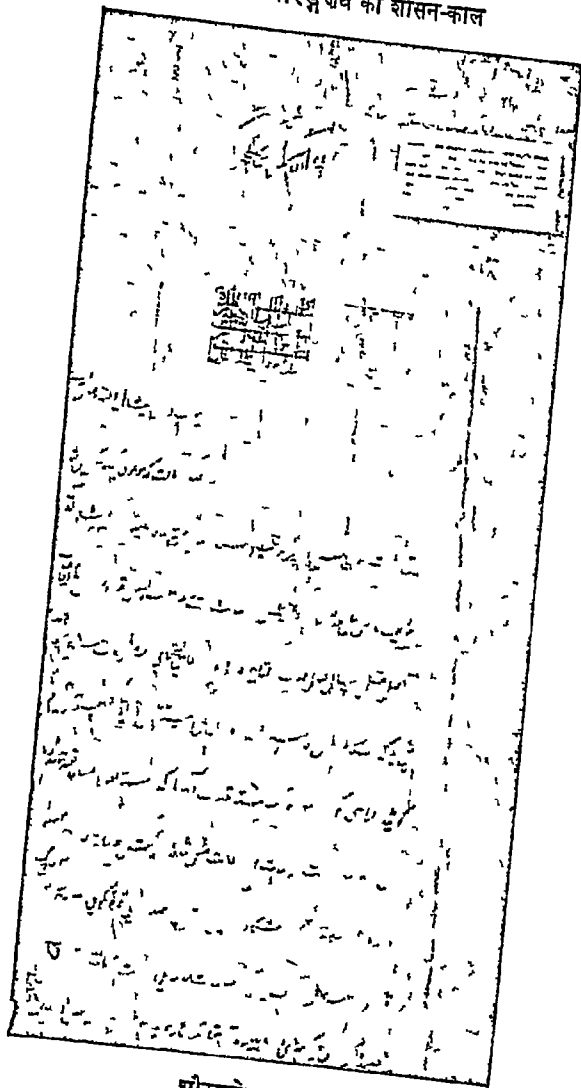
औरंगजेब का फरमान

मालगुजारी के कम हो जाने, अनेक करो के उठा लेने तथा बादशाह के निरन्तर युद्ध करने के कारण, राज्य की आर्थिक दशा खराब हो गई। अफसरो की तनख्वाहें नही दी जाती थी। उन्हें जागीर में देने के लिए राज्य के पास जमीन नही थी। किलेदारो को रिश्वत देकर, किलो पर अधिकार प्राप्त करना एक मामूली बात हो गई थी और औरङ्गजेब को भी इस प्रकार बहुत-सा धन व्यय करना पडता था। केवल नासिक और थाना के जिलो में ही उसको इस काम में १,२०,००० रुपया खर्च करना पडा था। उत्तरी भारत मे भी परिस्थिति ऐसी ही चिन्ताजनक थी। खेती और कारीगरी की अवनति हो जाने के कारण चारो ओर अराजकता फैल रही थी। निम्न श्रेणी के सूबेदार और जागीरदार जनता को पूर्णत काबू में रखने में असमर्थ थे। शक्तिहीन स्थानीय अफसरो को जाट, मेवाती तथा अवध के बैस (क्षत्रिय) आदि वीर जातियो को दबाने में बडी कठिनाई होती थी। जागीर अदल-बदल हो जाती थी, जिससे रिआया को नये-नये अधिकारियो का अत्याचार सहन करना पडता था। यद्यपि रिश्वत लेना निन्दनीय समझा जाता था परन्तु तो भी लोग भेंट स्वीकार कर लिया करते थे। बादशाह स्वय रुपया लेकर उपाधि वितरण करता था। शोलापुर के किलेदार को उसने ५० हजार रुपया लेकर राजा की पदवी दी थी। निम्न श्रेणी के अधिकारी खूब रिश्वत लेते और शराब पीते थे। इस प्रकार शासन की प्रतिष्ठा और शक्ति दोनो ही धीरे-धीरे विदा हो गई थी।

हिन्दुओ के प्रति बादशाह ने दूरदर्शिता का बर्ताव नही किया था। उसके धार्मिक पक्षपात ने राज्य को बडी हानि पहुँचाई। सन् १६७९ ई० में जजिया फिर से लगा दिया और उसे वसूल करने में बडी कठोरता से काम लिया गया जिससे हिन्दू प्रजा को बडा कष्ट हुआ। उसकी न्याय तथा निष्पक्ष व्यवहार की आशा व्यर्थ हुई। सरकारी नौकरी से बहुत-से हिन्दू अलग कर दिये गये और अकबर की नीति के विरुद्ध काम किया गया। राजनीति के दृष्टिकोण से औरङ्गजेब की यह अनुदारता उसकी

भयङ्कर भूल थी। धार्मिक जोश के कारण वह इस बात को भूल गया कि अन्याय और पक्षपात पर एक बड़ा साम्राज्य निर्भर नहीं रह सकता।

शिया मुसलमानो को वह काफिर समझता था। ऊँचे पदाधिकारी मुसलमान प्राय अपने धार्मिक विचारो को छिपाते थे और, सुन्नी न होने पर भी, अपने को सुन्नी ही प्रकट करते थे। दरबार की 'ईरानी' और 'तूरानी' पार्टियाँ, प्रभुत्व के लिए, आपस में बराबर झगडा करती थी, जिससे स्वार्थ, षड्यन्त्र तथा बेईमानी का चारो तरफ ज़ोर रहता था। इन दो दलो में इतना वैमनस्य बढ गया था कि इनकी सन्तानो के शादी-विवाह भी आपस में ही होते थे।

बादशाह न्यायप्रिय था। वह दरबार-आम में इन्साफ करने के लिए बैठता था और सताये हुए लोगों की प्राय प्रार्थना सुनता था और बहुधा मामलो की जाँच करके अपराधी को वहीं दण्ड देता था। क़ाज़ी उसका सहायक होता था। अपनी सुविधा के लिए बादशाह ने स्वयं क़ानूनो का एक सग्रह किया था। दरबार में मुकदमे इसी के अनुसार किये जाते थे।

औरङ्गज़ेब के राज्य के अन्तिम दिनो में शासन-प्रबन्ध में शिथिलता आने लगी थी। खज़ाना खाली हो गया था, अफसर रिश्वत लेते थे और राज्य की सस्थाएँ अवनत हो रही थी। सेना का भी प्रबन्ध खराब था। सैनिक न तो सुसङ्गठित थे और न किसी नियम का पालन करते थे। इतना कहने में ज़रा भी अतिशयोक्ति न होगी कि औरङ्गज़ेब के दीर्घकालीन राज्य के परिणाम थे—आर्थिक दिवाला, देशव्यापी विद्रोह और राजनीतिक सर्वनाश।

**औरङ्गज़ेब का चरित्र**—औरङ्गज़ेब अपने धार्मिक विचारो में एक सच्चा सुन्नी मुसलमान था। उसने अपना सारा जीवन कर्तव्य पूरा करने मे बिताया। अपने जीवन की प्रारम्भिक अवस्था से ही वह कुशल तथा साहसी सैनिक प्रसिद्ध था और उसने अपने बाप के राजत्वकाल में अनेक बार अपनी प्रतिभा का प्रमाण दिया था। वह जन्म से ही एक वीर सिपाही

था। वह सङ्गठन और शासन की अपूर्व योग्यता रखता था। कठिन से कठिन परिस्थितियो मे भी अपने मन तथा स्वभाव को अविचलित रखकर वह अपने शत्रुओ को हैरानी में डाल देता था। कटनीति तथा अन्य राजनीतिक दाव-पेचो मे कोई उसकी बराबरी नही कर सकता था। यही कारण है कि राज्य के बडे-बडे अनुभवी मन्त्री भी उसके पक्के इरादे के कायल थे और उसकी राय का आदर करते थे। वह एक बडा अध्ययन करनेवाला विद्वान् पुरुष था और मरने के समय तक उसका विद्या-प्रेम क़ायम रहा। फारसी काव्य का वह पूरा ज्ञाता था और अपने पत्रो मे उसका यथास्थान उद्धरण करके पत्र को सुन्दर तथा प्रभाव-पूर्ण बना देता था। अरबी-भाषा का भी उसे पूर्ण ज्ञान था। क़ुरान शरीफ उसे ज़बानी याद था और मुसलमानी धर्म तथा कानून से वह अच्छी तरह परिचित था। उसकी स्मरणशक्ति ऐसी तीव्र थी कि जिस मनुष्य को एक बार देख लेता था उसकी आकृति को कभी नही भूलता था। वह सादगी से जीवन व्यतीत करता था और सयम से रहता था। वह सोता कम था। भडकीले कपडो को पसन्द नही करता था और कुरान के नियमो का अनुशीलन करता था। वह टोपियाँ बनाकर अपने खाने-पीने का खर्च चलाता था और शाही खज़ाने को एक पवित्र अमानत समझता था। न्याय करने में वह रू-रिआयत नही करता था और गरीब-अमीर में कोई भेद नही करता था। उसका आदर्श उत्कृष्ट था। वह कभी अपना समय फज़ूल नही खराब करता था और सदा राज-कार्य में सलग्न रहता था। शासन की सूक्ष्म से सूक्ष्म बातो का भी उसे पूरा ज्ञान था परन्तु उसमें एक दोष था। अपने सम्बन्धियो के प्रति उसके हृदय में सहानुभूति नही थी। अपने बाप के साथ उसने जो सलूक किया था उसे याद कर वह हमेशा चिन्तित रहता था और अपने बेटो को पास तक न आने देता था। उसे हमेशा यही भय रहता था कि कही उसके बेटे राज्य को न छीन लें।

वह अपने धर्म का बडा पाबन्द था। वह पाँच नमाज़ पढता, रोज़ा रखता और क़ुरान शरीफ़ में जिन बातो का निषेध है उनसे सदा दूर रहता

था। उसके जीवन का लक्ष्य धर्म को बढ़ाना था और इसी के लिए उसने सादगी तथा त्याग का जीवन व्यतीत किया और निरन्तर परिश्रम किया। वास्तव में किसी मुसलमानी देश मे वह एक आदर्श शासक समझा जाता परन्तु दुर्भाग्यवश उसकी अधिकाश प्रजा हिन्दू थी जिसे वह काफ़िर समझता था। उसमे सहिष्णुता और सहानुभूति का अभाव था जिसके बिना इतने बडे साम्राज्य का प्रबन्ध करना सर्वथा असम्भव था। उसके धार्मिक जीवन के कारण लोग उसे ज़िन्दा पीर (जीवित साधु) समझते थे। परन्तु उसमें राजनीतिक दूरदर्शिता की कमी थी। वह न तो अपने चारो ओर काम करने-वाली शक्तियो का अनुमान कर सका और न उन्हें अपने अधिकार में करके उपयोगी बना सका। राज्य का सारा अधिकार उसने अपने हाथ में ले लिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि उसके अमीर और अफसर निकम्मे तथा हतो-त्साह हो गये। नये अमीर, जिन्हें बादशाह ने बडे-बडे ओहदो पर नियुक्त किया था, न तो वीर सैनिक थे और न उन्हें शासन का ही पर्याप्त अनुभव तथा ज्ञान था। वे राज्य का प्रबन्ध करने में असमर्थ थे। उसे दूसरो का बिलकुल विश्वास न था। यही कारण है कि वह कभी अपने सम्बन्धियो अथवा अफसरो की भक्ति और कृतज्ञता को प्राप्त नही कर सका। सब उससे असन्तुष्ट रहते थे। मुसलमान इतिहासकार ख्वाफी खाँ उसके विषय में लिखता है—

"प्रत्येक योजना, जो उसने की, निष्फल सिद्ध हुई। जिन कार्यों को उसने आरम्भ किया, उनमें बहुत-सा समय लगा और अन्त में कुछ भी सफ-लता प्राप्त न हुई।"

**औरङ्गज़ेब और उसके बेटे**—औरङ्गज़ेब अविश्वासी स्वभाव का मनुष्य था। वह अपने बेटो का भी विश्वास नही करता था और उन्हें सदा दूर रखता था। अपने सबसे बडे बेटे शाहज़ादा सुलतान को उसने १८ वर्ष तक क़ैद में रक्खा और दूसरे बेटों के साथ भी कभी प्रेम का बर्ताव नही किया। शाहज़ादा मुअज्ज़म से, जो उसके बाद बहादुरशाह के नाम से गद्दी पर बैठा, वह दक्षिणी राज्यो के साथ सहानुभूति रखने के कारण, बहुत

अप्रसन्न हो गया था। उसे भी उसने १६८७ ई० से १६९५ तक कैदखाने में रक्खा था। चौथा बेटा अकबर भी उससे भयभीत होकर फारस को भाग गया था, जहाँ सन् १७०४ ई० मे उसकी मृत्यु हो गई। सबसे छोटे बेटे कामबख्श को भी उसने, जिन्जी के किले की चढ़ाई में ठीक काम न करने के कारण, कैद कर लिया था। जब बादशाह बीमार पड गया और उसके बचने की आशा न रही तब भी उसने बेटो को पास आने की आज्ञा न दी। मरने के समय जो पत्र उसने अपने सबसे प्यारे बे॰ कामबख्श को लिखा था, उससे पता लगता है कि उसके हृदय में कैसा दुःख था और अपने कृत्यो के लिए उसे कैसा पश्चात्ताप था।
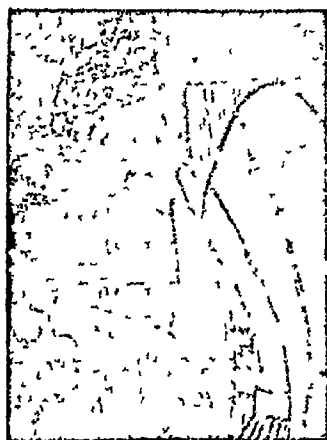
औरङ्गजेब की वृद्धावस्था

"मेरे प्राणो के प्राण! .... अब मैं अकेला जा रहा हूँ। मैं तुम्हारी असहाय दशा पर अत्यन्त दुखित हूँ। किन्तु क्या लाभ? जितनी पीडा मैंने पहुँचाई है, जितना पाप और अत्याचार मैंने किया है उस सबका भार अपने साथ ले जा रहा हूँ। आश्चर्य की बात है कि मैं ससार में कुछ भी लेकर नही आया था परन्तु अब पाप का एक भारी क़ाफिला साथ लेकर कूच कर रहा हूँ। जिधर मैं आँख उठाता हूँ, उधर ही मुझे केवल ईश्वर दिखाई देता है . मेरी सबसे अच्छी मर्जी को तुम स्वीकार करना। ऐसा न करना कि मुसलमानो का रक्तपात हो और इस बेकार जीव के सिर पर पाप का भार और भी बढ जाय। मैं तुम्हें और तुम्हारे बेटो को ईश्वर की दया पर छोड़ कर विदा होता हूँ। मैं अत्यन्त सन्तप्तहृदय हूँ।

तुम्हारी रोग-ग्रसित माता उदयपुरी मेरे साथ खुशी से ससार से ...त्र करेगी। ईश्वर तुम्हें शान्ति प्रदान करे।"

### सक्षिप्त सन्वार विवे...

| | |
|---|---|
| शिवाजी का जन्म .. .. .. .. | १६२७ ई० |
| तोरना की विजय .. .. .. .. | १६४६ " |
| जिञ्जी पर अधिकार .. .. .. .. | १६५६ " |
| शिवाजी की कोकण पर चढाई .. .. .. | १६५९ " |
| चम्पतराय बुन्देला का विद्रोह .. .. .. | १६५९ " |
| मीरजुमला की आसाम पर चढाई .. .. .. | १६६१ " |
| शिवाजी का सूरत पर छापा .. .. .. | १६६४ " |
| पुरन्दर की सन्धि .. .. .. | १६६५ " |
| शिवाजी का मुगल-दरबार में जाना . .. .. | १६६६ " |
| जाटो का विद्रोह .. .. .. | १६६९ " |
| शिवाजी की दूसरी बार सूरत पर चढ़ाई .. .. | १६७० " |
| सतनामियो का विद्रोह .. .. .. .. | १६७२ " |
| शिवाजी का राज्याभिषेक .. .. .. .. | १६७४ " |
| तेग़बहादुर का कत्ल .. .. .. .. | १६७५ " |
| शिवाजी की जिञ्जी पर विजय .. .. .. | १६७७ " |
| महाराज जसवन्तसिंह की मृत्यु .. .. .. | १६७८ " |
| शिवाजी की मृत्यु .. .. .. | १६८० " |
| बीजापुर का साम्राज्य में मिलाया जाना .. .. | १६८६ " |
| गोलकुण्डा का साम्राज्य मे मिलाया जाना .. .. | १६८७ " |
| मुग़लो का रायगढ को जीतना .. .. .. | १६८९ " |
| जिञ्जी की विजय .. .. .. .. | १६९८ " |
| राजाराम की मृत्यु .. .. .. .. | १७०० " |
| औरङ्गज़ेब की मृत्यु .. .. .. .. | १७०७ " |
| गुरु गोविन्दसिंह की मृत्यु .. .. .. .. | १७०८ " |

# अध्याय २६

## मुग़ल-साम्राज्य का पतन और विनाश

### (१७०७–१७६१ ई०)

राजसिंहासन के लिए युद्ध—औरङ्गज़ेब के तीन बेटे थे—मुहम्मद मुअज्जम, आज़म और मुहम्मद कामबख्श। उसके मरते ही गद्दी के लिए झगडा शुरु हो गया। कहा जाता है कि औरङ्गज़ेब ने एक वसीयत की थी जिसके अनुसार वह साम्राज्य को शाहज़ादो में बांटना चाहता था। इस वसीयत के अनुसार गद्दी पर बैठनेवाले को आगरा या दिल्ली के सूबे मिलते। आगरे के साथ मालवा, गुजरात तथा अजमेर, ये तीन सूबे और दक्षिण के चार सूबे यानी बरार, औरङ्गाबाद, बीदर तथा खानदेश साम्राज्य में शामिल होते। दिल्ली की गद्दी पर बैठनेवाले का अधिकार पञ्जाब से लेकर इलाहाबाद और अवध तक ११ सूबो पर स्थापित होता। अपने प्यारे बेटे कामबख्श को उसने बीजापुर और हैदराबाद की रियासते देने का प्रबन्ध किया था और यह वसीयत की कि यदि वह उतने से सन्तुष्ट हो तो उसके साथ किसी प्रकार का झगडा न किया जाय।

परन्तु इस प्रकार के बाँट की मुगल-वश में कोई परम्परा न थी। अत तीनो बेटो ने तलवार-द्वारा इस प्रश्न को हल करना चाहा। कामबख्श ने, जो बादशाह की मृत्यु के कुछ समय पहले बीजापुर गया था, दीन-पनाह (धर्म-रक्षक) की पदवी धारण कर ली और ओहदे तथा उपाधि वितरण करना आरम्भ कर दिया। उधर शाहज़ादा मुअज्जम शाही खज़ाने पर अधिकार करने के लिए आगरे की तरफ़ रवाना हुआ। आज़म भी दक्षिण से झटपट रवाना हुआ

और शीघ्र धौलपुर पहुँचकर, अपने भाई से युद्ध करने के लिए, तैयार हुआ। १० जून १७०७ ई० को जाजऊ* के पास युद्ध हुआ, जिसमें आज़म हार गया और बुरी तरह घायल हुआ। आज़म की पराजय के कई कारण थे। वह ठीक समय पर आगरे न पहुँच सकने के कारण रुपया-पैसा न पा सका, उसका बहुत-सा सामान दक्षिण मे ही रह गया था। इसके अतिरिक्त उसकी सेना में अधिकाश नौसिख सिपाही थे और उसके सेनापति ज़ुल्फकार खाँ और राजा जयसिंह कछवाहा ने हृदय से उसकी मदद नही की थी। इस काल में हार-जीत सेनानायक पर बहुत कुछ निर्भर होती थी। आज़म की मृत्यु होते ही उसकी सेना में भगदड मच गई। मुअज्ज़म ने बहादुरशाह की उपाधि धारण की और वह सिंहासन पर बैठ गया। इसके बाद उसने अपने भाई कामबख़्श पर चढाई कर दी। हैदराबाद के पास युद्ध में वह पराजित हुआ और ऐसा घायल हुआ कि मर गया। बादशाह उसके जनाज़े के साथ गया और उसने उसके बेटो और आश्रितो के लिए वज़ीफे नियत किये।

**बहादुरशाह और राजपूत**—युद्ध अभी पूर्ण रीति से समाप्त भी न होने पाया था कि बहादुरशाह को शान्ति-स्थापन के लिए राजपूताने की तरफ जाना पडा। राजपूताने में इस समय मेवाड, मारवाड और आमेर की रियासतें सबसे बडी थी। औरङ्गज़ेब ने मारवाड पर कब्ज़ा कर लिया था परन्तु उसके मरते ही राजा अजीतसिंह ने मुसलमानो को वहाँ से निकाल बाहर किया और नये सम्राट् का आधिपत्य स्वीकार करने से इनकार कर दिया। आमेर में गद्दी के लिए झगडा हो रहा था। मारवाड के राजपूतो ने उसका सामना नही किया और अजीतसिंह को आधिपत्य स्वीकार करना पडा। थोडे ही दिनो बाद इन तीनो रियासतो के राजाओ ने बादशाह के विरुद्ध एक सङ्घ बनाया परन्तु उन्हें

*जाजऊ आगरे से लगभग १९ मील के फासले पर ग्वालियर की सड़क के पास है।

कोई सफलता न हुई। बहादुरशाह ने राजपूतो के साथ अच्छा सम्बन्ध स्थापित कर लिया।

सिक्ख—गुरु गोविन्दसिंह की मृत्यु के बाद सिक्खो ने बन्दा को अपना नेता चुन लिया था। बन्दा ने ४० हजार सिपाहियो की एक सेना एकत्र करके विद्रोह का झण्डा खडा कर दिया। उसने सबसे पहले सरहिन्द के सूबेदार वजीर खाँ पर चढाई की। वजीर खाँ ने गुरु गोविन्दसिंह को बहुत परेशान किया था और उनके बेटो का कत्ल किया था। पहले तो सिक्खो को पीछे हटना पडा परन्तु उन्होने फिर हमला किया और मुसलमानो को हैरान किया। वजीर खाँ की अवस्था ८० वर्ष की थी। उसने वीरतापूर्वक युद्ध किया परन्तु मारा गया। सिक्खो ने सरहिन्द के नगर को खूब लूटा। इस विजय से उत्साहित होकर बन्दा ने देश पर अपना अधिकार स्थापित करने के लिए दक्षिण, पूर्व तथा पश्चिम की ओर पल्टनें भेजी। लाहौर पर अधिकार करने का भी उसने प्रयत्न किया परन्तु सफलता न हुई। बादशाह स्वय पञ्जाब की ओर रवाना हुआ। बन्दा ने लोहारगढ के किले मे आश्रय लिया और वही अपनी रक्षा का प्रबन्ध करने लगा परन्तु शाही सेना ने उसे पराजित किया। मुसलमान इतिहास-लेखक खवाफी खाँ सिक्खो की वीरता की प्रशसा करता हुआ लिखता है कि मुसलमानी सेना का उनसे कोई मुकाबिला नही किया जा सकता, क्योकि उसमे सिक्खो की तरह जान पर खेलनेवाले शायद १०० सिपाही भी नही थे। बादशाह गुरु को पकडना चाहता था। उसकी यह इच्छा तो पूरी न हुई परन्तु लोहारगढ के किले को खुदवाने से (दिसम्बर १७१० ई०) एक बडा खजाना उसके हाथ आ गया। सिक्खो ने अपना युद्ध जारी रक्खा और २७ फर्वरी सन् १७१२ ई० को बादशाह की मृत्यु हो जाने पर उन्होने फिर अपना किला जीत लिया।

मराठे—मुगल-सेना के दक्षिण से लौट आने के बाद मराठो ने फिर अपने पुराने तरीके से काम लिया। उन्होने कई किले जीत

लिये और मुगल-सूबो मे छापा मारना शुरू कर दिया। बादशाह ने शाहू को, जो १६९० ई० में कैद था, मुक्त कर दिया। परन्तु राजाराम की विधवा स्त्री ताराबाई ने शाहू को राजगद्दी का अधिकारी स्वीकार नही किया। फलत मराठो में दो दल हो गये और आपस मे लडाई छिड गई।

जहाँदारशाह (१७१२-१३ ई०)—जिस समय साम्राज्य की ऐसी डाँवाडोल हालत थी, जहाँदारशाह के छोटे भाई अज़ीमुश्शान के बेटे फर्रुखसियर ने गद्दी का दावा किया। उत्तराधिकार के युद्ध में अपने बाप की पराजय तथा मृत्यु का समाचार सुनकर उसने आत्म-हत्या करनी चाही थी परन्तु उसके मित्रो ने उसे ऐसा करने से रोक दिया था। उसने पटना मे अपने को बादशाह घोषित किया और अपने नाम का सिक्का जारी कर दिया। सैयद भाई अब्दुल्ला खाँ और हुसेन-अली खाँ ने, जो इलाहाबाद और बिहार के सूबेदार थे, उसके पक्ष का समर्थन किया। बारह* के इन सैयदो को भारतीय इतिहास में बादशाह बनानेवालो का नाम दिया गया है। फर्रुखसियर की माता की प्रार्थना पर हुसेनअली खाँ ने उसका पक्ष लिया और अपने भाई को भी उसका साथ देने के लिए तैयार कर लिया। खजवा के युद्ध में शाही-सेना को हराकर फर्रुखसियर दिल्ली की ओर रवाना हुआ। जहाँदार-शाह उसे रोकने के लिए आगरे की तरफ चल दिया। युद्ध में फिर फर्रुखसियर की जीत हुई। जहाँदारशाह घबराकर दिल्ली की ओर

---

* मेरठ और सहारनपुर जिले में अपने १२ गाँवों के कारण, ये बारह के सैयद कहलाते थे। दोनो भाई कुलीन वश के अमीर थे। हुसेन-अली बडा और अब्दुल्ला छोटा था। अब्दुल्ला का नाम हसनअली खाँ था। आजकल भी इनके वशज मुजफ्फरनगर जिले में रहते हैं। अकबर के ही समय से इस वश के लोग सेना में बडे ओहदो पर थे और फर्रुखसियर के गद्दी पर बैठने के समय तक इन लोगो का केवल सेना ही से सम्बन्ध था।

भागा। वहाँ उसके एक अफसर ने उसे कैद करके फर्रुखसियर के हवाले कर दिया। अब्दुल्ला की आज्ञा से जहाँदार के पैरो में बेडियाँ डाल दी गई और फर्रुखसियर बादशाह बनाया गया। दो-चार दिन बाद जहाँदारशाह मार डाला गया।

फर्रुखसियर (१७१३-१७१९)—फर्रुखसियर ने सैयद भाइयो की बडी इज्जत की और चिनकिलीच खाँ निजाम-उल-मुल्क को दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया। गद्दी पर बैठते ही उसे राजपूतो, सिक्खो और जाटो से लडना पडा। बहादुरशाह राजपूतो को भली भाँति दबाने मे सफल नही हुआ था। हुसेनअली ने जोधपुर पर चढाई की और अजीतसिंह को सन्धि करने पर विवश किया। राजा ने अपनी बेटी बादशाह को दे दी और बुलाने पर दरबार में उपस्थित होने का वचन दिया।

सिक्खो ने वीर नेता बन्दा बहादुर के नेतृत्व मे लूट-मार जारी रक्खी। उन्होने बटाला का शहर लूट लिया और उनके नेता ने अमृतसर से ४४ मील उत्तर-पूर्व की ओर गुरुदासपुर के किले मे आश्रय लिया। बडे भीषण सग्राम के बाद १७ दिसम्बर सन् १७१५ ई० को किला मुगलो के हाथ मे चला गया। बन्दा कैद हुआ और लोहे के एक पिंजडे मे बन्द किया गया। उसके अनुयायियो को कठोर शारीरिक यातनाएँ दी गई परन्तु सिक्ख हताश न हुए। बन्दा बहादुर बडी निर्दयता के साथ कत्ल किया गया और उसके सैकडो साथी मार डाले गये (१७१६ ई०)।

दिल्ली और आगरा के बीच के देश मे जाट छापा मारते थे। चूरामन उनका नेता था और भरतपुर के पास सनसनी गाँव उनका प्रधान अड्डा था। बहादुरशाह के साथ उसकी मित्रता थी। परन्तु उसकी मृत्यु के बाद उसने विद्रोह किया। उसे दबाने की कोशिश की गई। वह दरबार में आया और उसे दिल्ली से चम्बल नदी तक की सडक की रक्षा का प्रबन्ध सौपा गया परन्तु कहा जाता है कि उसने इस अधिकार

का बडा दुरुपयोग किया। राजा जयसिंह सवाई को बादशाह ने उसके विरुद्ध भेजा। उसका नया क़िला घेर लिया गया। परन्तु शाही सेना को अधिक सफलता न मिली। अन्त में लडाई से तङ्ग आकर स्वय चूरामन ने सन्धि का प्रस्ताव किया। सन् १७१८ ई० में उसके साथ सन्धि हो गई और उसे बादशाह को पचास लाख रुपया हरजाने में देना पडा।

**दरबार की दलबन्दियाँ**—फर्रुखसियर को बडी कठिनाई का सामना करना पडा। दरबार में हिन्दुस्तानी और विदेशी अमीरो के दो दल थे। विदेशी अमीरो में पठान, मुग़ल, अफगान, अरब, रूमी आदि शामिल थे। परन्तु इनमें सबसे प्रसिद्ध ईरानी और तूरानी थे। तूरानी दल के लोग सुन्नी थे। इनका और मुगलो का असली निवास-स्थान एक होने के कारण बादशाह की इन पर विशेष कृपा रहती थी। ईरानी दल के लोग शिया थे। यद्यपि वे सख्या में अधिक न थे परन्तु अपनी योग्यता के बल से राज्य में बडे ओहदो पर थे, और दरबार में उनका प्रभाव भी बहुत था। ईरानियो और तूरानियो में सदैव अनबन रहती थी परन्तु हिन्दुस्तानी अमीरो के मुकाबिले में वे आपस में मिल जाया करते थे। हिन्दुस्तानी दल में सैयद-भाइयो की तरह भारतीय मुसलमान थे। उनके साथ बहुत-से राजपूत तथा जाट सरदार, ज़मीदार और छोटे दर्जे के सरकारी नौकर-चाकर थे।

**सैयद-भाइयो का उत्कर्ष**—सैयद-भाइयो ने ही फर्रुखसियर को सिंहासन पर बिठाया था, इसलिए वे राज्य में सबसे अधिक अधिकार ग्रहण करना चाहते थे। बादशाह ने अब्दुल्ला को वज़ीर नियुक्त करने का वचन दिया था, किन्तु जब उसने ऐसा करने से इनकार किया तो सैयद-भाइयो के कान खडे हुए। बादशाह उनके विरोधियो पर कृपा करता था। इससे भी वे अप्रसन्न हुए। उधर बादशाह के मित्र सैयद-भाइयो द्वारा अधिकार छीन लिये जाने पर उनसे ईर्ष्या रखते थे। फर्रुख-सियर ने सैयद-भाइयो के साथ सद्भाव रखने की कोशिश की परन्तु उसका

प्रयत्न विफल हुआ। शासन की दशा बिलकुल बिगड़ गई। पहले के सभी नियम और कानून ढीले पड़ गये। ठेकेदारो से लगान वसूल कराने की प्रथा फिर आरम्भ हो गई, जिसका प्रजा पर बुरा प्रभाव पड़ा। हिन्दुओ पर जजिया फ़िर से लगाया गया। बादशाह सैयद-भाइयो को पदच्युत करने के लिए षड्यन्त्र रचने लगा।

बादशाह के षड्यन्त्रो का समाचार पाकर हुसेनअली, अपने भाई की सहायता के लिए, दक्षिण से उत्तरी हिन्दुस्तान की ओर रवाना हुआ। उसने दिल्ली आने का एक अजीब बहाना बताया। उसका कहना था कि शाहज़ादा अकबर के लड़के को, जो उसके हवाले किया गया था, दरबार में पहुँचाने वह दिल्ली जा रहा था। किन्तु बात असल में यह थी कि उसके भाई ने मदद देने के लिए ही उसे दिल्ली बुलवाया था। हुसेनअली ने मराठो से समझौता करके शाहू को 'चौथ' और 'सरदेशमुखी' देना स्वीकार कर लिया और मराठे घुड़सवारो को नौकर रख लिया। उसके दिल्ली पहुँचने से फर्रुखसियर बहुत घबराया और सैयद-बन्धुओ को प्रसन्न करने की कोशिश करने लगा। कुछ दिनो के लिए सब झगड़े समाप्त हो गये और ऐसा मालूम हुआ कि बादशाह और सैयद-बन्धुओ का मनो-मालिन्य दूर हो गया। परन्तु बादशाह छिपे-छिपे सैयद-भाइयो के विनाश का उपाय फिर करने लगा। सैयद-भाई बड़े चतुर थे। उन्होने शीघ्र किले पर अधिकार करके फर्रुखसियर को गद्दी-से उतार दिया और उसका घोर अपमान किया।

फर्रुख़सियर निकम्मा बादशाह था, परन्तु सैयद-बन्धुओं का बर्ताव उचित न था। बादशाह की हत्या का कलङ्क सदा उनके सिर पर रहेगा। यह सच है कि उनकी जान खतरे में थी परन्तु फिर भी अपने शत्रुओ का नाश करने के लिए उन्हें ऐसे भयङ्कर काम करने की आवश्यकता न थी।

फर्रुख़सियर के बाद सैयदो ने दो शाहज़ादो को गद्दी पर बिठाया। वे दोनो उनके हाथो के खिलौने थे और कुछ ही महीनों तक गद्दी पर

रहे। निदान १७१९ ई० के सितम्बर में उन्होंने बहादुरशाह के पोते मुहम्मदशाह को गद्दी पर बिठाया। परन्तु वास्तव में राज्य का सारा अधिकार उन्हीं के हाथ में बना रहा।

**सैयद-भाइयों का पतन**—सैयद-भाइयों के व्यवहार से दरबार के सभी अमीर अत्यन्त भयभीत तथा क्षुब्ध हो गये थे। सबसे पहले फर्रुख़-सियर के सहायक, इलाहाबाद के सूबेदार, छबीलाराम नागर ने सन् १७१९ ई० में विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। उसके भतीजे गिरधर बहादुर ने भी उसका साथ दिया। लकवे की बीमारी में छबीला-राम की शीघ्र ही मृत्यु हो गई। गिरधर बहादुर बाग़ी बना रहा। सैयदों ने उसे मिलाने का भरसक प्रयत्न किया किन्तु वह दृढ़ रहा। सैयद-बन्धु बहुत भयभीत हुए। तब उन्होंने उसे अवध का सूबेदार नियुक्त किया और तमाम फौज और शासन के अधिकार उसे दे दिये। उन्होंने उसकी हानि पूरी करने के लिए उसे नकद रुपया भी दिया। इसके पश्चात् उन्होंने दक्षिण के सूबेदार निज़ामुलमुल्क* को दिल्ली आने की

---

* निज़ामुलमुल्क ग़ाज़िउद्दीन ख़ाँ फीरोज़जंग का बेटा था। उसके पूर्वज समरक़न्द के रहनेवाले थे। उसका असली नाम मीर क़मरुद्दीन था। उसकी माता शाहजहाँ के प्रसिद्ध वज़ीर सादुल्ला ख़ाँ की बेटी थी। ११ अगस्त सन् १६७१ ई० को उसका जन्म हुआ था। उसे १३ वर्ष की अवस्था में बादशाह की ओर से मनसब मिला था। सन् १६९०-९१ ई० में उसे चिनक़िलीच ख़ाँ की उपाधि मिली थी। औरंगजेब की मृत्यु के समय वह बीजापुर का सूबेदार था। बहादुरशाह ने उसे दक्षिण से बुलाकर अवध का सूबेदार नियुक्त किया था। उसे ६००० का मनसब तथा ख़ान दौरान की उपाधि दी गई। सन् १७११ ई० में अपने बाप की मृत्यु के बाद उसने इस्तीफ़ा दे दिया और उसे पेंशन मिल गई। कुछ दिन बाद उसने फिर नौकरी कर ली और बहादुरशाह तथा फ़र्रुख़सियर दोनों बादशाहों

आज्ञा दी। निजामुलमुल्क ने अपनी जान का खतरा समझकर विद्रोह कर दिया और उसने असीरगढ और बुरहानपुर पर अधिकार कर लिया। हुसेनअली सैयद का कुटुम्ब अभी दक्षिण में ही था। उसकी रक्षा करने और निजामुलमुल्क को दण्ड देने के लिए वह शीघ्र दक्षिण की ओर चल दिया। बादशाह भी उसके साथ था। वह सैयदो से तङ्ग आ गया था और उनसे छुटकारा पाने के लिए चिन्तित था। परिणाम-स्वरूप एक षड्यन्त्र रचा गया और सन् १७२० ई० में हुसेनअली कत्ल कर दिया गया। उसका डेरा लूट लिया गया और उसके मुख्य साथी पकड लिये गये।

अब्दुल्ला भाई की मृत्यु से बडा दुखी हुआ। उसने बडी नम्रता से बादशाह को पत्र लिखा और बादशाह ने उसके भाई के मारनेवालो को दण्ड देने का वचन दिया। जब बादशाह ने कुछ न किया तब अब्दुल्ला ने एक सेना एकत्र की। युद्ध मे वह पराजित हुआ और उसका डेरा लूट लिया गया। जाट-सरदार चूरामन भी शाही फौज के साथ था। वह लूट-मार करके सीधा अपने देश को वापस चला गया। अब्दुल्ला खाँ कैद हो गया और दो वर्ष बाद, सन् १७२२ ई० में, विष देकर मार डाला गया।

सैयदो की नीति तथा स्वभाव दोनो ही शान्ति स्थापित करने के लिए अनुपयुक्त थे। वे ८ वर्ष तक राज्य के मालिक रहे और उन्होंने बादशाह को कठपुतली की तरह नचाया। वे अपनी शक्ति का दुरुपयोग करते थे और अमीरो का अपमान करते थे। हुसेनअली अधिक हिम्मतवाला था, परन्तु बडा अभिमानी था। वह अमीरो के प्रति कटु वचन कह दिया करता था। एक बार तो उसने कहा था कि जिसके ऊपर वह अपने जूते का साया डाल देगा, वही दिल्ली का बाद-

---

ने उसे सम्मानित किया। फर्रुखसियर ने उसे फिर दक्षिण का सूबेदार बनाया और निजामुलमुल्क की उपाधि दी।

शाह हो जायगा। किन्तु अभिमानी होते हुए भी वे गरीवो पर दया करते थे और विद्वानो का आदर करते थे। अब्दुल्ला हिन्दुओ का मित्र था और वसन्त, होली आदि हिन्दू त्योहारो मे भाग लेता था। शासन-प्रवन्ध की योग्यता का दोनों में अभाव था। राज्य के काम की वे अधिक पर्वाह नही करते थे और विलासिता में समय विताते थे। अपने वर्त्ताव के कारण उनके शत्रु अधिक हो गये और यही उनके पतन का प्रधान कारण हुआ। उनके सम्वन्ध में औरङ्गजेब का यह कहना कि 'वारह के सैयदो को अधिक मुँह लगाना दोनो दुनिया मे अनिष्टकारी होगा' विलकुल ठीक था।

मुहम्मदशाह की मूर्खता-पूर्ण नीति—सैयदो से छुटकारा पाकर मुहम्मदशाह वहुत प्रसन्न हुआ। उसने निजामुलमुल्क को अपना वजीर वनाया और दूसरे ओहदे भी नये अफसरो को दिये। राजा जयसिंह सवाई तथा अन्य हिन्दू दरवारियो ने प्रयत्न करके हिन्दुओ पर से जजिया कर उठवा दिया। इन दिनो अनाज की क़ीमत वढ जाने से जजिया देने में वडी कठिनाई हो रही थी। नये वज़ीर ने शासन-प्रवन्ध में सुधार करने का प्रयत्न किया परन्तु वादशाह और उसके कृपा-भाजन दरवारियो ने उसे कुछ भी न करने दिया। वादशाह जवान और मूर्ख था। वह अपने मित्रो की मण्डली में वज़ीर की दिल्लगी किया करता था। उसका एक मुँहलगा साथी तो निजामुलमुल्क के सम्वन्ध में कहता था—"देखो दक्षिणी वन्दर कैसा नाचता है।" दरवारी लोग वज़ीर के कामो को वादशाह के सामने उल्टा-सीधा वयान करते थे और वह उनकी वातो पर फौरन विश्वास कर लेता था। ये लोग दो-तर्फी चाल चलते थे। वादशाह के सामने वजीर की निन्दा करते और कहते थे कि वह आपको गद्दी से उतारने का षड्यन्त्र करता है और वजीर के सामने वादशाह की निन्दा करके कहते थे कि वह वादशाह होने योग्य नही है। इसके अतिरिक्त, दरवारियो मे पारस्परिक विद्वेष के कारण वज़ीर को अपना कार्य करने में वडी कठिनाई होती थी। इन परिस्थितियो से ऊवकर सन्

१७२४ ई० में निज़ाम ने दिल्ली-दरबार छोड दिया। सन् १७२५ ई० में उसने हैदराबाद के सूबे पर अधिकार करके अपने लिए एक नया राज्य स्थापित कर लिया।

**साम्राज्य में गड़बडी**—जब कि दरबार में ऐसी दलबन्दियाँ हो रही थी, साम्राज्य भी छिन्न-भिन्न हो रहा था। रुहेला अफगानो ने कटहर (आधुनिक रुहेलखण्ड) में अपना स्वाधीन राज्य स्थापित कर लिया था। उनका सरदार दाऊद खाँ पहले किसी स्थानीय राजा के यहाँ नौकरी करता था, परन्तु शीघ्र ही उसने अपनी शक्ति बढा ली और ख्याति प्राप्त कर ली। उसका दत्तक पुत्र अलीमुहम्मद खाँ, जो पहले हिन्दू था, उसकी मृत्यु के बाद उत्तराधिकारी हुआ। उसने धीरे-धीरे अपने लिए एक राज्य स्थापित कर लिया। जाट सरदार चूरामन के बेटो ने भी सिर उठाया, लेकिन राजा जयसिंह सवाई ने उन्हें सन् १७२२ ई० में परास्त किया। उधर दक्षिण में मराठे बडे शक्तिशाली हो गये और पेशवा के नेतृत्व में उन्होने गुजरात, मालवा, बुन्देलखण्ड तथा बङ्गाल को रौंद डाला। बाजीराव द्वितीय के नेतृत्व मे उन्होने उत्तरी भारत में मुग़ल-राज्य पर भी छापा मारकर "चौथ" वसूल करना शुरू कर दिया।

इस प्रकार सन् १७३८-३९ में साम्राज्य अवनत दशा में था। शाहज़ादे आनन्द-प्रमोद में डूबे हुए थे, खजाना खाली था और दरबारी, चूहे-बिल्ली की तरह, परस्पर लडते थे। शासन में ज़रा भी दृढता नही थी। सेना ऐसी अव्यवस्थित थी कि किसी बाहरी आक्रमणकारी का सामना नही कर सकती थी। आपस की लडाइयो से देश में चारो ओर अशान्ति फैल रही थी। ऐसी स्थिति में फारस के बादशाह नादिरशाह ने सन् १७३९ ई० मे हिन्दुस्तान पर चढाई कर दी।

**नादिरशाह का आक्रमण (१७३९ ई०)**—नादिर कुली अपने प्रारम्भिक जीवन मे एक मामूली आदमी था। उसका बाप एक गरीब तुर्कमान था और भेड के चमडे की टोपियाँ तथा चोगे बनाकर अपना जीवन-निर्वाह करता था। नादिर कुली ने पहले एक सरदार के यहाँ

नौकरी की, फिर नौकरी छोड़कर लुटेरा बन गया। उसके साथियो की सख्या धीरे-धीरे बढने लगी और उसके भाग्य ने ऐसा पलटा खाया कि वह अपने पराक्रम से फरवरी सन १७३६ ई० में नादिरशाह के नाम से फारस के सिंहासन पर बैठ गया। सन् १७३७ ई० में उसने कन्दहार पर चढाई की और एक वर्ष बाद उस पर कब्जा कर लिया। अब वह मुगल-साम्राज्य पर चढाई करने का बहाना ढूँढने लगा। वह बडा कूटनीतिज्ञ था, इसी लिए अकारण हमला करने की बदनामी से बचना चाहता था। उसने पहले अपने राजदूतो को भेजकर दिल्ली-सम्राट् से यह प्रार्थना की कि कन्दहार से भागे हुए अफगानो को मुगल-सीमा में प्रवेश करने की आज्ञा न दी जाय। किन्तु जब बादशाह की ओर से लापरवाही की गई और राजदूतो को कोई निश्चित उत्तर नही मिला तो वे लौट गये और नादिरशाह ने चढ़ाई कर दी।

नादिरशाह ने अफगानिस्तान को बडी आसानी से जीतकर काबुल का खजाना और अन्य सामान ले लिया। मुग़लो ने सीमान्त-देशो की रक्षा का कोई प्रबन्ध नही किया था। इस कारण उसे पेशावर और लाहौर पर अधिकार करने मे कोई कठिनाई न हुई। ऐसी दशा में साम्राज्य की रक्षा करनेवाला, यदि कोई व्यक्ति था तो निजामुलमुल्क परन्तु बादशाह को उसका विश्वास नही था। लाहौर से नादिरशाह करनाल पहुँचा। वहाँ मुहम्मदशाह की अस्त-व्यस्त सेना ने उसका सामना किया परन्तु उसकी हार हुई। दिल्ली-सेना के हारने के कई कारण थे जिनमें दरबारियो की अयोग्यता और लडने के ढङ्ग की खराबी प्रधान थे। बादशाही सेनापति एक दूसरे से ईर्ष्या करते थे। निजाम भी, जो एक अनुभवी सैनिक था, अपने प्रतिद्वन्द्वियो के नाश की बाट देख रहा था। भारतीय सिपाही तलवार से लडना तो अच्छी तरह जानते थे परन्तु गोला-बारूद मे युद्ध करने में ईरानियो की तरह दक्ष नही थे। भारतीय तोपखाना पुराने ढङ्ग का था और शीघ्रता के साथ काम में नही लाया जा सकता था। हाथी भारतीय सेना के प्रधान

अङ्ग समझे जाते थे परन्तु फारसी सेना की बन्दूको के आगे वे ठहर नही सकते थे।

नादिरशाह ने शान के साथ दिल्ली नगर मे प्रवेश किया। वह महल में दीवान-खास के पास ठहरा। उसके सिपाहियो ने अनाज बेचने-वालो को सस्ते भाव पर अनाज देने के लिए तङ्ग किया जिससे नागरिको की एक भीड ने उन पर हमला कर दिया। उसके थोडे ही समय बाद, शहर मे यह अफवाह फैल गई कि नादिरशाह मर गया, जिससे नगर में बडी खलबली मच गई।

नादिरशाह ने क्रोधित होकर नगर मे कत्लआम का हुक्म दे दिया। सुबह ९ बजे से लेकर दोपहर के २ बजे तक शहरवालो का कत्ल होता रहा। इस भीषण हत्या-काण्ड से दुखित होकर, मुहम्मदशाह ने अपने कुछ विश्वासपात्र दरबारियो को नादिरशाह के पास भेजा और उससे प्रजा का कत्ल बन्द कराने की प्रार्थना की। नादिरशाह ने हत्या-काण्ड बन्द करा दिया। परन्तु शहर में लूट-मार जारी रही और ईरानियो ने बहुत-सा धन लूटा। लगभग ७० करोड रुपया लेकर और मुहम्मद-शाह को फिर गद्दी पर बैठाकर नादिरशाह अपने देश को लौट गया। उसके आक्रमण से साम्राज्य को बडी हानि पहुँची। मुगल-सम्राट् को बहुत-सा रुपया देना पडा और सिन्ध नदी के पश्चिम का देश फारस-साम्राज्य में मिला लिया गया।

**साम्राज्य की दशा**—नादिरशाह के आक्रमण से साम्राज्य का शासन अव्यवस्थित हो गया। केन्द्रीय सरकार के शक्तिहीन हो जाने के कारण सूबो मे भी शान्ति स्थापित रखना कठिन हो गया। जाटो और सिक्खो ने सरहिन्द पर आक्रमण करके, वहाँ एक अपने सरदार को राजा बना दिया। मराठो ने दक्षिणी तथा पश्चिमी सूबो पर अधिकार करके बिहार, बङ्गाल तथा उडीसा पर धावा करना आरम्भ कर दिया। दोआबा में अलीमुहम्मद खाँ रुहेला ने, कमायूँ के पहाडो तक अपना कब्जा कर लिया। उधर अवध में सआदतअली

ख़ाँ, बङ्गाल में अलीवर्दी ख़ाँ तथा दक्षिण में आसफजाह् निज़ामुलमुल्क जैसे वडे-वडे सूवेदारो ने अपने स्वाधीन राज्य स्थापित कर लिये।

मराठो और अफ़ग़ानो ने मुग़ल प्रदेशो पर भी हमला करना आरम्भ कर दिया था। मुहम्मदशाह् के शासन-काल के शेष दिन उन्ही से लड़ने में वीते। सन १७४८ ई० में उसकी मृत्यु हो जाने के वाद दरवार में षड्यन्त्र और दलवन्दी पहले से भी अधिक वढ गई, जिससे शासन का नियमित रूप से चलना असम्भव हो गया।

## मराठों का अभ्युदय

**वालाजी विश्वनाथ (१७१३-२० ई०)**—पहले कहा जा चुका है कि वहादुरशाह् ने शाहू को मुक्त कर दिया था और उसे दक्षिण जाने की आज्ञा दे दी थी। उसने सतारा पर अधिकार कर लिया और गद्दी पर वैठ गया। मुग़ल-दरवार में अधिक दिन रहने के कारण वह विलासप्रिय और काहिल हो गया था। इसलिए राज्य का सारा काम पेशवा के हाथो में चला गया। पेशवा के अधिकार को पुश्तैनी वना देनेवाला, कोकण के ब्राह्मण विश्वनाथ का पुत्र, वालाजीभट था। उसने अपनी चतुरता और योग्यता से मराठा-शासन को पुन सङ्गठित करके सारी दलवन्दियो का अन्त कर दिया। उसने खेती की उन्नति का उपाय किया और ठेकेदारो द्वारा भूमि-कर वसूल करने की प्रथा वन्द कर दी। सन् १७१७ ई० में उसने हुसेनअली सैयद से एक इकरारनामा किया था, जिसके अनुसार सैयद ने उसे दक्षिण में 'चौथ' और 'सरदेशमुखी' देना स्वीकार किया और उसे कुछ जागीर भी दे दी। इससे मराठो की शक्ति और वढ गई और वे गुजरात, मालवा तथा वुन्देलखण्ड में छापा मारने लगे।

वालाजी का शासन-सङ्गठन मुख्यत भूमि-कर की वसूली से सम्वन्ध रखता था। मराठा-राज्य को उसने ज़िलो में वाँट दिया। नक़द वेतन

की जगह राज्य के प्रधान अधिकारियो को जिलो की मालगुजारी सौंप दी गई। राजा का अधिकार नाम-मात्र को रह गया। पेशवा और सेनापति को देश की रक्षा का भार सौंपा गया और राजा की निजी सेना का अधिकाश उनकी अधीनता में रक्खा गया। राज्य के सभी अधिकारियो का ज़िलो के गाँवो की पूरी अथवा आशिक मालगुजारी पर अधिकार था और वे गाँव एक ही ज़िले में न होकर, कई ज़िलो में होते थे। इस प्रकार बालाजी के प्रयत्न से अधिकारी सब ज़िलो में दिलचस्पी रखने लगे और राज्य में ऐक्य की स्थापना हुई। उसने 'चौथ' और 'सरदेशमुखी' की दर बढाकर उन्हें, अकबर के समय में टोडरमल द्वारा अथवा शाहजहाँ के समय में सादुल्ला खाँ द्वारा निश्चित मालगुजारी की तरह, वसूल करने का नियम बना दिया। वह जानता था कि युद्ध और दुर्भिक्ष से पीडित दक्षिण देश अधिक रुपया न दे सकेगा, इसलिए लोगो पर बाकी पडी हुई रकम का मराठे हमेशा तकाज़ा करते रहेंगे। इसके अतिरिक्त, उसने एक ही ज़िले की वसूली का भार कई अधिकारियो को सौपा, जिससे देश पूरी तरह कब्ज़े मे आ जाय। इसका नतीजा यह हुआ कि हिसाब पेचीदा हो गया। हिसाब-किताब में केवल ब्राह्मणो के दक्ष होने के कारण राज्य में, उनका प्रभाव बहुत बढ गया। शाहू की अयोग्यता के कारण पेशवा को अपनी शक्ति बढाने का अच्छा अवसर मिला और धीरे-धीरे उसका अधिकार राजा की तरह हो गया।

**बाजीराव प्रथम (१७२०-४० ई०)**—सन् १७२० ई० में बालाजी विश्वनाथ की मृत्यु हो जाने के बाद, उसका बेटा बाजीराव प्रथम पेशवा हुआ। बाजीराव एक शक्तिमान् और हौसलामन्द आदमी था। उसने अपने बाप के पास शिक्षा पाई थी और युवावस्था से ही विजयो की एक बडी योजना बना रक्खी थी। मुगल-साम्राज्य के अध पतन के बाद उसे अपने प्रभाव को बढाने का अच्छा मौका मिल गया। सन् १७२४ ई० में उसने मालवा पर चढाई कर उसे जीत लिया। चार वर्ष बाद उसने निज़ाम को चौथ का बकाया अदा करने के लिए बाध्य किया और उसकी

मराठों में फूट डालनेवाली चाल को असफल कर दिया। सन् १७३१ ई० में मराठों ने गुजरात से "चौथ" और "सरदेशमुखी" वसूल की और दूसरे वर्ष मालवा को जीतकर वहाँ अपना राज्य स्थापित किया। उसी समय बुन्देलखण्ड और बरार पर भी चढाई की गई और उन पर अधिकार कर लिया गया। किन्तु बाजीराव अपनी इन विजयो से सन्तुष्ट होकर चुप बैठनेवाला आदमी नही था। सन् १७३७ ई० में एक बडी सेना लेकर वह दिल्ली की शहर-पनाह के पास आ पहुँचा। बादशाह ने अपनी सहायता के लिए निज़ामुलमुल्क को बुलाया परन्तु सन् १७३८ ई० में निज़ाम को भोपाल के निकट हराकर मराठो ने आगे नही बढने दिया और उसे सन्धि करने के लिए विवश किया। सीरोज की सन्धि के अनुसार मराठो को मालवा-प्रान्त तथा नर्मदा और चम्बल नदियो के बीच का सारा देश मिल गया। इसके अतिरिक्त पेशवा ने बादशाह से भी पचास लाख रुपया लडाई का खर्च वसूल किया। सन् १७३९ ई० में बाजीराव ने पुर्तगालियो को हराकर उनसे बैसीन का किला छीन लिया। अपने जीवन के अन्तिम भाग में उसने मुगल-प्रान्तो को मराठा अफ़सरो मे बाँटकर उनके विद्वेषो का अन्त कर दिया। इस योजना के अनुसार 'प्रत्येक सरदार 'अपनी हुकूमत की सीमा' के अन्दर इच्छानुसार कर वसूल कर सकता था और लूट-पाट कर सकता था। पेशवा को इसमें हस्तक्षेप करने का अधिकार नही था।

उस समय के मराठा-सरदारो में गायकवाड, शिन्दे, भोसला और होल्कर अत्यन्त प्रभावशाली थे। आगे चलकर इन लोगो ने अपने लिए स्वतन्त्र राज्यो की स्थापना की। बाजीराव ने उन्हें अलग रखने और अधिक प्रभावशाली न होने देने में अपनी महान् कुशलता का परिचय दिया। ऐसा करने में उसने महाराष्ट्र-मण्डल की एकता स्थिर रक्खी।

वास्तव में बाजीराव एक वीर सैनिक तथा महान् नेता था। उसे शासन की व्यवस्था में कोई विशेष अनुराग न था। उसके चारो ओर षड्यन्त्र हो रहे थे तथा भिन्न-भिन्न दल परस्पर लड रहे थे, इसलिए उसे

शासन-प्रबन्ध में सुधार करने का कोई अवसर न मिला। वह विलास-प्रिय था परन्तु राजकार्य में कभी शिथिलता नही आने देता था। उसने निज़ाम की योजनाओ को निष्फल कर दिया और दक्षिण में उसके प्रभाव को सीमित कर दिया।

**बालाजी बाजीराव (१७४०-६१ ई०)**—बाजीराव की मृत्यु होने पर उसका बेटा बालाजी बाजीराव पेशवा हुआ। बालाजी बाजी-राव के शासन में मराठा-शक्ति उन्नति की चरम सीमा को पहुँच गई। राघोजी भोसले तथा भास्कर पण्डित ने उडीसा को रौद डाला और बङ्गाल के सूबेदार अलीवर्दी ख़ाँ को पराजित किया। उन्होने मुर्शिदाबाद पर चढाई की, हुगली को ले लिया और सारे पश्चिमी बङ्गाल पर अधि-कार किया। अन्त में एक सन्धि हो गई जिसके अनुसार राघोजी को प्रतिवर्ष १२ लाख रुपया "चौथ" के बदले में मिलना निश्चय हुआ। बङ्गाल की सीमा निर्दिष्ट कर दी गई और मराठो ने उस सीमा के अन्तर्गत धावा न करने का वचन दिया।

सन् १७४८ ई० में शाहू की मृत्यु हो गई। बालाजीराव ने उससे एक लिखित आज्ञा प्राप्त कर ली थी, जिसके द्वारा उसे राजा के नाम से मराठा-साम्राज्य का शासन करने का अधिकार मिल गया था। अब पेशवा महाराष्ट्र का वास्तविक शासक हो गया। सन् १७४८ ई० में मुहम्मदशाह के मरने से मुगल-साम्राज्य की दशा ख़राब हो गई। भिन्न-भिन्न दलो के सरदार अपना आधिपत्य स्थापित करने की चेष्टा करने लगे। सफ़दरजङ्ग ने रुहेलो के विरुद्ध सिन्धिया और होल्कर से सहा-यता माँगी जिससे दोआबे मे भी मराठो को चौथ वसूल करने का अवसर मिला। जब सफ़दरजङ्ग अपने पद से हटा दिया गया तो मराठो ने उसके प्रतिद्वन्द्वी की सहायता करके राजधानी में भी अपना प्रभाव स्थापित कर लिया।

सन् १७४८ ई० में निज़ाम के मरते ही कर्नाटक में युद्ध छिड गया। 'गद्दी' के दावादारो ने अँगरेज़ो और फ़ासीसियो से सहायता माँगी।

धीरे-धीरे फ्रांसीसियो का हैदराबाद में प्रभाव बढने लगा और बुसी हैदराबाद में रहकर निज़ाम के राज्य की देख-रेख करने लगा। मराठे इन परिस्थितियो को ध्यान से देख रहे थे और धीरे-धीरे हैदराबाद से फ्रांसीसियो का प्रभाव हटाने का प्रयत्न कर रहे थे। सन् १७५८ ई० में बुसी वापस बुला लिया गया, जिससे बालाजीराव को अपने प्रयत्नो में सफलता प्राप्त हो गई। फिर क्या था, मराठो और निज़ाम मे युद्ध आरम्भ हो गया। सन् १७५९ ई० में उदगिर में मराठो ने निज़ाम-सेना को बुरी तरह हराया। मराठो और निज़ाम के बीच सन्धि हो गई, जिसके अनुसार मराठो को ६२ लाख वार्षिक आय की भूमि तथा असीरगढ, दौलताबाद, बीजापुर, अहमदनगर और बुरहानपुर के किले प्राप्त हुए। इस प्रकार निज़ाम की शक्ति बहुत घट गई और मराठे अत्यन्त प्रभावशाली हो गये। उत्तर और पूर्व में उन्होंने अपने धावे जारी रखे और राजपूताना में भी चौथ वसूल की।

सन् १७६० ई० मे मराठो की शक्ति अपनी चरम सीमा को पहुँच चुकी थी। उनका साम्राज्य चम्बल से गोदावरी तक और अरब सागर से बङ्गाल की खाडी तक फैला हुआ था। वे लगभग सारे हिन्दुस्तान से "चौथ" वसूल करते थे और राजपूत, जाट और रुहेले अफ़ग़ान सभी उनका लोहा मानते थे।

पानीपत की तीसरी लडाई (१७६१ ई०)—भारतीय विजय के बाद फारस लौटने पर नादिरशाह का चरित्र बिगड गया। उसने भीषण कठोरता से काम लेना शुरू किया, जिससे उसकी प्रजा और उसके अफसर असन्तुष्ट हो गये। उसके सिपाही "कज़िलबाशो" (लाल टोपी) ने उसे मारकर उसके सेनाध्यक्ष अहमद अब्दाली को बादशाह बनाया। नये बादशाह को अफगान अपना राष्ट्रीय वीर-पुरुष समझते थे। बहुत-से उसकी सेना मे भर्ती हो गये। अफग़ा-निस्तान पर अधिकार जमाने के बाद उसने हिन्दुस्तान पर कई बार चढाई की और दिल्ली के दरबार की निर्बलता तथा अमीरो के पारस्परिक

वैमनस्य के कारण उसे किसी प्रकार की रुकावट का सामना नही करना पडा। पजाब के सूबेदार की पराजय के बाद भयभीत दिल्ली-सम्राट ने पजाब को अफगानो के हवाले कर दिया। जीते हुए देश पर अपना सूबेदार नियुक्त कर अब्दाली अपने देश को लौट गया। उसकी अनुपस्थिति में मराठो ने पजाब पर धावा करके, अब्दाली के सूबेदार को निकाल बाहर किया और लाहौर पर अधिकार कर लिया (१७५८ ई०)। इस समाचार को सुनकर अब्दाली बहुत क्रुद्ध हुआ और एक बडी सेना लेकर उन्हे दड देने के लिए रवाना हुआ। मराठो ने भी एक बडी सेना एकत्र की, जिसका अध्यक्ष सदाशिवराव तथा सहायक अध्यक्ष पेशवा का बेटा विश्वासराव था। दोनो वीर अनेक मराठा सेनापतियो तथा एक अश्वारोही सेना, पैदल-सेना और इब्राहीम गर्दी द्वारा संचालित तोपखाने के साथ पूना से रवाना हुए। होल्कर, सिंधिया, गायकवाड तथा अन्य मराठा-सरदारो ने भी उनकी सहायता की। राजपूतो ने भी मदद भेजी और ३० हजार सिपाही लेकर भरतपुर का जाट-सरदार सूरजमल भी उनमे आ मिला।

पानीपत के मैदान मे दोनो सेनाएँ आ डटी। मराठा-दल में सरदारो की एक राय न होने के कारण, अब्दाली की सेना पर फौरन आक्रमण न हो सका। सूरजमल ने मराठो की प्राचीन युद्ध-शैली से काम लेने की राय दी और होल्कर ने भी उसके मत का समर्थन किया, किन्तु सदाशिवराव ने इब्राहीम गर्दी के तोपखाने की भयकर मार उदगिर के रण-क्षेत्र मे देखी थी। उसे उस पर पूरा भरोसा था और उसने अपना इरादा बदलने से इनकार कर दिया। इसके अतिरिक्त इब्राहीम ने यह कह दिया था कि यदि उसकी बात न मानी जायगी तो वह शत्रु की ओर चला जायगा। वह खुल्लमखुल्ला युद्ध करने के पक्ष में था। पहले हमले मे तो मराठो की विजय रही किन्तु विश्वासराव मारा गया। इसके बाद जो भयकर युद्ध हुआ, उसमे सदाशिवराव मारा गया और इब्राहीम घायल हुआ। मराठो का साहस भग हो गया। सिंधिया की टाँग में

चोट लगी और वह मैदान छोड कर भाग खडा हुआ। होल्कर भी भागकर भरतपुर चला गया जहाँ सूरजमल ने उसका समुचित सत्कार किया। यह समाचार पाकर पेशवा स्वयं उत्तर की ओर रवाना हुआ, और जब वह नर्मदा के पास पहुँचा, उसे एक पत्र मिला जिसमें लिखा था—

"दो मोती नष्ट हो गये, सत्ताइस सोने की मोहरें खो गईं और चाँदी तथा ताँबे की तो कोई गिनती ही नहीं हो सकती।"

पेशवा इस समाचार से बडा दुःखी हुआ। वह पहले ही से क्षय रोग में ग्रस्त था। उसे ऐसा धक्का लगा कि उसकी मृत्यु हो गई। पानीपत की पराजय तथा पेशवा की मृत्यु से सारा महाराष्ट्र नैराश्य के अन्धकार में डूब गया और उत्तरी भारत से मराठों का प्रभुत्व उठ गया।

अपने बाप के समान युद्ध-कला में कुशल न होने पर भी बालाजी पेशवा दूरदर्शी तथा बुद्धिमान राजनीतिज्ञ था। उसने निज़ाम की शक्ति भंग कर दी और महाराष्ट्र-मंडल को एकता के मंत्र में दृढ रक्खा। वह एक योग्य शासक भी था। उसने मालगुज़ारी के विभाग में सुधार किये और न्याय का अच्छा प्रबन्ध किया। राजकीय कर्मचारियों की योग्यता बढ़ाने के लिए वह बराबर प्रयत्नशील रहता था। उसने इसी काम के लिए संस्था भी खोली थी जिसमें मुन्शियों तथा अन्य अधिकारियों को उनके काम की शिक्षा दी जाती थी। उसने सेना की दशा को भी सँभाला और युद्ध की बहुत-सी सामग्री इकट्ठी की। परन्तु सिपाहियों को छावनियों में स्त्रियों को साथ रखने की आज्ञा देकर उसने बडी ग़लती की। इससे सेना में बडी शिथिलता आगई। वह अफ़ग़ानों की शक्ति का ठीक अनुमान न कर सका। पानीपत की हार का यह एक मुख्य कारण था।

**सन् १७४८ ई० के बाद साम्राज्य का अधःपतन**—सन् १७४८ ई० में मुहम्मदशाह की मृत्यु के बाद उसका बेटा अहमदशाह गद्दी पर बैठा। उसे न तो समुचित शिक्षा ही मिली थी और न उसमें शासन-प्रबन्ध करने की योग्यता ही थी। वह अपने निकम्मे मुसाहिबों के इशारे पर

काम करता और अपना सारा समय भोग-विलास में व्यतीत करता था। मालगुजारी वसूल न होने से सेना अव्यवस्थित हो गई और राज्य का आर्थिक दिवाला निकल गया। अधिकारी लोग किसानो से जितना कर चाहते थे, वसूल करते थे। जमीदार अपने आस-पास की जमीनो को हडप लेते और सडक पर यात्रियो को लूट लेते थे। सिपाहियो की तनख्वाह रुकी रहने से बागी सूबेदारो अथवा जमीदारो के विरुद्ध उन्हें भेजना कठिन हो गया था। दरबार के मुंहलगे अमीर जागीरो के लिए आपस में झगडा करते थे और अपनी सम्पत्ति बढाने के लिए अनुचित ढग से प्रजा को पीडित करते थे। मालगुजारी का अधिकाश भाग अमीरो के हाथ में चला जाता था। बादशाह के पास बहुत थोडी रक़म पहुँच पाती थी। दिल्ली की सडको पर दगे होते थे और बादशाह उपद्रवियो को दड देने में असमर्थ था। ईरानी और तूरानी दलो के नेता अपना प्रभुत्व रखने के लिए बडा उत्पात मचाते थे। ईरानी दल का नेता सफदरजग शिया था। तूरानी दलवाले उससे द्वेष रखते थे। तूरानी दल के नेता भूतपूर्व वज़ीर का पुत्र इन्तिजामुद्दौला और आसफजाह निज़ामुलमुल्क का पोता शिहाबुद्दीन इमादुलमुल्क थे। सफदरजग अपनी ग़लतियो के कारण पदच्युत कर दिया गया था। बादशाह ने उसके स्थान में इन्तिज़ाम को वज़ीर तथा इमाद को मीर बख्शी नियुक्त किया था। सफदरजग ने इसका जवाब एक विचित्र ढग से दिया। उसने एक सुन्दर हिजडे को कामबख्श का बेटा कहकर बादशाह घोषित कर दिया और आप उसका वज़ीर बन गया। बादशाह ने उससे युद्ध करने का निश्चय किया। युद्ध में सफदरजग तथा उसके जाट-मित्रो को मराठो और शाही सैनिको ने हरा दिया। सफदरजग हार कर अवध की ओर चला गया और वहाँ उसने अपने लिए एक स्वाधीन राज्य स्थापित कर लिया। एक के बाद एक सूबो के निकल जाने से दिल्ली-साम्राज्य के अन्तर्गत केवल दिल्ली के आस-पास की भूमि तथा युक्त-प्रान्त के कुछ जिले मात्र रह गये।

कुछ ही दिनो वाद वादशाह और इमादुलमुल्क में मनोमालिन्य हो गया। इमादुलमुल्क ने मराठो को अपनी ओर मिला कर वादशाह को वहुत भयभीत किया और वज़ीर का पद स्वय ग्रहण कर लिया। उसने कुरान लेकर वादशाह के प्रति स्वामि-भक्त रहने की शपथ खाई किन्तु अपनी शपथ का कोई ख्याल नही किया। सन् १७५४ ई० में वादशाह गद्दी से उतार दिया गया और उसकी आँखें फोड डाली गई। जहाँदारशाह का पुत्र मुहम्मद अज़ीज़ुद्दौला, आलमगीर द्वितीय के नाम से, गद्दी पर विठाया गया।

इस वादशाह के समय में साम्राज्य की दशा पहले से भी अधिक खराव हो गई। अहमदशाह अब्दाली न कई वार हिन्दुस्तान पर हमले किये और पजाव पर अधिकार कर लिया। दिल्ली-दरवार में मराठो का प्रभाव अत्यधिक वढ गया और उन्होने वज़ीर को सहायता देकर ईरानी दल को वडी आसानी से प्रभाव-रहित कर दिया। वज़ीर ने उसे गद्दी से उतार कर मरवा डाला और एक दूसरे मुग़ल शाहज़ादे को उसके स्थान में वादशाह वनाया। गद्दी का अधिकारी शाहज़ादा शाह-आलम दिल्ली से भाग गया और उसने अवध के नवाव वज़ीर के यहाँ शरण ली।

मराठो और वज़ीर के आचरण से अहमदशाह अब्दाली वहुत रुष्ट हुआ। उसने मराठो को दड देने का सकल्प किया और एक वडी सेना लेकर भारत पर चढाई कर दी। सन् १७६१ ई० में, पानीपत के रण-क्षेत्र में, मराठो को पराजित करके उसने उनको कितनी हानि पहुँचाई, इसका वर्णन पहले किया जा चुका है। अहमदशाह अब्दाली ने शाहआलम को वादशाह तथा शुजाउद्दौला को उसका वज़ीर वनाया। नजीवुद्दौला वादशाही सेना का प्रधान सेनापति नियुक्त किया गया। शाहआलम अधिकतर पूर्व में रहने लगा। आगे चल कर वह तथा वगाल का नवाव और अवध का नवाव वज़ीर अँगरेज़ो द्वारा सन् १७६४ ई० में वक्सर के युद्ध में पराजित हुए। उसने सन् १७६५ ई० में अँगरेज़ो

को बगाल, बिहार तथा उडीसा की दीवानी दे दी और उसके बदले में अँगरेज़ो ने उसे कडा और इलाहाबाद के ज़िले दे दिये और २६ लाख रुपया सालाना की पेंशन दी। वह अँगरेज़ो की शरण में सन् १७७१ ई० तक रहा और फिर मराठो के बुलाने पर दिल्ली चला गया। मराठो ने उसे दिल्ली का बादशाह बनाया।

शाहआलम दिल्ली तो चला गया किन्तु वहाँ बादशाह होने पर भी उसके हाथ में कुछ अधिकार नही था। दिल्ली और आगरा के ज़िलो के बाहर उसकी कोई हुकूमत नही थी। दरबार के अमीरो का पारस्परिक विद्वेष पहले ही का-सा बना रहा। उनमें मुठभेड हो जाना नित्य की घटना हो गई थी। उस समय साम्राज्य के दो मुख्य सहायक अवध का नवाब वज़ीर शुजाउद्दौला तथा नजफ खाँ थे किन्तु पहले की सन् १७७५ में तथा दूसरे की सन् १७८२ ई० में मृत्यु हो जाने के कारण बादशाह को बडी विकट परिस्थिति का सामना करना पडा। उसने महादाजी सिन्धिया से सहायता माँगी और उसने दिल्ली में आकर शान्ति स्थापित कर दी। सिन्धिया ने जागीरदारो की जागीरो के सम्बन्ध में छान-बीन करना शुरू किया। इसलिए वे उसके विनाश का उपाय सोचने लगे। उन्होंने राजपूतो तथा पठान-सरदार गुलामकादिर से मेल करके महादाजी का प्रभाव नष्ट करना चाहा। गुलामकादिर ने दिल्ली पर चढाई करके उसे जीत लिया और तख़्त-ताऊस पर बैठ कर हुक्का पिया। उसने महल का सब सामान लूट लिया और शाहआलम को पदच्युत करके उसकी आँखें फोड डाली (सन् १७८८ ई०)।

शाहआलम ने सहायता के लिए महादाजी सिन्धिया के पास खबर भेजी। महादाजी ने अपनी सेना का सगठन किया और बादशाह के अपमान का बदला लेने का निश्चय करके गुलामकादिर पर चढाई कर दी। उसने पठानो को पराजित करके दिल्ली से भगा दिया और शाहआलम को पुन सिंहासन पर बिठा दिया। शाहआलम महादाजी को अपने बटे के समान समझता था और राज्य का सारा अधिकार उसी

को दे दिया था। कुछ दिन वाद शाहआलम अंगरेजो से "शन पान लगा। उसके बाद अकबरशाह द्वितीय (१८०६-३७ ई०) तथा बहादुरशाह (१८३७-५८ ई०) शाहशाह की उपाधि धारण कर दिल्ली की गद्दी पर बैठे परन्तु उनका अधिकार कुछ भी न था। सन १८५७ ई० के सिपाही-विद्रोह में बहादुरशाह वाग़ियो का नेता हुआ। वह गद्दी से उतार दिया गया और कैद कर रगून भेज दिया गया। इसके वाद मुग़ल-साम्राज्य का अन्त हो गया। जिस मुगल-साम्राज्य की कीर्ति सारे ससार में व्याप्त थी उसका ऐसा करुणाजनक अन्त हुआ।

**मुग़ल-साम्राज्य के पतन के कारण**—औरगजेब का धार्मिक पक्ष-पात तथा विदेशियो के आक्रमण ही मुग़ल-साम्राज्य के अध पतन के एकमात्र कारण न थे। इसके अलावा और भी कारण थे जो शाहजहाँ के समय से मौजूद थे। मुगल-शासन स्वेच्छाचारी था। देश मे शान्ति स्थापित रखना ही उसका प्रधान लक्ष्य था। जनता को विकास की ओर ले जानेवाली सस्थाएँ मुग़लो ने स्थापित नही की। वे प्रजा की दृष्टि में सदैव विदेशी बने रहे जिससे देश की उनसे हार्दिक सहानुभूति नही रही। वादशाह का दर्वार सभ्यता का केन्द्र था। इसलिए अमीरो और सरदारो का वही जमघट रहने से तरह-तरह की दलवन्दियाँ और षड्-यन्त्र हुआ करते थे। देहातो में रहना लोग पसन्द नही करते थे। पिछले समय के वादशाहो में दर्वारियो को दवाने की शक्ति नही थी जिससे अमीरो का पारस्परिक विद्वेष वढ गया और राज्य की प्रतिष्ठा कम हो गई। इसके अतिरिक्त अमीर स्वय अयोग्य हो गये। आसफ खाँ, महाबत खाँ, सादुल्ला खाँ तथा मीरजुमला जैसे उच्च कोटि के राजनीतिज्ञो के पोते विलासिता के वातावरण में रह कर निकम्मे हो गये। साम्राज्य को कायम रखने के लिए युद्ध करना अनिवार्य था परन्तु औरगजेब की लवी लडाइयो और सुयोग्य सैनिको के अभाव के कारण मुगल-सेना अव अशक्त हो गई थी। सेना के सवसे अच्छे सिपाही मध्य एशिया के सैनिक समझे जाते थे किन्तु औरगजेव के वाद मुग़ल-सेना मे उनकी भरती रुक गई

थी। यही सैनिक मराठो का सामना कर सकते थे। सूबेदारो के स्वतन्त्र होकर इच्छानुसार काम करने से प्रान्तीय शासन का केन्द्रीय शासन से कोई सम्बन्ध नही रहा। किसानो ने कर देना बन्द कर दिया और सडको की मरम्मत न होने के कारण व्यापार भी बन्द होने लगा। धीरे-धीरे सारे देश में अराजकता फैल गई। हिन्दुओ के धर्म तथा रहन-सहन पर आघात करने से सारी हिन्दू-जनता के हृदय में विद्रोह की आग धधकने लगी जिससे मुग़लो के सच्चे सहायक राजपूतो ने भी विपत्ति के समय उनका साथ न दिया।

औरगजेब के उत्तराधिकारियो के समय में बडी शीघ्रता से साम्राज्य का विनाश होने लगा। इसके कई कारण थे जिनमें बादशाहो की अकर्मण्यता, विदेशियो के आक्रमण तथा आर्थिक सकीर्णता प्रधान है। नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणो से शाही खजाना खाली हो गया और दिल्ली-साम्राज्य की धाक बिलकुल नष्ट हो गई। राज-मुकुट एक प्रकार का खिलौना हो गया जिसे दर्बार के महत्वाकाक्षी अमीर इच्छानुसार अपने इशारो पर नाचनेवाले शाहजादो को दे देते थे। बिना आर्थिक सुप्रबन्ध के कोई राजनीतिक सगठन स्थायी नही हो सकता। अकबर के समय के सभी नियम ढीले पड गये। शासन-प्रबन्ध सुव्यवस्थित न होने से वाणिज्य-व्यवसाय तथा कारीगरी को बडी हानि पहुँची। राजधानी के निकटवर्ती जिलो में लूट-पाट और डकैतियाँ हुआ करती थी। बादशाह उत्पातियो को दड देने का कोई प्रबन्ध नही कर सकता था। इस तरह अठारहवी शताब्दी के मध्य तक साम्राज्य का एकदम आर्थिक दिवाला निकल गया। बादशाह के नाम की कुछ भी प्रतिष्ठा न रही। देश में कानून का भय न रहा, लूट-मार होने लगी। ऐसी स्थिति में साम्राज्य का पतन अवश्यम्भावी हो गया।

सक्षिप्त सन्‌वार विवरण

| | |
|---|---|
| जाजऊ की लडाई . . . .. | १७०७ ई० |
| गुरुदासपुर के किले पर मुग़लो का अधिकार .. | १७१६ ,, |

| | |
|---|---|
| चूरामन से सन्धि .. | १७१८ ई० |
| छबीलेराम का विद्रोह .. | १७१६ " |
| हुसेनअली का कत्ल .. . | १७२० " |
| अब्दुल्ला खाँ की मृत्यु . | १७२२ " |
| बाजीराव (प्रथम) की मालवा पर चढ़ाई .. | १७२४ " |
| नादिरशाह का कन्दहार जीतना . . | १७३७ " |
| नादिरशाह का भारतवर्ष पर आक्रमण . | १७३६ " |
| बाजीराव (प्रथम) का पुर्तगालियों को पराजित करना | १७३६ " |
| शाहू की मृत्यु .. | १७४८ " |
| मुहम्मदशाह की मृत्यु . .. | १७४८ " |
| निजामुलमुल्क की मृत्यु .. .. | १७४८ " |
| अब्दाली का लाहौर को जीतना .. .. | १७५८ " |
| पानीपत की लड़ाई .. .. .. | १७६१ " |

# अध्याय २७

## मुगल-कालीन सभ्यता तथा संस्कृति

मुगल-शासन—मुगल-राज्य बिलकुल फौजी न था, यद्यपि उसकी प्रतिष्ठा और शक्ति बहुत कुछ सेना पर निर्भर थी। एक दो को छोड़ बाकी सभी मुगल-सम्राट् निरकुश शासक थे, परन्तु प्रजा के हित का बराबर ध्यान रखते और अन्याय करनेवालो को कठोर दड देते थे। मन्त्रियो के होने पर भी वे वस्तुत पूर्ण स्वेच्छाचारिता से काम लेते थे। उनके अधिकार भी अपरिमित थे। उनका शब्द ही कानून होता था, और उनके हुक्म के औचित्य अथवा अनौचित्य का प्रश्न करने का किसी को अधिकार नही था। वर्तमान काल की कौंसिलो और पार्लियामेंटो की तरह उस समय प्रजा के लिए कानून बनाने की कोई सस्थाएँ नहीं थी। हिन्दूओ और मुसलमानो के मुकदमो का फैसला उनके धर्म-ग्रन्थो के निर्देश के अनुसार होता था। उसमे बादशाह किसी प्रकार का हस्तक्षेप नही कर सकता था। फौजदारी के मुकदमो का फैसला बादशाह के बनाये हुए कानूनो के अनुसार किया जाता था। आईन-अकबरी से पता लगता है कि अफसरो के लिए भी कुछ नियमो का विधान किया गया था। औरगजेब के समय में काजियो की सहायता के लिए मुसलमानी धर्म-ग्रन्थो के आधार पर फतवा-ए-आलमगीरी नामक कानून की पुस्तक तैयार की गई थी। मुगलो का शासन-प्रबन्ध सुव्यवस्थित और सुदृढ था। समय के आवश्यकतानुसार उसमें सशोधन भी किया जा सकता था। मुगलो नें भारतीय सस्थाओ और आदर्शों की अवहेलना नही की, वरन् जहाँ कहीं उनसे लाभ की आशा हुई वहाँ उन्होने उनका अनुसरण किया। वाकअनवीस

तथा अन्य गुप्तचरो द्वारा केन्द्रीय सरकार को प्रान्तीय सरकारो का सारा हाल मालूम होता रहता था। पता लगते ही प्रजा पर अत्याचार करने से उन्हे रोका जाता और केन्द्रीय सरकार के पास रिपोर्ट भेजनी पडती थी। दूर-दूर के प्रान्तो की निगरानी का काफी प्रवन्ध नही था। परन्तु यह निश्चित है कि अधिकारियो को वादशाह की ओर से प्रजा को कष्ट न देने की वरावर ताकीद की जाती थी। अकवर एक राष्ट्रीय शासक था। हिन्दू और मुसलमान दोनो उसका समान आदर करते थे। शाहजहाँ अपनी प्रजा की उसी प्रकार रक्षा करता था जिस प्रकार वाप अपने वच्चो की करता है। हिन्दुओ के साथ मुगल-शासको का व्यवहार अपने पूर्ववर्ती सुलतानो की अपेक्षा अधिक सौजन्य-पूर्ण था। अकवर के समय मे टोडरमल, मानसिह तथा वीरवल जैसे हिन्दू भी मन-सवदारी के ऊँचे से ऊँचे पद पर पहुँचकर वादशाह के अतरग मित्र तथा विश्वासपात्र हो गय थे। शाहजहाँ के समय में जयसिह और जसवन्तसिह उसके प्रवान सेनापति थे। औरगजेव भी पूर्णतया हिन्दुओ को अलग नही कर सका। देश में पूर्ण शान्ति होने से कला-कौशल की वडी उन्नति हुई जिससे प्रजा की आर्थिक दशा पर अच्छा प्रभाव पडा। शाहजहाँ के राजत्वकाल के अतिम भाग में शासन-प्रवन्ध कुछ ढीला होने लगा था। जागीर-प्रथा फिर मे प्रचलित हो गई थी जिससे किसानो की वडी हानि हुई। केन्द्रीय सरकार की शक्ति को भी इससे वडा धक्का पहुँचा। जागीरदारो के अधिकार वढ जाने से देहातो के लोगो का वडा अहित हुआ। योरोपीय यात्रियो के विवरणो से मालूम होता है कि प्रान्तो के सूवेदार प्रजा को कष्ट देते थे और अधिक कर वसूल करते थे। सडकें सुरक्षित नहीं थीं। यात्रियो को डाकू लूट लिया करते थे। राजनीति पर धीरे-धीरे धर्म का गहरा प्रभाव पड रहा था। औरगजेव ने तो अपने पूर्ववर्ती शासको की उदार नीति को बिलकुल ही उलट दिया था। माल-गुज़ारी के प्रवन्ध में अनेक दोष पैदा हो गये थे। अफसरो को रिआया से कर वसूल करने में कोड़े मारने की आज्ञा दे दी गई थी। यदि किसान

खेती करने से इन्कार करता तो उसको कोडो की मार दी जाती थी और यदि वह जान-बूझ कर ज़मीन बजर छोड देता तो उससे कर वसूल कर लिया जाता था। बादशाह की इस नीति से अमीर लोग अधिक निर्भय होकर प्रजा पर अत्याचार करने लगे। सभी अधिकार उसके हाथ में होने के कारण चारो ओर अविश्वास फैल गया और साम्राज्य के नाश की तैयारी होने लगी।

मुगल-शासन में कुछ दोष भी थे जिनका उल्लेख करना आवश्यक है। देहात मे पुलिस तथा न्याय के प्रबन्ध की ओर मुगलो ने काफी ध्यान नहीं दिया। उनकी सज़ाएँ कभी-कभी अत्यत कठोर तथा निर्दयता-पूर्ण होती थी। जनता की शिक्षा तथा आर्थिक उन्नति का उन्होने कोई उपाय नही किया। प्रत्येक बादशाह के मरने के बाद गद्दी के लिए युद्ध अवश्य होता था जिससे राज्य में बडी अशान्ति फैलती थी। इसे रोकने के लिए वे कोई प्रबन्ध नही कर सके। मध्य एशिया तथा फ़ारस के साथ वे किसी निश्चित नीति का अनुसरण नही करते थे। अधिक समय तक वे क़न्द-हार को अपने अधिकार मे न रख सके। सीमा की रक्षा का उन्होने यथोचित प्रबन्ध नही किया। इसका नतीजा यह हुआ कि जब ईरानियो और अफ़ग़ानो ने हिन्दूकुश पर्वत के दर्रों में होकर हिन्दुस्तान पर आक्रमण किये तो एशिया का सबसे समृद्धिशाली साम्राज्य उनका सामना न कर सका।

वास्तु-कला—मुगलो को इमारत बनाने का बडा शौक़ था। उनके बनवाये हुए महलो, किलो, मसजिदो, मकबरो तथा अन्य इमारतो से उनकी असाधारण प्रतिभा तथा सुरुचि का पता लगता है। मुग़लो के आगमन से पहले, हिन्दुस्तान मे गृह-निर्माण-कला की अनेक शैलियाँ प्रचलित थी। तुगलक सुलतानो की सुदृढ इमारतो और बगाल, जौन-पुर, बीजापुर और गोलकुडा आदि प्रान्तो की इमारतो की शैलियों में बहुत कम सादृश्य है। गुजरात की कला इन सबसे निराली है। वहाँ

की इमारतो की अत्यधिक सजावट हिन्दू और जैन-कलाओं का स्पष्ट प्रभाव प्रकट करती है।
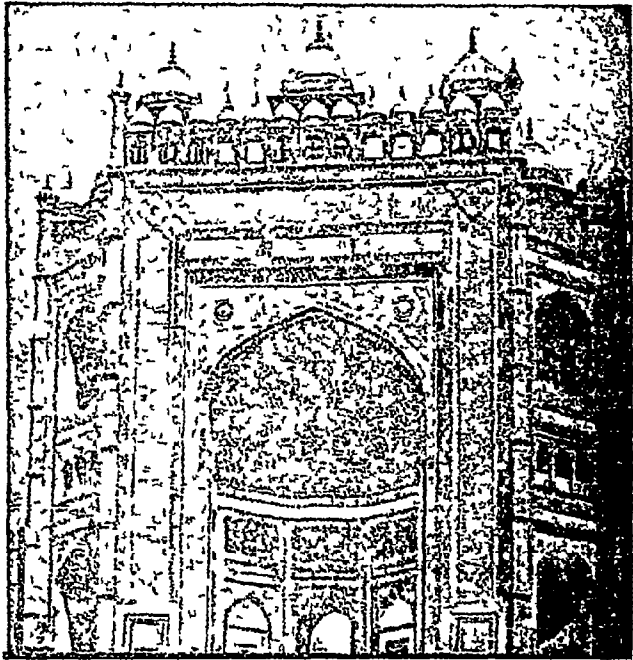
बुलन्द दरवाजा—फतहपुर सीकरी

मुगल-वास्तुकला में हिन्दू और मुसलमानी कलाओ का सम्मिश्रण है। मुग़लो के पूर्वजो ने वास्तुकला-सम्बन्धी आदर्श फारस से लिये थे परन्तु भारत में उनके वशजो ने भारतीय आदर्शो को ग्रहण कर लिया। इसलिए इस नवीन कला को भारत-फारसी कला कहना अधिक उपयुक्त होगा। इसमे भारत और फारस की कला का हेल-मेल है। हिन्दू-कला के पतले स्तभ आदि सजावट के तत्त्वो का—मेहराव, खिडकी के पर्दे,

गुम्बज आदि—मुसलमानी कला के तत्त्वो के साथ सम्मिश्रण करने से इस नवीन कला का आविर्भाव हुआ था। फारसी कला की खास चीजें—जिनसे मुगलो को बडा प्रेम था—रगीन खपरैल, चित्रकारी, सादगी और नकशे की सुन्दरता, बाग तथा सगमरमर का प्रयोग आदि थे। मुगलो ने अपनी इमारतो मे इन चीजो का भी समावेश किया था।
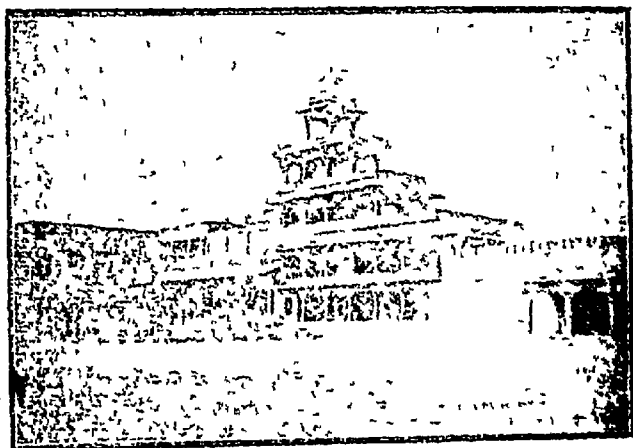
पञ्चमहल—फतहपुर सीकरी

बाबर ने हम्माम, तहखाने तथा बावलियो के बनवाने के लिए विदेशी कारीगरो को बुलाया था। सूर सुलतानो की बनवाई हुई दो इमारतें—सहसराम का शेरशाह का मकबरा तथा दिल्ली का पुराना क़िला—रगीन टाइल, सतह की सजावट तथा गुम्बजो के लिए अत्यत प्रसिद्ध हैं। अकबर ने देशी सामग्री तथा कारीगरो की सहायता से अपनी इमारतो मे सौन्दर्य तथा सुरुचि के विदेशी आदर्शो का अच्छा समावेश किया। उसने अपने भवनो में लाल पत्थर का प्रयोग कराया। लाल पत्थर पर खुदाई का काम करने मे बडी कठिनाई होती है फिर भी कारी-

गरो ने आश्चर्यजनक कौशल दिखाया। अकबर के समय की पहली इमारत हुमायू का मकबरा है। उसमें संगमरमर का प्रयोग पहले-पहल किया गया है और उसमें फारसी कला का प्रभाव भी अधिक स्पष्ट दिखाई देता है। उसके शासन-काल की अन्य प्रसिद्ध इमारतें हैं बुलन्द दरवाजा, शेख सलीम चिश्ती का मकबरा, जाम-मसजिद, दीवान खास, पचमहल, और मरियम-उज़्-ज़मानी का महल (जो फतहपुर सीकरी में मौजूद है)।
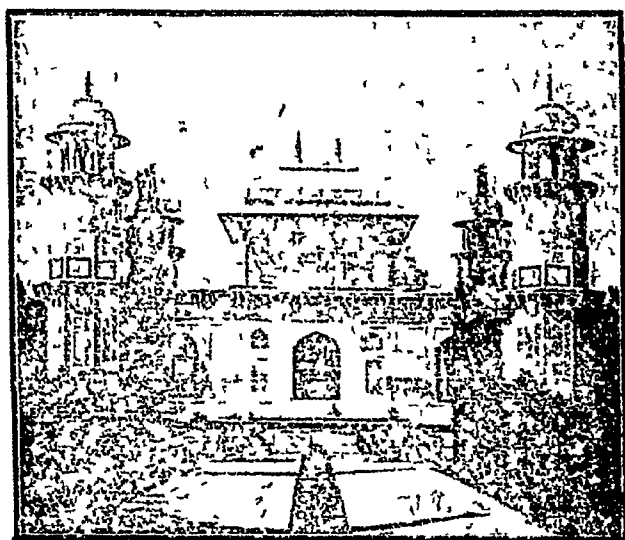
इतमादुद्दौला का मक़बरा

इसके अलावा आगरा (१५६४ ई०) और इलाहाबाद (१५७३-८३ ई०) के क़िले भी उसी के बनवाये हुए हैं। उसने अपने लिए सन् १५६३ ई० में भव्य मकबरे का निर्माण आरम्भ कराया था जिसे उसकी मृत्यु के बाद जहाँगीर ने पूरा करवाया। वह हिन्दू और मुसलमान दोनो से काम लेता था। आगरा और सीकरी की इमारतो में राजपूताना की हिन्दू-

कला का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। खिडकियाँ, चपटी छतें तथा मिहराबो के स्थान में खडे दरवाजे—यह सब हिन्दू-कला के प्रधान तत्त्व उसकी इमारतो में पाये जाते है।
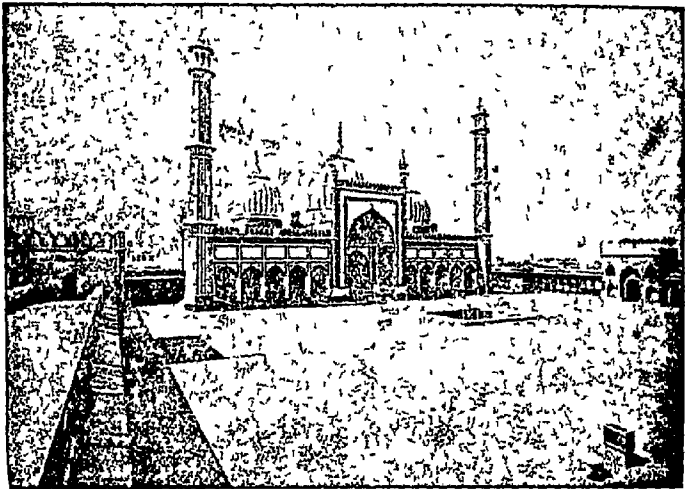
जामा-मसजिद (दिल्ली)

नूरजहाँ और जहाँगीर दोनो सौन्दर्योपासक थे। परन्तु उन्होने कोई बडी इमारतें नही बनवाई। जहाँगीर के समय की सबसे प्रसिद्ध इमारत केवल इतमादुद्दौला का मकबरा है जो सन् १६२८ ई० में तैयार हुआ था। यह सफेद सगमरमर का बना हुआ है और इसमे ही पहली बार पच्चीकारी का काम हुआ है। शाहजहाँ के गद्दी पर बैठते ही मुग़ल-वास्तुकला का स्वर्ण-काल आरम्भ हुआ। वह बडा शानदार बादशाह था और उसे इमारत बनाने का शौक था। उसके भवनो की शान-शौकत, उनके अनुपम सौन्दर्य और बनावट तथा पत्थरो द्वारा भावो की सुन्दर अभिव्यजना एव प्रभावोत्पादन के लिए रग के प्रयोग पर अवलबित है। उसकी सबसे प्रसिद्ध इमारतो में 'ताज', आगरे के किले की मोती मसजिद,

और उसके बसाये हुए नगर शाहजहाँनाबाद (दिल्ली) की जाम-मसजिद तथा दीवान-खास और दीवान-आम है। दीवान-खास की भव्यता तथा
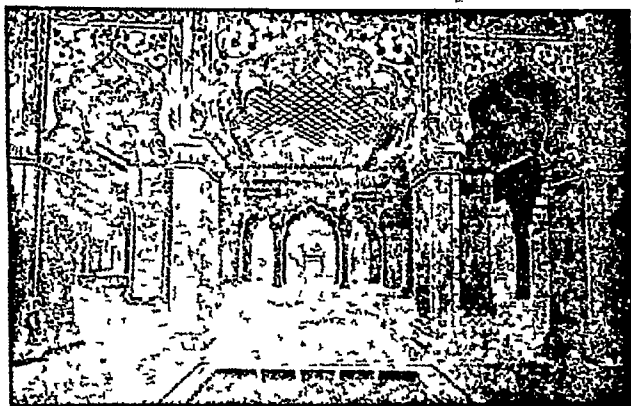
दीवान-खास (दिल्ली)

सौन्दर्य निस्सदेह उसकी दीवार पर अंकित निम्न-लिखित शब्दो की सत्यता को प्रमाणित करते है—

अगर फिरदौस बर रूए ज़मीं अस्त।
हमीं अस्तो हमीं अस्तो हमीं अस्त॥

अर्थात्—यदि भूमि पर कही आनन्द का स्वर्ग है, (तो) वह यही है, यही है, यही है।

ताज शाहजहाँ की प्यारी बेगम मुमताजमहल का स्मारक है। वह ससार की सर्वोत्कृष्ट इमारत है। साधारण दर्शक भी उसके सौन्दर्य को देखकर मुग्ध हो जाता है। उसके गुम्बज बहुत बढ़िया है। उसकी सजावट अनुपम है। उसके बाग, मसजिद, फाटक सभी उसके सौन्दर्य को बढ़ाते है। पच्चीकारी का काम भी उसमें उच्च कोटि का है। यह

जगत्प्रसिद्ध मकबरा मुमताज़महल की मृत्यु के बाद सन् १६३१ ई० में बनना आरम्भ हुआ था और १६५३ ई० में समाप्त हुआ।

औरंगज़ेब के सिंहासनारोहण के बाद मुगल-कला की अवनति हो गई। इमारत बनाने का न तो उसे शौक था और न उसके पास इतना समय ही था कि वह इस तरफ ध्यान करता। उसने केवल थोड़ी सी मसजिदें बनवाई, जिनमें लाहौर की बादशाही मसजिद अधिक प्रसिद्ध है। यह
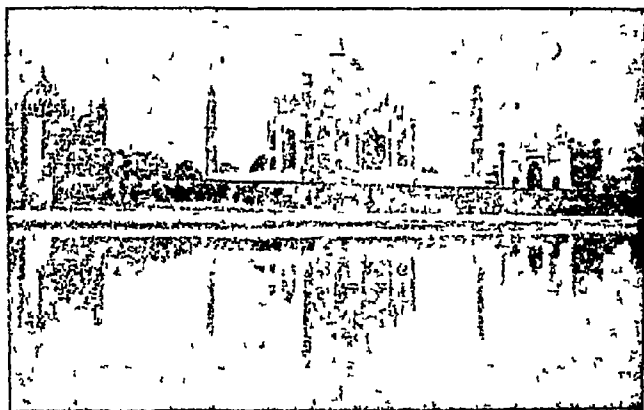
ताजमहल

मसजिद दिल्ली की मसजिद का नमूना है परन्तु सजावट में उससे बहुत घटिया है। इससे मुगलों की रुचि के ह्रास का पता लगता है।

हिन्दुओं ने भी नवीन शैली के अनुसार बहुत-सी इमारतें बनवाईं जिनमें वृन्दावन, सोनागढ़ (बुन्देलखंड-स्थित), एलौरा के मंदिर और अमृतसर का सिक्खों का मंदिर अधिक प्रसिद्ध हैं।

चित्र-कला—भारतवासियों को प्राचीन काल से ही चित्रकला का ज्ञान था। अजन्ता के चित्र इस कला के सबसे प्राचीन नमूने हैं। पूर्व-मध्यकाल में चित्रकारी तो होती थी, परन्तु कुछ मुसलमान बादशाहों की

मोती मसजिद का भीतरी भाग

धार्मिक कट्टरता के कारण उसकी समुचित उन्नति नही हो सकी थी। मुग़लो के आक्रमण से चित्र-कला पुनर्जीवित हुई। उन्होने एक नवीन शैली का उद्‌घाटन किया जो प्रारम्भ मे फारसी कला से अधिक प्रभावित थी परन्तु धीरे-धीरे भारतीयता के रग में रँग गई। शुरू में फारसी कला का मुगल-चित्र-कला पर अधिक प्रभाव पडा था। हिरात के वेहज़ाद ने जिस प्रकार की चित्रकारी को उन्नति की पराकाष्ठा तक पहुँचाया था वह मुगलो के हिन्दू और मुसलमान चित्रकारो के लिए आदर्श हुई।

निर्वासन के वाद जव हुमायूं वादशाह फारस से लौटा तो वह अपने साथ वहाँ से दो चित्रकारो—मीर सैयदअली, अवदुस्समद—को ले आया था और उसने उनसे प्रसिद्ध फारसी काव्य "अमीर हमज़ा" को चित्राकित कराया। अकवर चित्र-कला का अनन्य प्रेमी था। वह उसे ईश्वर की महिमा समझने का एक साधन समझता था। फारसी तथा भारतीय कलाओ का निकट सम्वन्ध स्थापित करके उसने मुगल-कला का आविर्भाव किया। उसके दर्वार के हिन्दू चित्रकारो में वसावन, दसवत, साँवलदास, लाल तथा नौहन और मुसलमान चित्रकारो मे मीर सैयदअली, ख्वाजा अवदुस्समद, फारूख वेग और मुराद मुख्य थे। इन चित्रकारो को रज़मनामा (महाभारत), वावरनामा, अकवरनामा तथा निज़ामी के काव्य को 'चित्राकित' करने का काम सौपा गया था। मनुष्यो की आकृति का चित्रण करना इस्लाम-धर्म के विरुद्ध है। परन्तु अकवर उदार मुसलमान था। उसके समय के चित्रो में चित्राकित पुस्तकें तथा वादशाह और उसके दरवारियो के चित्र मुख्य है। इन चित्रकारों की रचनाओ की शोभा को खुशखत लिखनेवालो तथा सुनहरा रग करनेवालों की सहायता ने और भी वढाया। कपडो पर भी चित्र वनाये जाते थे किन्तु छोटे पर्दों पर। वादशाह को चित्रो से इतना प्रेम था कि वह प्रति-सप्ताह चित्रकारो के काम का निरीक्षण करता और उन्हें पारितोषिक देता था। चित्रकारो की कृतियाँ इतनी सुन्दर होती थी कि कट्टर लोग भी उनकी क़द्र करने लगे थे। अवुलफज़ल इस सम्वन्ध में लिखता है—

पक्षी—मुगल-चित्रकला

नही दिया। परन्तु यह नही कहा जा सकता कि उसने अपने जीवन भर इसी नीति का अनुसरण किया। इस बात का काफी प्रमाण मौजूद है कि उसके शासन-काल में भी कला की उन्नति हुई थी। उसके काल के जो चित्र मिले हैं उनसे जान पडता है कि वे उसी की आज्ञा से बनाये गये थे क्योकि उनमें वह कही पढता हुआ, कही शिकार करता हुआ, कही किसी किले पर हमला करता हुआ अंकित किया गया है। जिस समय औरंगजेब का बेटा मुहम्मद सुलतान क़ैद में बीमार था, उसके स्वास्थ्य की दशा जानने के लिए वह, समय-समय पर, उसके चित्र बनवाकर मँगवाया करता था। औरंगजेब की मृत्यु के बाद कला का ह्रास होने लगा। मुहम्मदशाह ने स्वयं अकबर की तैयार कराई हुई 'रज्मनामा' की चित्रांकित पुस्तक सवाई जयसिंह को दे दी। यह शाही पुस्तकालय की एक अमूल्य संपत्ति थी। मुग़ल-दरबार से प्रोत्साहन न पाने पर कलाकार लखनऊ, हैदराबाद आदि शहरो को चले गये।

मुगलशैली का ह्रास होने के बाद राजपूतकला का आविर्भाव हुआ। इस समय चित्रकार हिन्दू राजाओ अथवा हिन्दू जनता के लिए ही अधिकांश चित्र तैयार करते थे जिनमें प्राय हिन्दुओ की पौराणिक कथाएँ और समाज और ग्राम्य-जीवन के दृश्य चित्रित किये जाते थे। लेखन-कला का भी मुगलो के दरबार में बडा प्रचार था। अकबर के समय में इस कला में इतनी उन्नति हो गई थी कि लिखने की आठ भिन्न-भिन्न शैलियो का विकास हो चुका था। मुगल-कालीन पुस्तको तथा मकबरो में इस कला के नमूने पाये जाते हैं। सुन्दर लिखावट का इस कला में इतना आदर होता था कि एक लेखक ने तो यहाँ तक कहा कि "लेखनी सृष्टि की स्वामिनी है। जो उसे ग्रहण करता है उसके लिए अपार सम्पत्ति लाती है और अभागों को भी धन प्रदान करती है।"

संगीत-विद्या—औरंगजेब के सिवा बाकी सभी मुगल बादशाहो को संगीत-विद्या से बडा प्रेम था। बाबर ने स्वयं अनेक गीत गाने के लिखवाये थे। उसने बडी भावुकता के साथ हिरात के दरबार के गायको

"धर्मग्रन्थ के शब्दो का अक्षरश: अनुसरण करनेवाले कट्टर लोग कला के शत्रु है, परन्तु अब उनकी आँखें भी सचाई को देख रही हैं।"

जहाँगीर को मुगल-चित्र-कला का प्राण कहना अनुचित न होगा। वह चित्रकारो की सुन्दर कृतियो को पहचानने की अद्भुत शक्ति रखता था और प्रकृति के सौन्दर्य को देखने के लिए कवि की-सी आंख रखता था। चित्र-कला का वह अलौकिक मर्मज्ञ था। उसका कहना था कि एक ही चित्र में अनेक चित्रकारो के काम को वह भलीभाँति पहचान सकता था। उसके समय में फारसी कला का प्रभाव करीब-करीब मिट कर भारतीय कला का स्वतन्त्र रूप विकसित हो गया। उसके दरबारी चित्रकारो में अबुलहसन बहुत प्रसिद्ध था। उसे नादिरउज्ज़मान की उपाधि दी गई थी। मसूर दूसरा प्रसिद्ध चित्रकार था। उसे अपने काल का नादिर-उल्-असर कहते थे। वह पक्षियो, पौधो तथा फलो का सुन्दर चित्रण करने मे दक्ष था। बिशनदास आकृति-चित्रण में कुशल था। मनोहर, गोवर्धन, दौलत, उस्ताद और मुराद भी बडे प्रसिद्ध चित्रकार थे। इनमें से कुछ बादशाह के साथ रहते थे और जहाँ कोई अद्भुत वस्तु पाते उसका फौरन् चित्र खीच देते थे। इस प्रकार उन्हें चित्र खीचने के लिए बहुत-से विषय मिल गय। जहाँगीर के चित्रकारो ने चित्र-कला को अधिक विकसित रूप प्रदान किया। उन्होंने आँख, हाथ और होंठो के चित्र खीचकर मनुष्य के चरित्र और भावो को प्रकट करने मे विशेष योग्यता प्राप्त की।

शाहजहाँ को अपने पूर्वजो की तरह चित्र कला से अधिक प्रेम न था। उसे इमारत बनाने का बडा शौक था। उसने शहरो तथा किलो को विशाल भवनो से सजाने में बहुत-सा रुपया खर्च किया। दरबार के बहुत-से चित्रकारो को उसन नौकरी से अलग कर दिया। उन्होंने जाकर अमीरों के यहाँ नौकरी कर ली। बर्नियर का लेख है कि चित्र-कला का पतन हो गया था और बाज़ारू चित्रकारो मे योग्यता का अभाव था।

धर्म का पाबन्द होने के कारण औरगज़ेब ने कला को कोई प्रोत्साहन

मुग़ल-चित्रकला—मयूर

के नाम तथा उनके कौशल का वर्णन किया है। हुमायूँ स्वभावत विचार-शील था। उसके चरित्र पर सूफी विचारो का बडा प्रभाव पडा था। अनेक सूफी सन्तो की तरह वह भी गान को ईश्वरीय प्रार्थनाओ का एक आवश्यकीय अग समझता था। अकबर ने अन्य कलाओ की तरह गान-विद्या को भी पर्याप्त प्रोत्साहन दिया था। तानसेन उसके दरबार का प्रसिद्ध गायक था। जहाँगीर और शाहजहाँ दोनो गाने-बजाने के बडे प्रेमी थे। शाहजहाँ रोज़ सध्या-समय गाना सुनता था और प्राय गाना सुनते-सुनते सो जाता था। औरगजेब गान-विद्या से घृणा करता था। उसने दर्बारी गायको को बरखास्त कर दिया था। वह सगीत को मनुष्य के चरित्र बिगाडने का साधन समझता था इसलिए जब गायको ने गान-विद्या का जनाज़ा निकाला तब उसने उनसे कहा कि इसे ऐसा गहरा गाडना कि फिर कभी सिर न उठा सके।

दरबार के अतिरिक्त धार्मिक पुरुषो में गान-विद्या का काफी प्रचार था। शिया और सूफियो में इसका बहुत रवाज था। कबीर-पथियो मे भजन खूब गाये जाते थे। बगाल के वैष्णव 'कथा' तथा 'कीर्तन' को अपने अनुयायियो की सख्या बढाने का साधन समझते थे। वल्लभ-सम्प्रदाय के वैष्णवो में अनेक असाधारण प्रतिभा के गायक थे।

दक्षिण में रामदास और तुकाराम ने गान-विद्या को धार्मिक उप-देश करने का साधन बनाया। तुकाराम के 'अभङ्ग' गाकर सुनाये जाते थे जिन्हें सुनकर जनता के हृदय में धार्मिक श्रद्धा और भक्ति के भाव जाग्रत् होते थे।

**साहित्य**—मुग़लो के समय में साहित्य की बडी उन्नति हुई। राज-नीतिक ऐक्य, सामाजिक तथा धार्मिक सुधार, शासन मे हिन्दुओ का सहयोग तथा बिखरी हुई अनेक जातियो को एक राष्ट्र मे सङ्गठित करने का उद्योग आदि के कारण साहित्य का विकास हुआ। मुगल बादशाह उस तैमूर-वश के थे जो अपनी सस्कृति तथा परिष्कृति के लिए मध्य-

एशिया भर में प्रसिद्ध था। उनका चरित्र उदार था। वे समाज को सुव्यवस्थित कर राजनीतिक सस्थाएँ स्थापित करना चाहते थे। इससे मनुष्यो के आदर्श और विचार वदल गये और वे साम्राज्य की सेवा में तन-मन-धन से तत्पर हो गये। हिन्दू और मुसलमानी सस्कृतियो का पारस्परिक मेल हुआ और राज्य से हिन्दू-विद्याओ को वडा प्रोत्साहन मिला। दर्शन, ज्योतिष, धर्म, वैद्यक तथा अन्य विषयो के हिन्दू-ग्रन्थो का फारसी में अनुवाद किया गया। मुसलमानो ने सस्कृत का अध्ययन किया और प्राचीन ग्रन्थो से पूरा लाभ उठाया। उन्होने हिन्दी, पञ्जाबी, बङ्गाली आदि भाषाओ का भी ज्ञान प्राप्त किया और, अपनी रचनाओ द्वारा, उनके साहित्य के बढ़ाने मे सहयोग दिया। इस कोटि के लोगों मे अब्दुर्रहीम खानखाना, रसखान, ताज, मलिक मुहम्मद जायसी तथा मिर्जा हुसेनअली का नाम सदैव अमर रहेगा। खानखाना (रहीम) के नीति के दोहे उत्तरी भारत मे अब भी लोगो मे प्रचलित है। रस-खान और ताज कृष्ण के भक्त थे। कृष्ण के सम्वन्ध में उनकी रचनाएँ बडी ही हृदयग्राही और भावुकता-पूर्ण है। जायसी का पद्मावत हिन्दी-साहित्य का एक अपूर्व ग्रन्थ है। मिर्जा हुसेनअली ने काली की भक्ति में बङ्गाल में बडी श्रेष्ठ रचनाएँ की। वहुत-से मुसलमानो ने हिन्दू-सङ्गीत का अध्ययन किया और राग, रागिनियो की रचना की। उधर राज्य में योग्य पद पाने के इच्छुक हिन्दुओ ने फारसी खूब पढी। फारसी के विद्वानो के साथ वरावर रहने के कारण हिन्दुओ की जबान में सफाई आ गई, जिससे हिन्दी भाषा भी अधिक मधर और लालित्य-पूर्ण हो गई। हिन्दुओ और मुसलमानो ने कन्धे से कन्धा मिलाकर साम्राज्य के हित के लिए युद्ध किया, जिससे नवीन आदर्श उत्पन्न हुए और उच्च कोटि की कविता का प्रादुर्भाव हुआ। हिन्दू नायको की वीरता की कहानियो से नई उमङ्गे पैदा हुई और कवियो और चारणो ने उनकी कीर्ति वढाने के लिए नये-नये गीत वनाये। इससे व्रज-भाषा का विकास हुआ। वादशाह का दरवार वडे-वडे कवियो और विद्वानो का केन्द्र
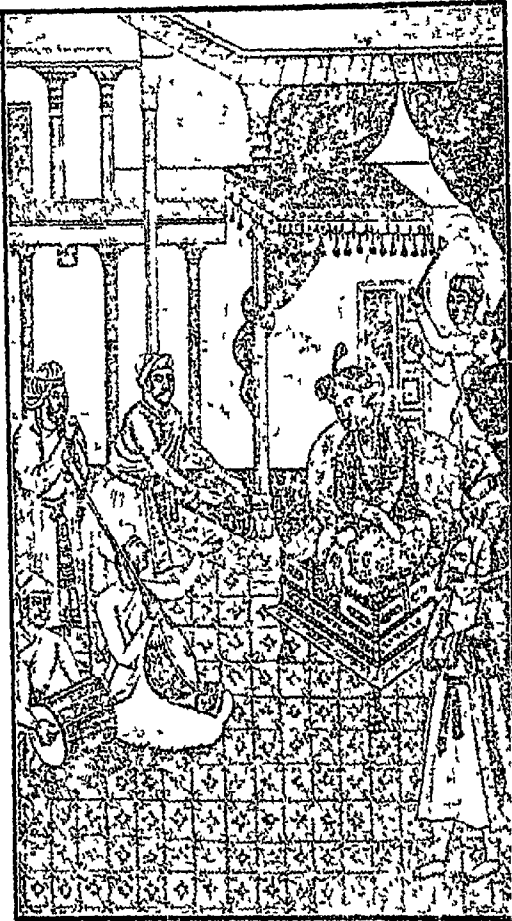
अकबर के दरबार में तानसेन

बन गया। राज्य से प्रोत्साहन पाकर वे अपनी महान् कृतियों की रचना में तल्लीन हो गये।

अकबर हिन्दी-कवियो का सरक्षक था। वह बीरबल के चुटकुलो और तानसेन के गाने से बडा प्रसन्न होता था। उस युग के सबसे महान् कवि, रामचरितमानस के रचयिता, तुलसीदास (१५३२–१६२३ ई०) थे जिनका नाम अब भी उत्तरी भारत मे बडे आदर के साथ लिया जाता है। उनका रामचरितमानस हिन्दी-साहित्य की सर्वोत्कृष्ट रचनाओ मे से है और जब तक मनुष्य में विद्या-प्रेम बाकी रहेगा तब तक इस ग्रन्थ की कीर्ति बनी रहेगी। उस समय के दूसरे महान् गायक कवि सूरदास थ, जिन्होंने कृष्ण-भक्ति के प्रसिद्ध ग्रन्थ सूरसागर की रचना की। तुलसीदास दार्शनिक होने के अतिरिक्त एक बडे सदाचार-शिक्षक भी थे। उन्होने सासारिक मनुष्यो के सामने बडे उत्कृष्ट आदर्श उपस्थित किये है। सूरदास कृष्ण के अनन्य उपासक थे और अपने आराध्यदेव के प्रेम को ही आनन्द-प्राप्ति का साधन मानते थे। अकबर के बाद हिन्दी-कविता का दरबार में और भी अधिक आदर होने लगा। शाहजहाँ के दरबार के कवि सुन्दर ने ब्रज-भाषा में 'सुन्दर-शृङ्गार' की रचना की। अन्य प्रसिद्ध कवि केशव, भूषण, लाल, बिहारी तथा देव थे। केशव ने काव्य-शास्त्र पर ग्रन्थ लिखे जिनमें कविप्रिया और रसिकप्रिया अधिक प्रसिद्ध है। भूषण और लाल ने अपनी कविता में हिन्दुओ की जातीयता को एक बार पुनर्जीवित करके बडी सुन्दर वीररस की कविताएँ लिखी। भूषण ने शिवाजी और छत्रसाल बुन्देला के अद्भुत पराक्रम और साहस का, बडे ओज और सम्मान के साथ, गणगान किया। बिहारी और देव अपनी शृङ्गाररस की कविताओ के लिए प्रसिद्ध है। इनके भाव अधिकाश स्पष्ट भाषा मे व्यक्त किये गये है।

इसी समय हिन्दुओ और मुसलमानो के सम्पर्क के कारण एक नई भाषा का जन्म हुआ जिसे उर्दू कहते है। दक्षिण की बीजापुर और गोलकुण्डा रियासतो में उर्दू-भाषा की अधिक उन्नति हुई और इसका

पहला प्रसिद्ध कवि वली (१६६८-१७४४ ई०) औरङ्गाबाद का रहनेवाला था। अलीआदिलशाह (१६५६-७२ ई०) उर्दू-कविता से बड़ा प्रेम करता था। नुसरती उसके दरबार का प्रसिद्ध उर्दू-कवि था। औरङ्गज़ेब की मृत्यु के बाद उर्दू-कविता की बड़ी उन्नति हुई और गालिब, शाह, नसीर, ज़ौक, मोमिन जैसे कवियो ने उर्दू-साहित्य को सम्पन्न कर दिया।

बङ्गाल में चैतन्य-साहित्य की बड़ी उन्नति हुई और चैतन्य-भागवत, चैतन्य-मङ्गल तथा चैतन्य-चरितामृत जैसे अनेक सन्तो के जीवनचरित्र लिखे गये। इस काल मे बङ्गाल मे काशीराम दास, मुकुन्दराम चक्रवर्ती और घनाराम जैसे कवि हुए। भारतचन्द्र और रामप्रसाद के ग्रन्थ मुगलो की विजय-श्री का अन्त होने के बाद लिखे गये। इनके अतिरिक्त अन्य हिन्दू-मुसलमान कवियो ने भी अपनी रचनाओं द्वारा मातृभाषा के साहित्य की वद्धि की।

भारत में फ़ारसी साहित्य की भी पर्याप्त उन्नति हुई। शेख मुबारक, अबुलफजल और अब्दुल क़ादिर बदाऊँनी ने फ़ारसी में धार्मिक ग्रन्थो के अनुवाद के अतिरिक्त कुरान और हदीस पर टीकाएँ लिखी। इन विद्वानो के अतिरिक्त नज़ीरी उर्फी और फ़ैज़ी आदि अनेक प्रसिद्ध कवियो ने अपनी रचनाओ द्वारा साहित्य की वृद्धि की। फ़ैज़ी मसनवी (प्रबन्ध-काव्य) लिखने में अद्भुत प्रतिभा दिखलाता था। उसकी रचनाओ में 'नलदमन' सबसे सुन्दर है।

मुग़लों की सरक्षकता में अनेक इतिहास लिखे गये। गुलबदन बेगम, जौहर, अबलफजल, निज़ामुद्दीन अहमद, बदाऊँनी, अब्बास सरवानी, फ़िरिश्ता, अबुल हमीद लाहौरी और ख्वाफी ख़ाँ इस काल के प्रसिद्ध इतिहास-लेखको में से हैं। अबुलफजल के ग्रन्थ आईन-अकबरी और 'अकबरनामा' सदा उसके नाम को अमर रक्खेंगे। इनमें अकबर के राज्य तथा शासन का पूरा-पूरा विवरण है। इतिहास लिखनेवाले हिन्दू इतिहास-लेखको में सुजानराय खत्री, ईश्वरदास नागर और भीम-

सेन अधिक प्रसिद्ध हैं। ये ग्रन्थ उस समय की अनेक बातो पर अच्छा प्रकाश डालते है। बहुत-सी बातें तो ऐसी हैं जिनका ज्ञान हमें केवल इन्ही पुस्तको से होता है।

मुगल शाहजादो और शाहजादियो की साहित्य में बडी रुचि थी। बाबर और जहाँगीर अपनी आत्मकथा लिखकर हमारे लिए अपने समय का अमूल्य इतिहास छोड गये है। गुलवदन बेगम, नूरजहाँ, जहानारा तथा जैबुन्निसा बडी प्रतिभाशालिनी एव सुशिक्षित महिलाएँ थी। गुल-वदन के इतिहास और जैबुन्निसा की कविताओ को लोग अब भी आदर से पढते है।

मुगल-दरबार के मुशियो ने चिट्ठियाँ लिखने में एक नई शैली का प्रचार किया। पत्र-लेखन-कला में सबसे अधिक कुशलता माधवराम ने प्राप्त की थी।

सामाजिक जीवन—मुगल-काल में हिन्दू-मुसलमानो में पहले से अधिक प्रेम था। वस्तुत. हिन्दुओ और मुसलमानो के पारस्परिक मेल से एक नई सभ्यता का विकास हुआ। हिन्दुओ के धर्म, भाषा, रस्म-रवाज का मुसलमानो पर और मुसलमानो का हिन्दुओ पर प्रभाव पडा। किन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिए कि भिन्न-भिन्न सामा-जिक समुदाय मिलकर एक राष्ट्र के रूप में परिणत हो गये थे। जाति, धर्म तथा कुल की असमानता, जनता के एक होने में बाधक थी। साधारण मुसलमानो में भी जाति-पाँति का भेद हो गया। सैयद, शेख, मुग़ल तथा पठान समान नही समझे जाते थे। धर्म का समाज पर पूरा प्रभाव था। राज्य की नीति भी धर्म से प्रभावान्वित होती थी। यद्यपि हिन्दू अनेक वर्णों और जातियो में विभक्त थे, परन्तु राज्य के पक्षपात का वे एक होकर विरोध करते थे और इन्साफ का बर्ताव चाहते थे।

बादशाह और उसके दर्बारी फजूलखर्ची करते थे। वे बहुत-से नौकर-चाकर रखते थ और उनके हरम में स्त्रियाँ भी बहुत-सी होती थी।

शराब पीने का रवाज था। बहुत-से अमीर तो शराबखोरी के कारण मर गये थे। हिन्दुओ का जीवन पुराने ढर्रे का था। बाल-विवाह, वैधव्य और सती आदि रवाज अभी तक हिन्दू-समाज में प्रचलित थे। मुगलो ने इन बराइयो को दूर करने का प्रयत्न किया था परन्तु उन्हें अधिक सफलता नही प्राप्त हुई। हिन्दुओ का जीवन सादा था। वे दिखावट की बातो को अधिक पसन्द नही करते थे। परन्तु उनकी स्त्रियाँ जेवर इत्यादि पहनती थी। ब्राह्मण विद्या पढने में दत्तचित्त थे, और समाज की उन्नति का प्रयत्न करते थे। अन्य जातियो की तरह उनकी भी अव-नति हो रही थी परन्तु उनमे अब भी ऐसे पण्डित और सच्चरित्र लोग थे जिनका, जनता में, बडा सम्मान था। राजपूत अब भी वीरता के लिए प्रसिद्ध थे। रणक्षेत्र से भाग जाने की अपेक्षा वे शत्रुओ के साथ लडकर मरने को अधिक श्रेयस्कर समझते थे।

त्योहार बडी धूम-धाम से मनाये जाते थे। अकबर हिन्दू त्योहारो को भी मानता था। जहाँगीर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि वह रक्षा-बन्धन को एक महान् धार्मिक कृत्य समझता था। और वह हिन्दू सरदारो और पण्डो से अपने हाथ में राखी बँधवाता था। शाह-जहाँ भी अपन दरबार में इन त्योहारो को मानता और अपनी हिन्दू प्रजा की खुशी मे खुशी मनाता था। इन त्योहारो से जाति-पाँति का भेद कम हो गया और हिन्दुओ मे एकता का भाव उत्पन्न हुआ। मुसलमानों के ईद, बकरीद तथा मुहर्रम आदि त्योहार बडी शान-शौकत से मनाये जाते थे। हिन्दू भी उनके त्योहारो में भाग लेते थे, जिससे पारस्परिक स्नेह और सौहार्द बढता था। उच्च श्रेणी के हिन्दुओ और मुसलमान अमीरो की चाल-ढाल, व्यवहार और रहन-सहन में बहुत कुछ सादृश्य था। उनके दुर्गुण और कमजोरियाँ भी प्राय एक ही सी थी।

बर्नियर के लेखो से पता चलता है कि उस समय के भारतवासी स्वस्थ और बलवान् थे। आजकल की तरह अस्पताल न होने पर भी, राज्य की ओर से, ओषधियो के वितरण का पूरा प्रबन्ध था। पैट्रो-

डेलावॅली लिखता है कि खम्भात में एक जानवरो का अस्पताल था। दुर्भिक्ष और महामारी के कारण प्रजा को घोर कष्ट होता था। पीटर मण्डी ने लिखा है कि दक्षिण में दुर्भिक्ष (१६३०–३१) के समय औरतें अपने बच्चो को सेर दो सेर अनाज के लिए बेच डालती थीं। और आदमी घर से डर के मारे नहीं निकलते थे कि कोई उन्हे पकडकर खा न जाय। जन-साधारण का जीवन ऊँची श्रेणी के लोगो से कई बातो मे अच्छा था। वे अधिक चरित्रवान थे और उनका गार्हस्थ्य जीवन श्लाघ्य था। रामायण तथा वैष्णव सन्तो के उपदेशो का उनके जीवन पर बडा प्रभाव पडा था जिसके कारण दीन मनुष्यो का जीवन भी सुखमय हो रहा था।

यद्यपि मुगलो के समय में राज्य की ओर से जनता को शिक्षा देने का कोई प्रबन्ध न था, फिर भी वे अज्ञानता को दूर करने का प्रयत्न करते थे। अकबर अध्यापको और विद्यार्थियो को वज़ीफे और जमीन देता था। उसके उत्तराधिकारियो ने भी उसके इस आदर्श का अनुकरण किया। शिक्षा मकतबो और पाठशालाओ मे होती थी। ब्राह्मण और मौलवी लडको को बिना कुछ फीस लिये पढाते थे। जनता को धर्म की शिक्षा देने के लिए कथा और उत्सवो का प्रबन्ध किया जाता था।

धार्मिक स्थिति—फारसी सस्कृति के तो मुगल अवश्य भक्त थे परन्तु फारस की धार्मिक कट्टरता को वे पसन्द नही करते थे। प्रजा पर धार्मिक अत्याचार करने को वे बुरा समझते थे। इसके अतिरिक्त पिछले सुलतानो का उदाहरण उनके सामने था, जिससे प्रजा के साथ अच्छा वर्त्ताव करने की शिक्षा मिलती थी। हिन्दू साधुओ और सूफी फकीरो ने दोनो धर्मों को मिलाने का प्रयत्न किया था। सूफी ईश्वर को सुन्दर और प्रेम करनेवाला मानकर मनुष्य को अनन्त काल तक उसकी भक्ति में तल्लीन होने का उपदेश करते थे। वे कहते थे कि ईश्वर से भिन्न होने पर भी प्रेम के रूप में उसका प्रकाश मनुष्य मे विद्यमान रहता है और

वास्तव में मनष्य उसी की छाया है। मनुष्य के जीवन का लक्ष्य ईश्वर से प्रेम करना और अन्त में उसी मे विलीन हो जाना है। वे प्रेम और सच्ची आराधना पर ज़ोर देते थे और आध्यात्मिक उन्नति के लिए विशेष साधन बताते थे। सफी कई प्रकार के थे। कुछ तो अपने सिद्धान्तो के साथ-साथ मुसलमानी आचार-विचार का भी पालन करते थे किन्तु कुछ ऐसे थ जो उसे व्यर्थ समझते थे और केवल प्रेम को ही ईश्वरीय बोध का एकमात्र साधन समझते थे।

सूफी सन्तो ने जो सम्प्रदाय बनाये, उनसे हिन्दुओ और मुसलमानो में मेल पैदा हुआ। इनमें चिशतिया, शुहरर्वादिया, शत्तरी, क़ादिरी और नक़शाबन्दी अधिक प्रसिद्ध है। चिशतिया सम्प्रदाय का सस्थापक अजमेर का प्रसिद्ध ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती था। उसके अनुयायियो की सख्या बहुत थी। देश में अत्यन्त प्रसिद्ध और सम्मानित फकीरो में शख सलीम चिश्ती, मियाँ मीर और सरमद के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। राज-वंश के कितने ही पुरुष और स्त्रियाँ भी इनको अपना गुरु मानते थे।

हिन्दुओ में तीन प्रकार के महात्मा थे। इनकी तीन श्रेणियाँ थीं। ज्ञानाश्रमी श्रेणी में कबीर आदि सन्तो का नाम है। ये आराधना के साथ ज्ञान को भी ईश्वर-प्राप्ति का मुख्य साधन बतलाते थे। दूसरी श्रेणी के सन्त कृष्ण-भक्त कहलाते थे। चैतन्य, सूरदास आदि कृष्ण-भक्त थे जो साकार ईश्वर के प्रति प्रेम और उपासना को ही मुक्ति का प्रधान साधन बतलाते थे। तीसरी श्रेणी के सन्त राम की उपासना करनेवाले वैष्णव थे, जिनमें तुलसीदास का नाम अधिक प्रसिद्ध है। ये ईश्वर को पिता, राजा आदि के रूप में देखते और उसे प्रेम तथा न्याय का आदर्श मानते थे।

ये सभी हिन्दू सन्त और सूफी फकीर एक ईश्वर को मानते थे और भिन्न-भिन्न धर्मों को उसके पास पहुँचने के मार्ग समझते थे। वे गुरु की महिमा पर ज़ोर देते थे और ध्यान, प्रार्थना तथा आत्म-शुद्धि को मोक्ष-

प्राप्ति का साधन बताते थे। वे अपना उपदेश सबको सुनाते थे परन्तु किसी से अपना धर्म छोडने को नही कहते थे। वे सादा, शान्त और स्वच्छ जीवन का आदर्श सामने रखते थे और सबको समान समझते थे। उनका कहना था कि धर्म से शान्ति मिलनी चाहिए और चरित्र की उन्नति होनी चाहिए। स्वार्थ, बेईमानी, अज्ञान तथा असहिष्णुता धर्म के घोर शत्रु हैं। इसलिए यदि मनुष्य सत्य को जानना चाहता है तो अवश्य इनका परित्याग कर दे। सूफ़ियो के इस प्रकार के उपदेश से अनेक धर्मों के अनुयायियो में परस्पर धार्मिक सहनशीलता, समानता और सौहार्द की भावनाओ का प्रादुर्भाव हुआ।

इस प्रकार के उपदेशो के साथ मुगलो की नीति का पूरा सहयोग होने से सन्तो के उद्देश्य की पूर्ति हुई। मुगलो की—अन्तर्जातीय विवाह तथा धार्मिक सहनशीलता की—नीति से इस्लाम की सख्ती कम हुई और जब अकबर ने हिन्दू-विचारो और अनेक रवाजो को अपनाना आरम्भ किया तो जनता ने उसे एक नवीन युग का अवतार समझा। जहाँगीर ने उसी की उदार नीति को जारी रक्खा। दारा हिन्दू-दर्शन और धर्म का बडा प्रेमी था और वह हिन्दू-मुसलमान-ऐक्य को बढ़ाना चाहता था। हिन्दुओ के बहुत-से रवाज मुसलमानो ने ग्रहण कर लिये और दोनो ने एक दूसरे की रहन-सहन को अपना लिया।

**आर्थिक स्थिति**—सोलहवी और सत्रहवी शताब्दियो में हिन्दुस्तान आजकल की तरह एक गाँवो का देश था और अधिकाश लोग खेती करते थे। प्रत्येक गाँव स्वावलम्बी होता था। ग्रामवासियो का जीवन सादा होने से उनकी ज़रूरतें कम थी और वे अपनी ज़रूरत की लगभग सभी चीज़ें स्वय पैदा कर लेते थे। खेती के औज़ार पुराने ढङ्ग के थे और खेती करने का ढङ्ग भी पुराना ही था। नमक, शक्कर, अफीम, नील और शराब का भी व्यापार होता था। तम्बाकू की खेती बाद में प्रचलित हुई और जहाँगीर के समय तक इसके पीने का बहुत प्रचार हो गया। अफीम की खेती मालवा और बिहार में और नील की खेती बियाना

तथा अन्य जगहो में होती थी। मजदूरो की मजदूरी रवाज के अनुसार निश्चित होती थी। कारखानो के व्यवस्थापक मजदूरो और कारीगरो के परिश्रम से खूब लाभ उठाते थे। दस्तकारी की चीजो में काठ के सामान—सन्दूक, तिपाई,—चमडे की चीजे, काग़ज तथा मिट्टी के बर्तन अधिक बनते थे। खपत कम होने से रेशमी कपडो का व्यवसाय बहुत कम था। कालीनो का रोजगार बडी उन्नति पर था और भारतीय कारीगर फारस के से सुन्दर क़ालीन बनाते थे।

शहरो में व्यवसाय, खासकर सूती कपडो का, बहुत बढ़ा-चढ़ा था। बनारस, मालवा और अन्य स्थानो मे तरह-तरह के सूती कपडे तैयार किय जाते थे। ढाका की मलमल प्रसिद्ध थी, और देशो मे भी भेजी जाती थी। दरबार के संरक्षण से कारीगरो को बडा प्रोत्साहन मिलता था और कारीगर, महाजन, जौहरी तथा व्यापारी लोग देश के कोने-कोने से नगरो मे आकर लाभ उठाते थे। धन-जन के बढ़ जाने से शहर सभ्यता के केन्द्र बन गये। वहीं पर कवि, कारीगर, गायक तथा साहित्य-सेवी आकर रहते थे और अमीरों से पुरस्कार पाते थे।

अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के अलावा अफ्रीका के पूर्वी समद्रतट के देशो, अरब, मिस्र तथा ब्रह्मा में भारतीय सूती कपडे अधिकता से जाया करते थे। यहाँ के बन्दरगाहों में विदेशी व्यापारी आते और माल खरीदकर ले जाते थे। उस समय खम्भात, सूरत, भडोच तथा बङ्गाल और मलाबार के समुद्रतट के बन्दरगाह अधिक प्रसिद्ध थे। देश से बाहर जानेवाली चीजें सूती कपडे, मसाले, नील, अफीम आदि थी और विदेश से यहाँ आनेवाली चीजो मे घोडे, कच्चा रेशम, धातुएँ, हाथीदांत, मूंग, क़ीमती पत्थर, इत्र, चीनी की वस्तुएँ, अफ्रीका के दास तथा यूरोपीय मदिरा मख्य थी। हिन्दुस्तानी सौदागरों में व्यावसायिक योग्यता की कमी न थी। सन १६१६–७० ई० के बीच सूरत में वीरजी वोरा नामक सौदागर वहाँ के सम्पूर्ण व्यापार का मालिक था और वह संसार भर में सबसे अधिक धनाढ्य समझा जाता था। परन्तु प्रान्तीय

सूबेदारो के अत्याचारो से कभी-कभी सौदागरो को बडी अडचनो का सामना करना पडता था ।

मुगलो की आर्थिक व्यवस्था मे अनेक त्रुटियाँ थी । चीज़ो के बनानेवालो तथा उनका प्रयोग करनेवालो मे कोई सम्बन्ध न था । कारीगर एक साधारण दीन मनुष्य होता था, किन्तु उसकी चीजें खरीदनेवाले प्राय धनी-मानी राजकर्मचारी होते थे । उन दिनो न तो बैंक थे और न उधार देने-लेने का कोई साधन था । अफसरो की मृत्यु के बाद उनकी सम्पत्ति राज्य में चली जाती थी, इसलिए वे फजूल-खर्ची करते थे और रुपया नहीं बचाते थे । दुर्भिक्ष के समय जनता के कष्ट की सीमा नही रहती थी, उनके लिए पेट भरना भी दुर्लभ हो जाता था ।

मुगल-काल मे आने-जाने की काफी सुविधा न थी । देश के एक भाग से दूसरे भाग में माल का ले जाना कठिन था । रेल और पक्की सडकें नही थी । माल ढोने के लिए बैलगाडियाँ और जानवर ही काम में लाये जाते थे । कुछ नदियो से नावो द्वारा माल इधर-उधर पहुँचाया जाता था । वस्तुत नदियाँ ही उन दिनो प्रधान वाणिज्य-पथ का काम करती थी । देश के विभिन्न भागो का एक दूसरे के सम्पर्क मे आना अथवा पैदावार में सहयोग करना असम्भव था । इसका परिणाम यह हुआ कि देश में एकता नही स्थापित होती थी और अलग होने की भावना बराबर रहती थी ।

**विदेशियो का विवरण**—मुगल बादशाहो के समय में यूरोप के अनेक लोगो ने भारत की यात्रा की । उन्होने बादशाह के दरबार, समाज तथा यहाँ के निवासियो के सम्बन्ध मे बहुत-सी बातें लिखी है । सबसे पहले अकबर के दरबार मे जेसुइट पादरी आये थे । वे इबादत-खाने के वाद-विवाद में भाग लेते थे और बादशाह को ईसाई बनाने की आशा रखते थे । अकबर ने उनके साथ बडी सज्जनता का व्यवहार किया और आगरे मे एक गिर्जा बनाने की आज्ञा दे दी । जहाँगीर के

समय में कप्तान हाकिन्स (Captain Hawkins) तथा सर टामस रो (Sir Thomas Roe) हिन्दुस्तान में कोठियाँ स्थापित करने की आज्ञा लेने, इँगलैंड के बादशाह के राजदूत होकर, आये थे। टामस रो ने अपनी डायरी में दरबारी जीवन तथा देश के शासन-प्रबन्ध का हाल लिखा है। जन-साधारण के जीवन के सम्बन्ध में हमें डच लेखक पेल-सारेट (Pelsaret) के लेखो से बहुत-सी महत्त्वपूर्ण बातें मालूम होती है। पेलसारेट जहाँगीर के समय में भारत आया था। देश की सम्पत्ति तथा सूबेदारो और मालगुजारी वसूल करनेवालों के अत्याचारो का उसने सविस्तर वर्णन किया है। कारीगरो को बहुत कम मजदूरी दी जाती थी और वे बड़ी दरिद्रता का जीवन व्यतीत करते थे। उनके घर मिट्टी तथा फूस के बने हुए होते थे। उनके पास पानी रखने तथा खाना पकाने के मिट्टी के बर्तनो के अतिरिक्त और कोई सामान नही था। मामूली दूकानदारो की आर्थिक दशा किसानो और कारीगरो से अच्छी थी। परन्तु राज्य के अफसर उनके साथ बुरा बर्त्ताव करते थे और अधिक सस्ते दाम पर चीजें खरीदते थे। जहाँगीर ने गायो तथा बैलो का वध करना बन्द करा दिया था। यदि कोई इस आज्ञा का उल्लङ्घन करता तो उसे प्राण-दण्ड दिया जाता था। पेलसारेट लिखता है कि बादशाह ने यह आज्ञा हिन्दुओ और बनियो को प्रसन्न करने के लिए निकाली थी, क्योकि वे गाय को अत्यन्त पवित्र और देवता के समान मानते थे।

फ्रांसीसी यात्री टैवर्नियर और बर्नियर के वर्णन इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। ये दोनो यात्री भारतवर्ष में १७वीं शताब्दी में आये थे। टैवर्नियर एक जौहरी था। उसने बादशाह के धन, ताजमहल तथा अमूल्य जवाहिरात का वर्णन किया है। बर्नियर भारत में १२ वर्ष तक रहा। वह अमीर गरीब सबके जीवन से भली भाँति परिचित था। उसने लिखा है कि खेती की दशा अवनत थी। कारीगर कङ्गाल थे और प्रान्तीय सूबेदार प्रजा को बहुत सताते थे। सेना बड़ी थी और

उसके रखने में बहुत रुपया खर्च होता था। प्रजा को कष्ट देनेवालो को दण्ड देन के लिए न्यायाधीशो को पर्याप्त अधिकार नही दिये गये थे। बङ्गाल का सूबा अत्यन्त समृद्ध तथा उपजाऊ था। चीजो के दाम सस्ते थे और हर प्रकार का सामान प्रचुरता से मिलता था। रुई और रेशम बहुत पैदा होते और योरप तथा एशिया के देशो मे भेज जाते थे।

मनूची नाम का इटली-निवासी यात्री बहुत दिनो तक भारत में रहा था। यूरोपीय यात्रियो में उसका वर्णन सबसे अधिक मनोरञ्जक है। उसने सच्ची बातो के साथ गप्पें भी खूब लिखी है। उसने भी बादशाह तथा उसके अमीरो की दौलत का खूब वर्णन किया है और लिखा है कि किसान तथा कारीगर निर्धन और दुखी थे। परन्तु मनूची के लेख का अधिकाश भाग अविश्वसनीय है।

---

# अध्याय २८

## यूरोप-निवासियों का भारत में आगमन

पश्चिम के देशों के साथ भारत का सम्बन्ध प्राचीन काल से था। परन्तु सिकन्दर महान् के आक्रमण के बाद यूरोप के लोगों का अधिक संख्या में आना बन्द हो गया। सन् १४९२ ई० में, जब कोलम्बस ने अमरीका को खोज निकाला तब, पुर्तगालवालों को भी नये देश ढूंढने की इच्छा हुई। ६ वर्ष के बाद वास्को-ड-गामा नामक यात्री गुडहोप अन्तरीप के चारों तरफ को चक्कर लगाकर १४९८ ई० में कालीकट पहुँचा। उसने कालीकट के राजा के साथ व्यापार के सम्बन्ध में बात-चीत की। उस समय भारत का सारा व्यापार अरब-निवासियों के हाथ में था। पुर्तगाली उन्हें हराकर समुद्र-तट पर बस गये। सन् १५०५ ई० में अलमिडा उनका गवर्नर हुआ। उसने पुर्तगाली बस्तियों की रक्षा के लिए क़िले बनवाये। उसके बाद सन् १५०९ ई० में एल-बुक़र्क़ गवर्नर नियुक्त किया गया। उसने १५१० ई० में गोआ पर अधिकार कर लिया और उसे भारत की पुर्तगाली बस्तियों की राजधानी बना दिया।

**एलबुक़र्क़ (१५०९-१५ ई०)**—एलबुक़र्क़ (Albuquerque) एक योग्य तथा उत्साही शासक था। सन् १५११ ई० में उसने मलक्का को जीत लिया। लङ्का, सकोत्रा और उरमुज़ नामक द्वीपों में उसने बस्तियाँ स्थापित की। पूर्व के देशों में पुर्तगाली साम्राज्य को बढ़ाने का विचार पहले-पहल उसी ने किया था। उसकी नीति थी कि साम्राज्य का विस्तार करके उसकी रक्षा के लिए एक बड़ा जहाज़ी बेड़ा रक्खा जाय। उसने शत्रुओं से युद्ध तथा रक्षा करने की दृष्टि से जगह-जगह पर किले बनवाये। उसका विचार था कि हमारे देश के लोग भारत को

अपना उपनिवेश बना लें। इसी खयाल से उसने पुर्तगालियो तथा भारतीयो—विशेषत मुसलमानो—मे विवाह कराना प्रारम्भ किया। किन्तु वह एक कट्टर ईसाई था। मुसलमानो को वह वडी घृणा की दृष्टि से देखता था और उन्हे ईसाई-धर्म स्वीकार करने के लिए वाध्य करता था। उसमे धार्मिक सहिष्णुता का भाव नही था। उसका शासन-प्रवन्ध वहुत अच्छा और सङ्गठित था। शासन का प्रवन्ध करने के लिए उसने हिन्दुओ को नौकर रक्खा। उसने सती-प्रथा को वन्द करने की चेष्टा की और भारतवासियो की शिक्षा के लिए स्कूल खलवाये। उसकी मृत्यु के पश्चात् जो गवर्नर नियुक्त किये गये वे अयोग्य तथा आचरण-भ्रष्ट थे। वे सव एलवुकर्क के स्थापित किये हुए राज्य को कायम न रख सके। सन् १५८० ई० में स्पेन के राजा ने पुर्तगाल को अपने राज्य में मिला लिया। फलत पूर्व में पुर्तगालवालो की प्रभुता का अन्त हो गया। गोआ, डामन और डयू के अतिरिक्त और कोई प्रदेश उनके अधिकार में नही रहा।

**पुर्तगालियो की विफलता के कारण**—पुर्तगालियो की विफलता का मुख्य कारण यह था कि उन्होने सरकारी कर्मचारियो को व्यापार करने की अनुमति दे दी थी। वे कर्मचारी केवल अपने लाभ और सुख की पर्वाह करते थे। वे मुसलमानो से शत्रुता रखते और हिन्दू-मुसलमानो में झगडा कराते थे। उनकी धार्मिक असहिष्णुता और वलात् ईसाई बनाने की नीति के कारण लोग उनकी नीयत पर सन्देह करने लगे और उनके शत्रु वन गये। इसके सिवा, पुर्तगालवालो की आदत जहाजो को लूट लेने की थी। इससे उनके व्यापार को भी काफी धक्का पहुँचता था। उनकी असफलता का अन्तिम कारण यह था कि प्रोटेस्टेंट राज्यो ने शत्रुता के कारण उनके उन्नति-मार्ग में रोडे अटकाये। जब हालेंड और इँगलेंड प्रतिद्वन्द्विता के क्षेत्र में उतरे तब पुर्तगालवालो के लिए यह असम्भव हो गया कि वे उनके आक्रमणो का सफलतापूर्वक सामना करें।

**हालेण्ड-निवासी डच लोगों का आना**—भारत के लाभजनक व्यापार ने अन्य यूरोपीय राष्ट्रों को भी अपनी ओर आकर्षित किया। हालेंड-निवासी डच लोग बड़े कुशल थे। जहाजो में बैठकर समुद्र की यात्रा करने में वे खब अभ्यस्त थे। उन्होने सन् १६०१ ई० में पूर्व के देशो के साथ व्यापार करने के लिए एक कम्पनी स्थापित की और १७वी शताब्दी में भारतीय समुद्र-तट पर अपने पैर जमाये। व्यापारिक लाभ के लिए डच लोगो न अँगरेजो के साथ घोर प्रतिद्वन्द्विता की और देशी नरेशो के साथ मैत्री-सम्बन्ध स्थापित किया। अँगरेजी और डच कम्पनियो के बीच समझौते के प्रयत्न किये गये किन्तु वे सफल न हो सके। जुलाई सन १६१६ ई० तक दोनो राष्ट्र आपस में लडते रहे। बाद को इँगलेंड के राजा के बीच मे पडने से दोनो में सन्धि हो गई। पूर्व के डच लोगो को यह सन्धि मन्ज़ूर नही थी, इसलिए उन्होने खुल्लमखुल्ला उसका विरोध किया। उन लोगो ने लैण्टोर तथा पूलोरन से अँगरेजों को सन् १६२१-२२ ई० में निकाल दिया। एक वर्ष के बाद, सन् १६२३ ई० मे, अम्बौयना (Amboyna) में एक बड़ा हत्याकाण्ड हुआ। इस भीषण क़त्ल के कारण अँगरेज़ जनता बडी विक्षुब्ध हुई। किन्तु १६५४ ई० के पहले डच लोगो के विरुद्ध कोई काररवाई नहीं की गई। उस वर्ष क्रामवेल (Cromwell) ने एक ऐसा समझौता किया जिसके अनुसार ८५००० पौण्ड अँगरेजी कम्पनी को दण्ड-रूप में देने के लिए डच लोग बाध्य किये गये। इसके अतिरिक्त उन्हें अम्बौयना के मृत और घायल व्यक्तियो के लिए एक और भारी रक़म देने को विवश किया गया। यह सन्धि अधिक समय तक न रही। डच लोगों को इँगलेंड और फ्रान्स के विरुद्ध भारत और यूरोप में युद्ध करना पडा। इन युद्धो का परिणाम उनके लिए बहुत हानिकर हुआ। मलाया द्वीपसमूह मे तो डच लोगो की स्थिति दृढ़ बनी रही किन्तु भारत में उनके सब अधिकार छिन गये। यहाँ के अधिकाश कारखानो को भी उन्हें छोड देना पडा।

डच लोगो की असफलता के तीन कारण थे। उनकी कम्पनी का राज्य से बडा घनिष्ठ सम्बन्ध था, अतः कम्पनी के हिताहित का प्रश्न यूरोप की राजनीतिक परिस्थितियो के अधीन था। दूसरे, मसाले के व्यापार से होनेवाल लाभ से, वे इतने अधिक आकर्षित हो गये कि राज्य स्थापित करने की ओर उन्होने काफी ध्यान न दिया। तीसरे, भारत मे उनके भाग्य का निपटारा यूरोपीय युद्धो पर निर्भर था। इंगलेंड और फ्रान्स के साथ युद्ध करने के कारण डच लोग साधनहीन हो गये और पूर्व में उनकी स्थिति बिलकुल खराब हो गई।

**अँगरेज़ी ईस्ट इण्डिया कम्पनी**—सन् १५८८ ई० में इँगलेंड ने स्पेन के अरमडा नामक जहाजी बेडे पर विजय प्राप्त की। इस विजय से उनके वाणिज्य-व्यापार को बडा प्रोत्साहन मिला। पूर्वी द्वीप-समूह से व्यापार करने के लिए १६०० ई० में लडन के कुछ सौदागरो ने मिल-कर एक कम्पनी स्थापित की। रानी एलिजवेथ (Elizabeth) से उन्होने एक आज्ञा-पत्र भी प्राप्त कर लिया। सन् १६०८ ई० में कप्तान हॉकिन्स जहाँगीर के दरबार मे पहुँचा और सरत मे एक फैक्टरी खोलने के लिए उसने एक फरमान प्राप्त किया। किन्तु बाद को पुर्तगालियो के कहने से वह फरमान रद कर दिया गया। सन १६१५ ई० में सर टामस रो (Sir Thomas Roe) नामक एक अँगरेज़, इँगलेड के राजा जेम्स प्रथम का राजदूत बनकर, जहाँगीर के दरबार में हाज़िर हुआ। उसने अपनी बुद्धिमानी और राजनीतिक पटुता से फैक्टरियाँ बनवाने की आज्ञा प्राप्त कर ली। सूरत अँगरेज़ी व्यापार का केन्द्र बन गया। सन् १६३३ ई० में मछलीपट्टन में एक फैक्टरी बन गई। सन् १६४० ई० में मद्रास की नीव डाली गई तथा फोर्ट विलियम बनवाया गया। उस समय इँगलेंड में राजा और पार्लियामेंट के बीच लडाई होने के कारण कम्पनी को बडी कठिनाइयो का सामना करना पडा। किन्तु जब चार्ल्स द्वितीय गद्दी पर बैठा तब उसकी दशा सुधर गई। चार्ल्स द्वितीय ने कम्पनी को एक नया आज्ञा-पत्र प्रदान किया। इसके द्वारा कम्पनी

को मुद्रा ढालने, किले बनवाने, ग़ैर-ईसाई राज्यों से युद्ध एवं सन्धि करने तथा पूर्व में रहनेवाले अँगरेज़ों के झगड़े तय करने का अधिकार मिला। सन् १६८८ ई० में कम्पनी को चार्ल्स द्वितीय से बम्बई का नगर प्राप्त हुआ। सन् १६६१ ई० में पुर्तगाल की राजकुमारी के साथ विवाह करने के अवसर पर यह नगर दहेज के रूप में उसे मिला था। पूर्वी समुद्र-तट पर भी अँगरेज़ों ने अनेक फैक्टरियाँ बनवाईं। सन् १६५१ ई० में हुगली में एक फैक्टरी स्थापित की गई और जहाँ पर आज-कल कलकत्ता बसा हुआ है, उस स्थान पर १६८६ ई० में जाब चारनाक (Job Charnock) ने एक बस्ती स्थापित करने की चेष्टा की। किन्तु बङ्गाल के मुगल-शासक शायस्ता खाँ ने उसे निकाल बाहर कर दिया। अभी तक कम्पनी ने अपना ध्यान केवल व्यापार की ओर लगाया था। किन्तु अब उसकी नीति में एक परिवर्तन हो गया। सन् १६८६ ई० में जोशिया चाइल्ड (Josia Child) सूरत की फैक्टरी का गवर्नर नियुक्त किया गया। उस समय मुग़ल-साम्राज्य की अवनति हो रही थी, इसलिए कम्पनी अपनी राजनीतिक प्रभुता स्थापित करने के लिए मुग़लों और मराठों के अत्याचार को रोकने के उपाय सोचने लगी। इस प्रकार कम्पनी तथा मुग़ल-साम्राज्य के बीच झगड़ा पैदा हो गया। विदेशी व्यापारियों की धृष्टता पर औरङ्गज़ेब को बड़ा क्रोध आया। उसने उनके विरुद्ध लड़ाई छेड़ दी और पटना, क़ासिम-बाज़ार, मछलीपट्टन तथा विज़गापट्टम की फ़ैक्टरियों को छीन लिया। पश्चिमी समुद्र-तट पर भी युद्ध प्रारम्भ हो गया। सूरत की फैक्टरी पर मुगलों ने अधिकार कर लिया। औरङ्गज़ेब ने इस आशय का एक फ़रमान निकाला कि अँगरेज़ लोग राज्य से निकाल बाहर कर दिये जायँ। अन्त में कम्पनी ने मुग़ल-सम्राट् से क्षमा-प्रार्थना की और १६९० में दोनों में सन्धि हो गई। मुगल-सरकार ने १७००० पौण्ड कम्पनी से दण्ड-रूप में लिया और कम्पनी को चेतावनी दे दी कि भविष्य में फिर कभी ऐसा दुर्व्यवहार न होने पावे। जाब चारनाक को हुगली लौट जाने की आज्ञा

मिली। उसे जो भू-भाग प्रदान किया गया था उस पर उसने एक छोटा-सा उपनिवेश स्थापित किया। वही उपनिवेश अपनी उन्नति कर बाद को कलकत्ता नगर हो गया।

इस समय कम्पनी को इँगलेंड मे भारी कठिनाइयो का सामना करना पडा। उसकी बढती हुई शक्ति और अधिकारो का बडा विरोध हुआ और उसके सब मामलो की जाँच करने के लिए एक कमेटी नियुक्त हुई। किन्तु जोशिया चाइल्ड ने मन्त्रियो को रुपया देकर अपने पक्ष में कर लिया और १६६३ ई० में एक नया आज्ञापत्र (Charter) प्राप्त कर लिया। १६६८ ई० में एक प्रतिद्वन्द्वी कम्पनी की स्थापना हुई। भारत के व्यापार पर अपना एकाधिकार करने के लिए दोनो कम्पनियाँ तुरन्त आपस में लडने लगी। यह झगडा १० वर्ष तक चलता रहा। अन्त में दोनो में समझौता हो गया और १७०८ ई० में दोनो कम्पनियाँ मिलकर एक हो गई। इस प्रकार जिस नई कम्पनी का जन्म हुआ उसका नाम 'यूनाइटेड ईस्ट इण्डिया कम्पनी' (United East India Company) पडा।

औरङ्गजेब की मृत्यु के बाद, बङ्गाल मे शासक से कम्पनी का फिर झगडा हो गया। इसका कारण यह था कि बङ्गाल के गवर्नर ने बिना कर के व्यापार करते रहने की आज्ञा नही दी। सन् १७१५ ई० में कम्पनी के दो प्रतिनिधि दिल्ली के दरबार मे पहुँचे। विलियम हैमिल्टन (William Hamilton) नामक एक अँगरेज सर्जन की सहायता से उन्होने नये अधिकार प्राप्त किये। हैमिल्टन ने मुगल-सम्राट् फर्रुख़-सियर को एक भयङ्कर बीमारी से बचाया था। इसी लिए उस पर मुग़ल-सम्राट् ने कृपा की। कम्पनी को कलकत्ता और मद्रास के पास कुछ गाँव दिये गये। यह एक बडी मार्के की बात थी। अँगरेजो को अब मुगलो की निर्बलता का साफ-साफ पता लग गया। उन्होने समझ लिया कि जिस सम्राट के सम्मुख फोर्ट विलियम के गवर्नर ने ज़मीन पर अपना माथा टेका था, वह अपने शक्तिशाली मन्त्रियो के हाथ में कठपुतली मात्र था।

**फ्रांसीसियो की ईस्ट इण्डिया कम्पनी**—अन्य देशो की देखा-देखी फ्रास ने भी पूर्वी द्वीपसमूह के साथ व्यापार करने के लिए कम्पनियाँ स्थापित की। सन् १६४२ ई० में रिशलू (Richelieu) ने तीन कम्पनियाँ स्थापित की किन्तु कुछ समय के पश्चात् वे टूट गईं। उनकी विफलता का कारण सरकारी कर्मचारियो तथा पादरियो का हस्तक्षेप था। चौदहवें लुई (Louis XIV) के शासन-काल मे उसके मन्त्री कोलवर्ट (Colbert) ने १६६४ ई० में दूसरी कम्पनी स्थापित की। उसके तीन उद्देश्य थे—राजनीतिक शक्ति की स्थापना, राजा की शक्ति को सबल बनाना और ईसाई-मत का प्रचार करना। १० वर्ष के बाद फ्रासिस मार्टिन (Francois Martin) ने पाण्डुचेरी की नीव डाली और चन्द्रनगर में एक फैक्टरी बनवाई। फ्रास और हालैंड के बीच होनेवाले यूरोपीय युद्ध से कम्पनी की भारी क्षति हुई। किन्तु १७२० ई० में उसका पुन सगठन हुआ और तबसे उसका प्रबन्ध बडे योग्य और हौसलामन्द गवर्नरो के हाथ में रहा। मारीशस (Mauritius) पर १७२० ई० में और मलाबार के तट पर स्थित माही पर १७२४ ई० में कब्जा कर लिया गया। ड्यूमा (Duma) (१७३५-४१) ने दक्षिण की अव्यवस्थित दशा को देखकर वहाँ के राजनीतिक मामलो मे हस्तक्षेप किया। राजगद्दी के लिए होनेवाले एक युद्ध में उसने तजौर के राजा की सहायता की और उससे कारीकाल प्राप्त किया। इस प्रकार कम्पनी की शक्ति और अधिकार बढ गये और साथ ही फ्रासीसियो की प्रतिष्ठा भी बहुत बढ गई। सन् १७४२ ई० में जब डूप्ले (Dupleix) पाण्डुचेरी का गवर्नर नियुक्त हुआ तब कम्पनी के इतिहास में विजय और राजनीतिक विकास का एक नया अध्याय प्रारम्भ हुआ।

यूरोप-निवासियो के आने के साथ ही भारत का मध्यकालीन युग समाप्त हुआ। अब तक भारत का इतिहास केवल राजवशो के उत्कर्ष और पतन का विवरण-मात्र था। अधिकाश राजवश अपनी आन्तरिक अव्यवस्था तथा पतन के कारण ही इतिहास से लुप्त हो गये। यूरोप के

लोगो और मुसलमानो में बहुत अन्तर था। वे ऐसे राष्ट्रो के प्रतिनिधि थे, जिनका स्वतन्त्रता के वायुमण्डल में विकास हुआ था और जिनमें आधुनिक शासन-पद्धतियो का अनुसरण होता था। स्वाधीन राष्ट्रो के नागरिक होने के कारण वे स्वतन्त्रता के भाव से ही प्रेरित होकर सब काम करते थे। वे सब राष्ट्रीयता और देशभक्ति के भावो से भरे रहने के कारण एकता के सूत्र में बँधे थे। उनमें से कुछ तो बडे स्वार्थी थे परन्तु अधिकाश लोग अपने देश के हित का ध्यान रखते थे। देश की सेवा में वे अपने प्राणो का भी बलिदान करने के लिए सदा तैयार रहते थे। उनकी देखा-देखी भारतीय लोगो में भी नई आशाएँ और उमगें पैदा हुई। प्राचीन प्रथाओ के प्रति उनमे जो अन्धभक्ति थी वह यूरोपीय लोगो के ससर्ग मे कम हो गई। उनमें परीक्षा और आलोचना करने का भाव पैदा हो गया। अपने विवेकपूर्ण दृष्टिकोण, प्रगतिशील शासन-पद्धति, वैज्ञानिक प्रवृत्ति तथा सामाजिक स्वतन्त्रता के कारण वे उन भारतीयो से आगे बढ गये जिनमें एकता और देश-प्रेम का अभाव था। उन्होंने जिन सस्थाओ को स्थापित किया, उनकी बदौलत प्रचलित शासन-व्यवस्था में बडी उन्नति हुई। अपने सुधारो-द्वारा उन्होंने जनता की सहानुभूति भी प्राप्त कर ली। उनकी अधीनता में विज्ञान की उन्नति हुई, शिक्षा का प्रचार हुआ और लोगो की रहन-सहन मे भी बहुत कुछ सुधार हुआ।

## सक्षिप्त सन्‌वार विवरण

| | |
|---|---|
| कोलबस-द्वारा अमरीका का पता लगना | १४९२ ई० |
| वास्को-ड-गामा का कालीकट पहुँचना | १४९८ ,, |
| अलमिडा का पुर्तगाली बस्तियो का गवर्नर नियुक्त होना | १५०५ ,, |
| एलबुकर्क का गोआ को जीतना | १५१० ,, |
| एलबुकर्क का मलक्का जीतना | १५११ ,, |
| पुर्तगाल का स्पेन में मिलाया जाना | १५८० ,, |
| अँगरेज़ी ईस्ट इंडिया कम्पनी का जन्म | १६०० ,, |

| | |
|---|---|
| डच ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना | १६०१ ई० |
| कप्तान हॉकिन्स का जहाँगीर के दर्बार में पहुँचना | १६०८ ,, |
| सर टामस रो का जहाँगीर के दर्बार में पहुँचना | १६१५ ,, |
| अम्बौयना का कत्ल .. .. | १६२३ ,, |
| मद्रास की स्थापना .. .. | १६४० ,, |
| अँगरेज़ और डच लोगों की संधि .. | १६५४ ,, |
| चार्ल्स द्वितीय का आज्ञापत्र | १६६१ ,, |
| फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना | १६६४ ,, |
| बम्बई की प्राप्ति | १६६८ ,, |
| जाब चारनाक का शायस्ता खाँ द्वारा कलकत्ते से निकाला जाना . - | १६८६ ,, |
| कम्पनी और मुग़लों के बीच संधि .. | १६९० ,, |
| दोनों अँगरेज़ी कम्पनियों का एक होना .. | १७०८ ,, |
| फ्रांसीसियों का मौरीशस पर अधिकार . | १७२१ ,, |
| फ्रांसीसियों का माही पर अधिकार . . | १७२४ ,, |
| डूप्ले का पाण्डुचेरी का शासक नियुक्त होना .. | १७४२ ,, |

# अध्याय २६

## अँगरेज़ों और फ्रांसीसियों की लड़ाई
## हैदरअली का उत्कर्ष

दोनो कम्पनियो की स्थिति—भारत के व्यापार का लाभ उठाने के लिए ही अँगरेजी और फ्रासीसी कम्पनियो की स्थापना हुई थी। किन्तु ज्यो-ज्यो मुगल-साम्राज्य की शक्ति का ह्रास होता गया त्यो-त्यो उन्होने अपनी राजनीतिक शक्ति को वढाना शुरू कर दिया। परिणाम यह हुआ कि दोनो कम्पनियो मे झगडा हो गया। सन् १७४४ ई० में अँगरेजी कम्पनी फ्रासीसी कम्पनी की अपेक्षा अधिक मज़बूत थी। वह अधिक सम्पत्तिशाली तथा अधिक सगठित भी थी। इसके अतिरिक्त उसके उपनिवेश भी अधिक शक्तिशाली थे। फिर, अँगरेजी कम्पनी एक व्यापारी लोगो की सस्था थी। वह राज्य की सहायता पर निर्भर नही थी। उसके सचालक प्रभावशाली व्यक्ति थे। उनमे से कुछ तो पार्लियामेन्ट के सदस्य थे, जो सरकारी नीति पर वडा प्रभाल डालते थे। इसके विपरीत, फ्रासीसी कम्पनी पूर्ण रूप से राज्य की सहायता पर निर्भर थी। सरकारी मदद के विना उसका कोई काम नही हो सकता था। सरकार के हस्तक्षेप के कारण उसका कार-बार वडी सुस्ती से चलता था। उसके सचालको की नियुक्ति फ्रास का राजा करता था। वे भारत के व्यापार मे अधिक दिलचस्पी नही रखते थे। ड्यूमा और डूप्ले ने कम्पनी की स्थिति को सुधारने के लिए वडे-वडे प्रयत्न किये। किन्तु तो भी इसमे कोई सदेह नही कि अठारहवी शताब्दी के मध्यकाल के लगभग फ्रासीसियो की अपेक्षा अँगरेजो के पास अधिक साधन मौजूद थे। राजनीति के मैदान मे सफलता प्राप्त करने के लिए उनकी स्थिति अधिक दृढ और अनुकूल थी।

पहला युद्ध (१७४०-४८)—उन दिनो यरोप में इँगलेंड और फ्रास में शत्रुता थी। इसी कारण भारत म भी उनमें लडाई प्रारम्भ हो गई। फ्रासीसी सेनापति लावर्दोने (La Bourdonnais) को आज्ञा मिली कि १७४० ई० में अँगरेजों पर चढाई कर दे। किन्तु जुलाई १७४६ ई० के पहले वह पाण्ड्चेरी नही पहुँच सका। उसने आते ही मद्रास पर आक्रमण किया। कुछ समय तक लडाई करने के बाद उसके हाथ में मद्रास आ गया। इसके बाद डप्ले तथा लावर्दोने मे झगडा हो जाने के कारण कुछ समय तक फ्रासीसियों को हमला करने का अवसर न मिला। लावर्दोने के वापस लौट जाने पर डूप्ले ने मद्रास को अपने कब्जे मे कर लिया। उसने सेंट डेविड नामक किले पर धावा करने की तैयारी की। इस धावे मे फ्रासीसियो को सफलता नही मिल सकी। मेजर स्ट्रिन्जर लारेन्स (Stringer Lawrence) ने बडी वीरता के साथ उन्हे हरा दिया। १७४८ ई० मे यूरोप में एलाशपल (Aix la chapelle) की सधि हो गई। फलत भारत मे भी दोनो कम्पनियो की लडाई बन्द हो गई। मद्रास अँगरेजों को वापस मिल गया।

यद्यपि किसी भी पक्ष को विजय नही प्राप्त हुई तथापि युद्ध का परिणाम महत्त्व से खाली नही था। दोनो राष्ट्रो को देशी राजाओं की कमजोरी मालम हो गई। बस्तियो के इर्द-गिर्द १०० मील तक की भमि से वे अच्छी तरह से परिचित हो गये। वे यह भी समझ गये कि देशी राजाओं के पारस्परिक झगडो से कितना लाभ उठाया जा सकता है और सुव्यवस्थित यूरोपीय सेनाएँ उन्हे कितनी आसानी से हरा सकती हैं। डूप्ले को भारतीय स्थिति का पूरा-पूरा ज्ञान था। उसने देखा कि यूरोपीय युद्ध-प्रणाली और सैनिक सयम से यहाँ अपनी शक्ति खूब बढाई जा सकती है। इसी विचार से वह राजनीतिक मामलो मे भाग लेने की बात गम्भीरता के साथ सोचने लगा। १७४८ ई० मे निजामुलमुल्क आसफजाह की मृत्यु हो गई और उसे भारत के राजनीतिक मामलो में भाग लेने का मनचाहा अवसर मिल गया।

**दूसरा युद्ध (१७४८-५४)**—निज़ाम करीव-करीव एक स्वाधीन शासक था। १७४८ ई० में उसकी मृत्यु के वाद उसके दूसरे लडके नाज़िरजग और पोते मुज़फ्फरजग के वीच सिंहासन के लिए झगडा उठ खडा हुआ। इसी समय कर्नाटक के नवाव अनवरुद्दीन को गद्दी से उतार कर चान्दा साहब स्वय नवाव वनने की कोशिश कर रहा था। मुज़फ्फर-जग ने चान्दा साहव से मित्रता कर ली। इन दोनो ने मिल कर फ्रासीसियो से सहायता माँगी। डूप्ले ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और वह झट सहायता देने के लिए तैयार हो गया। उसने सोचा कि ऐसा करके मैं कर्नाटक तथा हैदरावाद मे अपना प्रभाव जमा सकूँगा। अँगरेज़ तजौर की राजगद्दी के झगडे में पहले ही इस प्रकार का हस्तक्षेप कर चुके थे। इस दृष्टि से डूप्ले केवल अँगरेज़ो के दिखाये हुए मार्ग पर चल रहा था।

मज़फ्फरजग तथा चान्दा साहव ने अपनी सयुक्त सेनाओ को लकर अनवरुद्दीन पर आक्रमण कर दिया। अनवरुद्दीन पराजित हुआ और १७४९ ई० व अम्वर के युद्ध में मारा गया। उसका लडका मुहम्मदअली त्रिचनापल्ली भाग गया। उसने अँगरेज़ो से सहायता माँगी। चान्दा साहव कर्नाटक का नवाव वन गया। उसने फ्रासीसियो को उनके उपकार के बदल ८० गाँव प्रदान किय। उधर नाज़िरजग ने मुज़फ्फरजग पर चढाई कर दी। मज़फ्फरजग पराजित हुआ। किन्तु थोडे ही समय के बाद (दिसम्वर १७५० ई० में) नाज़िरजग मारा गया। मुज़फ्फरजग दक्षिण का सवदार हो गया। उसकी सहायता के लिए एक फ्रासीसी पल्टन हैदरावाद में नियुक्त की गई। उसने फ्रासीसियो को कुछ रुपया और ज़िले प्रदान किये। एक जागीर डूप्ले को भी मिली। उसने कृष्णा से लेकर कुमारी अन्तरीप तक सम्पूर्ण दक्षिणी भारत के गवर्नर की उपाधि धारण की। उसकी प्रतिष्ठा अधिक वढ गई। वह भारतीय नवावो की तरह पोशाक भी पहनने लगा। फ्रासीसी सेनापति वसी की सरक्षकता में मुज़फ्फरजग अपनी राजधानी म पहुँचा। किन्तु वह एक लडाई मे मार

डाला गया। बुसी ने उसके किसी लडके को गद्दी पर नही बैठने दिया। उसने निजामुलमुल्क के तीसरे लडके सलावतजग को गद्दी पर बिठाया। उसकी शक्ति को दृढ करने के लिए वह स्वय ७ वर्ष तक हैदराबाद में डटा रहा।

चान्दा साहब तथा फ्रासीसियो ने त्रिचनापल्ली को घेर रक्खा था। अभी तक अँगरेजो ने मुहम्मदअली को बहुत कम सहायता पहुँचाई थी। किन्तु अब उन्होने समझ लिया कि उसकी खूब सहायता करनी चाहिए। त्रिचनापल्ली शत्रुओ के हाथ में पडनेवाला ही था कि क्लाइव ने उसकी रक्षा का एक उपाय सोचा। क्लाइव एक युवा सेनापति था। उसने सलाह दी कि अर्काट के किले को घेर लिया जाय। अर्काट कर्नाटक के नवाब चान्दा साहब की राजधानी थी। इसलिए उसने सोचा कि यदि अर्काट घेर लिया जायगा तो चान्दा साहब उसकी रक्षा के लिए त्रिचनापल्ली से कुछ सेना जरूर भेजेगा। इस प्रकार त्रिचनापल्ली बच जायगी और मुहम्मदअली के सिर से आफत टल जायगी। मद्रास के गवर्नर ने क्लाइव की इस सलाह को मान लिया। उसने उसे अर्काट पर आक्रमण करने की आज्ञा भी दे दी। क्लाइव अर्काट की तरफ रवाना हुआ और उसने किले के चारो ओर मोर्चाबन्दी कर दी। चान्दा साहब ने फौरन त्रिचनापल्ली से अर्काट की रक्षा के लिए सेना भेजी। क्लाइव वीरता के साथ ५३ दिन तक अपनी रक्षा करता रहा और शत्रु से लोहा लेता रहा। अन्त में चान्दा साहब की सेना वापस लौटी और यद्यपि क्लाइव के ४५ गोरे और ३० देशी सिपाही मारे गये परन्तु जीत उसी की हुई और कम्पनी के अधिकारी उसकी प्रशसा करने लगे। मुहम्मदअली की रक्षा के लिए और अँगरेजी फौजें त्रिचनापल्ली पहुँची। चान्दा साहब त्रिचनापल्ली को छोड कर भागा। उसने तजौर के सेनापति के हाथ में आत्मसमर्पण कर दिया किन्तु उसने उसे मार डाला। मुहम्मदअली कर्नाटक का नवाब हो गया। फ्रास की सरकार डूप्ले से अप्रसन्न हो गई। सन् १७५४ ई० मे वह वापस बुला लिया गया। उसके स्थान पर गोडहू (Godeheu)

गवर्नर नियुक्त हुआ। अँगरेज़ो और फ़ासीसियो के बीच एक सधि हो गई जिसके अनुसार कर्नाटक मे दोनो को समान अधिकार मिले। वह सधि अभी कार्य-रूप मे परिणत भी न हुई थी कि यूरोप में सप्तवर्षीय युद्ध छिड गया।

**हैदराबाद में बुसी (Bussy)**—जो काम बुसी के सुपुर्द किया गया था उसके लिए वह बडा ही उपयुक्त था। वह एक चतुर कूटनीतिज्ञ था। वह जानता था कि कठोरता की अपेक्षा नम्रता का व्यवहार और विजय-कीर्ति प्राप्त करन की अपेक्षा मनप्य के जीवन की रक्षा करना अधिक हितकर होता है। वह अपने इरादे का बडा पक्का था और कठिनाइयो के उपस्थित होने पर साहस के साथ काम करता था। उसमें एक दुर्लभ गुण यह था कि वह सब चीजो की तह तक पहुँच जाता था और बिना किसी का दिल दुखाये अपने काम को पूरा कर लेता था। सेना का खर्च चलाने के लिए निज़ाम से उसे उत्तरी सरकार का प्रदेश मिल गया। सन् १७५८ ई० मे बुसी वापस बुला लिया गया। उसके चल जाने के बाद हैदराबाद से फ़ासीसियो का प्रभाव जाता रहा।

**डूप्ले का चरित्र और उसकी नीति**—सभी इतिहासकार इस बात को मानते है कि जिस उद्देश्य से प्रेरित होकर डूप्ले ने भारत में काम किया वह बडा ज़बर्दस्त तथा ऊँचा था। वह देशभक्त और निःस्वार्थी था। उसने सदा अपने देश का गौरव बढाने की चेष्टा की। कूटनीति मे तो वह सबसे चतुर था। अपनी कूटनीति ही के सहारे उसने मैसूर तथा मराठो को अँगरेज़ो से पृथक् कर दिया। भारतीय राजनीति का उसे अच्छा ज्ञान था। अपनी लालसा को पूरी करने के लिए उसे दक्षिण मे अच्छा अवसर भी मिल गया। शान-शौकत दिखलाने और अपनी शक्ति बढाने की उसकी प्रबल इच्छा थी। कर्नाटक के नवाब की उपाधि धारण करके उसने बडी भूल की। अपने मातहतो के साथ उसका व्यवहार बडा कठोर था। जब वे असफल हो जाते, तो सारा अपराध वह उन्ही के सिर मढ देता था।

कुछ लोग कहते है कि सबसे पहल उसी के दिमाग़ मे यह बात पैदा हुई कि भारत में यरोपीय राज्य स्थापित किया जाय। किन्तु वर्तमान काल के लखक स बात को नही मानते। उनका मत है कि १७५० ई० के पूर्व उसके दिमाग म कोई राजनीतिक योजना थी ही नही। उसने बूसी को हैदराबाद में उस आशा से रक्खा था कि नये नवाब फ्रांसीसी व्यापार को अधिक प्रोत्साहन देगे और उनके कर्मचारी फ्रांसीसी बस्तियो से सम्बन्ध रखनवाल माल के साथ कोई हस्तक्षप नही करेंगे। राज्य क़ायम करने के लिए नही बल्कि मालगुज़ारी वसल करने के लिए ही वह पाण्डचेरी के पास क बडा इलाका प्राप्त करना चाहता था।

डुप्ले

कर्नाटक में उसके असफल होने के कई कारण थ। बिना कम्पनी की सलाह लिय ही उसने चान्दा साहब तथा मुज़फ्फरजग की सहायता की। वह जानता था कि इस देश के राजनीतिक मामलो में भाग लन के लिए कम्पनी उसे कभी अनमति नही देगी। धन के अभाव से भी उसके कार्य मे बडी बाधा पडी। सेना के खर्च के लिए रुपये की आवश्यकता थी किन्तु उसे पर्याप्त रुपया प्राप्त न हो सका। अपनी सफलता का उसे आवश्यकता से अधिक विश्वास था। असफलता की सम्भावना उसे स्वप्न में भी नही थी। न तो कम्पनी के सचालको ने उसे यथेष्ट सहायता दी और न उन्होने उसकी भारतीय

योजनाओ को ही पसन्द किया। वे लोग केवल शान्ति चाहते थे और चार वर्ष तक युद्ध करने पर भी डूप्ले शान्ति स्थापित न कर सका। इसके अतिरिक्त एक बात और थी। इंगलेंड और फ्रास के बीच होनेवाल अमरीका के झगडे के कारण भारत का प्रश्न ही सामने से हट गया था।

असफल हो जाने पर भी डूप्ले का नाम भारतीय इतिहास में सदा अमर बना रहेगा। उसकी सभी योजनाएँ साहसपूर्ण थी और यदि वे सफल हो जाती तो भारत में अँगरेजो का स्थान फ्रासीसियो को मिला होता। उसके विरोधी भी इस बात को स्वीकार करते है कि वह एक प्रतिभाशाली ।रुप था। फ्रासीसियो की शक्ति को जिस प्रकार उसने बढाया और अँगरेज लोग उससे जितन भयभीत हो गये थे, उससे ही हम उसकी राजनीतिक प्रतिभा का ठीक अनमान कर सकते है।

तीसरा युद्ध (१७५६-६३)—चार वर्ष की शान्ति के बाद भारत में अँगरेजो और फ्रासीसियो के बीच फिर लडाई शुरू हो गई। इसका कारण यूरोप के सप्तवर्षीय युद्ध का आरम्भ होना था। फ्रासीसियो के लिए यह बडा अच्छा अवसर था क्योकि अँगरेज लोग उस समय बगाल में बडे सकट में पड गये थे और क्लाइव उनकी रक्षा के लिए अपनी विजयी सेना को लेकर वहाँ चला गया था। किन्तु फ्रासीसी सेनापति लैली (Lally) बहुत देर से पहुचा। उसके आने के समय (१७५८ ई०) तक बगाल में अँगरेजो की स्थिति बहुत सुधर गई थी। प्लासी के युद्ध मे उन्हे विजय प्राप्त हो चुकी थी।

लैली बडा बहादुर किन्तु हठी सैनिक था। अन्य अफसरो के साथ मिलकर वह कोई काम भी नही कर सकता था। उसने पहले सेंट-डेविड (St David) पर कब्जा कर लिया। उसके बाद मद्रास पर आक्रमण किया किन्तु सेना मे फूट हो जाने के कारण वह सफल नहीं हो सका। उसने बूसी को हैदराबाद से बुला लिया, यद्यपि फ्रासीसी स्थिति को कायम रखने के लिए उसका वहाँ रहना बडा उपयोगी था। सेना के

फ्रासीसियो और
अंगरेजो का युद्ध
सूरत
औरंगाबाद
गोदावरी नदी
बम्बई
भीमा नदी
हैदराबाद
कृष्णा नदी
उत्तरी सरकार
गोआ
वेलोर
कावेरी नदी
मद्रास
आम्बूर
आरकाट
वान्डवाश
पांडिचेरी
फोर्ट सेंट डेविड
श्रीरंगम
त्रिचनापल्ली
कारीकाल
नेगापटम
माही
मदुरा

विद्रोह कर देने के कारण लैली के कार्य में वडा विघ्न पडा। उसके पास धन का अभाव था। पाण्डचेरी के गवर्नर के साथ उसका सम्बन्ध भी विलकुल असन्तोपप्रद था। यद्यपि अँगरेज़ो की अपेक्षा फ्रासीसियो का जहाज़ी वेडा अधिक शक्तिशाली था तो भी वह शत्रु के सामने ठहर न सका। १७६० ई० में वाडवाश की लडाई में सर आयरकूट (Sir Eyre Coote) ने लैली को हरा दिया। वुसी क़ैद कर लिया गया। दूसरे वर्ष पाण्डुचेरी भी अँगरेज़ो के हाथ आ गया। लैली कैद करके इँगलैंड भेज दिया गया। वहा वह छोड दिया गया और उसे फ्रास जाने की आज्ञा दे दी गई। फ्रास मे उस पर मुकदमा चलाया गया और उसे फाँसी की सज़ा मिली।

सन् १७६० ई० मे, पेरिस की सधि से, सप्तवर्षीय युद्ध का अन्त हो गया। सधि की शर्तो के अनसार फ्रासीसियो की शक्ति वहुत कम हो गई। उनकी सेना की सख्या नियत कर दी गई। उन्हे वगाल मे जाने का अधिकार नही रहा। केवल व्यापारी की हैसियत से वे उस सूवे में जा सकते थे। मुहम्मदअली कर्नाटक का नवाव हो गया। हैदरावाद में फ्रासीसियो का प्रभाव मिट गया। सलावतजग को उसके भाई 'निज़ामअली ने मार डाला। उत्तरी सरकार के ज़िले अँगरेज़ो के हाथ आ गये। १७६५ ई० मे मुगल-सम्राट से फरमान प्राप्त कर उन्होने इस अधिकार को कानूनी दृष्टि से और भी मज़वूत वना दिया।

**अँगरेज़ो की सफलता के कारण**—राजनीतिक युद्ध म अँगरेज़ो की सफलता के कई कारण थ। फ्रासीसी कम्पनी की अपेक्षा अँगरेज़ी कम्पनी की आर्थिक और व्यापारिक स्थिति वहुत अच्छी थी। फ्रासीसी कम्पनी राज्य की कम्पनी थी। उसके मालिक उसके कार्यो में दिलचस्पी नही लेते थे। अँगरेज़ी कम्पनी का प्रवन्ध वहुत अच्छा था। सरकार को उसने वहुत-सा कर्ज़ दिया था। उसके सचालक सार्वजनिक नीति पर अधिक प्रभाव रखते थे। फ्रास का राजा यूरोप के युद्धो पर अधिक ध्यान देता था। अपने उपनिवेशो तथा व्यापारिक हितो का उसे कम

खयाल था। युद्ध के समय में भी अँगरेज लोग अपने व्यापार पर पूरा ध्यान देते थे। उन्होंने बगाल को जीतकर अपनी सपत्ति और भी बढा ली थी। फ़ासीसी लोग व्यापार की ओर बिलकुल ध्यान नही देते थे। वे उन लडाइयो मे बहुत-सा धन नष्ट कर देते थे, जिनसे उनको कुछ लाभ न होता था। युद्ध की दृष्टि से, अँगरेजो की तरफ क्लाइव और लारेंस की भाँति योग्य और कार्यशील व्यक्ति थे। इसके विपरीत फ़ासीसी अफ़सर आपस ही मे लडते-झगडते थे। वे एकमत होकर काम करना नही जानते थे। बगाल को जीत लेने से अँगरेजो को युद्ध करने का एक अच्छा आधार मिल गया। फ़ासीसियो का आधार मौरीशस भारत से बहुत दूर था। फ़ासीसियो की अपेक्षा अँगरेजो की स्थिति एक और बात में अधिक दढ थी। समुद्र पर उनकी प्रभुता स्थापित थी। जब तक समुद्र पर उनका अधिकार क़ायम था, तब तक और कोई देश भारत में विजय नही प्राप्त कर सकता था।

हैदरअली का उत्कर्ष—१५६५ ई० में विजय नगर साम्राज्य के छिन्न-भिन्न होने के बाद मैसूर देश पर वौदेयार-वश का राज्य हो गया। अठारहवी शताब्दी के मध्यकाल के लगभग वह वश बिलकुल शक्तिहीन हो गया। हैदरअली नामक एक योग्य सैनिक नेता ने बलपूर्वक मैसूर पर कब्जा कर लिया। वह एक ऐसे विदेशी मुसलमान के घर में पैदा हुआ था जो आकर दक्षिण में बस गया था। उसका जन्म १७२२ ई० में हुआ था। उसके बाप और भाई, मैसूर की सेना में अफसर थे। हैदरअली ने युद्ध की शिक्षा देकर एक सेना का सगठन किया। इसलिए राज्य का मन्त्री उस पर बहुत प्रसन्न हुआ। सन १७५५ ई० में वह डिंडीगल का फौजदार हो गया। उसके बाद बगलोर उसे जागीर में मिला और वह प्रधान सेनापति के पद पर नियुक्त हो गया। थोडे समय तक उसकी स्थिति कमजोर पड गई। किन्तु शीघ्र ही उसने अपने प्रभाव को फिर जमा लिया। सन १७६३ ई० में उसने बदनूर को जीत लिया। तीन वर्ष के बाद मैसूर के राजा की मृत्यु हो गई। इस प्रकार उसे अपनी शक्ति

को बढाने का अवसर मिला। यद्यपि नाम मात्र के लिए राजवश के व्यक्ति को उसने गद्दी पर बिठा दिया परन्तु वास्तव में राज्य का सारा अधिकार उसी के हाथ में था।

**मैसूर की पहली लड़ाई (१७६७-६६)**—उस समय दक्षिण के देशी राजाओ के साथ अँगरेज़ो के सम्बन्ध का प्रश्न कठिन था। कर्नाटक का नवाब अँगरेज़ो का मित्र था। मैसूर, मराठे और निज़ाम अपनी अपनी प्रभुता के लिए परस्पर लड रहे थे। कभी तो वे अँगरेज़ो के साथ मित्रता का व्यवहार रखते थे और कभी उनके शत्रु बन जाते थे। सन् १७६५ ई० में मद्रास की कौंसिल ने निज़ाम के साथ एक समझौता किया और हैदरअली तथा मराठो के विरुद्ध निज़ाम की सहायता करने का वादा किया। इस समझौते के थोडे ही समय बाद मराठो ने मैसूर पर आक्रमण किया। हैदरअली ने रिश्वत देकर उन्हें लौटा दिया।

मद्रास कौंसिल ने निज़ाम की सहायता के लिए खतरनाक लडाई में भाग लेने का वचन देकर बडी मूर्खता की। निज़ाम छिपे-छिपे मराठो और हैदरअली से सुलह की बातें करता था और हैदरअली उसे कर्नाटक का राज्य जितवाने का प्रलोभन देता था। अँगरेज़ सेनापति कर्नल स्मिथ (Colonel Smith) जब निज़ाम की सहायता के लिए उसके यहाँ गया, तब उसे यह देखकर बडा आश्चर्य हुआ कि निज़ाम की सेना अँगरेज़ो के साथ युद्ध करने के लिए तैयार है। परन्तु इससे वह निराश नही हुआ। उसने १७६७ ई० मे निज़ाम और हैदरअली की सयुक्त सेना को चगामा और त्रिनोमली नामक स्थानो पर हराया। मद्रास कौंसिल ने निज़ाम के साथ फिर सधि कर ली। इससे हैदरअली बहुत नाराज़ हो गया। उसके साथ लडाई जारी रही। १७६६ ई० में वह मद्रास नगर की दीवार तक जा पहुँचा। उसने अँगरेज़ो को एक अपमानजनक सधि पर हस्ताक्षर करने के लिए विवश किया। दोनो ने एक दूसरे के जीते हुए स्थानो को लौटा दिया। अँगरेजो ने हैदरअली को वचन दिया कि अगर कोई दूसरी शक्ति तुम्हारे ऊपर आक्रमण करेगी तो हम तुम्हारी मदद करेंगे। सन्

१७७१ ई० में मराठों ने मैसूर पर हमला किया। जब हैदरअली ने अँगरेज़ों से सहायता माँगी तो उन्होंने आनाकानी की। इस बात पर हैदर बहुत नाराज़ हुआ और वह अँगरेज़ों का घोर शत्रु बन गया।

### संक्षिप्त सन्वार विवरण

| | |
|---|---|
| हैदरअली का जन्म .. .. .. .. | १७२२ ई० |
| एलाशपल की संधि .. . .. .. | १७४८ „ |
| निज़ामुलमुल्क आसफ़जाह की मृत्यु .. .. | १७४८ „ |
| अम्बर की लड़ाई .. .. .. | १७४९ „ |
| नाज़िरजंग का कत्ल .. .. .. | १७५० „ |
| डूप्ले का वापस जाना .. .. | १७५४ „ |
| हैदरअली का डिंडीगल का फ़ौजदार नियुक्त होना .. | १७५५ „ |
| लैली का भारत में आना .. .. | १७५८ „ |
| बुसी को हैदराबाद से वापस बुलाना .. .. | १७५८ „ |
| वाँडवाश का युद्ध . .. .. .. | १७६० „ |
| पेरिस की सन्धि .. .. .. | १७६३ „ |
| हैदरअली का बेदनूर जीतना .. .. .. | १७६३ „ |
| चंगामा और त्रिनोमली के युद्ध . .. .. | १७६७ „ |
| मद्रास पर हैदरअली का आक्रमण .. .. .. | १७६९ „ |
| मराठों का मैसूर पर आक्रमण .. .. .. | १७७१ „ |

—

# अध्याय ३०

## वङ्गाल में नवाबो का पतन और उसके बाद की दशा

(१७५७-६७ ई०)

अलीवर्दी ख़ाँ—जिस समय अँगरेज़ और फ़ासीसी, अपनी प्रभुता के लिए, दक्षिण में लड रहे थे उस समय बगाल में बडा राज्य-विप्लव हो रहा था। नवावी का पतन हो रहा था और अँगरेज़ अपनी शक्ति को वढा रहे थे। बगाल का सूबा मुग़ल-साम्राज्य का एक भाग था। मुगल-सम्राट् ही सूबेदार की नियक्ति करते थे। सन् १७०१ ई० मे मुर्शिद कुली ख़ाँ बगाल का दीवान था। वह असल में ब्राह्मण था और पीछे से मुसलमान हो गया था। वह अँगरेज़ो को देखकर जलता था। अँगरेज़ो ने, अपनी स्थिति को सुरक्षित बनाने के लिए, १७१७ ई० में दिल्ली के सम्राट से

मुर्शिद कुली ख़ाँ

एक़ नया फरमान हासिल कर लिया था। सन १७२५ ई० में मुर्शिद कुली ख़ाँ मर गया। उसका वेटा गद्दी पर बैठा। सन १७४१ ई० में उसे गद्दी से उतारकर अलीवर्दी ख़ाँ बगाल का सूबेदार हो गया। वह एक

योग्य शासक था। उसके समय में मराठो ने बगाल पर हमले किये। उसने सफलतापूर्वक उनका सामना किया तो भी उडीसा का प्रदेश तथा १२ लाख रुपये उसे देने पडे। अँगरेज़, फ़ासीसी तथा हालेण्ड-निवासी क्रम से कलकत्ता, चन्द्रनगर तथा चिनसुरा में अपनी बस्तियाँ स्थापित कर बगाल में बस गये थे। औरगज़ेब से एक फरमान हासिल कर अँगरेज़ो ने फोर्ट विलियम नाम का क़िला बनवा लिया था। कलकत्ता एक बडा नगर हो गया था। अलीवर्दी खाँ बडा समझदार आदमी था। वह सब बातो को खूब समझता था। उसे अँगरेज़ो की नीयत पर सन्देह हो गया। वह समझता था कि हमें अपने पूरे अधिकार का प्रयोग करना चाहिए। इसलिए जब कभी अँगरेज़ अपनी स्वतन्त्रता दिखाने का प्रयत्न करते तब वह क्रोध प्रकट करता था। वह कहा करता था "तुम लोग व्यापारी हो, तुम्हे क़िलो से क्या काम ? मेरी सरक्षकता में रहकर तुम्हे किसी शत्रु का भय न करना चाहिए।" वह जानता था कि ये लोग किसी समय खतरनाक हो सकते है। वह अँगरेज़ो की उपमा शहद की मक्खियो के छत्तो से देता था और कहता था कि "तुम उनसे शहद निकाल सकते हो परन्तु यदि उनके छत्तो को छेडोगे तो मक्खियाँ काटकर तुम्हारी जान ले लेंगी।" अलीवर्दी खाँ १७५६ ई० में मर गया और उसका पोता मिर्ज़ा मुहम्मद—जो इतिहास मे सिराजुद्दौला के नाम से प्रसिद्ध है—गद्दी पर बैठा। उस समय उसकी अवस्था २३ वर्ष की थी।

**अँगरेज़ों और नवाब के झगडे के कारण**—नये नवाब को शुरू से ही अँगरेज़ो पर अविश्वास था। वास्तव में कुछ विद्वानो का मत है कि मरते समय अलीवर्दी खाँ उसे इस बात की चेतावनी दे गया था कि यूरोप-वाले बडे भयकर है। यूरोप में युद्ध होने की आशका से अँगरेज़ और फ़ासीसी अपनी बस्तियो की किलाबन्दी करने लगे। नवाब ने उन्हे ऐसा करने से रोका। फ़ासीसी मान गये परन्तु अँगरेज़ो ने नवाब की आज्ञा को मानने से इनकार कर दिया और बड़ी गुस्ताखी के साथ नवाब को जवाब दिया।

इसके अतिरिक्त नवाब और अँगरेज़ो के झगडे के और भी कारण थे। अँगरेज़ लोग उसका उचित सम्मान नही करते थे। १७१७ ई० के फरमान से उन्हे व्यापार करने के जो अधिकार मिले थे, उनसे उन्होने अनुचित लाभ उठाया। नवाब के यहाँ से भागे हुए अभियुक्तो को उन्होने अपनी शरण में रख लिया था। नवाब ने जब उन्हे वापस भेजने को कहा तो अँगरेज़ो ने इनकार कर दिया। नवाब को इस बात का भय था कि अँगरेज़ो ने जैसा कर्नाटक में किया था वैसा यहाँ भी न करें। उनकी बस्तियाँ सबसे अधिक बडी और सम्पत्तिमान् थी। उनके व्यापार पर जो शर्ते लगाई गई थी, उनके कारण वे बडे असन्तुष्ट थे। नवाब का खयाल था कि अँगरेज़ो को बगाल से बाहर निकाल देना मेरे हित के लिए आवश्यक है। प्रान्त की राजनीतिक तथा आर्थिक परिस्थितियो के कारण अँगरेज़ो का रुख और खराब हो गया था। हिन्दू, विशेषकर सेठ लोग, नवाब से असन्तुष्ट थे। उसके दुर्व्यवहार से तग आकर उन्होने अँगरेज व्यापारियो का साथ दिया और इस बात की कोशिश की कि सिराजुद्दौला से नवाबी छीन ली जाय।

ब्लैकहोल—अँगरेज़ो के उद्दण्डतापूर्ण उत्तर पर नवाब को बडा क्रोध आया। उसने कासिमबाज़ार की कोठी पर अधिकार करके कलकत्ते पर धावा कर दिया। गवर्नर, सेनापति तथा और बहुत-से अँगरेज भाग निकले। किले मे कुछ सैनिक रह गये। हालवेल (Holwell) नाम का एक रिटायर्ड सर्जन सेनानायक चुना गया। उसने दो दिन तक किले की रक्षा की किन्तु अन्त में उसने किला नवाब को सौंप दिया। कहा जाता है कि नवाब के सिपाहियो ने १४६ अँगरेज कैदियो को एक छोटी-सी कोठरी में बन्द कर दिया था। जून का महीना था। गरमी से तडप-तडप कर बहुत-से कैदी रात में मर गये। दूसरे दिन सवेरे जब वह कोठरी खोली गई तो उसमें केवल २३ आदमी जीते निकले। इस बात को यूरोपीय लेखक भी मानते है कि नवाब को इस विषय में कुछ नही मालूम था। कुछ भारतीय विद्वानो का मत है कि ब्लैकहोल

की घटना कपोल-कल्पित है। उस समय के लेखों में इस घटना का कुछ वर्णन नहीं मिलता। बाद को मीरजाफर के साथ जो सन्धियाँ हुईं उनमें भी हर्जाने की कोई चर्चा नहीं थी। ब्लैकहोल की घटना का वर्णन हालवेल ने इस उद्देश्य से बहुत नमक-मिर्च मिलाकर किया है कि अँगरेज़ उत्तेजित होकर नवाब से बदला लेने का प्रयत्न किया करें।

**बङ्गाल में क्लाइव**—जब ब्लैकहोल का समाचार मद्रास पहुँचा तब गवर्नर ने तुरन्त क्लाइव और वाटसन की अध्यक्षता में एक सेना भेजी। उस सेना में ९०० गोरे और १,५०० हिन्दुस्तानी सिपाही थे। बङ्गाल पहुँचते ही उन्होंने कलकत्ता वापस ले लिया। इसके बाद वे हुगली की ओर रवाना हुए। नवाब की सेना के साथ उनकी मुठभेड़ हुई लेकिन हार-जीत का फ़ैसला होने के पहले ही एक सन्धि हो गई। इस सन्धि की शर्तों के अनुसार कम्पनी के सब अधिकार वापस कर दिये गये। क्लाइव ने बड़ी सावधानी से काम किया। फ़ासीसियों के भय से उसने कालकोठरी की घटना के विषय में एक शब्द भी नहीं कहा। वह जानता था कि फ़ासीसी लोग नवाब के साथ सन्धि करने के लिए तैयार हैं। इसलिए नवाब को वह अपनी ओर से असन्तुष्ट करना नहीं चाहता था। इसके बाद कर्नल वाटसन चन्द्रनगर की ओर रवाना हुआ और उसे जीत लिया। इसी बीच (जनवरी १७५७ ई०) में अहमदशाह अब्दाली ने दिल्ली पर हमला किया। सिराजुद्दौला भी इस लूट-पाट का समाचार सुनकर डर गया था। वह अँगरेज़ों से मित्रता बनाये रखना चाहता था। इसी लिए वह किसी प्रकार फ़ासीसियों की सहायता करने के लिए तैयार नहीं हुआ।

**नवाब के विरुद्ध षड्यन्त्र**—नवाबी को नष्ट करने का निश्चय क्लाइव ने पहले ही कर लिया था। वह इसके लिए एक अच्छे अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था। सिराजुद्दौला के विरुद्ध उसके बड़े-बड़े अफ़सरों ने मिलकर एक षड्यन्त्र रचा। नवाब की फौज का बख्शी मीरजाफ़र भी उसमें शामिल था। वह अलीवर्दी खाँ का एक बहनोई था।

अमीचन्द नामक एक सिक्ख सौदागर के द्वारा उन्होने अँगरेज़ो से लिखा-पढी करनी शुरू की। अमीचन्द ने कहा कि नवाव के खज़ाने में जो कुछ मिले, उसका ५ फी सदी और जवाहिरात का चौथाई हिस्सा, कमीशन के रूप में, मुझे मिलना चाहिए। उसने इस बात की धमकी भी दी कि अगर मेरी माँग पूरी नही की जायगी तो मै सब भण्डाफोड़ कर दूँगा। इस पर क्लाइव ने अमीचन्द को धोखा देने के लिए एक युक्ति सोच निकाली। मीरजाफर के साथ समझौता करने के लिए दो मसविदे तैयार किये गये। एक मसविदा लाल कागज़ पर और दूसरा सफेद कागज़ पर था। असली मसविदा सफेद कागज़ पर था। उसमें अमीचन्द के कमीशन की चर्चा नही की गई थी। लाल मसविदा झूठा था और वह धोखा देने के लिए ही तैयार किया गया था। वाटसन ने इस झूठे मसविदे पर दस्तखत करने से इनकार कर दिया। लेकिन क्लाइव ने उसके दस्तखत बनाकर अपना काम चलता किया। उसकी युक्ति सफल हुई। पीछे को उसने अपने इस काम को निर्दोष सिद्ध करने की चेष्टा की परन्तु उसके चरित्र पर यह कलङ्क सदा लगा रहेगा। मीरजाफर से बङ्गाल की नवावी देने का वादा किया गया। उसके वदले में उसने अँगरेज़ो के सब अधिकार वापस देने का वचन दिया। इसके अतिरिक्त दण्ड-रूप में १ करोड रुपया और चौवीस परगने की जमीदारी भी देने का वादा किया। क्लाइव तथा कौंसिल के अन्य मेम्बरो को भी वहुत-सा धन देने का वचन दिया।

जव षड्यन्त्र का सब काम पक्का हो गया, तव क्लाइव ने सिराजुद्दौला के पास एक पत्र लिखा। इस पत्र मे उस पर फ्रामीसियो के साथ लिखा-पढी करने और सन्धि की शर्तों को भङ्ग करने का दोष लगाया गया। जब उसे नवाव से कोई उत्तर न मिला तव वह प्लासी की ओर रवाना हुआ। यह स्थान मर्शिदाबाद के दक्षिण २३ मील की दूरी पर था। सिराजद्दौला वहाँ पहले ही से ५० हज़ार आदमी इकट्ठे कर चुका था। २३ जनवरी को, दोपहर के समय, प्लासी की प्रसिद्ध लडाई हुई।

नवाव की सेना के पैर उखड गये और वह मैदान छोडकर भाग निकली। सिराजुद्दौला कैद कर लिया गया और मीरजाफर के वेटे मीरन ने उसे मार डाला। मीरजाफर अब वङ्गाल का नवाव हो गया।

**प्लासी के युद्ध का महत्त्व**—युद्ध-कला की दृष्टि से प्लासी की लडाई का विशप महत्त्व नही है। यह कहना ठीक नही है कि अँगरेजो की विजय का कारण उनका सामाजिक सङ्गठन था। उनकी सफलता का मुख्य कारण उनकी चालाकी और नवाव के अफसरो का विश्वासघात था। अँगरेजो न ही पहल सन्धि की शर्तों को तोडा और उन्होने नवाव को पद-च्युत करन के लिए छिपकर षड्यन्त्र किया। राजनीतिक दृष्टि से युद्ध का परिणाम महत्त्वपूर्ण था। इस युद्ध के वाद अँगरेज वङ्गाल के मालिक वन गय। सार सवे की सम्पत्ति उनके हाथ आ गई। नवाव उनके हाथो की कठपुतली वन गया। नई-नई माँगें पेश कर वे उसे तङ्ग करने लगे। वङ्गाल के धन की सहायता से ही दक्षिणी भारत में फ्रासीसियो के विरुद्ध अँगरजो को सफलता मिली।

**नवाव मीरजाफर**—मीरजाफर वङ्गाल का नवाव हो गया। उससे कडे शब्दो मे सन्धि की शर्तों को पूरा करने के लिए कहा गया। क्लाइव तथा कौंसिल के अन्य सदस्यो को मुक्त हाथ से धन दिया गया। कुल २७½ लाख रुपया नवाव ने दिया। उसका अधिकार नाममात्र को रह गया। राज्य की असली शक्ति क्लाइव के हाथ में थी। वडे-वडे प्रतिष्ठित हिन्दुओ की सहायता से ही उसने वङ्गाल में क्रान्ति की थी। इसलिए उसने उनकी रक्षा का भरसक प्रयत्न किया। सन् १७५९ ई० म अवध के नवाव वजीर की मदद से शाहजादा अलीगौहर ने वङ्गाल और विहार पर चढ़ाई की। अलीगौहर मुग़ल-सम्राट् का लडका था, जो पीछे से शाहआलम द्वितीय के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसने अपनी सेना के साथ पटना को घेर लिया। एक छोटी-सी सेना लेकर क्लाइव पटना की ओर रवाना हुआ। शाहजादा लौटकर अवध को चला गया। मीरजाफर क्लाइव से वहुत प्रसन्न हुआ और अपनी

कृतज्ञता प्रकट करने के लिए उसने उसे एक जागीर दे दी। इस जागीर की वार्षिक आय तीस हज़ार पौंड थी। स्वय अपन लिए इस सम्पत्ति को लेकर क्लाइव ने अनुचित काम किया, विशेपत एमी स्थिति में जब वह जानता था कि नवाव मेरी माँग को किसी तरह इनकार नही करेगा। इसमें कम्पनी का भी दोप था। उसन अपन नौकरो के काम को अनुचित नही वताया और उन्हे कई वर्ष तक रुपया लने दिया। क्लाइव ने अपनी शक्ति का प्रयोग कर, अपन विरोधियो को नीचा दिखाना चाहा। मीरजाफर ने, अँगरेज़ो से तङ्ग आकर, डच लोगो के साथ लिखा-पढी शुरू की। उन्होने उसकी सहायता करने का वचन दिया। क्लाइव ने अपनी सव सेनाओ को इकट्ठा करके नवम्वर सन् १७५६ ई० में उनको हरा दिया। डच लोगो न अपनी हार और गलती मान ली और हरजाना भी दिया। अँगरेज़ो का विरोध करने के लिए अव पूर्व में कोई यूरोपीय राष्ट्र वाकी न रह गया। सन १७६० ई० में अस्वस्थ होकर क्लाइव इँगलेण्ड लौट गया।

गद्दी पर वैठने के साथ ही मीरजाफर के चारो ओर कठिनाइयाँ खडी हो गई थी। कौंसिल के मेम्वरो की माँग को वह पूरा न कर सका। शासन-प्रवन्ध के कार्य को भी वह ठीक तरह मे सङ्गठित नही कर सका। अँगरेज लोग विना ज़िम्मेदारी के अपने अधिकार का उपभोग करते थे और उसके मार्ग में रोडे अटकाते थे। हिन्दू मुसाहिव चाहते थे कि नवाव गद्दी से उतार दिया जाय। इसी लिए वे उसे धोखा देते थे। नवाव की आमदनी वहुत कम हो गई थी। उसका खज़ाना खाली हो गया था। कम्पनी के अफसरो को वह किमी तरह भारी रकम नही दे सकता था। उसकी ऐसी दशा देखकर वङ्गाल की कौंसिल ने उसे गद्दी से उतार दिया और उसके दामाद मीरकासिम को नवाव वना दिया। वह एक योग्य और हौसलामन्द आदमी था। कम्पनी के नौकर हर तरह निजी लाभ उठाने के लिए प्रयत्न करते थे। उन्होने मीरकासिम से वर्दवान, मिदनापुर और चटगाँव के ज़िले ल लिये। इसके

(प्लासी का युद्ध)
१७५७
मोगोरा
मालपुर
सोनारबागा
बलचर
नवाब की छावनी
रामनगर
किरलाह
नदी
भागीरथी
आम का बगीचा
राजा दुर्लभ राम
यार लुत्फ़ खाँ
मीर जाफर
प्लासी गाँव
बक्सर
उ
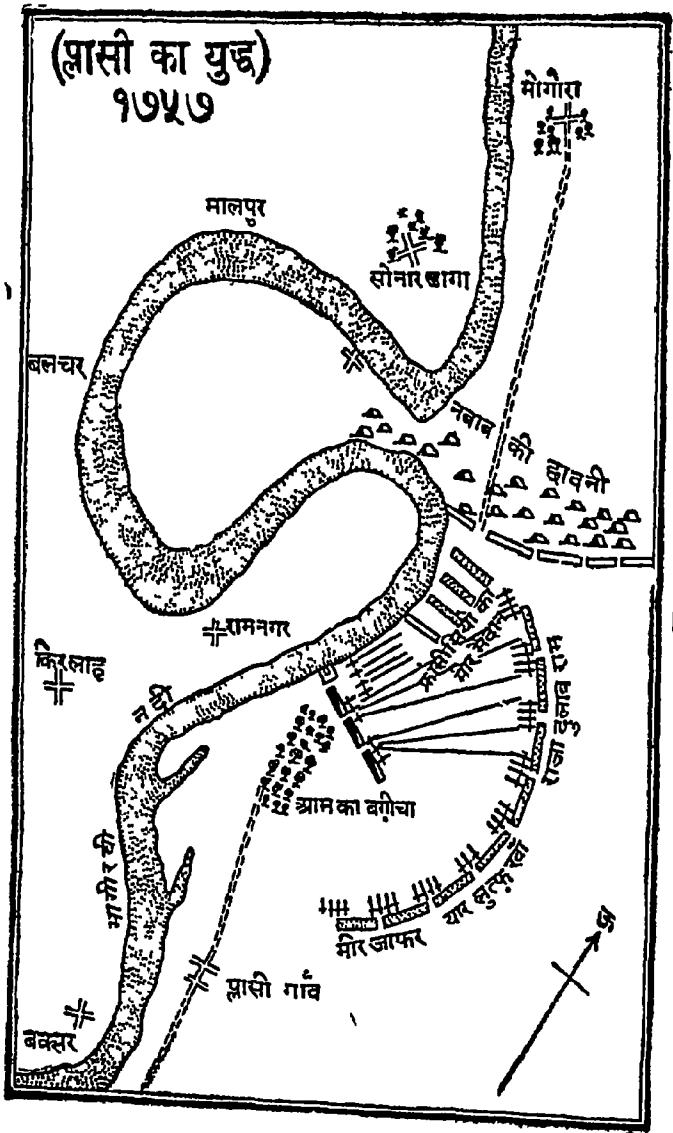
अतिरिक्त कौंसिल के मेम्बरो ने अपने लिए २ लाख पौण्ड और लिये। रिश्वत और व्यापार दोनो साथ-साथ चलते थे। कम्पनी के कर्मचारियो मे उचित-अनुचित, तथा आत्म-सम्मान का विचार नही था। वे अपने मालिको को हानि पहुँचाते थे और केवल अपन लाभ का खयाल करते थे।

**मीरकासिम और अँगरेज**—मीरक़ासिम बडा योग्य तथा अनुभवी शासक था। वह बङ्गाल की दशा से भली भाँति परिचित था। बिगडी हुई दशा को सुधारने का निश्चय कर उसने अपनी स्थिति को दृढ़ करने की चष्टा की। उसने अपनी सेना में विदेशो के सैनिक भर्ती किये। समरू (Sombre or Sumroo) नामक एक जर्मन को उसने अपना सेनापति बनाया और मुर्शिदाबाद से अपनी राजधानी हटाकर मुंगेर ले गया। उसने अँगरेजो के चङ्गुल से छुटकारा पाने की कोशिश की। मीरजाफ़र की तरह उसे भी यह मालूम हो गया कि अँगरेज अफ़सरो की रुपये की मांग को पूरा करना कठिन है। देश के भीतर होनेवाले व्यापार के प्रश्न पर उसके और अँगरेजो के बीच शीघ्र झगडा हो गया। मुग़ल बादशाहो के फरमानो से कम्पनी को बिना महसूल दिये व्यापार करने का अधिकार मिला था। पीछे से कम्पनी के नौकरो ने अपने निजी व्यापार में भी इस अधिकार का प्रयोग करना चाहा। मीरजाफ़र न उनकी इस बात को मान लिया था। अँगरेज लोग बिना कुछ महसूल दिये नमक, सुपारी और तम्बाक आदि चीजो का व्यापार करते थे। दस्तक निकालकर वे यह दिखाते थे कि सब माल कम्पनी के नौकरो का है। परन्तु अधिकतर अनुचित लाभ उठाने के लिए माल गुमाश्तो को दे दिया जाता था। इसका नतीजा यह हुआ कि नवाब की आय धीरे-धीरे कम होती गई और उसकी प्रजा को अँगरेजो के एकाधिकार के कारण हानि उठानी पडी। उसने बङ्गाल कौंसिल के पास कम्पनी के नौकरो की शिकायत लिख भेजी। परन्तु उसका कुछ परिणाम न हुआ। तब अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसने सब कर उठा दिये और अँगरेजों का एकाधिकार छीन लिया।

कौंसिल का बर्त्ताव ऐसा अनुचित था कि नवाब और अँगरेज़ों में शीघ्र युद्ध छिड़ गया। मीरक़ासिम पराजित हुआ। उसे गद्दी से उतारकर मीरजाफ़र को एक बार फिर नवाब बनाया गया। विवश होकर नये नवाब ने अँगरेज़ों को फिर सब अधिकार दे दिये। मीरक़ासिम ने पटना के अँगरेज़ों को मार डालने की धमकी दी। समरू ने आज्ञा पाकर, २०० अँगरेज़ों के साथ कोठी के अध्यक्ष एलिस को क़ैद कर लिया और सबको क़त्ल करा दिया। यह घटना 'पटना का हत्याकाण्ड' (Massacre of Patna) के नाम से प्रसिद्ध है।

**बक्सर का युद्ध (१७६४ ई०)**—मीरक़ासिम ने मुग़ल-सम्राट् तथा अवध के नवाब वज़ीर के साथ मेल करके अँगरेज़ों के विरुद्ध लड़ने की तैयारी की। उनकी सब सेना में मिलाकर चालीस हज़ार से साठ हज़ार तक सैनिक थे। वे सब बक्सर पहुँचे। २३ अक्टूबर सन् १७६४ ई० को जब लड़ाई हुई तो वे हार गये। अँगरेज़ों की सेना में कुल ७,०७२ सिपाही (जिनमें से ८५७ गोरे थे) और २० तोपें थीं। मीरक़ासिम बड़ी वीरता के साथ लड़ा परन्तु अन्त में वह हार गया। उसकी पराजय का प्रधान कारण यह था कि मुग़ल-सम्राट् तथा अवध के नवाब ने दिल खोलकर उसकी सहायता नहीं की। शाहआलम अँगरेज़ों की शरण में आ गया। मीरक़ासिम और नवाब वज़ीर लड़ाई के मैदान से भाग गये।

बक्सर के युद्ध ने प्लासी के काम को पूरा कर दिया। इस विजय ने वास्तव में भारत में अँगरेज़ों की शक्ति को जमा दिया। अँगरेज़ों की प्रतिष्ठा और भी बढ़ गई, विशेषतः इसलिए कि मुग़ल-सम्राट और उसके वज़ीर भी उनसे हार गये। मीरजाफ़र फिर नवाब हो गया। परन्तु १७६५ ई० में उसकी मृत्यु हो गई। उसके बाद उसका बेटा नजमुद्दौला गद्दी पर बैठा। वह अँगरेज़ों के हाथ में कठपुतली की तरह नाचता था और उसके राज्य में अँगरेज़ों ने पूर्ण अधिकार स्थापित कर लिया था।

**सन् १७६५ ई० में कम्पनी की स्थिति**—कम्पनी के नौकर बिलकुल आचरण-भ्रष्ट हो रहे थे। वे अब भी निजी व्यापार करते और भेंट लेते थे। कम्पनी के हिताहित की उन्हे कुछ भी पर्वाह नही थी। वे अपनी इच्छा के अनुसार नवाबों को गद्दी पर बिठाते और उतारते थे। वे ऐसा युद्ध आरम्भ कर देते थे जिससे कम्पनी को लाभ की अपेक्षा हानि अधिक होती थी। ऐसी दशा में कम्पनी के सञ्चालको ने क्लाइव को बङ्गाल का गवर्नर और प्रधान सेनापति बनाकर फिर दूसरी बार भारत भेजा। वह अब की बार यह निश्चय करके आया कि कम्पनी के नौकरो और गुमाश्तो की सब बुराइयाँ दूर करेगा। मई सन १७६५ ई० में वह हिन्दुस्तान आ पहुँचा।

**क्लाइव का दूसरी बार शासन (१७६५-६७)**—इस काल में क्लाइव ने तीन मुख्य काम किये। पहला काम कम्पनी की फौजी और दीवानी नौकरियो में सुधार करना था। दूसरा काम बङ्गाल की दीवानी (मालगुजारी वसूल करने का अधिकार) को प्राप्त करना था। तीसरा काम था दूसरे राज्यो के साथ कम्पनी का सम्बन्ध ठीक करना।

**शासन-सुधार**—पहले उसने कम्पनी के कर्मचारी-विभाग के दोषों को दूर करने का प्रयत्न किया। कम्पनी के कर्मचारियो में घूस और नजराना लेने की चाल बहुत बढ गई थी। छोटे कर्मचारियो का बहुत जल्दी तरक्की मिल जाती थी। निजी व्यापार द्वारा प्रत्येक मनुष्य अपने को धनाढय बनाने की कोशिश मे लगा हुआ था। बहुत जल्दी-जल्दी तरक्की देने की प्रथा को क्लाइव ने रोक दिया। उसने कर्मचारियो से प्रतिज्ञा-पत्र लिखवाये कि वे बहुमूल्य भेंट नही लेंगे। उनका वेतन कम था, इसलिए बडे कर्मचारियो को क्लाइव ने नमक के व्यापार का एकाधिकार दिलवा दिया। एक व्यापार-समिति बनाई गई किन्तु बाद को डाइरेक्टरों की सभा ने उसे बन्द कर दिया। क्लाइव के फौजी सुधारो से भी कम्पनी की स्थिति बहुत कुछ दृढ हो गई। नवाब की

सेना को भी उसने घटा दिया। पहले सिपाहियों को दोहरा भत्ता दिया जाता था। क्लाइव ने उसको बन्द कर दिया। इन सुधारों का अफसरों ने विरोध किया परन्तु क्लाइव उनकी धमकी में आनेवाला व्यक्ति नहीं था। जिन्होंने नौकरी छोड़ देने की धमकी दी, उनका इस्तीफा उसने शीघ्र स्वीकार कर लिया।

**दूसरे राज्यों के साथ सम्बन्ध**—क्लाइव ने अवध के नवाब वजीर और मुगल-सम्राट के साथ कम्पनी का सम्बन्ध ठीक कर दिया। वान्सिटार्ट (Vansittart) ने सम्राट को अवध देने का वादा किया था किन्तु क्लाइव ने ऐसा करना मूर्खता समझा। १६ अगस्त सन् १७६५ ई० को इलाहाबाद में सम्राट के साथ सन्धि हुई। इस सन्धि की शर्तों के अनुसार कड़ा और इलाहाबाद के अतिरिक्त अवध का शेष भाग नवाब को लौटा दिया गया। लड़ाई के हरजाने के रूप में कम्पनी को ५० लाख रुपया देने के लिए नवाब राजी हो गया। उसके साथ एक सन्धि भी हो गई जिसके अनुसार दोनों ने एक दूसरे की मदद करने का वादा किया। अँगरेज इस बात पर राजी हो गये कि यदि नवाब खर्च देगा तो वे उसकी सीमा की रक्षा के लिए सेना देंगे। शाहआलम के साथ सन्धि का प्रश्न कठिन था। उसने अपनी इच्छा के विरुद्ध अँगरेजों को बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी अर्थात् कर वसूल करने का अधिकार दे दिया। इसके बदले क्लाइव ने उसकी प्रतिष्ठा को बनाये रखने के लिए उसे कड़ा और इलाहाबाद के जिले दे दिये। इसके अतिरिक्त उसने सम्राट को २६ लाख रुपया सालाना पेन्शन देना भी स्वीकार किया। शाहआलम ने कम्पनी को यह अधिकार भी दिया कि १० वर्ष के बाद वह क्लाइव की जागीर का उपभोग करे। दीवानी के मिलने से कम्पनी की स्थिति में बड़ा महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो गया। अब से मालगुजारी वसूल करने का अधिकार कम्पनी के हाथ में आ गया और निजामत, अर्थात् सैनिक शक्ति और फौजदारी का इन्साफ नवाब के अधिकार में रहा। इस प्रकार

क्लाइव ने बङ्गाल में दोहरा राज्य स्थापित कर दिया जिससे बाद को बडी-बडी कठिनाइयाँ उपस्थित हुई। अँगरेजो के हाथ मे अधिकार तो बहुत आ गया परन्तु उनके ऊपर शासन की जिम्मेदारी कुछ भी न रही।

क्लाइव

**क्लाइव का इँगलेण्ड लौटना**—चिन्ता और अधिक परिश्रम करने के कारण क्लाइव अस्वस्थ हो गया था। इसलिए वह १७६७ ई० मे इँगलेण्ड लौट गया। उसके शत्रुओ ने उसको बदनाम करने की चेष्टा की। उस पर बेईमानी का इलजाम लगाया। किन्तु उनके सब प्रयत्न विफल हुए। अन्त में पार्लियामेंट ने एक प्रस्ताव पास किया और उसकी महान् सेवाओ की प्रशसा की। परन्तु क्लाइव को इन सब बातो से बडा दुख हुआ। उसने १७७४ ई० में, ५० वर्ष की अवस्था में, आत्महत्या कर ली।

**क्लाइव का चरित्र**—क्लाइव बडा बुद्धिमान्, राजनीतिक मामलो में चतुर और दृढप्रतिज्ञ मनुष्य था। कठिन से कठिन स्थिति म भी उसकी समझ मे यह बात तुरन्त आ जाती थी कि इस समय क्या करना चाहिए। अपने देश के प्रति उसके हृदय मे अपूर्व भक्ति थी और अपनी समझ के अनुसार वह उसकी सेवा के लिए सदैव उद्यत रहता था। उसमें नेता बनने की योग्यता थी। कठिन परिस्थितियो में भी वह कभी व्याकुल नही होता था। उसके शत्रु भी उसके इन गुणो की प्रशसा करते थे। अपनी शक्ति और पराक्रम द्वारा उसने भारत म ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना की और अपने व्यक्तित्व के बल से उसने जितना कार्य किया

उतना कार्य अधिक धन और साधन के होते हुए भी दूसरे लोग नहीं कर सकते थे। क्लाइव मे दोष भी थे। उसे अनुचित उचित का कुछ विचार नही था। उसने बहुमूल्य भेंटें लीं और कम्पनी के नियमो के विरुद्ध काम किया। अपने ओहदे का दुरुपयोग कर उसने अपने को धनाढ्य बना लिया। उसने वाटसन के जाली दस्तखत बनाये और साथ ही यह भी जोर से कहा कि देश की भलाई के लिए मैं फिर ऐसा कर सकता हूँ। इन दोषो के होते हुए भी इसमें सन्देह नही कि वह एक बड़ा दूरदर्शी राजनीतिज्ञ था। वह जानता था कि कठिन समय में किस प्रकार काम करना चाहिए और किस प्रकार उपलब्ध साधनो द्वारा अधिक से अधिक लाभ उठाया जा सकता है।

संक्षिप्त सन्‌वार विवरण

| | | |
|---|---|---|
| मुर्शिद कुली खाँ की मृत्यु | .. | १७२५ ई० |
| अलीवर्दी खाँ का बङ्गाल का गवर्नर होना | .. | १७४१ " |
| अलीवर्दी खाँ की मृत्यु | .. | १७५६ " |
| प्लासी का युद्ध | .. | १७५७ " |
| मीरजाफर का बङ्गाल का नवाब होना | .. | १७५७ " |
| शाहज़ादा अलीगौहर का बङ्गाल पर आक्रमण | .. | १७५९ " |
| क्लाइव का डच लोगो को हराना | .. | १७५९ " |
| क्लाइव का इँगलैंड लौटना | .. | १७६० " |
| मीरकासिम का बङ्गाल का नवाब होना | .. | १७६० " |
| बक्सर की लड़ाई | .. | १७६४ " |
| मीरजाफर की मृत्यु | .. | १७६५ " |
| क्लाइव का दूसरी बार गवर्नर होकर आना | .. | १७६५ " |
| क्लाइव का इँगलैंड वापस जाना | . | १७६७ " |
| क्लाइव की मृत्यु | .. | १७७४ " |

# अध्याय ३१

## बङ्गाल का नया प्रबन्ध

### वारेन् हेस्टिंग्ज (Warren Hastings) (१७७२-८५ ई०)

**क्लाइव के जाने के बाद बंगाल की दशा**—क्लाइव के इँगलेंड लौट जाने के बाद वर्ल्स्ट (Verelst) (१७६७-६९) और कार्टियर (Cartier) (१७७०-७२) बङ्गाल के गवर्नर नियुक्त हुए। वे साधारण योग्यता के मनुष्य थे। इन पाँच वर्षों के अन्दर दोहरे शासन-प्रबन्ध के दोष स्पष्ट दिखाई देने लगे। बङ्गाल का आधा प्रबन्ध कम्पनी के हाथ में था और आधा नवाब के। इस प्रकार प्रबन्ध का दायित्व दोनो पर बँटा था। लेकिन असल में इससे बडी गडबडी होती थी। कार्य-काल की अवधि के निश्चित न होने से नवाब तथा कम्पनी के अफसर यथासम्भव अधिक से अधिक रुपया पैदा करने की चेष्टा करते थे। क्लाइव ने जिन बुराइयो को सख्ती के साथ दूर किया था वे फिर दिखाई देने लगीं। सन् १७६९-७० ई० मे बङ्गाल में एक भीषण दुर्भिक्ष पडा। इससे लोगों को भयानक पीडा हुई। उनकी दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई। उस समय के विवरणो से मालूम होता है कि अपनी क्षुधा को शान्त करने के लिए लोग लाशो को भी खा जाते थे। कम्पनी के नौकरो ने चावल खरीदकर इकट्ठा कर लिया और फिर उसे अधिक दाम लेकर बेचा। मालगुजारी बडी सख्ती के साथ वसूल की गई। किसानों और जमीदारो के बहुत से कुटुम्ब नष्ट हो गये। कम्पनी का लाभ कम हो गया। उसकी प्रतिष्ठा मे बडा बट्टा लगा। रुपये के अभाव के कारण उसकी धाक कम हो गई। बङ्गाल के बाहर की राजनीतिक स्थिति भी क्लाइव के जाने के बाद बदल गई थी। पानीपत की पराजय

के वाद मराठो ने फिर अपनी खोई हुई शक्ति को प्राप्त कर लिया। अब वे उत्तरी भारत पर छापा मारने लगे। मुगल-सम्राट उनकी सरक्षकता में इलाहाबाद से दिल्ली चला गया था। अवध के नवाव के साथ जो मैत्री-सम्बन्ध स्थापित था, वह शिथिल पड गया। किन्तु कोई झगडा नही हुआ।

वङ्गाल का गवर्नर वारेन् हेस्टिग्ज (सन् १७७२-७४)—वारेन् हेस्टिग्ज १७५० ई० में, १८ वर्ष की अवस्था में, ईस्ट इण्डिया कम्पनी में एक लेखक होकर आया था। उसको हिन्दुस्तान के मामलो का बडा अनुभव प्राप्त हो गया था। सन् १७६८ ई० से १७७२ ई० तक वह मद्रास-कौंसिल का मेम्बर रह चुका था। १७। ई० में वह वङ्गाल का गवर्नर नियुक्त किया गया। इस पद पर उसने दो वर्ष तक काम किया। उसने अनेक सुधार किये जिनसे कम्पनी की शक्ति अधिक वढ गई। नवाव की पेन्शन ३२ लाख से घटाकर १६ लाख कर दी गई और दोहरे प्रवन्ध की प्रणाली उठा दी गई। कम्पनी ने वास्तव मे दीवान वनने का निश्चय किया और चाहा कि अपने ही गुमाश्तो द्वारा वङ्गाल, विहार और उडीसा की मालगुजारी वसूल करे। खज़ाना मुर्शिदावाद से कलकत्ता हटा दिया गया और वहाँ एक 'सेण्ट्रल वोर्ड आफ़ रेवेन्यू' स्थापित किया गया। प्रत्येक ज़िले में नायव दीवान की जगह अँगरेज़ कलक्टर नियुक्त किये गये। मालगुज़ारी को वसूल करने का असली ज़िम्मा उन्ही के हाथो में था। अभी तक मालगुज़ारी का सालाना वन्दोवस्त होता था। किन्तु उससे वडी हानि और तकलीफ उठानी पडती थी। हेस्टिग्ज ने उसके स्थान पर पञ्चवर्षीय (पचसाला) वन्दोवस्त करने का नियम वना दिया। ज़मीन का ठेका उन्हें दिया गया जो सवसे अधिक देने के लिए तैयार हुए। इस वन्दोवस्त मे वङ्गाल के पुराने परिवारों को अधिक हानि उठानी पडी, क्योंकि उनके हाथ से ज़मीन निकल गई। सन् १७७७ ई० में डाइरेक्टरों के वोर्ड ने सालाना वन्दोवस्त को फिर से दुहराया। किन्तु जिस उद्देश्य

को सामने रख कर उन्होंने इस वन्दोवस्त को किया था वह पूरा न हुआ। न्याय-विभाग का सङ्गठन फिर से किया गया। जिले की दीवानी और फौजदारी दोनो अदालतें कलक्टर के अधीन थी। हेस्टिंग्ज ने कलकत्ते में अपील की दो अदालतें स्थापित की। एक का नाम था सदर दीवानी अदालत और दूसरी का सदर निजामत अदालत। सदर दीवानी अदालत मे माल के मुकदमो की अपीलें सुनी जाती थी और सदर निजामत अदालत मे फौजदारी की अपीले तय होती थी। पहली अदालत में गवर्नर-जनरल और कौंसिल के दो मेम्वर वैठते थे। दूसरी अदालत में एक मुसलमान जज प्रधान का काम करता था।

हेस्टिंग्ज हिन्दुस्तानियो को न्याय-विभाग से अलग रखना चाहता था और यदि उसको पूरा अधिकार दिया जाता तो वह सव अदालतो को अँगरेजो के ही सुपुर्द कर देता। उसने ऐसे नियम वना दिये जो सव अदालतो मे चालू किये गये और हिन्दू-धर्मशास्त्र का अँगरेजी में अनुवाद कराया। पुलिस को भी सङ्गठित किया और डाकुओ और सन्यासियो का, जो लडको को भगा ले जाते थे, दमन किया। तिव्वत के साथ व्यापारिक सम्वन्ध स्थापित करने के लिए उसने वहाँ एक मिशन भेजा।

यह नही कहा जा सकता कि हेस्टिंग्ज शासन-प्रवन्ध को पूर्णतया सुधारने मे सफल हुआ। वास्तव में उसमें इतने दोष पैदा हो गये थे कि सवको दूर करना वडा कठिन था। यद्यपि इनमें से अनेक सुधार डाइरेक्टरो के प्रयत्न से हुए परन्तु इस कारण हेस्टिंग्ज की प्रशसा न करना अन्याय होगा। उसने अपने काम को वडी योग्यता, उत्साह और जोश के साथ पूरा किया। यह खेद की वात है कि उसका कार्य समाप्त होने के पहले ही उसके हाथ से शक्ति छीन ली गई।

विदेशी नीति—अपने वाप-दादो के सिहासन को प्राप्त करने की आशा से मुगल-सम्राट् शाहआलम सिन्धिया की सरक्षकता में दिल्ली चला गया। वह पहले ही मराठो को इलाहावाद और कड़ा के

ज़िले दे चुका था। हेस्टिंग्ज ने सोचा कि बङ्गाल की सीमा पर स्थित इन दो पूर्वी ज़िलों का मराठों के हाथ में जाना बड़ा अनिष्टकारी होगा। उसने तुरन्त शाहआलम की पेन्शन बन्द कर दी। कड़ा और इलाहाबाद के ज़िलों को उसने अवध के नवाब को लौटा दिया। इसके बदले में नवाब ने कम्पनी को ५० लाख रुपया देने का वादा किया। मुग़ल-सम्राट् को २६ लाख रुपया सालाना की पेन्शन १७६९ ई० से नहीं मिली थी। इससे अँगरेज़ों की नेकनीयती पर शाहआलम को सन्देह होने लगा था। नवाब वज़ीर के साथ बनारस की जो सन्धि हुई थी उसके कारण रुहेला-युद्ध हुआ। इसके लिए बाद को हेस्टिंग्ज की बहुत कड़े शब्दों में निन्दा हुई।

रुहेला-युद्ध (१७७३-७४)—रुहेला-युद्ध के लिए बाद को हेस्टिंग्ज पर बड़ा दोषारोपण किया गया था इसलिए ठीक से यह जान लेना उचित है कि इस युद्ध का क्या कारण था। रुहेलखण्ड दोआब का एक उपजाऊ भाग है। उस समय वहाँ हाफ़िज़ रहमत ख़ाँ नामक एक पठान शासन करता था। जिस प्रकार अन्य बहुत से सरदारों ने मुग़ल-साम्राज्य के कुछ भाग को दबाकर स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिये थे, उसी तरह उसने भी अपना राज्य बनाया था। मराठों ने रुहेलखण्ड के सीमा-प्रान्त पर आक्रमण किया। पठान राजा की स्थिति बड़ी भयङ्कर हो गई। सन् १७७२ ई० में रुहेलों ने नवाब वज़ीर के साथ बनारस में सन्धि की थी और यह तय हुआ था कि यदि रुहेलों पर मराठे हमला करेंगे तो नवाब उनकी सहायता करेगा और इसके बदले में रुहेले नवाब को ४० लाख रुपया देंगे। सन् १७७३ ई० में मराठों ने रुहेलखण्ड पर आक्रमण किया। अँगरेज़ी फ़ौज की मदद से अवध के नवाब वज़ीर ने उन्हें हराकर भगा दिया। मराठों के लौट जाने पर नवाब ने ४० लाख रुपया माँगा। इस पर हाफ़िज़ रहमत ख़ाँ ने टालमटोल की। तब नवाब ने रुहेलों को दण्ड देने के लिए अँगरेज़ों से सहायता माँगी। हेस्टिंग्ज को उस समय रुपये

की बड़ी आवश्यकता थी। इसलिए वह एक अँगरेजी फ़ौज देने के लिए राजी हो गया। नवाब और अँगरेजो की सयुक्त सेना रुहेलखण्ड की ओर रवाना हुई और उसने रुहेलो को (२३ अप्रैल सन् १७७४ ई०) मीरनकटरा के युद्ध में पराजित किया। हाफिज रहमत अन्त समय तक लडता हुआ मारा गया। रुहेले, जिनकी सख्या २०,००० थी, जबरदस्ती देश से निकाल दिये गये। उनका राज्य शुजाउद्दौला के राज्य में मिला लिया गया।

इस युद्ध के लिए हेस्टिंग्ज की कड़े शब्दो में निन्दा की गई है। हेस्टिंग्ज पर दोषारोपण करनेवालो ने रुहेलो की मुसीबतो का वर्णन नमक-मिर्च लगाकर किया है। परन्तु इसमें कोई सन्देह नही कि रुहेलो ने अँगरेजो का कुछ नही बिगाडा था। इस मामले में हेस्टिंग्ज ने अपनी स्वाभाविक विचारशीलता से काम नही किया। जिन कारणो से प्रभावित होकर उसने इस युद्ध में भाग लिया उनसे उसकी बुद्धि और अनुभव की सराहना नही की जा सकती। सबसे अच्छी बात तो यह होती कि वह दोनो को लडने देता और स्वय अलग रहता। इसमें हस्तक्षेप करने के लिए कम्पनी किसी सन्धि से बाध्य नही थी। हेस्टिंग्ज का यह खयाल ग़लत था कि प्रतिज्ञा-पत्र उसे ऐसा करने के लिए विवश कर रहे थे। इसके अतिरिक्त जिस आशा से उसने इस नीति का अनुशीलन किया था वह भी पूरी नही हुई। हाफिज रहमत खाँ एक दयालु और उदार शासक था। उस समय के अन्य राजाओ की अपेक्षा ग़ैर-मुसलमान प्रजा के साथ उसका व्यवहार अच्छा था। शुजाउद्दौला का शासन अच्छा नहीं था। उसकी मृत्यु के बाद, उसके उत्तराधिकारियों के शासन-काल में, रुहेलखण्ड की दशा और भी खराब हो गई।

**रेग्यूलेटिंग ऐक्ट (१७७३)**—ईस्ट इडिया कम्पनी के मामलो की ओर अब इँगलैंड की सरकार का ध्यान आकृष्ट हुआ। सन् १७७१ ई० में जाँच करने से यह मालूम हुआ कि कम्पनी का सालाना खर्च बहुत

बढ़ गया है और उसका दिवाला निकलनेवाला है। उसके संचालकों ने सरकार से कहा कि यदि कम्पनी को क़र्ज़ नहीं मिलेगा तो उसके लिए भारत में अपना कार-बार चलाना असम्भव हो जायगा। बहुत वाद-विवाद के बाद १७७३ ई० में दो क़ानून (ऐक्ट) पास किये गये। पहले क़ानून से कम्पनी को कुछ शर्तों पर ४ प्रति सैकड़ा ब्याज पर १४ लाख पौंड का क़र्ज़ मिला। दूसरे क़ानून का नाम रेग्यूलेटिंग ऐक्ट (Regulating Act) था। इसके अनुसार कम्पनी के शासन-विधान का संशोधन हुआ और उसमें कुछ परिवर्तन किया गया। कम्पनी के मामलों पर इँगलैंड की सरकार का नियन्त्रण रक्खा गया। रेग्यूलेटिंग ऐक्ट में निम्न-लिखित बातें थीं—

(क) बङ्गाल का गवर्नर भारत का गवर्नर-जनरल बना दिया गया और उसका कार्य-काल ५ वर्ष नियत किया गया। भारत के सारे सूबों पर उसका अधिकार स्थापित कर दिया गया।

(ख) उसकी सहायता के लिए चार मेम्बरों की एक कौंसिल बनाई गई, परन्तु मतभेद होने पर गवर्नर-जनरल को कौंसिल की राय रद्द करने का अधिकार नहीं दिया गया।

(ग) गवर्नर-जनरल को मद्रास और बम्बई प्रान्तों की विदेशी नीति पर नियन्त्रण रखने का अधिकार मिला।

(घ) भारत की मालगुज़ारी के सम्बन्ध में जो लिखा-पढ़ी होती थी उसे कम्पनी के डाइरेक्टर इँगलैंड की सरकार के सामने उपस्थित करने के लिए बाध्य हो गये। साथ ही यह भी नियम हुआ कि फौजी अथवा व्यापारिक मामलों के सम्बन्ध में कम्पनी जो कुछ कार्यवाही करे, उसकी सूचना इँगलैंड की सरकार को दे।

(ङ) कलकत्ते में 'सुप्रीम कोर्ट' नाम की एक बड़ी अदालत स्थापित हुई। उस पर गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल का कुछ भी अधिकार न था। सर एलीजा इम्पी इस अदालत का सबसे बड़ा जज नियुक्त हुआ।

इन सब अफ़सरों को अच्छी-अच्छी तनख्वाहें दी गई और व्यापार करने और भेंट लेने की मनाही कर दी गई।

रेग्यूलेटिंग ऐक्ट द्वारा इंगलेंड की सरकार ने ब्रिटिश भारत के शासन को नया रूप देने का प्रयत्न किया। उसमें कई दोष थे। कम्पनी पर इंगलेंड की सरकार ने अपना अधिकार तो स्थापित कर लिया; परन्तु वस्तुतः व्यवहार-रूप में, उससे अधिक लाभ न हुआ। इसका कारण यह था कि मन्त्रि-मण्डल को अपने ही कामो से फुर्सत नही मिलती थी। गवर्नर-जनरल को यह अधिकार नहीं दिया गया कि वह कौंसिल के बहुमत को रद्द कर सके। मेम्बरों की दलबन्दी और शत्रुता के कारण उसके मार्ग में बड़ी बाधाएँ पड़ीं। मद्रास और बम्बई अहातो के सिर्फ विदेशी मामले ही भारत-सरकार के अधीन रक्खे गये। अपने अन्दरूनी मामलों में वे अपने इच्छानुसार काम करने के लिए स्वतन्त्र थे। सुप्रीम कोर्ट के अधिकारों की ठीक-ठीक व्याख्या नही की गई थी। इसके कारण कौंसिल और कोर्ट में झगडा होता था और इन झगड़ों से शासन-कार्य में बड़ी रुकावट पैदा होती थी।

**कौंसिल के सदस्यों का विरोध**—भारत में पहुँचते ही कौंसिल के मेम्बर गवर्नर-जनरल का विरोध करने लगे। उन्होने उसके मार्ग में हर प्रकार की रुकावट डालने का प्रयत्न किया। फ्रांसिस (Francis) नामक मेम्बर उसका घोर शत्रु था। उसने हेस्टिंग्ज पर बडी तीव्रता के साथ आक्रमण किया और बडे कडे शब्दो में उसके कार्य्यों की निन्दा की। रुहेला-युद्ध की निन्दा की गई और कम्पनी की विदेशी नीति पलट दी गई। अवध के नवाब वज़ीर के साथ एक नई सन्धि हो गई और उसकी आर्थिक सहायता बढा दी गई। जब मराठा-युद्ध छिड़ा तब कौंसिल और गवर्नर-जनरल में मतभेद खड़ा हो गया।

**नन्दकुमार का मुक़दमा**—इतने पर सन्तुष्ट न होकर कौंसिल के मेम्बरों ने हेस्टिंग्ज के व्यक्तिगत चरित्र पर भी आक्षेप किया। उन्होने राजा नन्दकुमार को, उस पर रिश्वत लेने का अभियोग लगाने के लिए,

उत्साहित किया। नन्दकुमार एक उच्च कुल का बङ्गाली ब्राह्मण था। उसने कौंसिल के सामने कहा कि हेस्टिंग्ज़ ने मीरजाफर की विधवा बेगम से साढे तीन लाख रुपया, रिश्वत में, लिया है। हेस्टिंग्ज़ ने उसकी बात सुनने से इनकार कर दिया और साथ ही कौंसिल को बर्खास्त कर दिया। परन्तु मेम्बरो ने कुछ भी पर्वाह न की। उन्होने इस आशय का एक प्रस्ताव पास किया कि हेस्टिंग्ज़ ने रिश्वत ली है। यह बात सत्य है कि उसने डेढ लाख रुपया लिया था और उसके बडे से बडे समर्थक भी इस बात को स्वीकार करते है कि उसने इस रुपये को लेने में ग़लती की थी। हेस्टिंग्ज़ के भाग्य से नन्दकुमार पर उसी समय मोहनप्रसाद नामक कलकत्ते के व्यापारी ने जालसाज़ी का मुकदमा चलाया। उसका अपराध साबित हो गया और उसे फांसी की सज़ा दी गई।

बाद को हेस्टिंग्ज़ पर यह दोष लगाया गया कि उसने जज इम्पी की सहायता से नन्दकुमार को फांसी की सज़ा दिलाई थी। परन्तु यह दोष सर्वथा निर्मूल था। नन्दकुमार का मुक़दमा बडी सावधानी के साथ किया गया था। इतना मानना पडेगा कि उसे जो दण्ड दिया गया, वह अवश्य बहुत कठोर था। यह भी स्पष्ट नही है कि इस मुकदमे को करने का अधिकार सुप्रीम कोर्ट को था भी या नही। कुछ हो, नन्दकुमार के मामले में अँगरेज़ी कानून का प्रयोग करना सर्वथा अनुचित था। इसके अतिरिक्त जेल में उसके साथ बडी सख़्ती का वर्ताव किया गया और उसके ब्राह्मण होने का कुछ भी ख़याल नही किया गया। यद्यपि हेस्टिंग्ज़ ने बदला लेने के लिए उसे फांसी नही दिलाई परन्तु उसके साथ अन्याय अवश्य हुआ। अपने पुराने शत्रु की मृत्यु से हेस्टिंग्ज़ को जो प्रसन्नता हुई उससे लोगो ने नतीजा निकाला कि नन्दकुमार की फांसी का कारण वही था।

**मराठो की पहली लडाई (१७७५-८२)**—मराठे अँगरेज़ो के सबसे ज़बर्दस्त शत्रु थे। उनकी घरेलू राजनीति में भाग लेकर अँगरेज़ो ने उन पर अपना प्रभाव जमाना चाहा। सन् १७७२ ई० में मराठो के

चौथे पेशवा माधवराव की मृत्यु हो गई। इससे अँगरेजों को एक अच्छा अवसर मिल गया। माधवराव के बाद उसका छोटा भाई नारायण-राव पेशवा बना। ९ महीने के बाद वह मार डाला गया। फिर उसका चचा राघोबा पेशवा हुआ। परन्तु उस पर अपने भतीजे नारायणराव के खून करने का सन्देह किया गया। उसके विरोधियो ने नारायण-राव के लडके को—जो उसकी मृत्यु के बाद पैदा हुआ था—पेशवा बनाना चाहा। राघोबा ने उसके दावे को झूठा ठहराया और अँगरेजो से सहा-यता माँगी। बम्बई की सरकार के साथ, ७ मार्च सन् १७७५ ई० को, उसने सूरत में एक सन्धि कर ली जिसके अनुसार अँगरेजो को, सहायता के बदले में, सालसट और बेसीन के टापू देने का वादा किया। अँगरेजो ने शीघ्र सालसट पर अधिकार कर लिया।

कलकत्ते की सरकार ने सूरत की सन्धि को अस्वीकार किया। वारेन् हेस्टिंग्ज ने उसके इस कार्य को 'आपत्तिजनक, अननुमोदित तथा नीति और न्याय के विरुद्ध' बतलाया। एक अँगरेज कर्नल पूना भेजा गया। उसने एक दूसरे मराठा नेता नाना फडनवीस के साथ, मार्च सन् १७७६ ई० में, पुरन्दर नामक स्थान पर एक नई सन्धि कर ली। इसके अनुसार अँगरेजो ने इस शर्त पर राघोबा की सहायता करने से हाथ खीच लिया कि सालसट पर उनका अधिकार रहने दिया जाय। डाइरेक्टरो ने इस सन्धि को पसन्द नही किया। उन्होंने सलाह दी कि सूरत की सन्धि का पालन और राघोबा के पक्ष का समर्थन किया जाय। पुरन्दर की सन्धि का पालन न तो अँगरेजो ने किया और न मराठों ने। इसी बीच पेशवा के पास फ्रांसीसियो का एक दूत पहुँचा। उसने अपने देश के लिए कुछ सुविधाएँ प्राप्त की। बस, अँगरेजों को युद्ध करने का बहाना मिल गया।

फिर क्या था, सन् १७७८ ई० में लडाई छिड गई। मराठो ने बम्बई-सरकार की सेना को पराजित कर दिया। जनवरी सन् १७७९ ई० में बडगाँव नामक स्थान पर अँगरेजो को एक अपमानजनक सन्धि करनी

पड़ी। इसकी शर्तों के अनुसार बम्बई-सरकार को वे सब प्रदेश लौटा देने पड़े जिन्हें उसने १७७३ ई० से अब तक प्राप्त किया था। इसके अतिरिक्त राघोवा को मराठो के हाथ में समर्पित कर देना पड़ा। हेस्टिंग्ज ने इस सन्धि को अस्वीकृत कर दिया। सन् १७८० ई० में गोडार्ड ने नर्मदा नदी को पार किया और बेसीन के क़िले पर कब्ज़ा कर लिया। मेजर पोफ़म ने उधर ग्वालियर के क़िले को जीत लिया। सिन्धिया को पूना के दरबार से अलग करने के लिए हेस्टिंग्ज ने बड़ी उदार शर्तें पेश की। मराठा सरदारो में माहादजी सिन्धिया सबसे अधिक योग्य तथा शक्ति-शाली था। उसकी सहायता से, मई सन् १७८२ ई० में, सालबाई की सन्धि हो गई और युद्ध का अन्त हो गया। सालसट और बेसीन अँगरेजो के अधिकार में आ गये और राघोवा को पेन्शन दे दी गई। अँगरेजो ने उसका पक्ष लेने से हाथ खींच लिया। जमुना नदी के पश्चिम की ज़मीन सिन्धिया को वापस दे दी गई। अन्य सब मामलो में युद्ध के पूर्व की स्थिति क़ायम कर दी गई।

सालबाई की सन्धि से अँगरेजो और मराठो के बीच एक नया सम्बन्ध स्थापित हो गया। राजनीतिक मामलों में अँगरेजो की प्रभुता क़ायम हो गई। इस युद्ध से यह साफ़ पता चल गया कि सगठन करने की योग्यता हेस्टिंग्ज में कितनी थी। उसने बड़ी मुस्तैदी के साथ काम किया और युद्ध में सफलता प्राप्त करने के लिए जिन जिन साधनो की आवश्यकता हुई उन्हें शीघ्र प्रस्तुत किया। माहादजी सिन्धिया अभी तक पेशवा का एक सरदार था। किन्तु अब उसकी स्थिति बहुत मजबूत हो गई। इसके बाद वह १२ वर्ष तक स्वच्छदता-पूर्वक अपने राज्य का विस्तार करने के लिए अपनी योजनाओ की पूर्ति करने में लगा रहा।

मैसूर की दूसरी लड़ाई (१७८०-८४)—१७७८ ई० में इंगलैण्ड और फ़ास में, अमेरिका में, युद्ध छिड़ गया। उसके फल-स्वरूप भारत में भी अँगरेजो और फ़ासीसियों में युद्ध होने लगा। अँगरेजो ने पाण्डुचेरी को छीन लिया और मलाबार-तट पर स्थित माही पर अधिकार कर

लिया। ऐसा करने से हैदरअली अँगरेजो से वडा क्रुद्ध हुआ। परन्तु उसकी अप्रसन्नता का वास्तविक कारण यह था कि अँगरेजो ने १७६९ ई० में जो उसके साथ सन्धि की थी उसे मानने से इनकार कर दिया। अब वह समझ गया कि अँगरेजो की मित्रता से मेरा कोई लाभ नही हो सकता। निजाम ने अँगरेजो और राघोवा की सन्धि का समर्थन कभी नही किया था। उसने मराठा सरदारो को उनसे लडने के लिए उत्साहित किया। सन् १७८० ई० में हैदरअली ने एक वडी सेना लेकर कर्नाटक पर आक्रमण कर दिया। वह जहाँ गया वहाँ आग लगा दी और मनुष्यो को कत्ल कर दिया। अँगरेजो के लिए यह वडा कठिन समय था क्योकि मराठो के साथ उनका युद्ध अभी चल रहा था।

इस समय मद्रास सरकार का कार्य-भार वडे अयोग्य अफसरो के हाथ मे था। कर्नल वेली (Baillie), जो हैदर से लडने के लिए भेजा गया था, बुरी तरह से काट डाला गया। कर्नाटक की राजधानी अर्काट शत्रुओ के हाथ में चली गई। अँगरेजो का भाग्य-सितारा मन्द पड रहा था किन्तु हेस्टिंग्ज ने वडी बुद्धिमानी और साहस के साथ काम किया। उसने मद्रास के गवर्नर को अपने पद से कुछ समय के लिए हटा दिया और सर आयरकूट को एक सेना के साथ वगाल से भेजा। जुलाई १७८१ ई० में सर आयरकूट ने पोर्टोनोवो नामक स्थान पर हैदरअली को पराजित किया। इसके वाद पोलीलोर का युद्ध हुआ परन्तु उसमें किसी की हार-जीत का फैसला न हुआ। शौलिगढ नामक स्थान पर एक और युद्ध हुआ और उसमें हैदरअली हार गया। सन् १७८२ ई० में सालवाई की सन्धि हो गई जिससे मराठो ने हैदरअली की मदद करने से हाथ खीच लिया।

डच लोगो के साथ भी युद्ध छिड गया और अँगरेजो ने त्रिकोमाली के वन्दरगाह को छीन लिया। किन्तु टीपू ने तंजौर मे कर्नल ब्रैथवेट (Brathwaite) को मार डाला। उसी समय सेनापति सफरन ने हैदर-अली के साथ एक सन्धि की और कडलोर पर कब्जा कर लिया। फ्रासी-

सियों को समुद्री युद्ध में अधिक सफलता मिली। हैदरअली ६ दिसम्बर सन् १७८२ ई० को मर गया। उसकी मृत्यु के बाद उसके बेटे टीपू ने युद्ध को जारी रक्खा। सन् १७८३ ई० में उसने बेदनूर के किले को जीत लिया। परन्तु जब वह मँगलोर पर घेरा डालने के लिए आगे बढा तब फुलर्टन (Fullertan) ने मैसूर पर चढाई कर दी और टीपू की राजधानी श्रीरगपट्टम तक जा पहुँचा। वह अपने काम को पूरा भी नही करने पाया था कि वापस बुला लिया गया। सन्धि के लिए लिखा-पढी शुरू हुई और १७ मार्च १७८४ ई० को मँगलोर की सन्धि पर हस्ताक्षर हो गये। इसके अनुसार फिर वही स्थिति हो गई जो युद्ध के पहले थी।

**हैदरअली का चरित्र और शासन-प्रबन्ध**—हैदरअली की मृत्यु से भारत के राजनीतिक क्षेत्र से एक बडा सैनिक नेता और शासक उठ गया। उसकी बुद्धि और स्मृति बडी विलक्षण थी। जिसको वह एक बार देख लेता था, उसे कभी न भूलता था। २० वर्ष के बाद भी वह मनुष्य की शकल को पहचान लेता था। हिन्दुओ और मुसलमानो में उसने कुछ भेद-भाव नही किया। वह दोनो को एक दृष्टि से देखता था। उसने हिन्दुओ को ऊँचे पदो पर नियुक्त किया। अपने ब्राह्मण अफसरो पर वह बहुत विश्वास करता था और ज़िम्मेदारी का काम उनके सुपुर्द कर देता था। उसका भोजन साधारण होता था। जो कुछ भी उसके सामने परोस दिया जाता था उसे वह खा लेता था। वह बोलता बहुत कम था और बातूनी आदमियो को वह नापसन्द करता था। उसकी बुद्धि इतनी तीक्ष्ण थी कि वह बिना किसी कठिनाई के युद्ध और राजनीति के बडे-बडे जटिल प्रश्नो को समझ जाता था। उसे घमण्ड छू तक नही गया था और उसके व्यवहार में छल और कपट का लेश भी न था। ग़रीबो के साथ उसका बर्ताव बहुत नम्र था। वह कई भाषाओ को समझ सकता था। राज्य के हिसाब-किताब के काग़ज़ो को वह स्वय देखता था। घोडे के व्यापारियो पर वह विशेष रूप से दयालु था। जब उसके

राज्य में कोई घोडा मर जाता तो वह उसके मालिक को उसका आधा मूल्य देता था। उसका स्वभाव सिपाहियो का-सा था। दण्ड देने में वह कभी-कभी कठोरता से काम लेता था।

हैदरअली ने अपनी अद्भुत वीरता से एक वडा राज्य स्थापित किया। उसकी मृत्यु के समय उसके राज्य का क्षेत्रफल ८० हजार वर्ग-मील था और दो करोड रुपया वार्षिक उसकी आय थी। राज्य के कामों को वह स्वय वडे ध्यान से देखता था और निष्पक्ष भाव से मुकदमों का फैसला करता था। अपने वेईमान और रिश्वत लेनेवाले अफसरो को वह दण्ड देता था। शासन के प्रत्येक विभाग में एक गुप्त लेखक रहता था। वह अपने विभाग में होनेवाली सब वातो की सूचना उसे देता रहता था। यदि कहीं डकैती हो जाती तो तुरन्त उस स्थान के पहरेदार की खाल जीते-जी खिचवा ली जाती थी। कृषि और व्यापार को वह सदा प्रोत्साहन देता था। व्यापारियों के साथ उसने कभी विश्वासघात नहीं किया। उसके पास एक सगठित शक्तिशाली सेना थी, जिसके नियम वहुत कडे थे। उसकी दृष्टि में सार्वजनिक पदो पर काम करने के लिए वे ही लोग उपयुक्त होते थे जिनमें काफी योग्यता होती थी। वह इसी सिद्धान्त पर चलता था। कभी-कभी वह अपना भेष वदल कर लोगो में घूमता था और उनकी वास्तविक दशा का पता लगा लेता था। वास्तव में यह उसकी अपूर्व प्रतिभा का प्रमाण है कि उसने ऐसे शत्रुओ के बीच में रहते हुए भी, जो सदा उसके विरुद्ध षड्यन्त्र रचा करते थे, एक विस्तीर्ण राज्य स्थापित कर लिया।

**चेतसिंह का मामला**—मराठों और मैसूर की लडाइयों में कम्पनी का वहुत-सा रुपया खर्च हो गया। उसकी आर्थिक दशा विगड गई। गवर्नर-जनरल को रुपये की वडी आवश्यकता हुई। इस आर्थिक सकट में उसने वनारस के राजा और अवध की वेगमो से सहायता लेने की चेष्टा की। वनारस का राजा पहले अवध के अधीन था। परन्तु १७७५ ई० से उसने कम्पनी की अधीनता स्वीकार कर ली थी। इसी

कारण हेस्टिंग्ज ने अपनी आवश्यकता को पूरा करने के लिए एक बड़ी रकम माँगी। राजा प्रतिवर्ष एक बँधी हुई रक़म 'कर' के रूप में कम्पनी को देता था। सन् १७७८ ई० में उस निर्दिष्ट धन के अतिरिक्त हेस्टिंग्ज ने ५ लाख रुपया और माँगा। दूसरे साल उतनी ही रक़म फिर माँगी गई। चेतसिंह ने फिर रुपया दिया किन्तु इस बार गवर्नर-जनरल की माँग का उसने कुछ विरोध भी किया। इसके बाद हेस्टिंग्ज ने उससे १००० सवार देने के लिए कहा परन्तु आज्ञा-पालन में विलम्ब होते देख वह नाराज़ हो गया। उसने चेतसिंह पर ५० लाख रुपया जुर्माना करने का निश्चय किया और धृष्टता के लिए उसे दण्ड देने के उद्देश्य से वह स्वयं बनारस की ओर रवाना हुआ। चेतसिंह ने बक्सर में हेस्टिंग्ज से भेंट करने की प्रार्थना की। हेस्टिंग्ज ने मिलने से इनकार कर दिया। विलम्ब हो जाने के सम्बन्ध में चेतसिंह ने जो कुछ सफाई दी उससे उसे संतोष न हुआ। बनारस पहुँच कर हेस्टिंग्ज ने राजा को गिरफ्तार करने की कोशिश की। इस पर चेतसिंह की फौज ने बलवा कर दिया। गवर्नर-जनरल ने अपने को बड़ी भयंकर परिस्थिति में पाया। वह तुरन्त चुनार लौट गया और वहाँ उसने कुछ फौज इकट्ठा की। चेतसिंह की सेना युद्ध में पराजित हुई और वह ग्वालियर की ओर भाग गया।

चेतसिंह के मामले में हेस्टिंग्ज ने बड़ी धींगाधींगी की। इस प्रश्न पर बहस करना कि वह राजा था अथवा ज़मींदार, बिलकुल निरर्थक है। सन् १७७५ ई० की सन्धि के अनुसार हेस्टिंग्ज को नियत 'कर' के अतिरिक्त और कुछ भी माँगने का अधिकार नहीं था। कम्पनी की सन्धियों में धन की आवश्यकता होने पर परिवर्तन करना न्याययुक्त नहीं था। राजा को उसी की राजधानी में गिरफ्तार करने का प्रयत्न करने में भी हेस्टिंग्ज ने बड़ी भूल की। यदि हम इस बात को मान भी लें, कि कम्पनी की आर्थिक दशा को सुधारने के लिए उसने जो कुछ किया वह उचित था तो भी हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उसे इस उद्देश्य में भी सफलता न मिल सकी। कम्पनी को इससे कुछ भी लाभ न हुआ। इसके विपरीत,

हेस्टिंग्ज के सामने बडी कठिनाइयाँ उपस्थित हो गईं। चेतसिंह को देश से निकाल देने के कारण उसकी प्रजा पर बडा बुरा प्रभाव पडा। दस वर्ष के बाद बनारस के कमिश्नर ने रिपोर्ट की कि जमीन मीलो तक बजर पडी है और प्रजा शासन-प्रबन्ध बिगड जाने से तग आ गई है।

**हेस्टिंग्ज और अवध की बेगमें**—अवध की बेगमो का मामला चेतसिंह के मामले से भी अधिक निन्द्य था। अवध के नवाब वजीर आसफुद्दौला ने बहुत दिनो से कम्पनी को कर नही दिया था। उसकी माँ और दादी के पास एक जागीर थी और उनके खजाने में २० लाख पौंड (तीन करोड रुपया) था।

नवाब इस रुपये को लेना चाहता था। वह समझता था कि मैं अन्याय-पूर्वक इस रुपये से वचित किया गया हूँ। सन् १७७५ ई० में छोटी बेगम ने ३ लाख पौण्ड इस शर्त पर दिया कि नवाब और कम्पनी दोनो मिलकर यह लिख दें कि हम भविष्य में और कुछ नही माँगेंगे। सन् १७८१ ई० में आसफुद्दौला ने फिर रुपया माँगा। उसने कम्पनी को सलाह दी कि बेगमो के साथ जो समझौता किया गया था उसे रद कर मुझे खजाना और जागीर छीन लेने की आज्ञा दे दी जाय। यद्यपि बेगमो को पूरी तौर से विश्वास दिलाया गया था कि भविष्य में उनसे कुछ नही माँगा जायगा परन्तु इसकी कुछ पर्वाह न करके हेस्टिंग्ज ने अँगरेज रेजीडेन्ट को लिख दिया कि बेगमो पर दबाव डालने मे वह नवाब की मदद करे। उसे रुपये की बडी आवश्यकता थी। इस प्रकार प्रोत्साहित किये जाने पर नवाब ने बेगमो पर बडा दबाव डाला। उनके साथ कठोर बर्ताव किया गया। उनके दो वज़ीर कुछ समय तक गिरफ्तार कर लिये गये और उनका खाना-पीना बन्द कर दिया गया। अन्त में विवश होकर बेगमो को रुपया देना पडा।

हेस्टिंग्ज का कहना था कि बेगमो का धन उनकी निजी सम्पत्ति नही थी और इसके अलावा उन्होने बलवे के समय चेतसिंह की सहायता की थी। किन्तु वह धन चाहे उनकी निज की सम्पत्ति रही हो या न रही हो,

अँगरेज लोगों का उससे कुछ सरोकार नहीं था। सन् १७७५ ई० में कम्पनी ने उन्हें विश्वास दिलाया था कि भविष्य में उनसे कुछ न माँगा जायगा। इस प्रतिज्ञा को भंग करना किसी प्रकार उचित नही कहा जा सकता। दूसरा बहाना सर्वथा निर्मूल था। इस बात का जरा भी प्रमाण नहीं मिलता कि चेतसिंह के विद्रोह में बेगमो ने भाग लिया था। यदि हेस्टिंग्ज़ को इस बात का दृढ़ विश्वास था तो उसे उचित था कि बेगमों की सफाई लेता, लेकिन उसने यह सब नहीं किया। उसकी आर्थिक कठिनाइयो पर पूरा ध्यान देते हुए भी यह कहना पडता है कि अवध का मामला एक निन्द्य, अन्याय-पूर्ण तथा खेदजनक काम था। औरतों और हिजडों के साथ जबर्दस्ती करके रुपया छीनने की नीति का किसी प्रकार समर्थन नहीं किया जा सकता। हेस्टिंग्ज़ के नाम पर यह धब्बा हमेशा लगा रहेगा। सन् १७८१ ई० में उसने नवाब से १ लाख पौण्ड रुपया लिया था। यद्यपि रुपया कम्पनी के हित के लिए खर्च किया गया था तो भी इसमें सन्देह नही कि बेगमो के प्रति उसका व्यवहार सर्वथा अनुचित और निर्दयता-पूर्ण था।

**सुप्रीम कोर्ट और कौंसिल**—सुप्रीम कोर्ट की स्थापना सन् १७७३ ई० के रेग्यूलेटिंग ऐक्ट द्वारा हुई थी। इँगलेण्ड के राजा ने जिन जजों की नियुक्ति की थी उन्होंने कौंसिल के अधिकारों की कुछ भी पर्वाह नहीं की। कौंसिल और अदालत के अधिकारों की सीमा निर्दिष्ट न होने से उनके बीच झगडा पैदा होना अनिवार्य था। उनके झगडो से प्रजा को, विशेष कर जमीदारों और किसानों को, बहुत हानि उठानी पडी। अदालत मालगुजारी के मामलों में हस्तक्षेप करती थी और कौंसिल के अधिकारो की उपेक्षा करती थी। अदालत की कार्यवाही मनमानी होती थी इसलिए जज लोग बहुत अप्रिय बन गये थे। हिन्दुस्तानियों के साथ बडी सख्ती का बर्ताव किया जाता था। शासन का काम ठीक तरह से नहीं होता था। सन् १७८१ ई० में अदालत के विधान में कुछ संशोधन किया गया। ब्रिटिश प्रजा-सम्बन्धी मामलो के अतिरिक्त गवर्नर-जनरल और कौंसिल

के सदस्य किसी बात में अदालत के अधीन नहीं थे। मालगुजारी के मामलों से अदालत का कुछ भी सम्बन्ध न रहा। कलकत्ते में रहनेवाले लोगो के सब मुकदमे इस अदालत के अधीन हो गये। परन्तु हिन्दुओ और मुसलमानो के झगड़े उन्हीं के क़ानून के अनुसार तय किये जाते थे। उनके मामलो में अँगरेजी क़ानून से काम नहीं लिया जाता था।

**पिट का इण्डिया ऐक्ट (१७८४ ई०)**—रेग्यूलेटिंग ऐक्ट के दोष शासन-कार्य में प्रत्यक्ष रूप से प्रकट होने लगे थे। पार्लियामेन्ट के मेम्बर हिन्दुस्तान के मामलों में बड़ी दिलचस्पी लेने लगे और शासन-प्रबन्ध को सुधारने की इच्छा करने लगे। सन् १७८३ ई० में फौक्स (Fox) ने अपने प्रसिद्ध 'इंडिया बिल' को पार्लियामेन्ट में पेश किया। राजा के हस्तक्षेप के कारण वह बिल पास नहीं हो सका। सन् १७८४ ई० में पिट का 'इंडिया बिल' (India Bill) पास हुआ जिससे ईस्ट इण्डिया कम्पनी की नीति और शासन-विधान में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। कम्पनी के दीवानी और फौजी मामलो का निरीक्षण करने के लिए इँगलेंड में एक 'बोर्ड आफ कन्ट्रोल' (Board of Control) नामक कमेटी स्थापित की गई। उसमें छः मेम्बर थे। इँगलेंड और भारत के बीच होनेवाले सारे पत्र-व्यवहार पर उसका पूरा अधिकार हो गया। एक गुप्त-समिति नियुक्त की गई जिसका काम डाइरेक्टरो को बिना खबर किये बोर्ड की गुप्त आज्ञाओ को हिन्दुस्तान भेजना था।

गवर्नर-जनरल की कौंसिल के मेम्बरों की संख्या ३ नियत कर दी गई। बम्बई और मद्रास के अहाते बंगाल के अधीन कर दिये गये। गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल को आदेश किया गया कि डाइरेक्टरो के कोर्ट से अनुमति लिये बिना वे भारतीय राजाओ के साथ युद्ध अथवा सन्धि न करें।

**हेस्टिंग्ज का इँगलेण्ड लौट जाना**—सन् १७८५ ई० में हेस्टिंग्ज वापस बुला लिया गया। इँगलेंड पहुँचने पर पार्लियामेंट ने उस पर मुक़दमा चलाया और बड़े-बड़े अपराध लगाये। यह मुक़दमा सात वर्ष

तक चलता रहा। अन्त में वह सब मामलों में निर्दोष ठहराया गया और ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने उसे पेंशन दी। अपने शेष जीवन को उसने डेलिसफोर्ड में अपने बाप-दादों के घर पर शान्तिपूर्वक व्यतीत किया।

हेस्टिंग्ज का चरित्र—हेस्टिंग्ज असाधारण योग्यता का मनुष्य था। उसमें काम करने की इतनी शक्ति थी कि वह कभी थकता न था। उसका साहस भी अदम्य था। केवल अपनी योग्यता के बल से ही वह एक लेखक से भारत का गवर्नर-जनरल हो गया था। उसमें संगठन करने की अद्भुत शक्ति थी और युद्ध के समय वह बड़ी कुशलता से काम लेता था। कूटनीति में वह बड़ा दक्ष था। उसने सदा अपने देश के हित का ध्यान रक्खा और एशिया में एक राज्य स्थापित कर दिया। इस उद्देश्य की पूर्ति में जितनी कठिनाइयाँ उपस्थित हुईं उन सबको उसने बड़ी सफलता के साथ दूर किया। यह ठीक है कि उसने कई कार्य ऐसे किये जिनका समर्थन करना कठिन है। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने अनुचित-उचित का विचार छोड़ कर सब प्रकार के साधनों से काम लिया। यद्यपि डाइरेक्टरों ने आज्ञा दी थी कि रिश्वत और भेंट न ली जायें तो भी उसने बहुत-सा रुपया लिया। उसे अपने कर्तव्य का इतना अधिक ध्यान था कि अपने साथियों के विरोध करने पर भी वह अपने काम पर डटा रहता था। पार्लियामेंट ने उसके ऊपर मुकदमा चलाया, परन्तु तब भी वह हताश नहीं हुआ। ये सब बातें होते हुए भी हम उसे उच्च कोटि का राजनीतिज्ञ नहीं कह सकते। उसने भारत के लोगों के हित के लिए कुछ नहीं किया। अपने सब कामों और योजनाओं में वह भारत की अपेक्षा इंगलेंड को अधिक प्रधानता देता था। परन्तु इतना मानना पड़ेगा कि भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के स्थापित करने और इंगलेंड को सबसे अधिक लाभ पहुँचानेवालों में उसका नाम सदा अग्रगण्य रहेगा।

वह विद्या-प्रेमी था। उसके समय में कलकत्ता और मद्रास में कालिज स्थापित हुए। प्राच्य कला और विज्ञान के अध्ययन के लिए सर विलि-

यम जोन्स ने 'एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल' नामक प्रसिद्ध संस्था की स्थापना की।

## संक्षिप्त सन्‌वार विवरण

| | |
|---|---|
| वारेन् हेस्टिंग्ज़ का बंगाल का गवर्नर होना .. .. | १७७२ ई० |
| पेशवा माधवराव की मृत्यु .. .. .. | १७७२ " |
| बनारस की सन्धि .. .. .. .. | १७७३ " |
| रुहेला-युद्ध .. .. .. | १७७३-७४ " |
| रेग्यूलेटिंग ऐक्ट .. .. .. .. | १७७३ " |
| मीरनकटरा की लड़ाई .. .. .. | १७७४ " |
| सूरत की सन्धि .. .. .. .. | १७७४ " |
| पुरंदर की सन्धि .. .. .. .. | १७७५ " |
| बड़गाँव का समझौता .. .. .. | १७७६ " |
| सालबाई की सन्धि .. .. .. .. | १७८२ " |
| हैदरअली की मृत्यु .. .. .. .. | १७८२ " |
| पोर्टोनोवो की लड़ाई .. .. .. .. | १७८२ " |
| बेदनूर पर टीपू का अधिकार करना .. .. | १७८३ " |
| मँगलोर की सन्धि .. .. .. .. | १७८४ " |
| पिट का इण्डिया ऐक्ट .. .. .. | १७८४ " |
| हेस्टिंग्ज़ का इँगलैंड वापस जाना .. .. | १७८५ " |

# अध्याय ३२

## साम्राज्य-विस्तार—मराठों का पतन

### (१७८६-१८२८ ई०)

**नवीन नीति**—सन् १७८६ ई० तक कम्पनी का ध्यान राज्य-विस्तार की ओर नही गया था। किन्तु उसके वाद ब्रिटिश राज्य का विकास वडी शीघ्रता के साथ हुआ और वहुत दिनो तक जारी रहा। कम्पनी के डाइरेक्टरो ने गवर्नर-जनरलो को हुक्म दे दिया था कि वे हिन्दुस्तान के मामलो में कुछ हस्तक्षेप न करें। किन्तु यहाँ की परिस्थितियो ने उनके लिए यह असम्भव कर दिया कि वे एकदम हाथ वाँधकर वैठे रहें। कार्नवालिस, वेलज़ली और हेस्टिंग्ज़ वडे भारी सेनापति और शासक थे। उन्होने अनेक युद्ध किये और देश में शान्ति स्थापित की। उनके इस काम में कई वातें सहायक हुईं। भारत में मराठे आपस में लड रहे थे। उधर इँगलेंड में उद्योग-धन्धो की वडी उन्नति हो गई थी और अँगरेज़ लोग सम्पत्तिशाली वन गये थे। इसके सिवा अँगरेज़ो ने समुद्र पर भी अपनी प्रभुता जमा ली थी। नेपोलियन की लडाइयो का हिन्दुस्तान पर भी वडा प्रभाव पडा था। परन्तु ब्रिटिश राज्य खूव सुरक्षित रहा। देशी राजाओ और नवावो का वल चूर कर दिया गया। लूट-पाट करनेवालो और अराजकता फैलानेवालो को वडी सख्ती के साथ द[illegible] गया और शासन में महत्त्वपूर्ण सुधार किये गये।

**विधान में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन**—हेस्टिंग्ज़ के वाद कौंसिल का सीनियर मेम्वर मैकफर्सन (Macpherson) गवर्नर-जनरल वनाया गया। उसने इस पद पर डेढ वर्ष तक काम किया, परन्तु उसे

कुछ सफलता न मिली। तब डाइरेक्टरो ने लार्ड कार्नवालिस (Lord Cornwallis) को गवर्नर-जनरल बना कर भेजा। वह एक अनुभवी सैनिक था। सन् १७८६ ई० में एक कानून पास किया गया जिसके अनुसार गवर्नर-जनरल प्रधान सेनापति बना दिया गया। उसे यह अधिकार भी मिला कि आवश्यकता पडने पर वह कौंसिल के बहुमत को न माने। इस परिवर्तन के कारण गवर्नर-जनरल की स्थिति बहुत सँभल गई। पहले के गवर्नर-जनरलो की भाँति अब वह कौंसिल के मेम्बरो की दया पर निर्भर न रह गया।

शासन-सुधार—लार्ड कार्नवालिस ने तीन बडे महत्त्वपूर्ण कार्य किये—कम्पनी की नौकरी में सुधार, बगाल का इस्तमरारी बन्दोबस्त और अदालतो का सुधार। इन कामो को करने के लिए वह विशेष योग्यता रखता था। एक तो वह बडा अनुभवी शासक था, दूसरे वह बडा ईमानदार था। उच्च श्रेणी का एक रईस होने के कारण अपने लिए रुपया पैदा करने की इच्छा उसे बिलकुल न थी। कम्पनी के नौकर अभी तक निजी व्यापार करने में लगे थे और अपनी आमदनी बढाने के लिए वे सब तरह के उपायो को काम में लाते थे। हिन्दुस्तान आकर कार्नवालिस ने देखा कि प्राय सभी कलक्टर अपने किसी मित्र या रिश्तेदार के नाम से व्यापार करते हैं। उसने बडे साहस के साथ इस प्रथा को रोका और इस बात की कोशिश की कि कम्पनी का कोई नौकर अनुचित लाभ न उठाने पाये। कमीशन के बदले उसने तनख्वाहें नियत कर दी। कम्पनी के कलक्टरो के हाथ में न्याय और शासन दोनो का काम था। इसलिए वे अपने अधिकारो का बडा दुरुउपयोग करते थे। कार्नवालिस ने इन दोनो विभागो को अलग-अलग कर दिया। किन्तु उसने एक बडी भारी भूल की। शासन-प्रबन्ध के काम से उसने हिन्दुस्तानियों को अलग कर दिया। उसका खयाल था कि उनमें न योग्यता है और न चरित्र है। उसका यह अनुमान बिलकुल गलत था।

इस्तमरारी बन्दोबस्त—वारेन् हेंस्टिंग्ज ने ठेकेदारो के साथ ५ साल

के लिए मालगुज़ारी का बन्दोबस्त किया था। यह व्यवस्था ठीक तरह से नही चली। जिन ठेकेदारो ने बडी-बडी बोलियाँ बोलाकर ठेके लिये थे वे सब रुपया नही अदा कर सके। वे प्रजा को बहुत सताते थे। ऐसी दशा में खेती खराब हो गई और व्यापार भी मन्द पड गया। ज़मीदार और रिआया दोनो तबाह हो गये। सन् १७८४ ई० में डाइरेक्टरो ने सालाना बन्दोबस्त फिर से जारी किया। पार्लियामेंट ने उन्हें इस्तमरारी बन्दोबस्त करने की सलाह दी। दो साल बाद ज़मीदारो के साथ एक दससाला बन्दोबस्त किया गया और यह निश्चय हुआ कि अगर यह व्यवस्था सन्तोषप्रद सिद्ध हुई तो उसे स्थायी रूप दे दिया जायगा। लार्ड कार्न-वालिस ने इस सम्पूर्ण प्रश्न पर खूब मनन किया। सर जान शोर नामक बगाल के एक योग्य सिविलियन ने इस सम्बन्ध में उसको बडी सहायता दी। सर जान शोर ने इस्तमरारी बन्दोबस्त के विरुद्ध सम्मति प्रकट की। लार्ड कार्नवालिस उसके विचारो से सहमत नही हुआ। उसने १७९३ ई० में बगाल की मालगुज़ारी का स्थायी बन्दोबस्त कर दिया।

इस बन्दोबस्त से सरकार, ज़मीदार और प्रजा तीनो की स्थिति पर प्रभाव पडा। सरकार को बडा भारी नुकसान उठाना पडा, क्योकि भविष्य में ज़मीन की कीमत बढ जाने पर भी वह लगान बढ़ा नही सकती थी। किन्तु उसे एक लाभ भी हुआ। उसे समय-समय पर मालगुज़ारी नियत करने और वसूल करने की झझट से छुट्टी मिल गई। ज़मीदारो को बडा लाभ हुआ। उनकी हालत अब बहुत अच्छी हो गई। वे समृद्ध बन गये। उनकी राजभक्ति से ब्रिटिश सरकार की स्थिति दृढ हो गई। भारत में बगाल का प्रान्त सबसे अधिक समृद्धिशाली और उन्नतिशील बन गया। बहुत-सी ज़मीन खेती के लायक बना दी गई। ज़मीदारो को पहले की अपेक्षा अधिक लगान मिलने लगा। उनके हाथ में रुपया जमा हो जाने से वाणिज्य-व्यापार में भी बड़ी सुविधा हुई।

परन्तु इस सुधार से प्रजा का कुछ भी लाभ नही हुआ। उनसे अधिक लगान वसूल किया गया और उनके साथ बुरा बर्ताव किया गया।

धनाढ्य ज़मीदारो के कारिन्दे उन पर अत्याचार करते थे। उनके विरुद्ध दीन किसान अदालती कार्रवाई भी नही कर सकते थे। ऐसी दशा में उनके अधिकारो की बहुधा उपेक्षा की जाती थी। ज़मीदारो के अत्याचारो से उनकी रक्षा करने के लिए १८५६ ई० में बगाल टेनैन्सी ऐक्ट (Bengal Tenancy Act) पास किया गया।

अदालतो का सुधार—लार्ड कार्नवालिस ने अदालतो का सगठन यूरोपीय ढग पर किया। यूरोपीय लोग ही जॅज नियुक्त किये गये। हिन्दू और मुसलमानो के कानून की व्याख्या करने के लिए सब अदालतो में हिन्दुस्तानी रक्खे गये। इन सुधारो से न्याय बडा आसान और सस्ता हो गया। कलक्टरो को उन अदालतो में न्याय करने का अधिकार नही रहा।

कई तरह की अदालतें स्थापित हो गईं। अमीन और मुन्सिफ छोटे-छोटे मुकदमो को सुनते थे और इस काम के लिए उन्हें कुछ कमीशन दिया जाता था। हर एक ज़िले मे एक अदालत स्थापित की गई। उसका सदर (प्रेसीडेन्ट) एक अँगरेज़ जज होता था। उसकी सहायता के लिए हिन्दुस्तानी असेसर नियुक्त किये गये थे। चार प्रान्तीय अदालतें स्थापित की गईं। हर एक में तीन अँगरेज़ जज रक्खे गये। सदर निज़ामत अदालत में गवर्नर-जनरल और कौंसिल के मेम्बर अपीले सुनते थे। इसी प्रकार फौजदारी अदालतो का भी सगठन किया गया। सूबो की दीवानी अदालतो के जज दौरा भी करते थे। वे विभिन्न ज़िलो में जाते और फौजदारी के मुकदमे फैसल करते थे। इनके फैसलो के विरुद्ध सदर निज़ामत अदालत में अपील की जाती थी। मुसलमान कानूनी हाकिमो की सहायता से गवर्नर-जनरल उनका निर्णय करता था।

कार्नवालिस का अदालती सुधार बिलकुल दोष-रहित नहीं था। उसने हिन्दुस्तानियो को न्याय-विभाग में नही नियुक्त किया। इससे उसका खर्च बहुत बढ गया। यूरोपीय जजो को लोगो के रीति-रवाज, भाषा और देश की अवस्था का कुछ भी ज्ञान नही था। अत वे ठीक-

ठीक न्याय नही कर पाते थे। इन अदालतो म काम करने का ढग विदेशी था। काम वडी सुस्ती से होता था। इसलिए लोगो को वडी मुसीवतें उठानी पडती थी। फीस की प्रथा के वन्द हो जाने से मकदमे-वाज़ी वहुत वढ गई और अदालतें काम से दव गईं।

**कार्नवालिस की विदेशी नीति**—कार्नवालिस चाहता था कि पिट के इण्डिया ऐक्ट की नीति पर चले। परन्तु परिस्थितियो ने उसके लिए ऐसा करना असम्भव कर दिया। शाहआलम का बेटा अँगरेज़ो की सहायता से दिल्ली का सिंहासन फिर से प्राप्त करना चाहता था। परन्तु कार्नवालिस ने उसकी मदद करने से इनकार कर दिया। वह ऐसे झगडो और झझटो में नही पडना चाहता था। किन्तु टीपू के साथ युद्ध करना उसके लिए अनिवार्य हो गया। १७८७ ई० में उसने टर्की और फ्रास को राज-दूत भेजे थे। वह चाहता था कि वे अँगरेज़ो के विरुद्ध उसकी मदद करें। दो वर्ष वाद उसने ट्रावन्कोर के राजा पर हमला कर दिया। वह राजा अँगरेज़ो का मित्र था। उसका अपराध यह था कि मलावार-तट से भागे हुए मनष्यो को उसने अपनी शरण में रख लिया था। कार्नवालिस ने १७९० ई० में निज़ाम और पेशवा के साथ मिल कर एक सन्धि की और टीपू के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

मद्रास-सरकार ने युद्ध का सचालन करने के लिए जनरल मेडोज़ (Meadows) को भेजा। लेकिन उसे अधिक सफलता नही मिली। तव कार्नवालिस स्वय सेनापति वन कर लडाई के मैदान में उपस्थित हुआ। उसने वगलोर को जीत लिया और उसके वाद श्रीरगपट्टम की ओर वढ़ा। घेरा डालने की तैयारी की गई परन्तु फिर सन्धि की वात-चीत होने लगी। टीपू अपने राज्य का एक भाग देने के लिए राज़ी हो गया, जिसकी वार्षिक आय १ करोड रुपया थी। इसके सिवा उसने ३ करोड रुपया हरजाना देने का वादा किया और अपने दो लडको को वन्धक-रूप में दे दिया। जो इलाक़ा टीपू से मिला उसको अँगरेज़ो, निज़ाम और पेशवा ने आपस में वाँट लिया।

**माहादजी सिन्धिया की मृत्यु**—माहादजी सिन्धिया ने रुहेला सर्दार गुलामकादिर को मारकर मुग़ल-सम्राट् की रक्षा की थी। उसने राजपूतो को दबाया था और १७९२ ई० में होल्कर की सेना को लखेरी नामक स्थान पर हराया था। वह अँगरेजो की शक्ति से खूब परिचित था। यूरोपीय ढग से शिक्षा देकर उसने एक बडी सेना भी सगठित कर ली थी। उसकी सेना में फ्रासीसी जनरल नौकर थे जिनमें डी बोइन (De Boigne) प्रधान था। राजनीतिक मामलो में माहादजी का बडा प्रभाव था। मराठा सरदारो में वह सबसे अधिक शक्तिशाली था। सन् १७९४ ई० में उसकी मृत्यु हो गई। उसकी जगह दौलतराव सिन्धिया गद्दी पर बैठा।

माहादजी सिन्धिया एक बुद्धिमान् और दूरदर्शी राजनीतिज्ञ था। वह अपने भाग्य का निर्माता था। जब तक वह जीवित रहा तब तक भारत की राजनीति में उसका बडा प्रभाव रहा। नेता बनने की योग्यता उसमे उच्च कोटि की थी। यूरोपीय ढग पर शिक्षा देकर उसने अपनी सेना की शक्ति को खूब बढा लिया था। माहादजी एक महत्वाकाक्षी व्यक्ति अवश्य था परन्तु वह अपनी त्रुटियो को जानता था। वह जल्दी अधीर हो जाता था और बदला लेने की उसे प्रबल इच्छा रहती थी। परन्तु इतना कहना पडेगा कि उसने कभी अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनुचित उपायो का आश्रय नही लिया।

**कम्पनी का नया आज्ञा-पत्र (१७९३)**—कम्पनी को फिर २० वर्ष के लिए नया आज्ञा-पत्र मिला। इँगलेड के व्यापारी भारत के व्यापार में भाग लेना चाहते थे परन्तु निजी तौर पर व्यापार करने का सिद्धान्त स्वीकृत नही किया गया और, कम्पनी के सब अधिकार पहले की तरह बने रहे। किसी को व्यापार करने की आज्ञा नही दी गई। सिविल सर्विस के सम्बन्ध में कुछ नये नियम बनाये गये। सन् १७९३ ई० में लार्ड कार्नवालिस वापस लौट गया और उसके स्थान में सर जान शोर गवर्नर-जनरल नियुक्त हुआ।

माहादजी सिन्धिया

भरतपुर का क़िला

**हस्तक्षेप न करने की नीति (Policy of non-intervention) और उसके परिणाम (१७९३-९८ ई०)**—सर जान शोर गवर्नर-जनरल के पद के लिए उपयुक्त नही था। वह पिट के इण्डिया ऐक्ट का अक्षरशः पालन करना चाहता था। उसकी इस कायरता का परिणाम भयानक हुआ। निज़ाम अँगरेज़ो का मित्र था। जब सन १७९५ ई० में मराठो ने उसके देश पर हमला किया तब उसने अँगरेज़ो से मदद माँगी। गवर्नर-जनरल मराठा-सघ के साथ युद्ध करने से डरता था। फलत उसने निज़ाम की सहायता नही की। परिणाम यह हुआ कि मराठो ने निज़ाम को खर्दा के युद्ध मे पराजित कर दिया। हरजाने के रूप में निज़ाम को एक भारी रकम देनी पडी और अपने राज्य का आधा भाग भी उसे मराठो के हवाले करना पडा। इस उदासीनता के कारण अँगरेज़ो की प्रतिष्ठा कम हो गई। निजाम उनका शत्रु हो गया। मराठो के पारस्परिक झगडो और भारतीयो में एकता का अभाव होने के कारण ही अँगरेजो की शक्ति नष्ट होने से बची।

इन सब बातो से उत्साहित होकर टीपू ने फ्रास और अफगानिस्तान को दूत भेजे। उसका विचार था कि अँगरेज़ो को हिन्दुस्तान से निकाल बाहर किया जाय। परन्तु इसी समय अँगरेज़ो का भाग्य-सितारा फिर चमका। अफ़गानिस्तान के बादशाह ज़मानशाह ने पजाब पर हमला किया था। परन्तु इसी समय उसके राज्य के पश्चिम-भाग में कुछ उपद्रव हो गया, जिसके कारण उसे वापस लौट जाना पडा। सिक्खो और अफगानो के बीच झगडा हो जाने से सीमा-प्रान्त विदेशियो के आक्रमणो से बच गया।

ज़मानशाह को लाहौर मे उपस्थित देखकर सर जान शोर ने अवध के सम्बन्ध में दृढ नीति से काम किया। आसफउद्दौला सन् १७९७ ई० मे मर गया और उसके स्थान में उसका बेटा गद्दी पर बैठा। वह बिलकुल निकम्मा था। गवर्नर-जनरल ने सआदतअली खाँ को, जो भूतपूर्व नवाब का भाई था, गद्दी पर बिठाया। उसने अँगरेज़ो के साथ

एक सन्धि कर ली जिसके अनुसार उसे ७६ लाख रुपया सालाना और इलाहाबाद का क़िला देना पडा। अँगरेज़ो ने वादा किया कि जब कभी आवश्यकता पडेगी, हम तुम्हें सैनिक सहायता देंगे।

सर जान शोर के शासन से दो बातें स्पष्ट हो गईं। पहली बात तो यह थी कि हस्तक्षेप न करने की नीति पर दृढ रहना असम्भव था, दूसरी बात यह प्रकट हुई कि कम्पनी का कोई कर्मचारी गवर्नर-जनरल के पद पर काम करने योग्य न था।

कार्नवालिस फिर गवर्नर-जनरल नियुक्त किया गया। किन्तु वह दूसरी बार इस पद को स्वीकार न कर सका। फलत १७९८ ई० में लार्ड वेलज़ली (Lord Wellesley) गवर्नर-जनरल होकर हिन्दुस्तान आया।

भारतीय स्थिति (१७९८)—लार्ड वेलज़ली मौर्निंगटन का अर्ल था। जिस समय गवर्नर-जनरल के पद पर उसकी नियुक्ति हुई उस समय उसकी अवस्था ३७ वर्ष की थी। वह बडा साहसी और साम्राज्यवादी राजनीतिज्ञ था। वह ऐसे समय भारत में आया जब कि हस्तक्षेप न करने की नीति असफल सिद्ध हो चुकी थी और उसमें परिवर्तन करने की आवश्यकता थी। इस समय इँगलेंड फ्रास के साथ ऐसे युद्ध में सलग्न था जो उसके जीवन-मरण का प्रश्न था। फ्रास का नया नेता नेपोलियन बोनापार्ट पूर्व तथा पश्चिम में विजय लाभ करने की बडी-बडी योजनाएँ कर रहा था। लार्ड वेलजली ने देखा कि इन परिस्थितियो में तटस्थ रहना असम्भव है। उसने भारतीय शक्तियो को नष्ट करके सारे भारत में अँगरज़ो का प्रभुत्व स्थापित करने का निश्चय किया। वह भारत में सात वष रहा। इस काल में उसने बडी ज़बरदस्त नीति का अवलम्बन किया। उसने एक के बाद दूसरे राजा को पराजित किया। उसका काम आसान नही था। टीपू अँगरेज़ो का कट्टर शत्रु था। अँगरेज़ो को भारत से बाहर निकालने के लिए अब वह विदेशी शक्तियो के साथ षड्यन्त्र कर रहा था। खर्दा की लडाई के बाद अँगरेज़ो पर निज़ाम का

कुछ भी भरोसा न रहा। उसने फ्रास के साथ लिखा-पढी की थी और अपने दरबार में एक फ्रासीसी सेना रखना मजूर किया था। मराठा-सघ अभी वडा शक्तिशाली था। सिन्धिया के अधिकार में एक बहुत बडा इलाका था। उसकी सैनिक शक्ति किसी प्रकार अँगरेज़ो से कम न थी।

कम्पनी की अन्दरूनी हालत काफी खराब थी। उसके कर्मचारी आपस में लडते-झगडते थे और अपने हाकिमो की आज्ञा का पालन नहीं करते थे। माली हालत भी इस समय बहुत खराब थी। खज़ाने में रुपया नही था। इस स्थिति में लार्ड वेलज़ली ने बडी शक्ति और साहस के साथ काम करने का निश्चय किया।

**मैसूर की चौथी लडाई—टीपू का पतन (सन् १७६६ ई०)**—टीपू खुल्लमखुल्ला अँगरेज़ो से शत्रुता रखता था। उनके विरुद्ध सहायता माँगने के लिए उसने फ्रास तथा वाहर के अन्य देशो में अपने राजदूत भेजे थे। उसकी सहायता के लिए अप्रैल १७६८ ई० में एक फ्रासीसी सेना मैसूर मे पहुँची। यही नही, इस समय यूरोप की स्थिति भी नाज़ुक थी। नेपोलियन वोनापार्ट (Napoleon Bonaparte) मिस्र पर आक्रमण कर रहा था। वह भारत पर भी हमला करना चाहता था। लार्ड वेलज़ली ने टीपू से पूर्ण रीति से अँगरेज़ो की अधीनता स्वीकार करने के लिए कहा। परन्तु टीपू ने यह कहकर टाल दिया कि अँगरेज़ों के साथ मेरी कोई शत्रुता नही है। गवर्नर-जनरल ने तुरन्त युद्ध की घोषणा कर दी। वास्तव मे टीपू और उसके वश को सिहासन-च्युत करने का वह पहले ही निश्चय कर चुका था। उसके मन मे पूर्ण विश्वास था कि यदि मैसूर की शक्ति को नष्ट कर दिया जाय तो फ्रासीसियो से कोई खतरा न रहेगा। पुराने राजाओ के वशजो से, इस सम्वन्ध में, उसने लिखा-पढी करना भी आरम्भ कर दिया था। उन्हे वह गद्दी पर विठाने का प्रलोभन देता था। टीपू के दो राजभक्त अफसर भी अँगरेज़ो के साथ लिखा-पढ़ी कर रहे थे।

लार्ड वेलजली ने सितम्बर सन् १७९८ ई० में निजाम के साथ एक सन्धि की। इस सन्धि के अनुसार निजाम एकदम से अँगरेजो के अधीन हो गया। किन्तु मराठा लोग बड़े चतुर थे। वे वेलजली की कूटनीति के जाल में नही फँसे और बिलकुल अलग रहे।

इस युद्ध मे मुख्य सेनापति लार्ड हैरिस (Lord Harris) था। निजाम की सेनाओ की सहायता से उसने पूर्व की ओर से मैसूर पर हमला किया। एक छोटी-सी सेना स्टुअर्ट (Stuart) की अध्यक्षता में पश्चिम की ओर से बढी। टीपू ने बड़े साहस के साथ युद्ध किया परन्तु हैरिस ने मलावली नामक स्थान पर उसे पराजित कर दिया। टीपू ने भागकर श्रीरङ्गपट्टम में शरण ली। ४ मई सन् १७९९ ई० में अँगरेजो ने श्रीरङ्गपट्टम को भी जीत लिया। सन्धि का प्रस्ताव हुआ परन्तु जो शर्तें पेश की गईं उन्हें टीपू ने अस्वीकार कर दिया। अपने किले की दीवार के नीचे वह बड़ी वीरता के साथ लड़ता हुआ मारा गया।

अँगरेजो और उनके मित्रो ने टीपू के राज्य को आपस में बाँट लिया। निजाम को उत्तर-पश्चिम की ओर के कुछ जिले मिले। मराठो को भी कुछ भाग एक शर्त पर दिया गया परन्तु उन्होने शर्त को स्वीकार नही किया। कम्पनी ने पश्चिम की तरफ कनारा, दक्षिण की तरफ कोयम्बटूर और श्रीरङ्गपट्टम के सहित पूर्व के कुछ जिलो को अपने राज्य में मिला लिया। मैसर की गद्दी पर उस हिन्दू-वंश का एक लड़का बिठाया गया जिससे हैदर ने राज्य छीन लिया था। शासन-प्रबन्ध के काम को चलाने के लिए टीपू का चतुर मन्त्री पूर्णिया नियुक्त किया गया। टीपू के लड़कों को बड़ी-बड़ी पेंशनें दी गईं।

**टीपू का चरित्र**—टीपू एक महान् शासक, योद्धा और सेनाध्यक्ष था। उसने शासन में कई सुधार किये थे। शासन के कार्य को वह बड़े उत्साह और परिश्रम के साथ करता था। उसे साहित्य से प्रेम था। फारसी, कनाडी और उर्दू भाषा वह धड़ाके के साथ बोल सकता था। उसने एक बड़ा पुस्तकालय भी बनाया था जिसे उसकी मृत्यु के बाद अँगरेज

कलकत्ते ले गये थे। वह निर्दय और धर्मान्ध मुसलमान नही था। वह हिन्दू मठो और मन्दिरो को भी दान देता था। परन्तु सेना का सञ्चालन करने की योग्यता उसमें नही थी। वह अपने वाप की भाँति न तो दूरदर्शी था और न उसकी तरह कभी दूसरो को समझने में उसका अनुमान ही ठीक उतरता था। विल्क्स (Wilks) ने ठीक कहा है कि हैदर साम्राज्य स्थापित करने के लिए पैदा हुआ था और टीपू उसे खोने के लिए।

टीपू के पतन के कई कारण थे। उसके साथियो ने उसे धोखा दिया। दूसरे वह अपने शत्रुओ की शक्ति का ठीक अनुमान न कर सका। यूरोपीय राजनीतिक स्थिति का उसे कुछ भी ज्ञान नही था। वह नही समझ सका कि अँगरेजो को निकालने में फ्रास उसकी सहायात करेगा कि नही।

**सहायक सन्धि की प्रथा**—टीपू के पतन के वाद लार्ड वेलजली ने निजाम और मराठो के साथ की हुई परानी सन्धि को दुहराने का निश्चय किया। इसी समय उसने अपनी सहायक सन्धि का प्रस्ताव किया। यह कोई नई नीति नही थी। क्लाइव और हेस्टिंग्ज ने इस नीति का अनुसरण किया था। प्रारम्भ में सैनिक सहायता पहुँचाकर भारतीय नरेशो की रक्षा की जाती थी। इसके वदले उन्हें रुपया देना पडता था। जव वे रुपया नही अदा कर पाते थे तव राज्य का कुछ भाग देने के लिए उन्हें वाध्य किया जाता था। लार्ड वेलजली ने इस प्रथा को और आगे वढाया। सहायक सन्धि का नियम इस प्रकार था। जो सन्धि करता था वह अनिवार्य रूप से अँगरेजो की अधीनता स्वीकार कर लेता था। वह किसी विदेशी शक्ति के साथ युद्ध या सन्धि नही कर सकता था और उसे अपने यहाँ अँगरेजी सेना रखनी पडती थी और उसका सारा खर्च देना पडता था। वह किसी विदेशी को अपने यहाँ नौकर नही रख सकता था। इसके अतिरिक्त उसे अपने दरवार मे एक अँगरेज रेजीडेंट रखना पडता था।

इन सन्धियो की बदौलत अँगरेज़ो की स्थिति बहुत दृढ हो गई। वे भारत में सबसे अधिक शक्तिशाली हो गये। उनके पास एक सुशिक्षित विशाल सेना थी जिसके लिए उन्हे कुछ भी ख़र्च नही करना पडता था। उस सेना से, आवश्यकता पडने पर, वे काम ले सकते थे। सन्धि करने-वाले मित्र-राज्यो की विदेशी नीति पर उनका पूर्ण अधिकार हो गया। अत अब अँगरेज़ो को यूरोपीय लोगो के आक्रमण का कोई भय नही रहा। लार्ड वेलज़ली ने सहायक सन्धि करने के लिए भारतीय राजाओ पर बडा दवाव डाला और उनके साथ सख्ती का वर्ताव किया। अपनी अयोग्यता और स्वार्थपरता के कारण वे आसानी के साथ उसके प्रभाव में आ गये।

हिन्दुस्तान के राजाओ पर इन सन्धियो का बडा बुरा प्रभाव पडा। अब उन्हें विदेशियो के आक्रमण और आन्तरिक विद्रोहो का कुछ भय नही रहा और वे निकम्मे और कमज़ोर हो गये। शासन-प्रवन्ध की ओर से उनका ध्यान हट गया। उनका आत्म-सम्मान भी जाता रहा और उनका राजनीतिक जीवन शक्तिहीन हो गया। षडयन्त्र अधिक होने लगे। अत्याचार और कुशासन को दूर करने के लिए अन्त में देशी राज्यो को कम्पनी के राज्य में मिला लेने के सिवाय और कोई चारा ही नही रह गया। टामस मनरो (Thomas Munro) ने कड़े शब्दो में इस प्रथा की आलोचना की और कहा कि भारतीय शासक इसके द्वारा पूर्ण रीति से चरित्र-हीन और दुर्वल हो गये।

सबसे पहले निज़ाम ने सहायक सन्धि की और पूर्ण रूप से अँगरेज़ों की अधीनता स्वीकार कर ली।

**तञ्जोर, सूरत और कर्नाटक का अँगरेज़ी राज्य में मिलाया जाना—** लार्ड वेलज़ली कम्पनी के राज्य को बढ़ाने पर तुला हुआ था। अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिए कभी-कभी उसे कठोर उपायो का सहारा लेना पडता था। तञ्जोर में गद्दी के लिए झगडा हो रहा था। उस झगडे से लाभ उठाकर अक्टूबर १७९९ ई० में उसने राजा के साथ

श्रीरङ्गपट्टम की विजय

सन्धि की। इस सन्धि के अनुसार राजा ने अपना सम्पूर्ण शासन-प्रबन्ध अँगरेजो को सौंप दिया। वेलज़ली ने इसके बदले में उसे ४० हज़ार पौंड सालाना देने का वादा किया।

सूरत में भी यही बात हुई। जब वहाँ सिंहासन के लिए झगडा हुआ तब वेलज़ली ने नवाब को हटाकर सूरत को अँगरेज़ी राज्य में मिला लिया।

कर्नाटक में दोहरा शासन-प्रबन्ध था। उसका परिणाम यह हुआ कि वहाँ के लोग बडी मुसीबत में पड गये। श्रीरङ्गपट्टम में जो काग़ज़ात मिले थे उनको देखने से मालूम होता था कि नवाब और उसका लडका, दोनो, टीपू के साथ लिखा-पढ़ी करते थे। लार्ड वेलज़ली को अप्रसन्न करने के लिए यह मसाला काफी था। इसी बहाने से उसने सूरत के मामले में दखल दिया। जुलाई सन् १८०१ ई० में जब नवाब मर गया तब वेलज़ली ने उसका शासन अपने हाथ में ले लिया। नवाब के लडके के हक़ पर कुछ भी ध्यान नही दिया गया और उसकी पेंशन मजूर हो गई।

**लार्ड वेलज़ली और अवध**—अवध का राज्य कम्पनी के राज्य की उत्तरी सीमा पर स्थित था। नवाब के ज़िम्मे कम्पनी का रुपया बाक़ी था। उसकी सेना बडी उच्छृङ्खल थी और शासन-प्रबन्ध भी ठीक न था। लार्ड वेलज़ली ने फौज की सख्या बढाने को कहा। नवाब इस बात को मानने के लिए किसी प्रकार राज़ी न था। उसने कहा कि यदि मेरा लडका गद्दी का मालिक बना दिया जाय तो मै नवाबी के पद को छोडने के लिए तैयार हूँ। लार्ड वेलज़ली उसके इस व्यवहार से बहुत नाराज़ हुआ। उसने नवाब को इस बात के लिए मजबूर किया कि वह सदा के लिए कम्पनी को रुहेलखड और गोरखपुर के ज़िले दे दे। इस प्रकार नवाब के राज्य का लगभग आधा भाग अँगरेज़ी राज्य में सम्मिलित हो गया। ऐसा करने में लार्ड वेलज़ली ने नवाब के साथ अत्याचार किया। उसने न तो हिन्दुस्तानी राजाओ के भावो का कुछ भी

ख़याल किया और न उनके कानूनी अधिकारो पर ही कुछ ध्यान दिया। उसको तो केवल ब्रिटिश राज्य के विस्तार और उसकी रक्षा का ख़याल था। अँगरेज़ इतिहासकारो ने इसी बात के लिए उसकी नीति का समर्थन किया है। नवाब के साथ जो अन्याय हुआ वह स्पष्ट है। जिस प्रकार का बर्ताव उसके साथ किया गया वह किसी प्रकार उचित नही कहा जा सकता। प्रजा की दशा कुछ सुधरी नही और जो ज़िले अँगरेज़ी राज्य में मिला लिये गये थे उनकी मालगुज़ारी का बन्दोबस्त लोगो के लिए हानि-कारक सिद्ध हुआ।

**लार्ड वेलज़ली और मराठे (१८०२-५)—बेसीन की सन्धि—** माहादजी की मृत्यु के बाद १७९४ ई० में नाना फडनवीस मराठों के राजनीतिक क्षेत्र का प्रधान व्यक्ति बन गया। उसकी शक्ति असीम थी, किन्तु उसकी सरक्षकता से युवक पेशवा माधवराव नारायण को इतना क्रोध आया कि १७९५ ई० में उसने आत्महत्या करके अपने जीवन का अन्त कर लिया। राघोवा के बेटे बाजीराव ने पेशवा की गद्दी पर अधिकार करना चाहा। इस पर नाना फडनवीस और उसके बीच एक भयानक झगडा उठ खडा हुआ। मराठो में इससे बडी अशान्ति फैल गई। सन् १८०० ई० में नाना फडनवीस भी मर गया। उसके साथ, कर्नल पामर (Colonel Palmer) के शब्दो में, मराठो की बुद्धिमत्ता और सयम का भी अन्त हो गया। सिन्धिया और होल्कर दोनो ने पूना दर्बार में अपना प्रभुत्व जमाना चाहा। परन्तु होल्कर अधिक शक्तिशाली था। उसने अक्टूबर सन् १८०२ ई० में सिन्धिया और पेशवा की सयुक्त सेना को, पूना के पास, युद्ध में पराजित कर दिया। पेशवा बेसीन को भाग गया और वहाँ जाकर उसने अँगरेज़ो के यहाँ शरण ली। लार्ड वेलज़ली ने ३१ दिसम्बर सन् १८०२ ई० को उसके साथ बेसीन की सन्धि की। पेशवा ने सहायक सन्धि की सभी शर्तें मान ली। उसने पूना में एक अँगरेज़ी फौज और एक अँगरेज़ रेज़ीडेंट रखना स्वीकार कर लिया। अँगरेज़ी फौज के खर्चे के लिए उसने कुछ देश भी

देने का वादा किया और यह भी स्वीकार कर लिया कि उसकी विदेशी नीति पर अँगरेजो का नियन्त्रण रहेगा। इसके अतिरिक्त उसने निजाम और गायकवाड-सम्बन्धी झगडो में अँगरेजो को पच मान लिया। सन्धि होनेके बाद मई १८०३ ई० में अँगरेजी फौज की सरक्षकता में पेशवा पूना पहुँचाया गया।

मराठों के साथ युद्ध—बेसीन की सन्धि से मराठो की राजनीतिक शक्ति को बडा धक्का पहुँचा। इँगलेंड में भी उसकी कडी आलोचना की गई। मराठो ने अँगरेजो को अप्रसन्न करने का कोई काम नही किया था। पेशवा एक अयोग्य-मनुष्य था। वह अपने काम के परिणाम पर विचार नही कर सकता था। अन्य मराठा-सरदारो के झगडो में अँगरेजो का पच बनना उनके लिए अपमानजनक था। इससे सम्भव था कि बडी कठिनाइयाँ उठ खडी होती। ऐसी अवस्था में इस सन्धि पर मराठा-सरदारो का क्रुद्ध होना अनुचित और आश्चर्य-जनक नही था। सिन्धिया ने क्रोध में आकर कहा कि इस सन्धि ने तो मेरे सिर से पगडी उतार ली। भोसला ने इसे राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का घातक बतलाया। पेशवा भी इस विचार से सहमत था। वह छिपे-छिपे उनकी बातो का समर्थन करता रहा। होल्कर पूना छोड कर चला गया और गायकवाड तटस्थ रहा।

लार्ड वेलजली ने बडे साहस और उत्साह के साथ युद्ध की घोषणा कर दी। गवर्नर-जनरल का भाई आर्थर वेलजली (Arthur Wellesley) ब्रिटिश सेना का प्रधान सेनापति बना। लडाई दक्षिण और उत्तरी भारत में हुई। १८०३ ई० में अहमदनगर पर अँगरेजो का कब्जा हो गया। आर्थर वेलजली ने २३ सितम्बर १८०३ ई० को सिन्धिया और भोसला की सयुक्त सेना को असाई (Assaye) के पास हरा दिया। इसके बाद असीरगढ और बुरहानपुर के किले पर अधिकार करने का प्रयत्न किया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि सिन्धिया ने सन्धि का प्रस्ताव किया। नवम्बर सन् १८०३ ई० में भोसला अरगाँव

नामक स्थान पर पराजित हुआ और ग्वालीगढ़ के क़िले पर अँगरेज़ों का अधिकार हो गया।

उत्तरी भारत मे अँगरेज़ी सेना को अधिक सफलता मिली। जनरल लेक (General Lake) ने अलीगढ को जीत लिया और दिल्ली की लडाई में सिन्धिया की सेनाओ को हरा दिया। मुगल-सम्राट् की रक्षा का भार उसने अपने ज़िम्मे ले लिया और उसे ६० हज़ार वार्षिक पेंशन देना स्वीकार किया। दिल्ली तथा आस-पास के ज़िलो पर उसकी प्रभुता सुरक्षित रही। इसके वाद जनरल लेक आगरा की ओर रवाना हुआ। भरतपुर के राजा के साथ भी सन्धि हो गई और आगरा भी अँगरेज़ो के अधिकार में आ गया। नवम्बर मे सिन्धिया की फौजें लासवाडी नामक स्थान पर पराजित हुईं और अन्य स्थानो में भी मराठो की हार हुई।

सिन्धिया और भोसला के साथ भी अलग-अलग सन्धि हो गई। भोंसला के साथ देवगांव की सन्धि हुई। इससे अँगरेज़ो को कटक का प्रान्त और वरार का वह भाग, जो भोसला के अधीन था, मिला। अँगरेज़ी राज्य में इन दोनो प्रदेशो के सम्मिलित हो जाने से वगाल और मद्रास के अहाते एक दूसरे से मिल गये। सिन्धिया ने सुर्जी अर्जुनगांव में एक सन्धि की। इसके अनुसार उसने दिल्ली, आगरा और यमुना नदी के दक्षिण का प्रदेश अँगरेज़ो को दे दिया। असीरगढ के अतिरिक्त दक्षिण में और कोई प्रदेश अब उसके अधिकार में न रह गया। सिन्धिया और भोसला दोनो ने वेसीन की सन्धि को मान लिया। उन्होने अपने-अपने दर्वार में अँगरेज़ रेज़ीडेंट रखना भी स्वीकार कर लिया। सिन्धिया को मुगल-सम्राट् से जो उपाधियां और पुरस्कार मिले थे वे सुरक्षित बने रहे।

होल्कर के साथ युद्ध (१८०५ ई०)—जसवन्तराव होल्कर अभी तक अन्य मराठा राजाओ से अलग रहा था। अब उसने जयपुर के राज्य में लूट-मार आरम्भ कर दी। लार्ड वेलज़ली ने उससे ऐसा न करने को

कहा। बस युद्ध छिड़ गया। कर्नल मौनसन (Colonel Monson) ने राजपूताना पर चढ़ाई कर दी। किन्तु उसकी फौज पीछे खदेड दी गई और उसके बहुत-से सिपाही मारे गये। जाट, सिन्धिया और पिण्डारियो के नेता अमीर ख़ाँ तया और कुछ सरदारो ने होल्कर की सहायता की थी। उसने दिल्ली पर आक्रमण किया परन्तु वह विफल हुआ। भरतपुर के पास डीग की लडाई में उसकी सेना पराजित हो गई। जनरल लेक होल्कर की सेना को फर्रुखाबाद के पास पहले ही हरा चुका था। अब उसने शीघ्रता के साथ भरतपुर के जाट राजा पर आक्रमण किया। किले पर उसके चार हमले विफल हुए। अन्त मे अप्रैल १८०५ ई० में सिन्धिया के भय से एक सन्धि कर ली गई।

**वेलजली का वापस जाना**—लार्ड वेलजली के शत्रुओ ने इँगलेंड में उसके विरुद्ध बडा आन्दोलन किया। भरतपुर की भीषण पराजय की बडी तीव्र आलोचना की गई। फलत वह १८०५ ई० में वापस बुला लिया गया। उसके बाद लार्ड कार्नवालिस भारत का गवर्नर-जनरल नियुक्त किया गया। उसकी अवस्था इस समय ६७ वर्ष की थी। उसने आते ही सिन्धिया और होल्कर के साथ सन्धि कर ली। इसका परिणाम यह हुआ कि मध्यभारत और राजपूताना में अब वे स्वच्छन्द धावा करने लगे।

**शासन-प्रबन्ध**—कर्मचारियो को नियुक्त करने तथा उनका वेतन निश्चित करने में लार्ड वेलजली अपने सम्बन्धियो का बडा पक्षपात करता था। किन्तु शासन में उसने कई महत्त्वपूर्ण सुधार किये। कम्पनी के कर्मचारियो की शिक्षा के लिए उसने फोर्ट विलियम में एक कालेज स्थापित किया परन्तु डाइरेक्टरो ने इस योजना को पसन्द नही किया। देश की आर्थिक दशा में सुधार करके उसने बजट को ठीक करने की कोशिश की। उसने सरकार की आय को बढ़ा कर उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई। उसका स्वभाव उग्र था। कम्पनी के सचालको की आज्ञा की पर्वाह न करके वह मनमानी करता था। उसने भारतीय नरेशो के साथ

वेलेज़ली का भारत
१७९८–१८०५
पेशावर
सिन्धु नदी
सतलज नदी
लाहौर
अम्बाला
दिल्ली
मेरठ
बरेली
भरतपुर
आगरा
कानपुर
लखनऊ
ग्वालियर
इलाहाबाद
बनारस
पटना
ढाका
कलकत्ता
कराँची
गुजरात
इन्दौर
नर्मदा नदी
बड़ौदा
बुरहानपुर
असीरगढ़
सूरत
नागपुर
बेसीन
बम्बई
अहमदनगर
पूना
हैदराबाद
महा नदी
गोआ
मद्रास
मंगलौर
माही

भी अनुचित व्यवहार किया। इन सब बातो से कम्पनी के सचालक उससे बहुत रुष्ट हो गये। वेलजली उन्हें सकुचित विचारवाली बूढी स्त्रियों का गुट्ट कहा करता था। इँगलेंड लौटने पर उस पर अभियोग चलाने का प्रयत्न किया गया परन्तु पार्लियामेंट ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। इतना ही नही, एक प्रस्ताव पास किया गया जिसमें उसकी सार्वजनिक सेवाओ की प्रशसा की गई। इसमें सन्देह नही कि वारेन् हेस्टिंग्ज की अपेक्षा लार्ड वेलजली अधिक भाग्यशाली था।

**अशान्ति का समय (१८०६-१३)**—लार्ड कार्नवालिस वेलजली की नीति को बदल देना चाहता था किन्तु उसका स्वास्थ्य इतना खराब था कि ५ अक्टूबर सन् १८०५ ई० को गाजीपुर में उसका देहान्त हो गया। उसके बाद सर जार्ज वार्लो (Sir George Barlow) गवर्नर-जनरल नियुक्त हुआ। वह कौंसिल का सीनियर मेम्बर था। उसने देशी राज्यो के मामलो में हस्तक्षेप न करने की नीति का पालन पूर्ण रीति से किया। उसके शासन-काल में केवल एक उल्लेखनीय घटना हुई। वह वेलोर का ग़दर था। सेनापति ने सिपाहियो को एक नई तरह की पगडी बाँधने और माथे पर तिलक न लगाने की आज्ञा दी थी। इस हुक्म से सारी सेना में सनसनी फैल गई। सिपाहियो ने समझा कि सरकार हमें विधर्मी बनाना चाहती है। फिर क्या था, उन्होने जुलाई १८०६ ई० में विद्रोह खडा कर दिया। उस समय यह कहा जाता था कि टीपू के लडको ने सिपाहियो को भडका कर विद्रोह कराया है परन्तु यह बात ग़लत थी। विद्रोहियो ने क़िले पर क़ब्ज़ा कर लिया और अँगरेज़ सिपाहियो को मार डाला। अर्काट से एक फौज भेजी गई। उसने विद्रोह को शान्त कर दिया। टीपू के लडके कलकत्ते भेज दिये गये। सन् १८०७ ई० में सर जार्ज वार्लो मद्रास का गवर्नर बना दिया गया और उसके स्थान पर लार्ड मिन्टो (Lord Minto) नियुक्त हुआ।

हस्तक्षेप न करने की नीति के कारण देश भर में बडी अशान्ति फैल गई। जनता के सुख और समृद्धि का बलिदान किये बिना उसका

जारी रखना कठिन था। बुन्देलखड में पूर्ण अराजकता फैल गई थी। अनेक छोटे-छोटे सरदार आपस में लडने-झगडने लगे। इस तरह देश भर में उपद्रव खडा हो गया। झुड के झुड डाकू स्वतन्त्रतापूर्वक घूमते-फिरते थे और लोगो का माल-असवाव लूट लेते थे। शान्ति स्थापित करने का प्रयत्न किया गया, सरदारो के पारस्परिक झगडो का निपटारा किया गया और डाकुओ का सख्ती के साथ दमन किया गया।

सिक्ख—अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण के वाद पजाव में गडवडी मच गई थी। सिक्ख-सघ अर्थात् खालसा ने १७६४ ई० मे लाहौर को जीत लिया और झेलम से लेकर यमुना नदी तक सारे देश पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। खालसा अनेक मिसलो में विभक्त था। हर एक मिसल का एक नेता होता था। उसके पास कुछ भूमि और आश्रितो का एक छोटा-सा दल रहता था। इन मिसलो मे १२ अधिक प्रसिद्ध थे। रणजीतसिंह का पितामह चरतसिंह सुखेरकुचिया मिसल का नेता था। अपने पडोसियो की भूमि पर कब्जा करके उसने अपनी शक्ति को वढा लिया था। उसके लडके महासिंह ने भी अपने पिता के कार्य को जारी रक्खा। सन् १७९२ ई० मे उसकी मृत्यु के वाद उसका वेटा रणजीतसिंह उत्तराधिकारी हुआ। वह वडा योग्य और पराक्रमशील पुरुष था।

रणजीतसिंह का जन्म सन् १७८० ई० मे हुआ था। जिस समय उसने आस-पास के प्रदेशो पर विजय प्राप्त करना आरम्भ किया उस समय वह लडका ही था। कुछ ही वर्षो में उसने अपने लिए एक राज्य वना लिया। ज़मानशाह से उसे लाहौर मिला और १८०२ ई० में उसने अमृतसर को जीत लिया। अगले चार-पाँच वर्षों में उसकी शक्ति की उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई। उसने सव मिसलो को अपने अधीन कर लिया और उन्हें एकता के सूत्र मे वाँध कर एक सुदृढ सिक्ख-राज्य स्थापित करने की चेष्टा की। वह चाहता था कि सरहिंद के राज्यो पर क़ब्ज़ा

कर ले। ये राज्य कम्पनी की सरक्षकता में थे इसी लिए रणजीतसिह को अँगरेज़ो के सम्पर्क में आना पडा।

यूरोप में नेपोलियन बोनापार्ट १८०७ ई० में अपनी उन्नति की चरम सीमा को पहुँच गया था। उसने ठीक इसी समय रूस के बादशाह के साथ टिलसिट ( Tilsit ) की सन्धि की थी। अँगरेज़ो के व्यापार को नष्ट करने के लिए वह जहाज़ी नाकाबन्दी द्वारा भरसक प्रयत्न कर रहा था। पूर्वी देशो को जीतने का भी उसका इरादा था। इससे भारत में ब्रिटिश राज्य के नष्ट हो जाने का बडा भय था। इस आपत्ति का निवारण करने के लिए लार्ड मिन्टो ने हस्तक्षेप न करने की नीति का परित्याग कर दिया। विजय और राजनीतिक सन्धियो के द्वारा उसने भारत में अँगरेज़ो की स्थिति को दृढ करने का प्रयत्न किया।

उसने ईरान, अफगानिस्तान और पजाब को मिशन (दूत) भेजे। सन् १८०८ ई० में जान मालकम (John Malcolm) ईरान भेजा गया। इँगलैंड की सरकार की सलाह से जिस सन्धि पर हस्ताक्षर किये गये थे उसे, काफ़ी लडने-झगडने के बाद, उसने पक्का कर दिया। उस सन्धि में यह शर्त थी कि ईरान की सरकार फ्रासीसियो को अपने यहाँ से निकाल देगी और अँगरेज़ लोग विदेशी आक्रमणो से ईरानियो की रक्षा करेंगे।

माउट स्टुअर्ट एलफिन्स्टन (Mount Stuart Elphinstone) काबुल भेजा गया। शाह शुजा से उसकी पेशावर में भेट हुई। उसने वचन दिया कि यदि फ्रासीसी तथा ईरानी फौजें हमारे देश से होकर जायँगी तो हम उन्हें रोकेंगे। इस सन्धि का कुछ परिणाम न निकला क्योकि शाह शुजा उसके बाद ही अफगानिस्तान से निकाल दिया गया। सिन्ध के अमीरो के साथ भी एक सन्धि की गई। उन्होने अपने देश से फ्रासीसियो को निकाल देने का वादा किया। रणजीतसिह के साथ किसी तरह का समझौता करना कठिन था, क्योकि वह, सतलज के इस ओर के राज्यो के विरुद्ध, अँगरेज़ो की सहायता चाहता था। स्पेन

में फ्रांसीसियो पर विजय पाने के कारण अँगरेज़ो की स्थिति वदल गई। अँगरेज़ दूत सर चार्ल्स मेटकाफ (Sir Charles Metcalf) ने अपनी सारी चतुराई और कूटनीति का उपयोग करके रणजीतसिंह से अप्रैल सन् १८०६ ई० में अमृतसर की सन्धि पर हस्ताक्षर करा लिये। सतलज के इस पार के जिलो को उसने छोड दिया। इस प्रकार ब्रिटिश सरकार और सिक्ख-राज्य के वीच मैत्री-सम्बन्ध स्थापित हो गया। जब तक रणजीतसिंह जीवित रहा तब तक इस सन्धि का पूर्णतया पालन होता रहा। परन्तु उसकी मृत्यु के बाद खालसा ने सन्धि की शर्तों की कुछ भी पर्वाह न की और लड़ने का इरादा किया।

यह आवश्यक समझा गया कि पूर्व में फ्रांसीसियो के जो उपनिवेश थे उन पर आक्रमण करने के लिए फौजें भेजी जायें। १८१० ई० में भारत-सरकार ने एक जहाजी बेडा तैयार करके भेजा। फलत वूर्बों और मारीशस के टापुओं पर अँगरेज़ो का अधिकार स्थापित हो गया।

लार्ड मिन्टो को इस बात का वडा गर्व था कि भारतीय शक्तियो के विरुद्ध हथियार उठाये विना ही उसने सारी अराजकता को दवा दिया। सन् १८१३ ई० में वह इँगलेंड वापस चला गया और उसके स्थान पर लार्ड हेस्टिंग्ज़ गवर्नर-जनरल नियुक्त किया गया।

**कम्पनी का नया आज्ञा-पत्र (१८१३ ई०)**—कम्पनी का आज्ञा-पत्र २० वर्ष के लिए फिर जारी किया गया। अभी तक व्यापार पर कम्पनी का एकाधिकार था। किन्तु इसके विरुद्ध वडा आन्दोलन किया गया। फलत. कम्पनी के हाथ से वह अधिकार छीन लिया गया। चीन के व्यापार पर उसका एकाधिकार सुरक्षित रहा। परन्तु राजनीतिक अधिकारो को छीन लेने का प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया गया। कम्पनी अथवा 'बोर्ड आफ़ कन्ट्रोल' से लाइसेन्स लिये विना किसी यूरोप-निवासी का भारत में आना असम्भव हो गया। हिन्दुस्तानियो में शिक्षा का प्रचार करने के लिए कम्पनी ने पहली बार दस हज़ार पौंड की एक रकम मंज़ूर की। यद्यपि शिक्षा-प्रचार के लिए यह रकम काफी नही थी तो

भी उसका अधिक महत्त्व इसलिए था कि सरकार ने इस बात को स्वीकार किया कि जनता की दशा को सुधारना उसका कर्तव्य है।

सन् १८१३ ई० में भारतीय स्थिति—वेलज़ली ने मराठों पर बड़ा आघात किया था, इसलिए उसके मीठे शब्द उनके क्रोध को शान्त न कर सके। वे किसी प्रकार ब्रिटिश राज्य से सुलह करने के लिए तैयार नहीं थे। कार्नवालिस और बार्लो की नीति कमज़ोर थी। उन्होंने राजपूत-राज्यों को पिण्डारियों और मराठों की दया पर छोड़ दिया था। हस्तक्षेप न करने की नीति का अँगरेज़ों पर बड़ा भयानक प्रभाव पड़ा। उनकी प्रतिष्ठा बहुत कम हो गई। सिन्धिया ने गोहद, ग्वालियर तथा अन्य प्रदेशों पर फिर से कब्ज़ा कर लिया। होल्कर को राजपूताना के कुछ ज़िले वापस कर दिये गये। मध्यभारत में बड़ी राजनीतिक गड़-बड़ी फैल गई। जसवन्तराव होल्कर १८११ ई० में मर गया और उसका अवैध पुत्र मल्हारराव गद्दी पर बैठा। भिन्न-भिन्न दलों के पारस्परिक झगड़ों के कारण शासन-व्यवस्था बिगड़ गई। राज्य की शक्ति इतनी कम हो गई कि बिना तलवार दिखाये मालगुज़ारी वसूल करना कठिन हो गया। होल्कर और सिन्धिया के झगड़ों के कारण सिन्धिया के राज्य में बड़ी गड़बड़ी मच गई और पिण्डारियों की बन आई। उन्होंने सारे देश में लूट-मार मचा दी और लोगों को खूब परेशान किया। मैलकोम के शब्दों में लोग निरकुश राजाओं द्वारा पीड़ित किये गये और अधिक लगान देने के कारण तबाह हो गये। देश को डाकुओं ने रौंद डाला और शासन का अस्तित्व ही मिट गया।

गोरखा-युद्ध (१८१४-१६ ई०)—नैपाल के राजा से लार्ड हेस्टिंग्ज़ की आते ही मुठभेड़ हुई। नैपाल का पहाड़ी देश अवध और बगाल की उत्तरी सीमा पर स्थित था। उस देश के रहनेवाले गोरखा कहलाते थे और शारीरिक बल और सहन-शक्ति में अँगरेज़ों से किसी प्रकार कम न थे। वे सम्पूर्ण तराई प्रदेश को अपना समझते थे। उन्होंने

स्योराज और वुतवल के जिलो पर कब्जा कर लिया। अँगरेजी सरकार ने झट उनके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

पहाडी देश में जाकर युद्ध करना सहज नही था। जनरल आक्टर-लोनी (Ochterlony) का पहला आक्रमण विफल हुआ। जनरल जिलेस्पी (Guillespie) पराजित हुआ और एक पहाडी किले पर हमला करते समय मारा गया। इसी प्रकार अन्य अँगरेज सेनापति भी परास्त हुए और पीछे हटा दिये गये। किन्तु पश्चिमी नैपाल में आक्टर-लोनी अपने स्थान पर डटा रहा और गोरखो की राजधानी पर हमला करने के लिए आगे वढा। इतने में सन्धि की वातचीत शुरू हो गई और मार्च १८१६ ई० में सिगौली नामक स्थान पर सन्धि-पत्र लिखा गया। इस सन्धि के अनुसार गोरखो ने तराई प्रदेश को छोड दिया और अँगरेजो को कुमायूँ और गढवाल दे दिये। इस प्रकार वह सुरम्य देश, जहाँ आज-कल शिमला स्थित है, अँगरेजो के अधिकार में आ गया। कम्पनी की उत्तर-पश्चिमी सीमा हिमालय तक पहुँच गई। गोरखो ने शिकम को भी छोड दिया और काठमाण्डू में एक रेजीडेंट रखना स्वीकार किया। उसी समय से अँगरेजो और गोरखो के वीच मित्रता का सम्वन्ध स्थापित हो गया और आवश्यकता पडने पर दोनो ने एक दूसरे को सहायता देने का वचन दिया।

**पिण्डारियो की लडाई (१८१६-१८ ई०)**—पिण्डारी लोग पहले मराठो की फौज में शामिल होकर युद्ध करते थे और शत्रुओ को लूट-पाट कर अपना निर्वाह करते थे। दक्षिण में शिवाजी और औरगजेब के युद्धो में उनका नाम पहले-पहल सुनाई पडता है। उनका सम्वन्ध किसी विशेष धर्म अथवा जाति से नही था। थोडे दिनो में सव जातियो के वदमाश, गुण्डे और लुटेरे उनके साथ हो गये और इस प्रकार पिण्डा-रियो का दल वहुत वढ गया। वे सारे राजपूताना और मध्यभारत में छापा मारते थे। वहाँ के निवासियो को उन्होने वहुत कष्ट दिया और उन्हें तवाह कर डाला। वे वडी निर्दयता के साथ लोगो को शारीरिक

यन्त्रणा देते और अपनी धन-सम्पत्ति दे देने के लिए उन्हें विवश करते थे। इतना ही नही, वे कभी-कभी गाँवो में आग लगा देते थे। अमीर खाँ, वासिलमुहम्मद, चीतू और करीम खाँ उनके मुख्य नेता थे। इनमे से प्रत्येक की अधीनता में हजारो पिण्डारी रहते थे और वे चारो ओर लूट-मार करते थे। मराठा सरदार भी उनकी सहायता करते और उन्हे ऐसा करने के लिए उत्साहित करते थे। लार्ड हेस्टिंग्ज ने पिण्डारियो का दमन करने के लिए बडी भारी तैयारी की। दमन का काम उत्तरी भारत तथा दक्षिण में आरम्भ किया गया। १ लाख १३ हजार सिपाहियो की एक विशाल सेना सगठित की गई और उसे चार भागो में विभक्त किया गया। उत्तरी सेना के सचालन का भार गवर्नर-जनरल ने स्वय अपने ऊपर लिया। दक्षिणी सेना का अध्यक्ष सर टामस हिसलोप (Sir Thomas Hislop) नामक अफसर नियुक्त किया गया। उसी समय मराठो के साथ भी युद्ध आरम्भ हो गया। पिण्डारियो का दमन कार्य जारी रहा। पिण्डारी लोग चारो तरफ से घेर लिये गये। बहुतो का पीछा किया गया और मार डाले गये। सन १८१८ ई० के अन्त तक पिण्डारी दल बिल्कुल तितर-बितर और नष्ट कर दिये गये। अमीर खाँ ने अँगरेजो की अधीनता स्वीकार कर ली। उसे टोंक का राज्य दे दिया गया और वहाँ उसके वशज अभी तक राज्य कर रहे है। करीम खाँ ने भी हथियार रख कर अँगरेजो की अधीनता स्वीकार कर ली। चीतू जगल में भाग गया और वहाँ एक चीते ने उसे मार डाला। बहुत-से पिण्डारी किसान और कारीगर बन गये। वे इधर-उधर बस गये और शान्तिपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करने लगे।

**मराठा-सघ का अन्तिम पतन (१८१७-१९)**—पेशवा बाजीराव द्वितीय, जिसे अँगरेजो ने १८०२ ई० में पूना की गद्दी पर फिर से बिठा दिया था, मराठा-सघ का अध्यक्ष बनना चाहता था। उसका मन्त्री त्र्यम्बकजी उसे इस काम के लिए उत्साहित करता था। त्र्यम्बकजी के षड्यन्त्र द्वारा ही गायकवाड का मन्त्री प० गगाधर शास्त्री, जुलाई

सन् १८१५ ई० में, मारा गया। एक विद्वान् ब्राह्मण की इस घृणित हत्या से मराठो में सनसनी फैल गई। लोगो को सन्देह हुआ कि पेशवा ने ही अपने मन्त्री के साथ षड्यन्त्र रचकर शास्त्री की हत्या की है। पूना के रेजीडेंट एलफिन्स्टन (Elphinstone) ने पेशवा से त्र्यम्बकजी को समर्पित कर देने के लिए कहा। उसने इस आज्ञा का पालन किया। त्र्यम्बकजी जेल में बन्द कर दिया गया परन्तु वहाँ से किसी प्रकार निकल भागा। कहा जाता है कि इसमें भी पेशवा का हाथ था। एलफिन्स्टन पेशवा के इस व्यवहार से बहुत अप्रसन्न हुआ। अत जून १८१७ ई० में एक सन्धि पर हस्ताक्षर करने के लिए वह विवश किया गया। इस सन्धि के अनुसार पेशवा को कुछ इलाका अँगरेजो के हवाले करना पडा और मराठो का मुखिया बनने का अधिकार भी उसे छोड देना पडा। सिन्धिया ने भी नवम्बर १८१७ ई० में एक सन्धि कर ली। इस सन्धि के अनुसार उसने पिण्डारियो के विरुद्ध सहायता देने का वचन दिया। इसी तरह की एक सन्धि साल भर पहले नागपर के सरक्षक अप्पा साहब के साथ हो चुकी थी।

पहले-पहल पेशवा ने सन्धि की शर्तों को तोडा। उसने ब्रिटिश रेजीडेंसी पर हमला किया परन्तु किर्की नामक स्थान पर उसकी हार हुई। अप्पा साहब भी अँगरेजो का शत्रु बन गया और वह भी नवम्बर १८१७ ई० में सीतावल्दी की लडाई में पराजित हुआ। पेशवा ने होल्कर से सहायता के लिए प्रार्थना की। वह अँगरेजो के विरुद्ध लडने को तैयार हो गया। परन्तु सेना के असन्तोष तथा राज्य के झगडो के कारण अँगरेजो के हाथो उसकी हार अवश्यम्भावी हो गई। २१ दिसम्बर को वह महीदपुर नामक स्थान पर परास्त हुआ और उसके राज्य के कुछ भाग पर अँगरेजो का अधिकार हो गया। भोसला और होल्कर दोनो ने अँगरेजो का आधिपत्य स्वीकार कर लिया।

पेशवा अपने प्राणो पर खेल कर लडता रहा परन्तु कोरीगाँव और अष्टी की लडाइयो में वह पराजित हुआ। वह बडी वीरता के साथ

लड़ा किन्तु अन्त में सर जान मैलकौम के हाथो में उसने आत्म-समर्पण कर दिया। मैलकौम (Sir John Malcolum) ने उसे ८० हज़ार पौंड सालाना की पेंशन देनी स्वीकार की। वह पेशवा के पद से हटा दिया गया और उसे बिठूर में रहने की आज्ञा मिली। बिठूर कानपुर के उत्तर-पश्चिम २० मील की दूरी पर है। इसके बाद पेशवा का पद उठा दिया गया। उसके राज्य का कुछ भाग सतारा के राजा को दे दिया गया और शेष बम्बई अहाते में शामिल कर लिया गया।

सन १८१८ ई० में सिन्धिया ने कम्पनी के साथ एक नई सन्धि की। इसके अनुसार उसने अजमेर अँगरेज़ो को दे दिया और अपने राज्य की सीमा को निर्धारित करना स्वीकार कर लिया। गायकवाड ने अपनी सहायक सेना को बढाना मजूर किया और एक नकद रकम के बदले उसने अहमदाबाद के उस भाग को—जिस पर उसका अधिकार था—अँगरेज़ो को दे दिया। इसके बदले में उसे दूसरा इलाका मिला। राजपूत राज्य पिण्डारियो के अत्याचार से मुक्त कर दिये गये और अब वे अँगरेज़ो की सरक्षकता में आ गये।

इन युद्धो का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि काश्मीर, सिन्ध और पजाब को छोडकर समस्त भारत पर अँगरेज़ो की प्रभुता स्थापित हो गई। मराठो की स्वतन्त्रता का और उसके साथ ही देश में फैली हुई अव्यवस्था और मार-काट का अन्त हो गया।

मराठों के पतन के कारण—मराठा-सघ का सगठन शिथिल था। उसमें एकता का अभाव था। भिन्न भिन्न सरदार आपस में लडते-झगडते रहते थे और एक दूसरे के प्रभाव को मिटाने की चेष्टा करते थे। यही कारण है कि नाना जैसे प्रतिभाशाली राजनीतिक को भी अधिक सफलता नही प्राप्त हुई। पेशवा इस सघ का नाम-मात्र का अध्यक्ष था। उसमें इतना बल नही था कि वह सब सरदारो को अपने वश में रखता। मराठो के नेता सदा अपनी शक्ति को बढाने के लिए लडते थे। अपने प्रतिद्वन्द्वियो के सर्वनाश के लिए वे सब प्रकार के षड्यन्त्र काम में लाते

मराठा युद्ध
१८०३-१८
सिन्धु
झेलम
चिनाब
रावी
सतलज
व्यास
दिल्ली
१८०३
लासवाड़ी
१८०३
डीग
भरतपुर
१८०५
आगरा
ग्वालियर
१७८०
काल्पी
लखनऊ
घाघरा
पटना
इलाहाबाद
सोन
कोटा
महीदपुर
सागर
भूपाल
इन्दौर
बड़ोदा
नर्मदा
असीरगढ़
सतपुड़ा प०
मैकाल प०
सूरत
ताप्ती
नागपुर
सीताबल्दी
अहमदनगर
आसाई
गोदावरी
महानदी
बसीन
बम्बई
किरकी
पूना
पुरन्दर
कृष्णा
अरावली प०
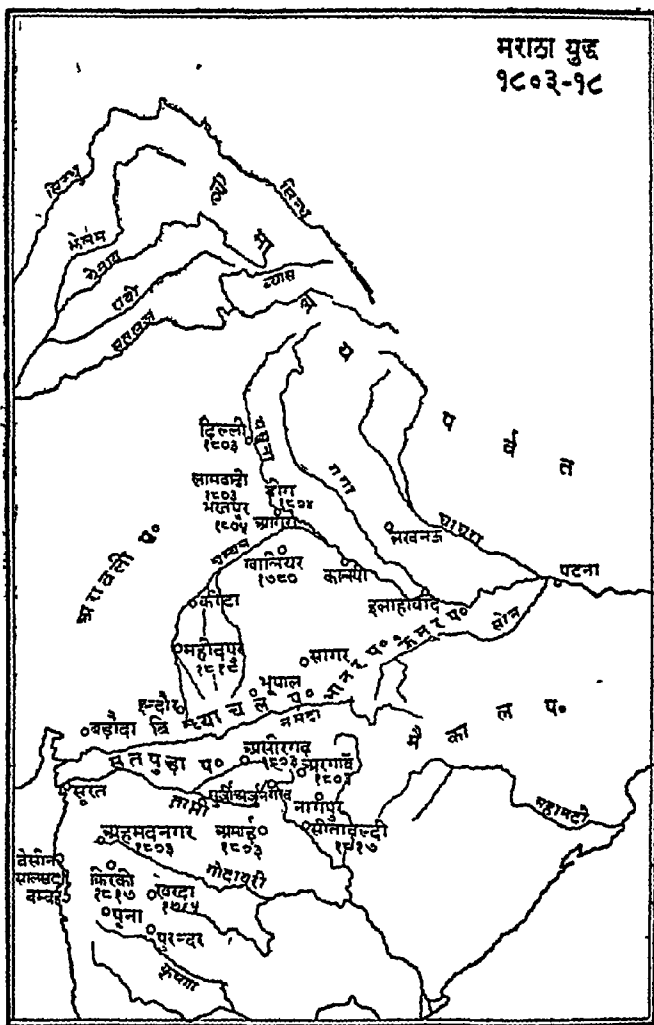
थे। पूना तथा अन्य दरबारो में सदा झगड़े मचे रहते थे। शासन-प्रबन्ध की ओर कम ध्यान दिया जाता था। मराठा-सरकार के हाकिम भी ठीक तरह से काम नही करते थे। राज्य के हित का उन्हें कुछ भी ध्यान न था। मराठो में युद्ध करने की योग्यता का अभाव नही था किन्तु उनका संगठन बड़ा दोषपूर्ण था। फौज के सिपाहियो को सैनिक शिक्षा नहीं दी जाती थी। वे विभिन्न जातियो और दलो के होते थे। 'गुरीला' युद्ध-प्रणाली को छोडकर उन्होने बडी भूल की। उसी के द्वारा वे अतीत काल में बडी-बडी कठिनाइयो का सामना कर सफलता प्राप्त कर चुके थे। पिण्डारियो को सहायता देने के कारण उनके प्रति लोगो की श्रद्धा न रही। वे अपने सरदारो के प्रति राजभक्ति का समुचित भाव नहीं रखते थे। अनुचित-उचित का विचार छोडकर वे बहुधा शत्रुओं से जा मिलते थे। इसके लिए उनके मन में कुछ खेद भी नही होता था। जीते हुए देशो में वे सार्वजनिक हित के भाव से प्रेरित होकर काम नही करते थे, बल्कि वहाँ के लोगो से सख्ती के साथ कर वसूल करते थे। हिन्दुस्तानी राजाओ के प्रति उनका व्यवहार अनुचित और अनुदार था। इसी कारण उन राजाओ ने विदेशियो की शरण ली। साम्राज्य को क़ायम रखने के लिए युद्ध की आवश्यकता तो थी किन्तु ऐसे शिथिल सगठन से वे अँगरेजो के विरुद्ध सफलता नही प्राप्त कर सकते थे। मराठो की अपेक्षा अँगरेज़ सैनिक अधिक शिक्षित और सुसज्जित थे। इसके अतिरिक्त उन्हें अँगरेजो की शक्ति और साधनो का पर्याप्त ज्ञान नही था।

मराठों के सम्मुख एक उज्ज्वल भविष्य था। यदि उनके नेता आपस के भेद-भाव को भूल जाते और यह समझ लेते कि लूट-मार से कोई स्थायी राज्य कायम नही हो सकता तो वे बडी आसानी के साथ मुग़ल-साम्राज्य का स्थान ले सकते थे। जनता के सुख-कल्याण की उन्हें अधिक पर्वाह नही थी। उनकी आपस की लडाई के कारण व्यापार और उद्योग-धन्धो की उन्नति असम्भव हो गई। ऐसी नीति और सिद्धान्तो के कारण मराठा-साम्राज्य का पतन अनिवार्य हो गया।

**मराठों का शासन-प्रबन्ध**—अठारहवी शताब्दी में मराठो का शासन-प्रबन्ध शिवाजी के सिद्धान्तो पर अवलम्बित नही था। राजा की अपेक्षा पेशवा ने धीरे-धीरे अधिक शक्ति प्राप्त कर ली और वही राज्य का वास्तविक शासक बन गया। एक जिले की मालगुजारी को कई सरदारो में बाँटकर उसने उनके बीच ईर्ष्या-द्वेष और झगडे का बीज बो दिया। इस प्रकार उसने अपनी शक्ति कायम रक्खी और उनके हौसलो को रोकने की चेष्टा की।

पेशवा के यहाँ एक बडा दफ्तर था जहाँ सब जिलो की आय और व्यय का पूरा ब्योरा रहता था। यह दफ्तर हिसाब की जांच करता था। शासन का सारा सगठन गाँवो के आधार पर था। प्रत्येक गाँव में एक पटेल रहता था। वही मालगुजारी का अफसर और मजिस्ट्रेट था। पटेल का पद पुश्तैनी था। गाँव के लोगो से उसे वेतन मिलता था। गाँव का दूसरा अफसर कुलकर्णी था। शान्ति और रक्षा के लिए वह पटेल के प्रति उत्तरदायी था। कुलकर्णी सदा ब्राह्मण होता था।

पटेल के ऊपर कामविसदार होता था। वह परगने का हाकिम होता था। उसके ऊपर के हाकिम को मामलतदार कहते थे। हर एक मामलतदार के अधीन एक सरकार या सूबा होता था। ये हाकिम मालगुजारी वसूल करते थे और गाँव के कर्मचारियो के खिलाफ फरियादें भी सुनते थे। इन हाकिमो पर देशमुख और देशपाण्डे का नियन्त्रण रहता था। इन दोनो की सहायता के लिए आठ दरखदार होते थे जो पेशवा के पास गुप्त रिपोर्ट भेजा करते थे। अपनी नियुक्ति के समय प्रत्येक अफसर एक बडी रकम पेश करता था। बाजीराव द्वितीय के समय में मामलतदार का पद ठेके पर दिया जाता था जिसके फल-स्वरूप जनता को बडी मुसीबत उठानी पडी।

न्याय-विभाग का सगठन भी दोषपूर्ण था। मुकदमे की सुनवाई के लिए न तो कोई कार्यक्रम था और न कानूनो का कोई सग्रह ही किया गया था। अधिकांश मामलो में रीति-रवाज का ही अनुसरण किया जाता

था। दीवानी के मुक़दमे पचायत के सामने पेश किये जाते थे। पचायत की नियुक्ति पटेल करता था। उसके विरुद्ध मामलतदार के यहाँ अपील की जाती थी। पचायतो का अधिकार सीमित होता था। अपने फैसलो को कार्यान्वित करने का अधिकार उन्हें नही था। फौजदारी के मामलो का फैसला पंचायतें करती थी। दड बहुत कठोर दिये जाते थे। बेत लगाने का रवाज साधारण रूप से प्रचलित था। मामूली अपराधो के लिए भी हाथ-पैर आदि शरीर के अग काट लिये जाते थे। बाजीराव द्वितीय के समय में पुलिस-विभाग का सगठन नये सिरे से किया गया परन्तु यह व्यवस्था भी दोष-रहित न थी। झूठे अपराध लगा कर अफ-सर लोगो से रुपया ऐंठते थे। यही नही, बहुधा वे डाकुओ और लुटेरो से भी मिले रहते थे।

राज्य की आय के मुख्य साधन चौथ और सरदेशमुखी थे। जमीन की मालगुजारी के अतिरिक्त राज्य की भारी आय टैक्स, आयात-निर्यात-कर, चुगी क्रय-विक्रय और घाट की उतराई के महसूल से होती थी। ज़कात सब जातियो और सम्प्रदायो के सौदागरो से वसूल की जाती थी। यद्यपि मराठा-राज्य की ठीक-ठीक आय बताना कठिन है, परन्तु अनुमान किया जाता है कि सन् १७९८ ई० में कुल आय ६ करोड थी और अकेले पेशवा की आमदनी ३ करोड थी।

मराठा-राज्य एक सैनिक राज्य था। उसकी सरक्षकता में कला अथवा साहित्य की उन्नति के लिए कुछ नही हुआ। वाणिज्य-व्यवसाय को उससे कोई प्रोत्साहन नही मिला। किसानो की दशा सुधारने की भी कोई विशेष चेष्टा नही की गई।

मराठो के शासन-प्रबन्ध का यही रूप था। लोगो की दशा शोच-नीय हो गई। निरन्तर युद्ध होने के कारण लोग तग आ गये। सैनिक राज्य के प्रति प्रजा के हृदय में भक्ति का भाव नहीं जाग्रत् होता और न वह उसका प्रीतिभाजन ही बन सकता है। इन्ही सब दोषो के कारण

मराठा लोग वीर एवं शक्तिशाली होते हुए भी कोई स्थायी साम्राज्य नही स्थापित कर सके।

**शासन-सुधार (१८१३-२६)**—लार्ड हेस्टिंग्ज के सौभाग्य से उसके अधीन अनेक योग्य और परिश्रमी अफसर थे, जिन्हें भारत की दशा का अच्छा ज्ञान था। टामस मनरो (Thomas Munro) ने मद्रास की मालगुजारी का वन्दोवस्त किया और रय्यतवाडी प्रथा क़ायम की। किसानो को अब यह डर नहीं रह गया कि हम किसी ऐसे अजनवी के हाथ में पड जायँगे जो केवल अपने लाभ की चिन्ता करेगा। ज़मीदारो और पोलीगारो से फौजी ताक़त छीन ली गई। सामाजिक व्यवस्था को उनसे वडा भय रहता था। वे एक दूसरे से युद्ध करते तथा गाँवो को लूट लेते थे। सन् १८१८ ई० तक वे बिल-कुल वश में कर लिये गये। उनके सम्वन्धी शान्तिमय नागरिको की भाँति वस गये। न्याय-विभाग का फिर से सङ्गठन किया गया। नई अदालतें इतनी लोकप्रिय वन गईं कि पञ्चायतो के हाथ से उनका वहुत-सा काम निकल गया।

जो प्रदेश पेशवा से प्राप्त हुए थे उनका प्रवन्ध एलफिन्स्टन ने वडी सफलता के साथ किया। मालगुज़ारी के वन्दोवस्त के लिए उसने रय्यतवाडी प्रथा को अपनाया।

वङ्गाल के न्याय-विभाग का सङ्गठन फिर से करना आवश्यक था। दीवानी अदालतो का कार्य-क्रम सरल कर दिया गया। फौजदारी अदालतो के प्रवन्ध में भी सुधार किया गया। कलेक्टर और मजिस्ट्रेट के काम फिर एक कर दिये गये। नगरो में पुलिस की दृढ व्यवस्था कर दी गई और देहात में चौकीदारो का नया प्रवन्ध किया गया।

इस्तमरारी वन्दोवस्त ज़मीदारो के लिए लाभदायक था। किन्तु उससे रय्यत के हितो की कुछ भी रक्षा नही होती थी। किसानो के अधिकारों की रक्षा के लिए उपाय किया गया। मनमानी वेदख़ली से वचाने के लिए उन्हें मौरूसी हक़ दे दिया गया।

लार्ड हेस्टिंग्ज न हिन्दुस्तानियो में शिक्षा-प्रचार के लिए प्रयत्न किया। सन् १८१८ ई० में सीरामपुर के पादरियो ने देशी भाषा में एक पत्र निकालना शुरू किया। वडे-वडे सरकारी कर्मचारियो के विरोध करने पर भी लार्ड हेस्टिंग्ज ने इस काम को प्रोत्साहन दिया। उसने अँगरेजी पत्रो पर से उन प्रतिवन्धो को हटा लिया जिन्हें वेलजली, ने लगा रक्खा था। दिल्ली के निवासियों को पीने का अच्छा पानी देने के लिए उसने अलीमर्दान खाँ की नहर को फिर से जारी करने का हुक्म दिया और उसके लिए कोई अतिरिक्त कर नही लगाया।

लार्ड हेस्टिंग्ज की मंजूरी लेकर 'पामर एण्ड को०' (Palmer & Co) ने, अधिक सूद की दर पर, निजाम को भारी कर्ज दिया था। ऋण देने-वालो की वेईमानी के कारण उसकी वडी निन्दा हुई। इसमें गवर्नर-जनरल ने वडी भारी भूल की। सन् १८२३ ई० में वह वापस लौट गया। उसके स्थान में लार्ड एमहर्स्ट (Lord Amherst) गवर्नर-जनरल नियुक्त हुआ। अपने दस वर्ष के शासन-काल में लार्ड हेस्टिंग्ज ने प्राय सभी प्रतिद्वन्द्वी शक्तियो को परास्त कर वेलजली के काम को पूरा कर दिया।

**ब्रह्मा की पहली लड़ाई (१८२४-२६ ई०)**—सन् १७६० ई० के लगभग, जव कि अँगरेज वगाल मे अपनी शक्ति जमाने में लगे हुए थे, अलोम्प्रा नामक सरदार ने ब्रह्मा में अपना राज्य स्थापित किया था। उसके उत्तराधिकारी अपने राज्य की सीमा को वढाते रहे। सन् १८१३ ई० में ब्रह्मा के राजा ने मनीपुर पर कब्जा कर लिया और १८१७-१८ ई० में उसने ब्रिटिश सरकार के पास एक अनुचित पत्र लिखा। इस पत्र के द्वारा ब्रह्मा के राजा न चटगाँव, ढाका, मुर्शिदावाद और कासिम-वाजार पर अपना दावा पेश किया। ब्रिटिश सरकार इस समय पिण्डा-रियो के साथ युद्ध करने में लगी हुई थी इसलिए इस पत्र पर उसने कुछ ध्यान नही दिया। किन्तु ब्रह्मावालो के हमले जारी रहे। सन् १८२२ ई० में उन्होंने आसाम को जीत लिया और इस सफलता से उत्साहित होकर उन्होंने १८२३ ई० में चटगाँव के निकटवर्ती शाहपुरी नामक

टापू पर आक्रमण कर दिया। यह टापू अँगरेजो के अधिकार में था। गवर्नर-जनरल ने ब्रह्मा-नरेश के इस कार्य का विरोध किया। जब कोई उत्तर न मिला तब २४ फरवरी १८२४ ई० को युद्ध की घोषणा कर दी गई।

ब्रह्मा देश की जलवायु नम और मलेरिया फैलानेवाली थी। इस-लिए वहाँ जाकर युद्ध करना कठिन था और सेना की बहुत हानि होने की सम्भावना थी। अँगरेजी सेना समुद्र के मार्ग से रवाना हुई। सर आरचीबाल्ड कैम्पबेल (Sir Archibald Campbell) ने रगून पर अधिकार कर लिया। किन्तु वर्षा के कारण सेना ६ महीने तक आगे न बढ सकी। ब्रह्मा के राजा ने अपने सेनापति महाबुन्देला को उत्तर-पूर्व की ओर से बगाल पर आक्रमण करने के लिए भेजा। किन्तु वह थोडे ही समय के बाद वापस बुला लिया गया। अँगरेजो न आसाम पर फिर कब्जा कर लिया। कैम्पबेल ने अराकान और टेनासरिम को जीत लिया और सन् १८२५ ई० में वह समुद्र तथा स्थल दोनो मार्गों से इरावदी की ओर बढा। बुन्देला पराजित हुआ और बडी वीरता के साथ लडता हुआ मारा गया। ३ सप्ताह के बाद लोअर ब्रह्मा की राज-धानी प्रोम पर अँगरेजो का अधिकार हो गया। जब ब्रिटिश सेना याडब की ओर बढी तब सन्धि की बातचीत शुरू हुई। फरवरी सन् १८२६ ई० में याडबू की सन्धि हो गई। इसके अनुसार ब्रह्मा के राजा ने अँगरेजों को अराकान और टेनासरिम देना स्वीकार किया। उसने आसाम और कचार से अपना अधिकार हटा लेना भी मजूर किया और मनीपुर की स्वाधीनता को स्वीकार कर लिया। उसने आवा में एक अँगरेज रेजी-डेंट रखना भी स्वीकार किया और साथ ही दड-रूप में एक भारी रक़म देने का वादा किया।

इस युद्ध में कम्पनी को बडी मुसीबत और आर्थिक हानि उठानी पडी। किन्तु इससे उत्तर-पूर्व की सीमा निर्धारित हो गई और अब उस ओर से विदेशी आक्रमण का कोई भय नही रह गया।

भरतपुर का घेरा (१८२६ ई०)—लार्ड वेलज़ली के समय में लार्ड लेक ने भरतपुर के किले को जीतने का प्रयत्न किया था। किन्तु उसे इसमें सफलता नहीं मिली थी। सन् १८२६ ई० में भरतपुर का राजा मर गया। अँगरेज़ो की सलाह से उसका नाबालिग़ लड़का गद्दी पर विठलाया गया। किन्तु दुर्जनसाल ने ज़बर्दस्ती गद्दी पर अपना अधिकार जमा लिया। उसने अँगरेज़ो की कुछ भी पर्वाह नहीं की। उसके इस कार्य से मालवा, बुन्देलखण्ड और मराठा देश में बडी अशान्ति मच गई। लार्ड कोम्बरमिअर (Lord Combermere) भरतपुर भेजा गया। उसने क़िले पर अधिकार कर लिया और दुर्जनसाल को किले से वाहर निकाल दिया। परन्तु किले के खजाने को लूटकर अँगरेज़ अफ़सरो ने वडा निन्दनीय कार्य किया। सन् १८२६ ई० में लार्ड एमहर्स्ट इँगलेंड लौट गया और उसके स्थान में लार्ड विलियम बेंटिंक (William Bentinck) भारत का गवर्नर-जनरल नियुक्त हुआ। वह पहल मद्रास का गवर्नर रह चुका था।

## सक्षिप्त सन्वार विवरण

| | |
|---|---|
| रणजीतसिंह का जन्म | १७८० ई० |
| टीपू के साथ युद्ध | १७९० ,, |
| लखेरी के पास होल्कर की हार | १७९२ ,, |
| कम्पनी का नया आज्ञापत्र | १७९३ ,, |
| बगाल का इस्तमरारी बन्दोवस्त | १७९३ ,, |
| माहादजी सिन्धिया की मृत्यु | १७९४ ,, |
| खर्दा की लडाई | १७९५ ,, |
| माधवराव नारायणराव पेशवा की मृत्यु | १७९५ ,, |
| आसफुद्दौला की मृत्यु | १७९७ ,, |
| मैसूर की चौथी लडाई | १७९९ ,, |
| तंजौर का अँगरेज़ी राज्य से मिलना | १७९९ ,, |

| | |
|---|---|
| नाना फडनवीस की मृत्यु .. .. .. | १८०० ई० |
| कर्नाटक का अँगरेज़ी राज्य में मिलना .. .. | १८०१ ,, |
| होल्कर और सिन्धिया का पेशवा को हराना .. .. | १८०२ ,, |
| बेसीन की सन्धि .. .. .. .. | १८०२ ,, |
| अहमदनगर की विजय .. .. .. .. | १८०३ ,, |
| असाई का युद्ध .. .. .. .. | १८०३ ,, |
| अरगाँव की लडाई .. .. .. .. | १८०३ ,, |
| देवगाँव और सुर्जी अर्जुनगाँव की सन्धि .. .. | १८०५ ,, |
| डीग की लडाई .. .. .. . | १८०५ ,, |
| लार्ड कार्नवालिस की मृत्यु .. .. .. | १८०५ ,, |
| वैलोर का गदर .. .. .. .. | १८०६ ,, |
| लार्ड मिन्टो का दरबारो में दूत भेजना .. .. | १८०८ ,, |
| अमृतसर की सन्धि . .. .. | १८०९ ,, |
| कम्पनी का नया आज्ञापत्र .. .. .. | १८१३ ,, |
| गोरखो की पहली लडाई . .. | १८१४-१६ ,, |
| गगाधर शास्त्री का क़त्ल .. .. . | १८१५ ,, |
| सिगौली की सन्धि .. .. .. .. | १८१६ ,, |
| पिण्डारी-युद्ध .. .. .. | १८१६-१८ ,, |
| सीताबल्दी की लडाई .. .. .. .. | १८१७ ,, |
| कोरीगाँव और अष्टी की लडाइयाँ .. .. .. | १८१८ ,, |
| ब्रह्मा की पहली लडाई . .. .. | १८२४-२६ ,, |
| भरतपुर का घेरा .. .. .. .. | १८२६ ,, |

# अध्याय ३३

## शान्ति और सुधार का काल

### (१८२८-३५ ई०)

**नवीन काल**—लार्ड विलियम बेंटिक (William Bentinck) एक उदार व्यक्ति था। शासन-सुधार को वह आवश्यक समझता था और उसकी दृष्टि में प्रजा का कल्याण ही सरकार का मुख्य उद्देश्य था। जिस समय वह गवर्नर-जनरल होकर भारत में आया, इंगलैंड में नई शक्तियां काम कर रही थी। पार्लियामेंट में सुधार करने के प्रस्ताव हो रहे थे। वहाँ के सुधार-आन्दोलन से वह पूर्णतया सहमत था। जब तक वह गवर्नर-जनरल के पद पर रहा तब तक उसने शान्ति बनाये रखने की कोशिश की। वह चाहता था कि भारतीय शासन मे अँगरेजो की स्वतन्त्रता का भाव भर दे। उसी के शासन-काल में पहले-पहल यह नियम बनाया गया कि जाति, धर्म अथवा रग के कारण कोई भी भारतवासी किसी पद पर नियुक्त होने से रोका न जाय। टामस मनरो ने भी कहा कि ब्रिटिश सरकार सरक्षक के रूप में भारत को अपने अधीन रक्खेगी और उसका ध्येय भारतीयो को अपने देश का शासन करने के योग्य बनाना होगा।

लार्ड बेंटिक के सुधारो को हम तीन श्रेणियो में विभक्त कर सकते हैं—आर्थिक, शासन-सम्बन्धी और सामाजिक।

**आर्थिक**—शासन के व्यय को कम करना आवश्यक था। लार्ड बेंटिक ने दोहरे भत्ते को कम कर दिया। उसने यह नियम बना दिया कि जो फ़ौजें कलकत्ते से ४०० मील तक की दूरी पर स्थित हों उन्हें केवल आधा भत्ता दिया जाय। इससे सेना में बडा असन्तोष फैला। किन्तु

लार्ड वेंटिक ने वडी दृढता के साथ डाइरेक्टरो की आज्ञा का पालन किया। सिविल सर्विस का खर्च भी कम कर दिया गया। इससे ५ लाख रुपये की बचत हो गई। वगाल की मालगुजारी का जो हिस्सा वसूल नही हुआ था, उसे उसने वसूल किया और मालवा की अफीम पर एकाधिकार सुरक्षित रक्खा।

शासन-सुधार—लार्ड वेंटिक ने दौरा और अपील की प्रान्तीय अदालतो को तोड दिया। उनका काम सुस्ती से होता था। इससे तीन वडी वुराइयाँ पैदा होती थी। एक तो मुकदमे फैसल होने में देर होती थी, दूसरे खर्च वहुत पडता था, तीसरे लोगो को इतमीनान नही होता था। दीवानी अपीलो का काम सदर अदालतो के सुपुर्द कर दिया गया और सेशन की अदालतो का काम कमिश्नरो के हाथ में दे दिया गया। किन्तु यह व्यवस्था सन्तोपप्रद नही सिद्ध हुई और १८३२ ई० में डिस्ट्रिक्ट जज इस काम को करने लगे।

रावर्ट वर्ड (Robert Bird) को लगान-सम्वन्धी विषयो का अच्छा ज्ञान था। उसने पश्चिमोत्तर सूवे के वन्दोवस्त का काम पूरा किया। यह वन्दोवस्त ३० साल के लिए किया गया। इसी समय इलाहावाद मे माल का वडा दफ्तर (Board of Revenue) स्थापित किया गया।

लार्ड कार्नवालिस ने ऊँची-ऊँची सरकारी नौकरियो का दरवाजा हिन्दुस्तानियो के लिए वन्द कर दिया था। इससे भारतीयो के साथ वडा अन्याय हुआ। लार्ड वेंटिक ने हिन्दुस्तानी जजो को पहले की अपेक्षा अधिक अधिकार दिया और उनका वेतन वढा दिया। अव तक अदालतों का काम फारसी भाषा में होता था। इससे लोगो को वडी दिक्क़त होती थी। अव गवर्नर-जनरल ने अदालतो में फारसी की जगह उर्दू भापा का प्रयोग करने का हुक्म दे दिया।

सामाजिक—अँगरेजो ने भारतवासियो के धार्मिक और सामाजिक रीति-रवाजो मे किसी प्रकार का हस्तक्षेप नही किया था। राजनीति

के साथ धर्म का मेल करके पुर्तगालवालो ने अपने को वडी आपत्ति में डाल दिया था। उनकी इस भूल से अँगरेजो ने शिक्षा ग्रहण की , परन्तु उनके लिए यह असम्भव था कि सती, वालहत्या आदि अमानुषिक प्रथाओ के विरुद्ध जो भाव धीरे-धीरे जाग्रत् हो रहा था उसकी उपेक्षा करते। सती-प्रथा की उत्पत्ति का मूलकारण हिन्दू-स्त्रियो का पातिव्रत-धर्म था। प्रारम्भ में विधवाएँ अपने मृत पति के साथ चिता में जलकर प्राण दे देती थी परन्तु पीछे से यह प्रथा वडी कठोर हो गई और स्त्रियाँ चिता में जल मरने के लिए वाध्य की जाने लगी। लार्ड वेंटिक ने इस भीषण प्रथा का अन्त कर देने का सकल्प किया। राजा राममोहन राय आदि शिक्षित भारतीय भी सती के विरुद्ध थे। इससे उत्साहित होकर लार्ड वेंटिक ने १४ दिसम्वर सन १८२९ ई० को एक प्रस्ताव पास किया जिससे सती का रवाज कानून के विरुद्ध वतलाया गया। नये कानून के अनुसार सती होने में सहायक होना क़त्ल के वरावर अपराध ठहराया गया। वगाल में इस कानून का कुछ विरोध हुआ परन्तु कुछ परिणाम न निकला। कट्टर हिन्दुओ ने यह समझ कर, कि इस क़ानून से धर्म पर आघात हुआ है, गवर्नर-जनरल की नीति के विरुद्ध प्रिवी कौंसिल में अपील की परन्तु वह खारिज कर दी गई।

अन्य कुरीतियों ने भी गवर्नर-जनरल के ध्यान को आकर्षित किया। उडीसा के खोन्द लोगों में नर-वलि की प्रथा प्रचलित थी। राजपूताना, अजमेर, खानदेश आदि कुछ स्थानो में स्त्रियो का अधिक व्यापार होता था। काठियावाड में तथा राजपूताना के कुछ भागो में, राजपूतो में शिशु-हत्या साधारण रूप से होती थी। गवर्नर-जनरल ने लोगो के विचार वदलने के लिए योग्य अफसर तैनात किये। कई साल के कठिन परिश्रम के वाद राजपूत इस वुरी प्रथा को छोडने के लिए तैयार हुए। सन् १८३२ ई० में एक दूसरा कानून पास हुआ जिसके द्वारा गुलामी की प्रथा उठा दी गई।

ठगी—ठगो के दल में सभी जातियो और फिरक़ो के लोग शामिल

थे। इनका पुश्तैनी काम आदमियो को क़त्ल करना था। वे अधिकतर मध्यभारत मे पाये जाते थे। वे गला घोट कर आदमियो को मार डालते और उनका माल लूट लेते थे। उनका तरीका यह था—पहले तो वे किसी यात्री के साथ हो लेते और उसके दिल में पूरा विश्वास जमा देते थे। किन्तु जब वे किसी निर्जन स्थान मे पहुँचते तब उसके गले में एक छोटा-सा कपडा डालकर उसे इतना कसते कि उस बेचारे का दम निकल जाता था। ठगो की अपनी निज की भाषा थी और अपने गुप्त सकेतो के द्वारा वे अपना आशय प्रकट करते थे। वे शपथ खाकर इस बात की प्रतिज्ञा करते थे कि हम अपने दल की सब बातें गुप्त रक्खेंगे। वे काली माई की पूजा करते थे। ठगी को रोकने के लिए लार्ड वेंटिक ने एक अलग विभाग खोला और इस विभाग का सारा काम मेजर स्लीमेन (Major Sleeman) के सुपुर्द किया। एक सूबे से दूसरे सूबे में हजारों ठगो का पीछा किया गया। उन्हें या तो कैद कर लिया जाता था या फाँसी की सजा दी जाती थी। उद्योग-धन्धे का काम सिखाने के लिए जबल-पुर मे एक स्कूल खोला गया। इस स्कूल में शिक्षा पाकर कुछ लोग कारी-गर बन गये और सम्मानपूर्वक ईमानदारी से अपनी जीविका कमाने लगे।

शिक्षा—सन् १८१३ ई० के आज्ञापत्र में हिन्दुस्तानियो की शिक्षा के लिए कुछ व्यवस्था की गई थी। प्राच्य विद्याओ को प्रोत्साहन देने के लिए कम्पनी के सचालको ने एक रकम भी मजूर की थी। सन् १८१६ ई० मे राजा राममोहन राय की सहायता से डेविड हेअर (David Hare) साहब ने कलकत्ते में एक हिन्दू-कालेज स्थापित किया और उसमें यूरो-पीय साहित्य तथा विज्ञान की पढ़ाई शुरू हुई। उसी समय के लगभग—कैरी (Carly), मार्शमेन (Marshman) और वार्ड (Ward)—नामक सीरामपुर के तीन पादरियो ने सीरामपुर में एक कालेज स्थापित किया। सन् १८१८ ई० में उन्होने 'समाचार-दर्पण' नाम का अखबार निकाला और १८२० ई० में अलेक्जेंडर डफ (Alexander Duff) ने कलकत्ते में एक कालेज खोला। किन्तु अभी तक सरकार ने अँगरेजी

भाषा को शिक्षा का माध्यम नहीं स्वीकार किया था। इस विषय पर लोगों में वडा मतभद था। पूर्वी भाषाओ के पडित तो भारतीय भाषाओ को पसन्द करते थे किन्तु अँगरेज़ी के विद्वान् इस बात पर ज़ोर देते थे कि भारतीयो को अँगरज़ी भाषा-द्वारा अच्छी और उच्च शिक्षा दी जाय। सन् १८३५ ई० में मैकौले (Macaulay) ने, जो गवर्नर-जनरल की कौंसिल का मेम्बर था, एक मसविदा तैयार किया जिसमें उसने अँगरेज़ी शिक्षा के पक्ष का ज़ोरो से समर्थन किया। उसने पूर्वी भाषा और साहित्य की जो निन्दा की वह विलकुल निर्मूल थी। किन्तु उसने अँगरेज़ी शिक्षा का समर्थन ऐसे प्रभावपूर्ण ढग से किया कि उसकी जीत हो गई। ७वी मार्च सन् १८३५ ई० को एक प्रस्ताव पास हुआ जिसका आशय यह था कि शिक्षा के लिए जो रक़म स्वीकृत की जाय वह केवल अँगरेज़ी शिक्षा पर खर्च की जाय। सस्कृत और अरवी के कालेज रक्खे गये परन्तु सरकार की शिक्षा-सम्वन्धी नीति मे एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो गया।

भारतीय समाज पर मैकौले के निर्णय का वडा प्रभाव पडा। अँगरेज़ी शिक्षा ने हमारे लिए ज्ञान के नये-नये क्षेत्रो का दर्वाज़ा खोल दिया और देश में एकता स्थापित कर दी। हमारी उन्नति के मार्ग से भाषा और प्रान्तीयता की पुरानी रुकावटें दूर हो गईं। भारत के विभिन्न भागो के निवासी अव एक ही भाषा के द्वारा अपने भावो को व्यक्त कर सकते हैं। पाश्चात्य साहित्य और विज्ञान के अध्ययन से भारतीय राष्ट्रीयता के विकास को अधिक योग मिला है। किन्तु अँगरेज़ी शिक्षा से देश को हानि भी पहुँची है। इससे हमारी देशी भाषाओ की उन्नति में रुकावट पैदा हुई और जन-साधारण में शिक्षा का प्रचार नही हो सका। विदेशी भाषा के माध्यम होने के कारण हमारे विद्यार्थियो को विद्योपार्जन में वडी असुविधा होती है। कुशाग्रवुद्धि होने पर भी उनमें विचार-स्वातन्त्र्य और मौलिकता का अभाव रहता है। यही शिक्षा का ध्येय है और इसी को प्राप्त करने में भारतीय विद्यार्थियो को अधिक सफलता नही प्राप्त हुई है।

**भारतीय राज्यों के साथ सम्बन्ध**—लार्ड बेंटिक ने हस्तक्षेप न करने की नीति का अवलम्बन किया। जब तक भारतीय राज्य, कम्पनी के साथ की हुई, सन्धियो की शर्तों का पालन करते रहे तब तक उनके मामलो में उसने कुछ हस्तक्षेप नही किया। किन्तु यदि किसी राज्य का शासन खराब होता तो वह हस्तक्षेप करता था। वह एक उदार तथा शक्तिशाली सरक्षक की तरह वर्त्ताव करता था।

**मैसूर**—मैसूर का राजा, जिसे वेलजली ने गद्दी पर बिठलाया था, बिलकुल निकम्मा साबित हुआ। वहाँ सुशासन का अन्त हो गया और चारो ओर उपद्रव होने लगे। १८३१ ई० में राजा गद्दी से उतार दिया गया और शासन-प्रबन्ध का काम एक अँगरेज़ कमिश्नर के सुपुर्द किया गया। उसकी सहायता के लिए चार अफसर नियुक्त किये गये।

**कचार**—सन् १८३२ ई० में कचार का छोटा-सा राज्य, जो बगाल के उत्तर-पूर्व में है, अँगरेज़ी राज्य में मिला लिया गया। इसके लिए उस राज्य के निवासियो ने स्वयं प्रार्थना की थी।

**कुर्ग**—कुर्ग की परिस्थिति और भी अधिक शोचनीय थी। राजा का आचरण बहुत खराब था। जो लोग उसके साथ कुछ अपराध करते थे उन्हें वह बहुत कठोर दड देता था। क्रुद्ध हो जाने पर अपने निकट के सम्बन्धियो के साथ भी वह दुर्व्यवहार करता था। सन् १८३४ ई० में राजा शासन करने के अयोग्य ठहराया गया और लोगो की इच्छा के अनुसार कुर्ग का देश अँगरेज़ी राज्य में मिला लिया गया। उस समय से कुर्ग मद्रास अहाते का एक अग बन गया है।

**अवध**—अवध का नवाब निरकुश शासक था। वज़ीरो के काम में हस्तक्षेप करके उसने शासन-प्रबन्ध को चौपट कर डाला था। रेज़ीडेंट ने केन्द्रीय सरकार के पास इसकी रिपोर्ट भेजी। लार्ड बेंटिक ने लखनऊ में नवाब से भेंट की और साफ-साफ कह दिया कि यदि तुम अपना शासन-प्रबन्ध ठीक नही करोगे तो तुम्हारी हालत ठीक वैसी ही होगी जैसी कि तजौर और कर्नाटक के राजाओं की हुई है। नवाब ने उत्तर दिया

रणजीतसिंह का राज्य
श्रीनगर
जम्मू
स्यालकोट
गुजरात
गुजरानवाला
चिलियानवाला
लाहौर
अमृतसर
कांगड़ा
शिमला
लुधियाना
अलीवाल
मुदकी
फ़ीरोज़पुर
पटियाला
अम्बाला
करनाल
पानीपत
दिल्ली
मेरठ
अटक
रावलपिंडी
पेशावर
कोहाट
बन्नू
मुलतान
डेरा इस्माइल खाँ
डेरा गाज़ीखाँ
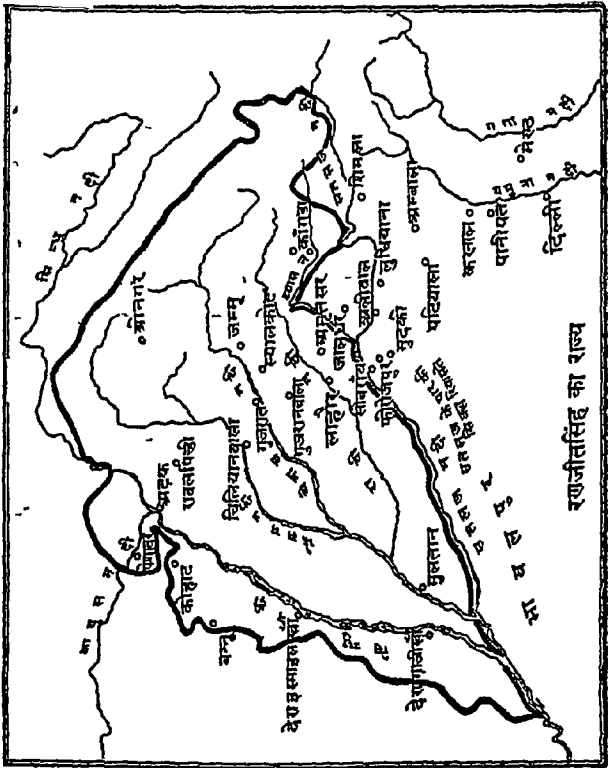
कि ब्रिटिश सरकार के हस्तक्षेप से शासन की बुराइयाँ और-बढती है। लार्ड बेंटिक के हस्तक्षेप से अवध के लोगो में यह खयाल पैदा हो गया था कि ब्रिटिश सरकार उनके देश को अँगरेजी राज्य में मिला लेने का बहाना ढूँढ रही है। वजीर ने तग आकर इस्तीफा दे दिया और शासन-प्रबन्ध को नवाब और उसके कृपापात्रो पर छोड दिया।

देशी राज्यो के प्रति ब्रिटिश सरकार की नीति एक-सी, और स्थिर, नही रही। पहले हस्तक्षेप न करने की नीति से काम लिया गया और बाद को उसकी अवहेलना की गई। भारतीय राजे बहुधा इस बात की शिकायत करते थे कि न तो हमें ब्रिटिश सरकार से कुछ सहायता मिलती है और न हम अपने इच्छानुसार अपने शासन की ठीक व्यवस्था ही करने पाते है।

मराठे—भोसला राजा अब बालिग हो गया था। उसकी इच्छा थी कि शासन-प्रबन्ध के काम को अपने हाथो मे ले ले। गवर्नर-जनरल ने भी उसकी इच्छा का समर्थन किया। राज्य के सब मामलो की व्यवस्था सुचारु रूप से होने लगी और प्रजा भी सन्तुष्ट हो गई।

किन्तु गायकवाड के राज्य में बडी गडबडी थी। शासन-प्रबन्ध खराब था। होल्कर के राज्य मे भी गद्दी के लिए झगडा हो रहा था। ब्रिटिश सरकार ने जसवन्तराव होल्कर के भतीजे हरी होल्कर के पक्ष का समर्थन किया। किन्तु वह गद्दी के उपयुक्त नही सिद्ध हुआ और अपने मन्त्री के हाथ की कठपुतली बन गया। इस कारण राज्य में विद्रोह उठ खडा हुआ।

मार्च सन् १८२७ ई० में दौलतराव सिन्धिया का देहान्त हो गया। उसके कोई लडका नही था। किन्तु उसकी विधवा स्त्री बैजाबाई ने जनकोजी नामक ११ वर्ष के एक बालक को गोद ले लिया और वह सरक्षक बनकर राज्य का शासन करती रही। जनकोजी के बालिग हो जाने पर भी रानी ने राज्य के प्रबन्ध को उसके हाथ में सौपने से इनकार कर दिया। इस पर बडा भारी झगडा उठ खडा हुआ। समय पर रेजी-

इंट ने बीच में पडकर राज्य को गृह-युद्ध से बचा लिया। बैजाबाई ने जब देखा कि उसका पक्ष बिलकुल कमजोर पड गया है और गद्दी पर अधिकार रखना असम्भव है तब वह निराश हो एक अच्छी पेंशन लेकर दक्षिण में, अपनी जागीर में, चली गई।

सिक्ख—सन् १८०९ ई० की सन्धि के बाद रणजीतसिंह ने अपनी शक्ति खूब बढ़ा ली थी। उसके पास एक विशाल सेना भी थी जिसमें हिन्दुस्तानी और गोरे अफ़सर नियुक्त थे। यूरोपीय ढग की क़वायद सीख कर सेना खूब शक्तिशाली बन गई थी। सिक्ख लोग भारत के सर्वोत्कृष्ट सैनिक थे। उन्ही की सहायता से रणजीतसिंह ने सम्पूर्ण पंजाब को अपने अधीन कर लिया था। उसने सिन्ध नदी के तट पर अटक को जीत लिया और उसे अपने राज्य की सीमा बनाया। १८१८ ई० में मुलतान उसके हाथ आ गया। कुछ समय के बाद, उसने काश्मीर को जीत लिया। इस विजयोत्सव के अवसर पर लाहौर और अमृत-सर में, तीन रात तक, खूब रोशनी की गई। सन् १८२३ ई० में एक विशाल सेना को लेकर उसने अफग़ानो और पठानो को पराजित किया और पेशावर पर अधिकार कर लिया। खैबर के दर्रे तक उसने सारे देश को रौंद डाला और अपने शत्रुओ के हृदय में भय पैदा कर दिया। सिन्ध नदी और सुलेमान पर्वत के बीच के सकीर्ण प्रदेश को, जिसे देराजात कहते हैं, वह पहले ही जीत चुका था।

रणजीतसिंह इस बात को खूब समझता था कि अँगरेजो के साथ मैत्री-सम्बन्ध रखने से क्या लाभ होगा। वह यह भी जानता था कि शायद उसके लडके इस योग्य न हो कि वीर सिक्ख जाति को अपने क़ाबू में रख सकें। इधर लार्ड बेंटिक भी ब्रिटिश सरकार और खालसा दरबार के बीच मैत्री-सम्बन्ध बनाये रखना चाहता था।

फलत १८३१ ई० में रूपर नामक स्थान पर दोनो की भेट हुई। गवर्नर-जनरल ने बडे सम्मान और शिष्टाचार के साथ रणजीतसिंह का स्वागत किया और उसके साथ सन्धि की। इस सन्धि के अनुसार

दोनो के बीच सदा के लिए मित्रता स्थापित हो गई। महाराजा ने वादा किया कि वह सतलज और सिन्ध नदी के ऊपरी भाग के किनारे अँगरेज़ी व्यापार को प्रोत्साहन देगा।

सन् १८३२ ई० में सिन्ध के अमीरो के साथ भी सन्धि हो गई। कम्पनी की सरकार की नीयत पर उन्हें बडा सन्देह था। वे डरते थे कि ऐसा करने से हमारी स्वतन्त्रता खतरे में न पड जाय। अन्त में वे सन्धि करने के लिए तैयार हो गये। बाद को जो कुछ हुआ उससे प्रकट होता है कि उनका सन्देह और भय बिलकुल उचित था। ११ वर्ष के भीतर ही सिन्ध अँगरेज़ी राज्य का एक सूबा बन गया।

**कम्पनी का आज्ञा-पत्र (१८३३ ई०)**—सन् १८३३ ई० मे कम्पनी का आज्ञापत्र फिर २० साल के लिए जारी किया गया। चीन के व्यापार का ठेका कम्पनी के हाथ से ले लिया गया। उसे भारत पर शासन करने की आज्ञा दी गई परन्तु शासन में कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कर दिया गया। गवर्नर-जनरल की कौंसिल में एक और मेम्बर बढाया गया। इस तरह अब उसमें चार सदस्य हो गये। नये सदस्य को क़ानून का विभाग सौंपा गया। पहले-पहल मैकौले ही इस पद पर नियुक्त किया गया। बम्बई और मद्रास के अहाते निश्चयात्मक रूप से गवर्नर-जनरल के अधीन कर दिये गये। यूरोपीय लोगो को कह दिया गया कि वे भारत मे अपनी बस्तियाँ न बनायें।

सबसे अधिक महत्त्व की घोषणा पार्लियामेंट ने यह की कि भारत का कोई निवासी अथवा ब्रिटिश सम्राट् की प्रजा का कोई व्यक्ति अपने धर्म, जन्मस्थान, वश या रग के कारण किसी पद या नौकरी से वचित नही रक्खा जायगा।

लार्ड बैंटिक ने १८३५ ई० में अपने पद से इस्तीफा दे दिया। सर चार्ल्स मेटकाफ (Sir Charles Metcalf), जो आगरा-प्रान्त का गवर्नर नियुक्त किया गया था, थोडे समय के लिए गवर्नर-जनरल बना दिया गया।

**प्रेस ऐक्ट**—मेटकाफ के शासनकाल का सबसे महत्त्वपूर्ण काम यह था कि समाचारपत्रो को स्वतन्त्रता मिल गई। उसका मत था कि प्रेस की स्वतन्त्रता पर जो बन्धन लगाये गये है वे अँगरेज जाति की मर्यादा के विरुद्ध है। गवर्नर-जनरल की कौंसिल के कानूनी मेम्बर मैकौले ने भी इस राय का समर्थन किया। अत सितम्बर सन् १८३५ ई० में एक कानून पास हो गया जिसके द्वारा समाचारपत्रो के बन्धन हटा दिये गये।

चार्ल्स मेटकाफ के बाद गवर्नर-जनरल का पद माउन्ट स्टुअर्ट एलफिन्स्टन को दिया गया किन्तु अस्वस्थता के कारण उसने स्वीकार नही किया। लार्ड आकलेंड (Lord Auckland) गवर्नर-जनरल नियुक्त किया गया। उसके समय में ब्रिटिश सरकार की नीति ने एक नया ही रूप धारण किया।

**लार्ड बेंटिक का चरित्र**—अँगरेज शासको में लार्ड विलियम बेंटिक का स्थान सदा ऊँचा रहेगा। वह एक उदार राजनीतिज्ञ था। जनता के सुख और कल्याण की वृद्धि करना ही उसकी हार्दिक कामना थी। उसके सब मन्सूबे साहस से भरे होते थे। उसने बडी दृढता और बुद्धिमानी के साथ उनको पूरा किया। भारतवासियो के साथ उसकी बडी सहानुभूति थी। उनके लिए उसने ऊँची-ऊँची नौकरियो का दरवाजा खोल दिया परन्तु देशी राज्यो के प्रति उसकी नीति दृढ न थी। इसका परिणाम यह हुआ कि देश में अशान्ति फैल गई और शासन-प्रबन्ध बिगड गया।

### सक्षिप्त सन्वार विवरण

| | |
|---|---|
| सती-प्रथा का बन्द होना | १८२९ ई० |
| मैसूर के शासन-प्रबन्ध को हाथ में लेना | १८३१ ,, |
| रणजीतसिंह के साथ सन्धि | १८३१ ,, |
| कचार को अँगरेजी राज्य में मिला लेना | १८३२ ,, |
| सिन्ध के अमीरो के साथ सन्धि | १८३२ ,, |
| कम्पनी का नया आज्ञापत्र | १८३३ ,, |
| अँगरेजी का शिक्षा का माध्यम निश्चित होना | १८३५ ,, |
| समाचार-पत्रो की स्वतन्त्रता | १८३५ ,, |

# अध्याय ३४

## पश्चिमोत्तर और पूर्वी सीमाएँ

### अफ़ग़ान, सिक्ख और ब्रह्मा के निवासी

### (१८३६-५६ ई०)

**अफगानिस्तान की स्थिति**—पश्चिमोत्तर-सीमा ने भारतीय सरकार को सदैव चिन्तित रक्खा है। अकबर से लेकर औरङ्गज़ेब तक सभी मुग़ल-सम्राटो ने सेना भेजकर इस बात की चेष्टा की थी कि वहाँ की जातियो को जीत कर उन पर अपना प्रभाव जमा लें। रूस के आक्रमण से बचने के लिए अफगानिस्तान को वश में रखना ब्रिटिश सरकार को भी आवश्यक प्रतीत हुआ। लार्ड आकलेंड रूस की ओर से आवश्यकता से अधिक भयभीत हो गया। उसने सीमा की स्थिति को समझने में भूल की और इस भूल ने भारतीय सरकार को बडी मुसीबतो में डाल दिया।

इस समय अफगानिस्तान मे बडी ग़डबडी मची थी। दोस्तमुहम्मद अब्दाली-वश को हटाकर स्वय कावुल का अमीर वन गया था। वह वारुकज़ाई जात का था। अब्दाली-वश का निर्वासित सरदार शाह-शुजा लुधियाने मे आकर रहने लगा था। वह चाहता था कि किसी तरह अपनी गद्दी को फिर से प्राप्त करे। सन् १८३७ ई० में ईरानियो ने रूसवालो की सहायता से हिरात को घेर लिया। उस पर कब्ज़ा कर लेने के बाद वे भारत में आसानी से प्रवेश कर सकते थे। अत अँगरेज़ लोग हिरात को उनके हाथ में नही जाने देना चाहते थे। दोस्तमुहम्मद अँगरेज़ो के साथ सन्धि करने के लिए तैयार था। परन्तु वह चाहता था कि ब्रिटिश सरकार रणजीतसिंह से कह-सुनकर पेशावर उसे वापस दिला दे। अँगरेज़ लोग ऐसा करके सिक्ख-सरदार की मित्रता को खतरे में डालना

नही चाहते थे। ईरान और रणजीतसिंह के विरुद्ध दोस्तमुहम्मद ने अँगरेजो से सहायता माँगी। इसके उत्तर में ब्रिटिश सरकार ने कहा कि स्वतन्त्र राज्यो के मामले में हम हस्तक्षेप नही करना चाहते। दोस्त-मुहम्मद एक योग्य शासक था। रूस की अपेक्षा अँगरेजो के साथ सन्धि करना वह अधिक पसन्द करता था। किन्तु लार्ड आकलैंड और उसके सलाहकारो का रुख उसके प्रति अच्छा नही था। इसलिए विवश होकर उसे रूस के साथ वातचीत करनी पडी। थोडे ही समय के वाद कावुल के दरबार में रूसी राजदूत का खूब स्वागत-सत्कार किया गया।

लार्ड आकलैंड ने अब हस्तक्षेप करने का निश्चय किया। २६ जून १८३८ ई० को उसने रणजीतसिंह के साथ एक सन्धि की कि शाह शुजा को कावुल की गद्दी पर फिर से विठलाया जाय। यह नीति अच्छी नही थी। दोस्तमुहम्मद एक स्वाधीन शासक था। ईरान अथवा रूस के साथ सन्धि करने का उसे पूरा अधिकार था। शाह शुजा की अपेक्षा वह कही अधिक योग्य था। शाह शुजा अफगानो का विश्वासपात्र नही था। यह एक आश्चर्यजनक वात है कि आकलैंड को पहले से यह नहीं मालूम हो सका कि सिक्खो की मदद से हस्तक्षेप करने का क्या भीषण परिणाम होगा। कुछ समय के वाद रूस की ओर से कुछ भी भय नही रहा और हिरात का घेरा भी उठा लिया गया परन्तु तव भी गवर्नर-जनरल तथा उसके साथियो ने अपने इरादे को नही छोडा। उन्होने युद्ध की घोषणा कर दी और सेनाओ ने कूच कर दिया।

**अफगानों की पहली लडाई**—अँगरेजी सेना ने सिन्ध के मार्ग से अफ़ग़ानिस्तान में प्रवेश किया। यह बात अमीरो के साथ की हुई सन्धि के विरुद्ध थी। कन्दहार पर कब्जा कर लिया गया। अगस्त सन् १८३९ ई० में ग़ज़नी भी अँगरेजो के अधिकार में आ गया। शाह शुजा काबुल की गद्दी पर फिर से विठाया गया। परन्तु वह लोकप्रिय तो था नहीं, वह पूर्ण रूप से अँगरेजो की सहायता पर निर्भर था। ब्रिटिश सेना के दुर्व्यवहार से उत्तेजित होकर अफ़ग़ानो ने सारे देश में गडवडी मचा दी।

कुछ लोगो ने अँगरेज़ राजदूत अलेक्ज़ेंडर बर्न्स (Alexandet Burnes) पर हमला कर दिया और उसकी बोटी-बोटी काट डाली। दोस्तमुहम्मद के बेटे अकबर खाँ के साथ एक सन्धि होगई जिसके अनुसार यह तय हुआ कि अँगरेज़ लोग अफ़ग़ानिस्तान को खाली कर दें, दोस्तमुहम्मद छोड दिया जाय और शाह शुजा को या तो हिन्दुस्तान भेज दिया जाय या पेंशन देकर अफगानिस्तान में रहने दिया जाय। अकबर खाँ ने वादा किया कि मैं अपनी सरक्षकता में अँगरेज़ी सेना को पहाडी देश के बाहर तक पहुँचा दूँगा। परन्तु १८४२ ई० मे, जब कि अँगरेज़ो की सेना वापस लौट रही थी, अफगानो ने उस पर पीछे से आक्रमण कर दिया। हज़ारो अँगरेज़ सिपाही मार डाले गये। लार्ड आकलेंड की सरकार की अयोग्यता के कारण अँगरेज़ स्त्री-पुरुषो और अफसरो को जो मुसीवतें उठानी पडी उनका वर्णन करना असम्भव है। १६ हज़ार अँगरेज़ भारत की ओर रवाना हुए थे। उनमें से केवल एक डा० ब्राइडन ( Brydon) उस भीषण घटना की दु खद कहानी वर्णन करने के लिए जीता बचा। १२० सिपाहियो को अकबर खाँ ने गिरफ्तार कर लिया। शेष सब आदमी मारे गये। लार्ड आकलेड ने इस स्थिति को सँभालने का प्रयत्न किया परन्तु उसे सफलता न हुई। अँगरेज़ी सेना जनरल सेल (Sale) की अध्यक्षता में जलालाबाद में लडती रही और जनरल नौट (Nott) कन्दहार मे डटा रहा। परन्तु गजनी में कर्नल पामर (Palmet) का बुरा हाल हुआ। इतने मे लार्ड आकलेड वापस बुला लिया गया और उसकी जगह लार्ड एलिनबरा गवर्नर-जनरल होकर आया।

जनरल पौलक ने जलालाबाद को बचा लिया परन्तु गज़नी की हार से गवर्नर-जनरल घबरा गया। उसने फौरन हुक्म दिया कि सेना अफ़ग़ानिस्तान से चल दे। इतने मे शाह शुजा को अफगानो ने मार डाला और एलिनबरा की नीति की चारो ओर निन्दा होने लगी। अन्त में उसने पौलक और नौट को काबुल और ग़ज़नी होकर लौटने के लिए लिखा। नौट कन्दहार से चलकर काबुल पहुँचा और पौलक भी जा मिला।

काबुल को सज़ा देने का इरादा किया गया। अफसरो ने कहा कि बाला-हिसार का विध्वस कर दिया जाय परन्तु पौलक ने उस बाज़ार को उडा देने की सलाह दी जहाँ मैकनाटन की लाश डाल दी गई थी। कुछ समय के बाद काबुल से सेनायें लौट आई।

लार्ड एलिनबरा ने एक घोषणापत्र जारी किया जिसमे लार्ड आकलेंड की नीति की आलोचना की और इसके बाद उसने बडी धूम-धाम से गज़नी से सोमनाथ के फाटक को लाने की आज्ञा दी। यह फाटक आगरे लाया गया परन्तु देखने पर मालूम हुआ कि न वह सन्दल का है और न सोमनाथ का।

दोस्तमुहम्मद अफगानिस्तान लौट आया। और फिर गद्दी पर बैठ गया। वह सन् १८६३ तक राज्य करता रहा। गवर्नर-जनरल का इँगलेंड की सरकार ने सम्मान किया और अर्ल (Earl) की उपाधि दी।

इस प्रकार प्रथम अफगान-युद्ध शान्त हुआ। सेना को बडी तकलीफें उठानी पडी और बहुत-सा रुपया फजूल खर्च हो गया।

सिन्ध—इस समय सिन्ध में अमीर लोग शासन करते थे। उनमें से खैरपुर, मीरपुर और हैदराबाद के अमीर अधिक प्रसिद्ध थे। सिन्ध को अपने राज्य में मिलाने के लिए सिक्ख और अँगरेज़ दोनो लालायित थे। अँगरेज़ लोगो का स्वार्थ यह था कि अफगानो पर आक्रमण करने के लिए उन्हें एक अच्छा और सुविधाजनक आधार मिल जाता। इसके अतिरिक्त सिन्ध नदी व्यापारिक दृष्टि से भी लाभजनक थी। सन् १८३८ ई० में अमीरो के साथ एक सन्धि की गई। उन्हें अपने यहाँ एक अँगरेज़ रेज़ीडेंट रखने के लिए विवश किया गया। जब युद्ध आरम्भ हुआ तब ब्रिटिश सेना सिन्ध प्रदेश से होकर रवाना हुई। फलत अमीरो के साथ एक नई सन्धि की गई। इस सन्धि के अनुसार उन्हे ३ लाख रुपया वार्षिक कर देना पडा। उन्होने सन्धि की शर्तों का पालन किया और अफग़ान-युद्ध के समय भी किसी प्रकार का विद्रोह नही किया। इतने पर भी उन पर यह अपराध लगाया गया कि वे अँगरेज़ो के साथ द्वेष रखते हैं। सन्

१८४२ ई० में सर चार्ल्स नेपिअर (Sir Charles Napier) वहाँ भेजा गया। वह बड़ा जल्दबाज और चिड़चिडे स्वभाव का आदमी था। उसने घोषणा कर दी कि अमीरो पर जो अपराध लगाये गये है वे सत्य है और इसके बाद ईमानगढ के किले पर चढाई कर दी। क़िला ढहा दिया गया। अमीरो ने सामना किया और वे १७ फर्वरी सन् १८४३ ई० को मियानी के युद्ध मे पराजित हुए। उनके खज़ाने पर अँगरेज़ो ने कब्ज़ा कर लिया और सिन्ध का सूबा अँगरेज़ी राज्य मे मिला लिया गया। शासन-प्रबन्ध को ठीक करने के लिए नेपियर वही रुक गया।

सिन्ध के प्रति अँगरेज़ो की नीति अन्यायपूर्ण थी। उन्होने अमीरो के साथ बडी धीगा-धीगी की। अमीरो पर सन्धि तोडने का दोष लगाना गलत था। वास्तव में अपराध नेपियर का था। उसने गवर्नर-जनरल से सन्धि की वास्तविक स्थिति को छिपाया और एकदम से सख़्ती करने की सलाह दी। पार्लियामेंट ने इस नीति की निन्दा की किन्तु उसे पलटा नही; क्योंकि उससे अँगरेज़ो को राजनीतिक और व्यापारिक लाभ हुआ।

ग्वालियर—लार्ड एलिनबरा (Ellenborough) का अन्तिम कार्य ग्वालियर पर प्रभुता को दृढतापूर्वक स्थापित करना था। दौलतराव सिन्धिया की मृत्यु (१८२७ ई०) के बाद उसकी विधवा स्त्री ने एक लडके को गोद ले लिया था। वही लडका अब तक गद्दी का मालिक बना हुआ था। प्रतिद्वन्द्वी दलो के षड्यन्त्र के कारण सारा शासन नष्ट हो रहा था। सेना इतनी शक्तिशाली हो गई थी कि उसे क़ाबू में लाना मुश्किल था। रणजीतसिंह की मृत्यु के बाद पजाब की स्थिति भी अधिक चिन्ता-जनक हो गई थी। लार्ड एलिनबरा ग्वालियर जैसे बडे राज्य को गड-बड की हालत में नही छोडना चाहता था। अँगरेज़ी फौज चम्बल की ओर रवाना हुई। दो लडाइयाँ हुई। सर ह्यू गफ (Sir Hugh Gough) ने २९ दिसम्बर सन् १८४३ ई० को, महाराजपुर नामक स्थान पर, मराठो को पराजित कर दिया। इसके बाद उसने पनियार के युद्ध में विजय प्राप्त की। ग्वालियर-दर्बार ने हार मान ली। राज्य का प्रबन्ध एक

कौंसिल के हाथ में सौंप दिया गया और उसे रेजीडेंट के परामर्श के अनुसार काम करने का आदेश किया गया।

**लार्ड एलिनबरा का वापस जाना**—कम्पनी के सचालको ने लार्ड एलिनबरा की नीति को पसन्द नही किया। वह १८४४ ई० में वापस बुला लिया गया। उसके बाद लार्ड हार्डिंज (Lord Hardinge) गवर्नर-जनरल नियुक्त हुआ।

**रणजीतसिंह की मृत्यु**—सन् १८३६ ई० में रणजीतसिंह का देहान्त हो गया। मृत्यु के समय उसका राज्य उत्तर में लद्दाख और तिब्बत तक और दक्षिण की ओर खैबर से सिन्ध तक फैला हुआ था। पूर्व की ओर सिक्ख और अँगरेजी राज्य के बीच की सीमा सतलज नदी थी।

**रणजीतसिंह का चरित्र**—रणजीतसिंह एक वीर और निर्भीक सिपाही था। उसे युद्ध में बडा आनन्द आता था। वीर पुरुषो का वह सत्कार करता था और उन्हें पुरस्कार तथा भेंट देता था। सेनापति के रूप में वह अपने सिपाहियो का प्रेमपात्र बन गया था। वे उसकी आज्ञा का पालन करते थे और उसके लिए प्राण तक देने को तैयार रहते थे। वह अपना सब काम नियत समय पर करता था। स्वय एक कट्टर सिक्ख होते हुए भी उसने कभी किसी को सिक्ख-धर्म स्वीकार करने के लिए विवश नहीं किया। परन्तु उसकी कृपा प्राप्त करने के लिए बहुत-से लोग सिक्ख हो गये थे। अपने समय के अधिकाश राजाओ की तरह वह शराब पीने और ऐश-आराम का शौक़ीन था। परन्तु विलास में पडकर उसने कभी अपने काम में विघ्न नही होने दिया। यद्यपि वह स्वय लिखा-पढा न था परन्तु विद्वानो का आदर करता और शिक्षा के महत्त्व को समझता था। उसकी बुद्धि बडी तीक्ष्ण थी और नई बातो को जानने के लिए वह सदैव उत्सुक रहता था। वह इतिहास का प्रेमी था और प्रोत्साहन देकर इतिहास लिखवाता था।' वह अपने भाग्य का निर्माता था। युद्ध में निर्भीक रहता था और सभा में बडी बुद्धिमानी के साथ परामर्श देता था। रणजीतसिंह एक निरकुश सैनिक शासक था। उसने सिक्खो की शक्ति को

सगठित कर उससे पूरा लाभ उठाया और पजाव में ऐसा दृढ शासन स्थापित किया जिसकी उन्हें वडी आवश्यकता थी।

**रणजीतसिंह का शासन-प्रबन्ध**—सारा राज्य चार सूबो में विभक्त था—लाहौर, मुल्तान, काश्मीर और पेशावर। ये सूबे परगनो में बँटे हुए थे। हर एक सूबा एक नाज़िम के अधीन था। उसके नीचे कारदार होते थे। रणजीतसिंह योग्य मनुष्यो को पदो पर नियुक्त करता था और उनके कार्यों की देख-भाल वडी सावधानी से करता था। किसानो से पैदावार का तिहाई और कभी-कभी आधा भाग मालगुजारी के रूप में लिया जाता था। उनके हित का ध्यान रक्खा जाता था और अकाल के समय खज़ाने से तकावी दी जाती थी। न्याय साधारण रीति से होता था। न तो कानून के ज़ाब्ते थे और न कार्यक्रम का ही कोई निश्चित नियम था। कर्ज़ वसूल करने के लिए महाजन लोग किसानो के माल और मवेशियो को नही नीलाम करा सकते थे। कर्ज़ से सम्बन्ध रखनेवाले मुकदमो का फैसला पचो की सहायता से स्थानीय कारदार करता था। परन्तु अन्य दीवानी मुकदमो का फैसला पचायतो में होता था। फौजदारी कानून बहुत कठोर था। यदि किसी चोर का पता किसी गाँव-विशेष में लगता था तो सारा गाँव उसका ज़िम्मेदार समझा जाता था। जुरमाना और अगच्छेद ही साधारण दड थे। प्राणदड नही दिया जाता था। कभी-कभी अपराधियो का माथा खूब गरम लोहे से दाग दिया जाता था और कभी-कभी वे गधे पर विठलाकर सारे शहर में घुमाये जाते थे। महाराजा मितव्ययी था। उसने बडा भारी खज़ाना जमा कर लिया था।

रणजीतसिंह की सेना मे पैदल, घुडसवार तथा तोपखाना सम्मिलित थे। सेना को यूरोपियन युद्ध-प्रणाली की शिक्षा दी गई थी। वेन्टूरा (Ventura), एलार्ड (Allard) तथा एवीटेवाइल (Avitabile) जैसे उसके विश्वसनीय सेनापति थे। सेना में सभी जातियो और धर्मो के लोग भर्ती किये जाते थे किन्तु जाट और सिक्ख अधिक पसन्द किये जाते थे। उन्हें ज़मीन दी जाती थी और साल मे दो बार फसल कटने के समय

कुछ रुपया भी दिया जाता था। न तो वेतन का कोई निर्दिष्ट स्केल था और न तरक्की देने के लिए कोई नियम बनाया गया था। महाराजा को घोडो का शौक था और उसके अस्तबलो में सभी प्रकार के घोडे रहते थे। उसके कठोर नियन्त्रण में रह कर सिक्ख-सेना ने काफी उन्नति की और अँगरेज़ो के साथ युद्धो में अपनी वीरता का प्रमाण दिया।

**रणजीतसिंह की मृत्यु के बाद पजाब की दशा**—रणजीतसिंह की मृत्यु के बाद देश में बडी अशान्ति फैल गई। यद्यपि उसके शासन-काल में सिक्ख राज्य देखने में शक्तिशाली था परन्तु उसमें कमज़ोरी के चिह्न मौजूद थे। एक तो रणजीतसिंह का शासन निरकुश था, उसमें सब कुछ केवल एक प्रतिभाशाली व्यक्ति पर निभर था। जैसे ही उसका देहान्त हुआ, सब नेता अपनी शक्ति और अपना प्रभाव स्थापित करने के लिए आपस में लडने लगे। दूसरे, सिक्ख अशान्तिप्रिय जाति के लोग थे। शासन के नीरस और नियमित कार्यक्रम की अपेक्षा वे लडाई के लिए अधिक उपयुक्त थे। उनको अपने वश में रखना कठिन था। उनकी लडाक् शक्तियाँ निरन्तर अपने उपयुक्त काम ढूँढा करती थी। तीसरे, रणजीतसिंह के किसी लडके मे इतनी योग्यता नही थी कि वह एक बडे राज्य का शासन-प्रबन्ध करता। उसके बेटे खडगसिंह और नौनिहालसिंह साल ही भर के अन्दर मर गये। उनके उत्तराधिकारी शेरसिंह (रणजीतसिंह का पुत्र) ने अपने को ऐसे दलो के बीच में पाया जो आपस में एक दूसरे से लड रहे थे। जम्मू के राजपूत, गुलाबसिंह, ध्यानसिंह तथा सुचेतसिंह का राज्य में बडा भारी प्रभाव था। सिक्ख, विशेषकर सिन्धनवाले उनसे जलते थे और उन्हें पदच्युत करने की कोशिश करते थे। खालसा की फौज ने भी बडा उपद्रव खडा कर दिया। उसने दरबार की कुछ भी परवाह नही की और पचायतो द्वारा अपने सब मामले तय करना शुरू कर दिया। शेरसिंह, जो प्रतिद्वन्द्वी नेताओ के हाथ की कठपुतली बना हुआ था, सन् १८४३ ई० में मार डाला गया और उसकी जगह दिलीपसिंह गद्दी पर बिठाया गया।

दिलीपसिंह रणजीतसिंह का बेटा था और रानी झिन्डन के गर्भ से उत्पन्न हुआ था।

खालसा-दर्बार ने सहायता के लिए अँगरेजो से प्रार्थना की। परन्तु वे दिलीपसिंह के पक्ष का समर्थन करना नही चाहते थे, क्योकि वह रणजीतसिंह का वैध लडका नही था। पजाब की गडबडी और बढ गई और ब्रिटिश सरकार ने फौजी तैयारियाँ की जिससे सिक्ख लोग भयभीत हो गये। लाहौर मे रहनेवाले अँगरेज एजेंटो के आचरण को देखकर सिक्खो के मन में सन्देह पैदा हो गया। इसके अतिरिक्त सेना को वश में रखना रानी को कठिन मालूम हुआ और यह निश्चय किया गया कि उसे कही काम में लगाया जाय। अनेक सिक्ख सरदारो ने सोचा कि यदि अँगरेजो के साथ युद्ध करने में सिक्ख सेना नष्ट हो जायगी तो उनके लिए अपनी शक्ति स्थापित करना आसान हो जायगा। ११ दिसम्बर सन् १८४५ ई० को सिक्ख सैनिको ने सतलज को पार किया।

सिक्खो की पहली लडाई (१८४५-४६)—लार्ड हार्डिंज और प्रधान सेनापति सर ह्यू गफ (Hugh Gough) दोनो अनुभवी सैनिक थे। उन्होने सिक्खो का सामना करने के लिए फौरन एक बडी सेना इकट्ठी की और उन्हें मुदकी नामक स्थान पर पराजित किया। फीरोज-शाह के पास दूसरी लडाई हुई जिसमे दोनो तरफ के बहुत-से सिपाही मारे गये। सिक्ख लोग ऐसी वीरता से लडे कि लार्ड हार्डिंज को सर ह्यू गफ पर कुछ भरोसा न रहा और वह वापस बुला लिया गया। इसके बाद वह स्वय सेनापति बना। अलीवाल (Aliwal) के युद्ध मे उसने सिक्खो को परास्त कर दिया। सिक्खो की लगभग ५० बन्दूकें छिन गईं। सोबरांव (Sobraon) के घोर युद्ध में अँगरेजो की फिर विजय हुई। इस युद्ध में सिक्खो की पराजय का प्रधान कारण उनके नेताओ का विश्वासघात था।

लार्ड हार्डिंज ने पजाब को अँगरेजी राज्य मे नहीं मिलाया। लाहौर दरबार के साथ उसने (मार्च, सन् १८४६) एक सन्धि की जिसके अनुसार,

दिलीपसिंह महाराजा स्वीकार किया गया और हर हेनरी लारेंस (Sir Henry Lawrence) रेज़ीडेंट नियुक्त किया गया। सेना की शक्ति घटा दी गई। महाराजा से कहा गया कि बिना अँगरेज़ो की सलाह लिए किसी विदेशी को अपने यहाँ नौकर न रक्खे। सिक्खो को जलन्धर का दोआबा देना पडा और साथ ही डेढ करोड रुपया दड-रूप में देना पडा। चूँकि खज़ाने से केवल ५० हज़ार रुपया दिया जा सकता था इसलिए काश्मीर का सूबा डोगरा सर्दार गुलाबसिंह के हाथ एक करोड रुपये में बेंच डाला गया और महाराजा ने उसे स्वतन्त्र राजा स्वीकार किया।

बाद को काश्मीर में एक विद्रोह होने के कारण सन्धि में कुछ सशोधन किया गया। कहा गया कि विद्रोह को उभाडनेवाले सिक्ख लोग ही थे। आठ सरदारो की एक रीजेन्सी कौंसिल बनी और यह तय हुआ कि कौंसिल अपना सब काम रेज़ीडेंट की सलाह से करे। लाहौर में एक अँगरेज़ी सेना तैनात कर दी गई और उसका सारा खर्च खालसा दरबार को देना पडा। रानी के हाथ से सब शक्ति छीन ली गई और वह निर्वासित कर बनारस भेज दी गई।

**लार्ड हार्डिंज का शासन-प्रबन्ध**—यद्यपि पजाब के मामलो ने लार्ड हार्डिज का सारा समय ले लिया तो भी यह नही कहा जा सकता कि उसने शासन-प्रबन्ध के लिए कुछ भी नहीं किया। गगा से नहर निकालने की योजना का उसने समर्थन किया और उसके लिए रुपये की भी व्यवस्था कर दी। उसने मनुष्य-बलिदान, सती एव शिशु-हत्या को रोकने का उपाय किया। उसका ध्यान सरकार की आर्थिक दशा की ओर भी गया और उसने भारतीय सेना को घटाकर सैनिक बजट में कुछ कमी की। लार्ड हार्डिज १८४८ ई० में वापस लौट गया और उसकी जगह लार्ड डलहौज़ी (Dalhousie) गवर्नर-जनरल नियुक्त हुआ। नियुक्ति के समय उसकी अवस्था केवल ३६ वर्ष की थी।

**सिक्खों की दूसरी लड़ाई (१८४८-४९)**—लाहौर दरबार के साथ जो सन्धि हुई थी उससे पंजाब में शान्ति स्थापित नही हुई थी।

सिक्खो का राष्ट्रीय दल अँगरेज़ो की शक्ति को अविश्वास की दृष्टि से देखता था। ऊँचे-ऊँचे पदो से अलग रक्खे जाने के कारण कुलीन वशो के लोग रुष्ट हो गये थे। अँगरेज़ रेज़ीडेंट (Sir Frederick Currie) ने ऐसी नीति से काम लिया था जिसके कारण सिक्खो का विश्वास जाता रहा । मुलतान में शीघ्र ही उपद्रव आरम्भ हो गया और वहाँ के हाकिम मूलराज ने खुल्लमखुल्ला विद्रोह किया। लाहौर दरवार ने उससे, जो रुपया उसके जिम्मे था, उसे अदा कर देने के लिए कहा । परन्तु इसकी उसने कुछ भी परवाह न की और अपने पद से इस्तीफा देने के लिए तैयार हो गया। दरवार ने खानसिंह नामक सिक्ख सरदार को भेजा और उसकी सहायता के लिए दो अँगरेज़ अफसरो को भेज दिया। मूलराज इस पर बहुत क्रुद्ध हुआ और उसकी उत्तेजना से दोनो अँगरेज़ अफसर वहाँ पहुँचने के थोडी ही देर बाद मार डाले गये। लार्ड डलहौज़ी ने इस पर कुछ कार्रवाई करने की जल्दी नही की किन्तु हर्बर्ट एडवर्ड (Herbert Edward) नामक एक युवक अफसर ने आनन-फानन में एक फौज इकट्ठा की और मुलतान पर आक्रमण कर दिया। सारे देश में विद्रोह फैल गया और ब्रिटिश सरकार को रानी झिन्डन पर बडा क्रोध आया। उस पर दोष लगाया गया कि मुलतान के मामले में उसकी भी साज़िश थी। वह बनारस भेज दी गई। इससे सिक्खो के जातीय अभिमान पर बडा आघात पहुँचा और उनके नेताओ ने अँगरेज़ो के विरुद्ध, धर्म के नाम पर, युद्ध छेड दिया। पेशावर का ज़िला देकर उन्होने अफगानिस्तान के अमीर दोस्तमुहम्मद को अपने पक्ष में कर लिया।

गवर्नर-जनरल ने इस चनौती को तुरन्त स्वीकार कर लिया। लाड गफ ने (नवम्बर १८४८ ई०) रावी नदी को पार किया और चेनाब के तट पर, रामनगर स्थान पर, युद्ध किया। इसमें किसी पक्ष की हार-जीत नही हुई। सादुल्लापुर में सिक्खो की भारी हानि हुई किन्तु चिलियाँवाला की लडाई में, जो १३ जनवरी १८४९ ई० को हुई, बडा खून बहा। उसमें सिक्खो ने अँगरेज़ो को एक प्रकार से पराजित कर दिया। लगभग तीन

चिलियानवाला
का युद्ध १८४९
चिलियानवाला
सिक्ख सेना
पैदल
घुड़सवार
तोप खाना
अंगरेजी सेना
पैदल
घुड़सवार
तोपखाना
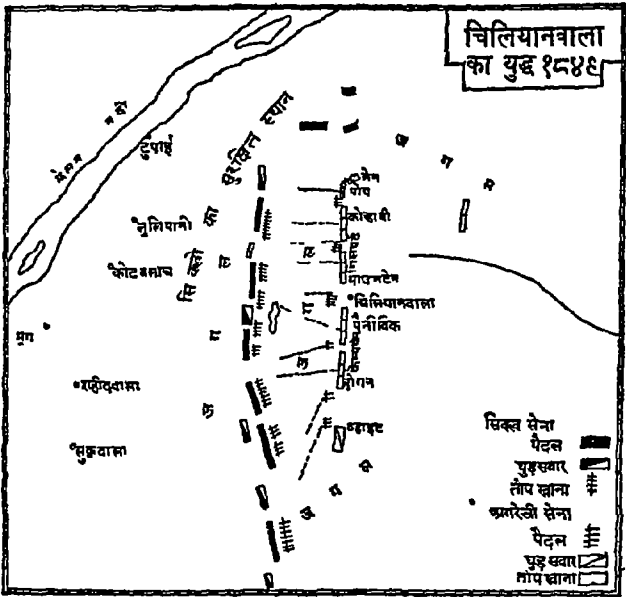
घटे के अन्दर सैकडो सिपाही और अफसर मार डाले गये। किन्तु सिक्ख लोग अपनी विजय पर अधिक समय तक गर्व नही कर सके। अँगरेजो ने २२ फरवरी को उन्हें गुजरात की लड़ाई में पराजित कर दिया। ६ महीने के घेरे के बाद मुलतान पर अँगरेजो ने कब्जा कर लिया और मूलराज ने आत्म-समर्पण कर दिया। लार्ड डलहौजी ने रणजीतसिंह के बेटे दिलीपसिंह के साथ कठोर व्यवहार किया। वह गद्दी से उतार दिया गया और उससे एक पत्र पर हस्ताक्षर करा लिये गये जिसमें यह लिखा था कि वह और उसके वारिस पजाब के राज्य पर कोई दावा नही करेंगे। उसे ५० हज़ार पौंड सालाना की पेंशन दी गई और उसे 'राजकुमार' की उपाधि रखने की आज्ञा दी गई। बाद को वह इँगलेंड चला गया। वहाँ अँगरेजी रईसो की तरह रहने लगा और उसने ईसाई मत ग्रहण कर लिया। मूलराज पर कत्ल का मुकदमा चलाया गया और उसे फाँसी की सजा दी गई। पजाब अँगरेजी राज्य में मिला लिया गया।

पजाब का शासन-प्रबन्ध—सर हेनरी लारेंस (Sir Henry Lawrence) के विरोध करने पर भी पजाब अँगरेजी राज्य का एक सूबा बना दिया गया। लारेंस ने इस बात पर जोर दिया कि रणजीतसिंह के उत्तराधिकारी के साथ अच्छा बर्ताव करना चाहिए। परन्तु लार्ड डलहौजी का कहना था कि अँगरेजी राज्य की रक्षा के लिए सिक्खो को दबाना आवश्यक है। अपने स्वाभाविक उत्साह के साथ वह शासन का सगठन करने में लग गया। उसने एक बोर्ड कायम किया जिसमें तीन बडे अफसर थे—सर हेनरी लारेंस, उसका भाई जान लारेंस तथा मैंसल (Mansel)। ये तीनो कम्पनी की नौकरी में थे। सिक्खो के हथियार छीन लिये गये और उनके सरदारो से जमीन तथा जागीरें भी ले ली गईं। दीवानी और फौजदारी अदालतो का सुधार किया गया। अगच्छेद करने तथा शिकजा आदि में कसने की रीति उठा दी गई। जमीन की पडताल की गई और किसानो के हक बडी सावधानी के साथ दर्ज कर लिये गये। जमीन का लगान एक न्याय-सगत आधार पर (उपज का चौथा भाग)

निश्चित कर दिया गया। आधे दर्जन करो के अलावा और सब कर उठा दिये गये। नहरें बनवाई गईं और जगलो का भी प्रबन्ध किया गया। स्कूल खोले गये और सिक्खो में सामाजिक सुधार करने का प्रयत्न किया गया। अमृतसर में एक सभा की गई जिसमे सिक्खो, हिन्दुओं तथा मुसलमानो ने सगाई तथा विवाह का खर्च घटाने और शिशु-हत्या की भीषण प्रथा को बन्द करने का सकल्प किया। गुलामी की प्रथा बन्द कर दी गई और ठगों और डाकुओं का दमन किया गया।

सर हेनरी लारेंस ने गवर्नर-जनरल की नीति का समर्थन नही किया इसलिए वह उसका कृपापात्र नही रहा। सन् १८५३ ई० में बोर्ड तोड दिया गया और पजाब का सूबा जान लारेंस के सुपुर्द किया गया और वह उसका पहला चीफ कमिश्नर नियुक्त हुआ।

**ब्रह्मा की दूसरी लडाई (सन् १८५२ ई०)**—ब्रह्मा की दूसरी लडाई उन सौदागरो के हितो की रक्षा के लिए की गई जो १८२६ ई० में यान्डब की सन्धि के बाद ब्रह्मा के दक्षिणी समुद्र-तट पर बस गये थे। रगून के हाकिम ने उनको बहुत तग किया और उनके व्यापार मे रुकावट डाली। तग आकर उन्होने भारत-सरकार से क्षतिपूर्ति कराने के लिए प्रार्थना की। गवर्नर-जनरल ने फौरन ही व्यापारियो की शिकायत दूर करने और एक लाख पौड बतौर हर्जे के देने को कहा। परन्तु ब्रह्मा दरबार से कुछ उत्तर नही मिला। युद्ध आरम्भ हो गया। लार्ड डलहौजी ने स्वय हर एक बात की निगरानी की और सेना की सुविधा और स्वास्थ्य के लिए पहले से ही सब प्रबन्ध कर दिया। मर्तबान पर अँगरेजो ने कब्जा कर लिया और रगून के मन्दिर पर चढाई करके उसको भी जीत लिया। प्रोम पर भी अँगरेजो का अधिकार हो गया और उसे जीत कर लोअर ब्रह्मा अँगरेजी राज्य मे मिला लिया गया (२० दिसम्बर सन् १८५२ ई०)। इसके बाद युद्ध का अन्त हो गया। बगाल की खाडी का सम्पूर्ण समुद्र-तट केप कमोरिन से लेकर मलाया प्रायद्वीप तक अँगरेजो के अधिकार मे आ गया।

लार्ड डलहौजी ने अपनी स्वाभाविक शक्ति और उत्साह के साथ

नये प्रान्त के शासन की व्यवस्था की। योग्य अफसर नियुक्त किये गये और उन्होने जुर्म करनेवालो को कडी सजा दी। ब्रह्मा के लोगो को ईमानदारी और परिश्रम के साथ जीविका कमाना सिखाया गया। धन-संम्पत्ति की वृद्धि हुई, व्यापार उन्नत हुआ और रगून एक समृद्धशाली बन्दरगाह बन गया।

**लार्ड डलहौजी की सीमाप्रान्तीय नीति के परिणाम**—लार्ड डलहौजी की सीमाप्रान्तीय नीति को अच्छी सफलता प्राप्त हुई। पजाब को अँगरेजी राज्य में मिला लेने से यद्यपि सिक्खो के मनोभावो पर आघात पहुँचा किन्तु बाह्य आक्रमणो से ब्रिटिश राज्य की रक्षा का प्रबन्ध हो गया। शिकम के पहाडी देश को जीत लेने से अँगरेजो के अधिकार में चाय का एक विस्तृत प्रदेश आ गया। उसकी उन्नति की बडी सुविधाएँ थी। अन्त में ब्रिटिश ब्रह्मा के बन जाने से पूर्वी सीमा सुरक्षित हो गई और चावल तथा सागौन की लकडी का व्यापार अँगरेजो के हाथ आ गया।

सक्षिप्त सनृवार विवरण

| | |
|---|---|
| हिरात का घेरा | १८३७ ई० |
| रणजीतसिंह के साथ सन्धि | १८३८ ,, |
| अँगरेजो का कन्दहार और गजनी को लेना | १८३९ ,, |
| रणजीतसिंह की मृत्यु | १८३९ ,, |
| काबुल से अँगरेजी सेना का लौटना | १८४२ ,, |
| मियानी की लडाई | १८४३ ,, |
| महाराजपुर और पनियार की लडाइयाँ | १८४३ ,, |
| एलिनबरा का वापस बुलाया जाना | १८४४ ,, |
| सिक्खो की पहली लडाई | १८४५-४६ ,, |
| सिक्खो के साथ सन्धि | १८४६ ,, |
| चिलियाँवाला की लडाई | १८४९ ,, |
| पजाब का अँगरेजी राज्य में मिलना | १८४९ ,, |
| लोअर ब्रह्मा का अँगरेजी राज्य मे मिलाया जाना | १८५२ ,, |

# अध्याय ३५

## लार्ड डलहौज़ी और नई शासन-व्यवस्था

### (१८४८-५६ ई० तक)

**लार्ड डलहौज़ी और देशी रियासतें**—लार्ड डलहौज़ी एक महान् साम्राज्यवादी था। उसने 'शान्तिमय' आक्रमणो के द्वारा ब्रिटिश राज्य का विस्तार बढाने की चेष्टा की। निर्बल राज्यो के साथ उसे कोई सहानु-भूति नही थी और उनके अस्तित्व को कायम रहने देने में उसे कोई लाभ नही दिखाई देता था। उसका दृढ विश्वास था कि ब्रिटिश शासन लोगो के लिए लाभकारी है, चाहे वे उसे पसन्द करें या न करें। उसने देशी राज्यो को तीन श्रेणियो में विभक्त किया।

(१) स्वतन्त्र राज्य, जिनमें भारत-सरकार राजा की मृत्यु के बाद उपयक्त उत्तराधिकारी को गद्दी पर बिठाती थी।

(२) व राज्य जिन्होंने मुग़ल-सम्राट् अथवा पशवा के स्थान में अंगरेज़ो की अधीनता स्वीकार कर ली थी।

(३) अधीनस्थ राज्य, जिनको ब्रिटिश सरकार ने बनाया था अथवा विजय-द्वारा प्राप्त किया था और जो उसके अधीन थे।

पहले दो प्रकार की रियासतो को तो उसन गोद लेने का अधिकार दे दिया परन्तु उसकी राय थी कि तीसरी श्रेणी की रियासतो को यह अधिकार न देना चाहिए। उसने अपना नया सिद्धान्त, जिसे (Doctrine of lapse) कहते है, इन राज्यो में लागू किया। इसका आशय यह था कि यदि किसी राजा के पुत्र न हो तो उसका राज्य अंग-रेज़ी राज्य में मिला लिया जायगा। शास्त्रो के लेखानुसार सब निस्सन्तान हिन्दुओ को गोद लेने का अधिकार है परन्तु लार्ड डलहौज़ी ने राजा की व्यक्तिगत सम्पत्ति और उसके राज्य में भेद किया और यह नियम बना

दिया कि किसी राजा का राज्य उसके गोद लिये बेटे को नही मिल सकता जब तक कि वह ब्रिटिश सरकार से अनुमति न प्राप्त कर ले। वह ऐसी प्रथा को जारी नही रखना चाहता था जिससे देश में अशान्ति फैले और शासन में गडबडी पैदा हो। कम्पनी के कुछ अफसरो ने इस सिद्धान्त का तीन कारणो से विरोध किया। पहला कारण यह था कि अधीन राज्य उपयोगी थे, क्योकि उनमें अच्छे घराने के लोगो को नौकरियाँ मिल जाती थी। दूसरे ऐसी नीति से स्वाधीन देशी नरेशो को भी भय होगा और वे खयाल करेंगे कि हमारा राज्य भी कही इसी प्रकार न हडप लिया जाय। तीसरे भारतवासी अँगरेजी राज्य की अपेक्षा देशी राज्य को अधिक पसन्द करते थे और सरकार की नीति से असन्तुष्ट थे। लार्ड डलहौजी ने इस राय की कुछ भी परवाह न की और अधीन राज्यो में अपने नये सिद्धान्त को लागू किया। भिन्न-भिन्न प्रकार के राज्यो के बीच रेखा खीचना कठिन था। करौली के मामले में इँगलैंड की सरकार ने गवर्नर-जनरल की आज्ञा को रद्द कर दिया। इन सब बातो से देशी राजाओ को खयाल हुआ कि गवर्नर-जनरल उनके राज्यो का अन्त करना चाहता है।

सन् १८४८ ई० में अप्पा साहब की मृत्यु के बाद सतारा का राज्य अँगरेजी राज्य में मिला लिया गया। झाँसी की रानी ने जो लडका गोद लिया था उसे १८५३ ई० में गवर्नमेंट ने अस्वीकार कर दिया। एक साल बाद नागपुर का राज्य भी अँगरेजो के हाथ में चला गया। वहाँ का अन्तिम राजा बिना किसी सन्तान के मर गया। उसकी विधवा रानी ने एक लडका गोद लिया परन्तु ब्रिटिश सरकार ने उसे स्वीकार न किया। राजा के जवाहिरात, माल-असबाब नीलाम कर दिये गये जिससे भारत के लोगों और राजाओ को बडी ग्लानि हुई। यह एक ऐसी लूट थी जिसके लिए हम गवर्नर-जनरल की निन्दा किये बिना नही रह सकते।

जैतपुर और सम्भलपुर (१८४९ ई०), बाघट (१८५० ई०) तथा उदयपुर (१८५२ ई०) के राज्य भी इसी प्रकार अँगरेजी राज्य मे मिला लिये गये। अन्तिम दो राज्यो के सम्बन्ध में लार्ड डलहौजी का फैसला

उसके उत्तराधिकारी द्वारा रद्द कर दिया गया। डाइरेक्टरो ने करौली के राज्य को स्वाधीन ठहराया और वह अँगरेज़ी राज्य में मिलाये जाने से बच गया।

डलहौज़ी का नया सिद्धान्त उपाधियो तथा पदो पर भी लगाया गया। कर्नाटक के नवाब तथा तजौर के राजा की उपाधियाँ छीन ली गईं। उसने यह भी प्रस्ताव किया कि मुग़ल-सम्राट् से उसकी उपाधि ले ली जाय किन्तु डाइरेक्टरो ने उसे अस्वीकृत कर दिया। सन् १८५३ ई० में पेशवा बाजीराव द्वितीय की मृत्यु के बाद उसकी ८ लाख की पेंशन बन्द कर दी गई और उसका दत्तक पुत्र धोधूपन्त, जो पीछे से नाना साहब के नाम से प्रसिद्ध हुआ, स्वीकार नही किया गया। यद्यपि सरकार ने उसे बिठूर की जागीर माफी में दे दी तो भी यह कहना पड़ेगा कि गवर्नर-जनरल का कार्य कठोर तथा अन्याय-पूर्ण था।

अवध का अँगरेज़ी राज्य में मिलाया जाना (१८५६ ई०)—अवध के राज्य में डलहौज़ी के सिद्धान्त का प्रयोग नही किया गया। शासन का प्रबन्ध अच्छा न होने के कारण वह अँगरेज़ी राज्य मे मिलाया गया। अवध तथा अँगरेज़ी सरकार के बीच जो सम्बन्ध था उसका वर्णन यहाँ पर सक्षेप में कर देना उचित है। सन् १८०१ ई० की सन्धि द्वारा ब्रिटिश सरकार ने अवध के नवाब वज़ीर के राज्य की रक्षा करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली थी। इसके बदले में नवाब ने वचन दिया था कि मैं अपने राज्य का शासन ठीक करूँगा और सब काम ईस्ट इडिया कम्पनी की सलाह से करूँगा। इस सहायक सन्धि में दोहरे राज्य के सभी दोष मौजूद थे। बाह्य आक्रमणो तथा आन्तरिक विद्रोह से सुरक्षित हो जाने के कारण अवध के शासको ने शासन की ओर कुछ भी ध्यान नही दिया। उधर अँगरेज़ो ने भी प्रजा की रक्षा का कुछ भी उपाय न किया। ब्रिटिश सरकार ने नवाब को ताकीद की और शासन को सुधारने के लिए कहा। सन १८३१ ई० में लार्ड विलियम बेंटिक ने कर्नाटक और तजौर की हालत का स्मरण दिलाया और कहा कि यदि शासन में सुधार न किया गया तो

नवाब कम्पनी का पेंशनर बना दिया जायगा। लार्ड आकलैंड ने नवाब के साथ १८३७ ई० मे एक नई सन्धि की। इस सन्धि की शर्त यह थी कि यदि शासन मे सुधार नही हुआ तो ब्रिटिश सरकार जब तक आवश्यक समझेगी कुशासित प्रदेशो का प्रबन्ध करने के लिए अपने अफसर नियुक्त करेगी। कम्पनी के सचालको (Court of Directors) ने इस सन्धि को मजूर नही किया। परन्तु नवाब से यह बात कभी नही कही गई। वह इसी खयाल में रहा कि सन्धि अभी कायम है और ब्रिटिश सरकार बहुत करेगी तो कुछ समय के लिए शासन-प्रबन्ध को अपने हाथो में ले लेगी। सन् १८४७ ई० में लार्ड हार्डिज ने अवध के नवाब के पास जो पत्र भेजे उनमे १८३७ ई० की सन्धि का इस प्रकार उल्लेख किया कि मानो वह अभी तक जारी है। शासन के दोषो को दूर करने के लिए दो वर्ष का समय दिया गया किन्तु कुछ भी सुधार न हो सका। लखनऊ के रेज़ीडेंट कर्नल स्लीमैन (Colonel Sleeman) से सन् १८५१ ई० में अवध के बारे में एक रिपोर्ट तैयार करने के लिए कहा गया। अपनी रिपोर्ट में उसने ताल्लुकदारो की लूट-मार, फौज की कमज़ोरी और किसानो की दुरवस्था का वर्णन किया। उसने यह भी लिखा कि राजा भोग-विलास में डूबा रहता है और गवैयो, नर्तको, मसखरो तथा हिजडो के साथ अपना समय नष्ट करता है। १८५४ ई० मे लार्ड डलहौज़ी कुछ कार्रवाई करने के लिए बाध्य हुआ। उसने नये रेज़ीडेंट कर्नल आउट्रम (Outram) से अवध की दशा के सम्बन्ध में एक रिपोर्ट लिखने को कहा। आउट्रम ने भी वही विचार प्रकट किये जो स्लीमैन ने किये थे। सन् १८५५ ई० मे गवर्नर-जनरल ने स्वय अवध की दशा की जाँच की और एक रिपोर्ट तैयार की। उसने १८३७ ई० की सन्धि को रद्द कर दिया और अवध को अँगरेज़ी राज्य में मिला लेने का निश्चय किया। उसने इस बात पर कुछ भी ध्यान न दिया कि अवध के नवाब अँगरेज़ो के सच्चे मित्र रह चुके थे। उसने आउट्रम को लिखा कि वह अवध को अँगरेज़ी राज्य में मिला लेनेवाली सन्धि पर नवाब से हस्ताक्षर कराये। वाजिदअली

शाह ने, जो इस समय नवाब था, ऐसी सन्धि को अस्वीकार किया जिसके द्वारा उसका राज्य छीन लिया जाता और वह १२ लाख रुपया सालाना पर ईस्ट इंडिया कम्पनी का पेंशनर मात्र रह जाता। गवर्नर-जनरल के हुक्म से घोषणा कर दी गई कि अवध का राज्य अँगरेज़ी राज्य में मिला लिया गया। एक यूरोपीय लेखक का कथन है कि यद्यपि नवाब के हाकिम खराब थे परन्तु यदि अवध के लोगो से पूछा जाता कि वे नवाबी और नये शासन में से किसको पसन्द करेंगे तो वे नवाबी को अधिक पसन्द करते।

अवध को अँगरेज़ी राज्य में मिलाना अनुचित कार्य था। यह कार्य सन १८३७ ई० की सन्धि के विरुद्ध था जो नवाब के अनुसार उस समय भी क़ायम थी। लार्ड डलहौज़ी का सन्धि को रद्द समझना ठीक न था जब कि उसके पहले के गवर्नर-जनरल उसे मान चुके थे। नवाब और उसके पूर्वज अँगरेज़ो के सच्चे मित्र रह चुके थे। इस दृष्टि से उसके साथ जो व्यवहार किया गया उसका समर्थन करना कठिन है। इस कार्य से भारतीय राजाओ के चित्त में एक बडी शका उत्पन्न हो गई। वे डर गये कि कही हमारे राज्य और हमारी उपाधियाँ भी न छिन जायें। अवध के लोग डलहौज़ी की इस नीति से असन्तुष्ट हुए और जब साल भर के बाद ग़दर आरम्भ हुआ तो उन्होने अँगरेज़ो के विरुद्ध शस्त्र उठाकर यह दिखा दिया कि वे अवध को अँगरेज़ी राज्य में मिला लेने की नीति के विरुद्ध थे।

**कम्पनी का नया आज्ञापत्र (१८५३ ई०)**—सन् १८५३ ई० में कम्पनी को फिर एक नया आज्ञापत्र मिला। उसके विधान और शासन में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये गये। कम्पनी क़ायम रही परन्तु व्यापार करने का अधिकार उससे छीन लिया गया। डाइरेक्टरो की सख्या २४ से घटा कर १८ कर दी गई। इनमें से ६ को नामज़द करने का अधिकार ब्रिटिश सम्राट् को दिया गया। उनके अनेक अधिकार 'बोर्ड आफ़ कन्ट्रोल' को दे दिये गये। डाइरेक्टर हमेशा अपने रिश्तेदारो को बडे ओहदो पर नियुक्त करते थे परन्तु अब इडियन सिविल सर्विस के लिए

एक परीक्षा का नियम कर दिया गया। सन् १८३३ ई० में जो ला मेम्बर (कानून का सदस्य) नियुक्त किया गया था वह गवर्नर-जनरल की कौन्सिल का एक सदस्य बना दिया गया। लेजिस्लेटिव कौंसिल के मेम्बरो की सख्या बढा दी गई। गवर्नर-जनरल बगाल की गवर्नरी के काम से मुक्त कर दिया गया और उस प्रान्त के लिए एक अलग लेफ्टि-नेंट गवर्नर नियुक्त किया गया।

**शासन-सुधार**—लार्ड डलहौजी ने शासन में अनेक सुधार किये। जो सूबे ब्रिटिश राज्य में मिला लिये गये थे वे नान-रेग्यूलेशन प्रान्त कह-लाये। उनका शासन पुराने सूबो से विभिन्न था। स्थानीय लोगो को बडी स्वतन्त्रता दी गई। लार्ड डलहौजी ने सेना का भी सुधार किया। सैनिको के आराम और स्वास्थ्य-रक्षा का काफी उपाय किया गया। उसने सिक्खो और गोरखो की एक पल्टन बनाई और यूरोपीय सेना को बढाने की सलाह दी। उसने अर्थ-विभाग का प्रवन्ध बडी सावधानी के साथ किया। जहाँ पहले धन की कमी पडती थी वहाँ अब कुछ बचत होने लगी। सार्वजनिक कार्यों के लिए उसने रुपया उधार लेने की रीति चलाई। उसके शासन-काल मे भारत की कुल आय २४५ लाख से बढकर ३०७½ लाख हो गई। साथ ही साथ शासन को दृढ बनाने का काम भी होता रहा। लार्ड डलहौजी ने भारत के विभिन्न भागो को लोहे की जजीरो से बाँध दिया। उसने पहली रेल चलाई और तार लगवाया। इन सुधारो से देश खूब सुरक्षित हो गया और व्यापार की वृद्धि और उन्नति में प्रोत्साहन मिला। उसने एक सार्वजनिक कार्य-विभाग (Public Works Department) स्थापित किया और आध आने में दूर-दूर तक पत्र भेजवाने की व्यवस्था की जो भारत के लोगो के लिए बहुत हितकर सिद्ध हुई। उसने देशी भाषा की शिक्षा को प्रोत्साहन दिया और यह सिफारिश की कि टामसन (Mr. Thomason) की प्रणाली सारे पश्चिमोत्तर-प्रान्त में प्रचरित की जाय। सन् १८५४ ई० में सर चार्ल्स वुड (Sir Charles Wood) ने, जो बाद को लार्ड हैलीफैक्स

(Lord Halifax) के नाम से प्रसिद्ध हुआ, अपना वह प्रसिद्ध मसविदा लिखा जिसने आधुनिक देशी शिक्षा की नीव डाली।

**लार्ड डलहौज़ी का कार्य**—लार्ड डलहौज़ी ने जो नई शक्तियाँ उत्पन्न की उनसे भारत की दशा बदल गई। रेल और तार ने भिन्न-भिन्न जातियो और प्रान्तो को एक कर दिया। परन्तु उसकी नीति सर्वथा दोष-रहित न थी। उसने भारतीय राजाओ के विचारो और रीति-रवाजो की कुछ भी पर्वाह नही की। उसके अनेक मसविदे इस बात को प्रकट करते है कि जहाँ कही भी हो सकता था, वह भारतीय शासन के स्थान में ब्रिटिश शासन की स्थापना करना चाहता था। उसने अपने अधीनस्थ कर्मचारियो के परामर्श पर कुछ ध्यान नही दिया। वह समझता था कि वह हर एक बात को स्वय कर सकता है। उसके चले जाने के बाद इस नीति का बुरा परिणाम हुआ। इस बात को मानना पडेगा कि वह बडा अध्यवसायी, परिश्रमी तथा कर्तव्य-परायण शासक था। अधिक परिश्रम के कारण उसका स्वास्थ्य बिगड गया और, मार्च सन् १८५६ ई० में, जिस समय उसने घर की यात्रा के लिए प्रस्थान किया, वह बिल्कुल अस्वस्थ और दुर्बल हो गया था। वहाँ पहुँचने के चार वर्ष बाद उसकी मृत्यु हो गई और वह अपने वश के प्राचीन कब्रस्तान में, अपनी स्त्री की कब्र के पास, दफन कर दिया गया।

संक्षिप्त सनवार विवरण

| घटना | सन् |
|---|---|
| सतारा का अँगरेज़ी राज्य में मिलना | १८४८ ई० |
| जैतपुर सम्भलपुर राज्यो का अँगरेज़ी राज्य में मिलना | १८४९ ,, |
| बाघट का अँगरेज़ी राज्य में मिलना | १८५० ,, |
| उदयपुर का अँगरेज़ी राज्य में मिलना | १८५२ ,, |
| नाना साहब की पेंशन का बन्द होना | १८५३ ,, |
| कम्पनी का नया आज्ञापत्र | १८५३ ,, |
| सर चार्ल्स वुड की रिपोर्ट | १८५४ ,, |
| अवध का अँगरेज़ी राज्य में मिलना | १८५६ ,, |
| लार्ड डलहौज़ी का वापस जाना | १८५६ ,, |

# अध्याय ३६

## सन् १८५७ ई० का विद्रोह और कम्पनी का अन्त

लार्ड कैनिंग—लार्ड डलहौजी के बाद फरवरी १८५६ ई० में लार्ड कैनिंग (Lord Canning) भारत का गवर्नर-जनरल नियुक्त हुआ। ईस्ट इण्डिया कम्पनी का वह अन्तिम गवर्नर-जनरल था। उसके शासन-काल से हमारे देश के इतिहास में एक नया युग प्रारम्भ होता है। वह एक योग्य तथा ईमानदार शासक था। आक्सफोर्ड में अपनी विद्वत्ता के कारण उसने ख्याति प्राप्त की थी और पोस्ट-मास्टर-जनरल के पद पर काम करके उसने शासन का अनुभव प्राप्त कर लिया था। परन्तु वह ऐसे समय भारत में आया जब सारे देश के लोगो मे असन्तोष का भाव व्याप्त हो रहा था।
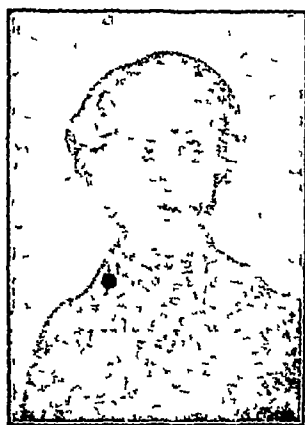
लार्ड कैनिङ्ग

डाइरेक्टरो की सभा ने विदाई के समय, उसे जो दावत दी थी, उसके अवसर पर उसने ये शब्द कहे थे—

"मै चाहता हूँ कि मेरा शासन-(कार्य) काल शान्तिपूर्ण रहे, किन्तु मैं यह नही भूल सकता कि भारत के शान्त गगन में एक छोटा-सा बादल

जो मनुष्य के हाथ से बड़ा न हो—उठ सकता है और धीरे-धीरे बड़ा होकर अन्त मे फटकर हमे नष्ट-भ्रष्ट कर सकता है।"

यहाँ आने के बाद तुरन्त ही उसके ये शब्द ठीक सिद्ध हुए। लार्ड कैनिंग को एक ऐसे विप्लव का सामना करना पड़ा जो अँगरजी राज्य को नष्ट कर सकता था। यह १८५७ ई० का विद्रोह था जो उत्तरी भारत में गदर के नाम से प्रसिद्ध है।

**विद्रोह के कारण**—१८५७ ई० के विद्रोह के मूल-कारण के सम्बन्ध में विद्वानो में मत-भेद ह । कुछ विद्वानो का कथन है कि वह केवल एक सैनिक विद्रोह था। दूसर विद्वानो का मत है कि यह ब्रिटिश शक्ति को नष्ट करने के उद्देश्य से किये गये षड्यन्त्र का परिणाम था और चर्बी से चिकने किये गये कारतूसो ने उसे अत्यत भयकर बना दिया। ठीक मत यह है कि विद्रोह प्रारम्भ मे सैनिक था किन्तु डलहौजी की नीति के परिणाम-स्वरूप देश में जो असन्तोष फैला हुआ था उससे उसे बडी उत्तेजना मिली। विद्रोह के कारण वास्तव में तीन प्रकार के थे—राजनीतिक, सामाजिक तथा सैनिक।

**राजनीतिक**—देशी राज्यो को अँगरेजी राज्य में मिलाने की जिस नीति का अवलम्बन लार्ड डलहौजी ने किया, उससे भारत में बड़ी अशान्ति फैल गई थी। अवध के नवाब ने, बिना कुछ विरोध किये, उसका निर्णय स्वीकार कर लिया था परन्तु उसके राज्य में बडा असन्तोष फैल गया था। *यद्यपि हमारे पास इस बात का कोई प्रमाण नही है कि नवाब* ने, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से, विद्रोह को कोई सहायता पहुँचाई, परन्तु यह स्पष्ट है कि जो ताल्लकदार अवध के शक्तिहीन राज्य के अन्दर समृद्ध हो गये थे वे लार्ड डलहौजी की नीति से बहुत असन्तुष्ट थे। नवाब की सेना बर्खास्त कर दी गई थी और सैनिको से उनकी जीविका छीन ली गई थी। मुग़ल-सम्राट यद्यपि ईस्ट इण्डिया कम्पनी का एक पेंशनर था तो भी वह अभी दिल्ली मे रहता और दरबार करता था। उसके उत्तराधिकारी को ब्रिटिश सरकार इसी शत पर मान सकती थी

कि वह बादशाह की उपाधि और दिल्ली में रहना छोड दे। सतारा, नागपुर और झाँसी को अँगरेजी राज्य में मिला लेने से वहाँ के शासको के हृदय को गहरी चोट पहुँची थी। मराठा लोग अब भी रुष्ट और असन्तुष्ट थे। दक्षिण में इनाम कमीशन ने जमीदारो की उपाधियो तथा जागीरो की जाँच-पडताल की जिससे लोगो मे बडा असन्तोष पैदा हो गया। अन्तिम पेशवा का उत्तराधिकारी नाना साहब अँगरेजो का घोर शत्रु था। उसके गुमाश्तो ने उत्तरी भारत मे खूब षड्यन्त्र किया और जनता को अँगरेजी सरकार के विरुद्ध भडकाने की चेष्टा की।

सामाजिक—जमीन के बन्दोबस्त से पुराने रईसो को बडी हानि पहुँची थी। वे ऊँचे-ऊँचे पदो से अलग कर दिये गये थे और उनके स्थान पर यूरोपीय अफसर नियुक्त हो गये थे। लार्ड डलहौजी ने जो परिवर्तन किये, उनसे हिन्दुओ के रीति-रवाजो तथा धार्मिक विचारो को बडा धक्का लगा। लोग समझते थे कि रेल और तार शैतान के काम है और जाति एव धर्म को भ्रष्ट करने के साधन है। सार्वजनिक शिक्षा को लोग भारतवासियो को ईसाई बनाने का साधन समझते थे। इस भय एव शका का कारण था पादरियो और ऐसे सरकारी अफसरो का धार्मिक जोश, जिन्होने हिन्दुओ के सामाजिक रीति-रवाजो की निन्दा की और उन्हें बाइबिल के सत्य को मानने की सलाह दी। सती, शिशु-हत्या और बहुविवाह की प्रथा को रोकने तथा विधवाओ के पुनर्विवाह को कानूनी रूप देने के जो प्रयत्न किये गये उनके कारण ये शकाएँ और भी दृढ हो गईं। प्राचीन ढग के विचारो का पाश्चात्य विज्ञान के साथ सम्पर्क होने से यह भय पैदा हुआ कि कही हमारा सामाजिक सगठन नष्ट न हो जाय। सारे देश में अशान्ति की एक लहर दौड गई। मुसलमान भी इतने ही असन्तुष्ट थे। हाथ से राजनीतिक शक्ति निकल जाने से उन्हें बडा दु ख हुआ और दिल्ली तथा अवध के राजवशो के पतन से उनका क्रोध और भी बढ गया। कट्टर मुसलमानो ने लोगो को भडकाया और अन्याय का बदला लेने के लिए प्रोत्साहित किया।

सैनिक—भारतीय तथा यूरोपीय सेनाओ में बडी असमानता थी। अफसरो का बर्ताव अपने मातहतो के साथ अच्छा न था। नये अँगरेज अफ़सर अपने मातहत बूढ़े सूबेदार की कुछ भी पर्वाह नही करते थे। बगाल की सेना, जिसमे अधिकाश ब्राह्मण और राजपूत थे और जिसे अपनी वीरता पर गर्व था, अपने लिए विशेष अधिकार चाहती थी। सिपाहियो ने नियम-विरुद्ध आचरण भी किया परन्तु उन्हें इसके लिए कठोर दड दे दिया गया था। सन् १८५६ ई० में एक क़ानून पास हुआ जिसमें जात-पाँत के विचारो पर कुछ ध्यान न दिया गया और सैनिको को जहाँ कहीं आवश्यकता पडे, जाने के लिए बाध्य होना पडा। यद्यपि यह नया कायदा भविष्य मे लागू होनेवाला था परन्तु सैनिको को इस बात से बडा दु ख पहुँचा कि उनके लडके सेना की नौकरी से अलग कर दिये जायँगे और उनकी सतान अपने हक से वचित की जायगी। इन कारणो के अति-रिक्त एक कारण और था। फौजी नौकरी से भारतीयों को अलग कर देने से सेना मे बडा असन्तोष फैल गया था और ब्रिटिश सरकार के साथ सैनिको की सहानुभूति नही रही थी। सर टामस मनरो और सर हेनरी लारेंस दोनो ने पहले ही इस नीति के दुष्परिणाम बता दिये थे परन्तु उनकी सलाह पर कुछ ध्यान नही दिया गया था।

ग़दर का आरम्भ—कारतूसो की घटना ने तो इस भीषण विद्रोह-रूपी महा अग्निकाण्ड में चिनगारी का काम किया। ठीक इसी समय सिपाहियो को एनफील्ड नामक एक नई राइफल दी गई थी। चारों ओर शीघ्र यह अफवाह फैल गई कि कारतूस गाय और सूअर की चर्बी से चिकने किये जाते हैं। इस बात से हिन्दू मुसलमान दोनो असन्तुष्ट हुए। एक दिन दमदम मे एक खलासी ने किसी ब्राह्मण सिपाही से उसके लोटे से पानी पीने को माँगा परन्तु उसने इनकार कर दिया। खलासी ने ब्राह्मण से कहा कि अब सब जातियाँ बहुत जल्द ही एक समान हो जायँगी, क्योंकि सेना मे ऐसे कारतूसो का प्रयोग किया जानेवाला है जिनमें गाय और सूअर की चर्बी लगी है। यह सच है कि इन कारतूसो

को तैयार करने में जानवर की चर्बी इस्तेमाल की गई थी। यह बात बडी तेजी से एक छावनी से दूसरी छावनी तक पहुँच गई। सैनिको ने सोचा कि सरकार हमारे धर्म को भ्रष्ट करना चाहती है। लार्ड कैनिंग ने एक विज्ञप्ति निकाल कर लोगो को बतलाया कि यह अफवाह झूठी है परन्तु उसका प्रयत्न विफल हुआ। बगाल की सेना भडक गई। बारकपुर में बलवा हो गया परन्तु वह शीघ्र ही दबा दिया गया। अप्रैल में मेरठ के सैनिको ने अपने अफसरो की आज्ञा मानने तथा चर्बी से चिकने किये हुए कारतूसो को इस्तेमाल करने से इनकार कर दिया। खुले-आम उनका अपमान किया गया और वे जेल मे बन्द कर दिये गये। १० मई को इतवार के दिन तीन हिन्दुस्तानी पलटनो ने अपने अफसरो को मार डाला और जेल के दरवाज़े खोलकर अपने सिपाही भाइयो को मुक्त कर दिया। इसके बाद वे दिल्ली की ओर बढे। यह १८५७ के विद्रोह का श्रीगणेश था। दिल्ली में विद्रोहियो के दल में बहुत से असन्तुष्ट लोग शामिल हो गये और कुछ ही घटो मे शहर पर उनका कब्ज़ा हो गया। वे महल के अन्दर घुसे और उन्होने बूढे मुगल बादशाह बहादुरशाह को भारत का सम्राट् घोषित कर दिया। विद्रोह बडी जल्दी से रुहेलखड तथा मध्य भारत के अनेक भागो मे फैल गया। बरेली, लखनऊ, बनारस तथा कानपुर के हिन्दुस्तानी सिपाहियो ने अँगरेज़ो के विरुद्ध खुल्लमखुल्ला बग़ावत कर दी। बुन्देलखड मे झाँसी की रानी ने विद्रोहियो का नेतृत्व ग्रहण किया और अँगरेज़ो को कत्ल कर दिया। कानपुर में नाना साहब बाग़ियो का नेता बन गया और उसने विद्रोहियो को, अँगरेज़ी सेना को घेर लेने का, हुक्म दिया। लखनऊ की रेज़ीडेंसी पर भी आक्रमण किया गया किन्तु सर हेनरी लारेंस ने बडी वीरता के साथ उसकी रक्षा की। दिल्ली विद्रोहियो का केन्द्र बन गया। देश के सभी भागो के विद्रोही अब उसी ओर चल पडे।

**दिल्ली का घेरा**—दिल्ली पर कब्ज़ा कर लेना एक बडी महत्त्वपूर्ण बात थी। विद्रोहियो ने किले के पिछले भाग पर कब्ज़ा कर लिया और

बडी कठिनता के साथ वे शत्रुओ के विरुद्ध अपने स्थान पर दृढता-पूर्वक जमे रहे। उनके शत्रुओ की सख्या ३० हजार थी। जब निकोल्सन (Nicholson) सेना लेकर पजाव से आया तब काश्मीरी दर-वाजा उडा दिया गया और ६ हफ्ते तक जी-जान से लडने के बाद शहर पर अधिकार स्थापित हुआ। बहादुरशाह अपने दो लडको के साथ गिरफ्तार हो गया। एक अँगरेज सैनिक ने दोनो शाहजादो को, विना उनके अपराध की कुछ जाँच किये ही, गोली से मार दिया। मुगल-सम्राट पर (जनवरी १८५८ ई० में) मुकदमा चलाया गया। वह विद्रोहियो को सहायता पहुँचाने का अपराधी ठहराया गया। सरकार ने उसे रगून भेज दिया और वहाँ १८६२ में, ८७ वर्ष की अवस्था में, उसकी मृत्यु हो गई।

कानपुर—कानपुर में अँगरेज तीन सप्ताह तक वडे साहस और धैर्य के साथ विद्रोहियो के विरुद्ध डटे रहे। जून में नील (Neill) ने इलाहावाद के क़िले पर कब्जा कर लिया और कुछ समय वाद उसके साथ हैवलाक (Havelock) आ मिला। ये दोनो लखनऊ और कान-पुर के अँगरेजो की मदद के लिए रवाना हुए। हैवलाक के कानपुर पहुँचने के पहले ही क़िले की सेना ने इस शर्त पर नाना साहव को आत्म-समर्पण कर दिया था कि हमारी जानें न ली जायें। इलाहावाद आने के लिए गगा को पार करने के उद्देश्य से जैसे ही अँगरेज नावो पर सवार हुए वैसे ही नाना के आदमियो ने उन पर गोलियो की वर्षा की और उन्हें मार डाला। जो वाक़ी वचे वे कानपुर के एक कुएँ में डाल दिये गये, जो अव मेमोरियल वैल के नाम से प्रसिद्ध है। यह निष्ठुरता-पूर्ण विश्वास-घात का एक कार्य था। नाना के साथ अँगरेजो ने जो वर्ताव किया था उसको ध्यान में रखते हुए भी हम उसके इस अपराव को क्षम्य नही कह सकते।

लखनऊ—लखनऊ में विद्रोह की आग अन्य स्थानो की अपेक्षा अधिक जोरो से भडकी। सर हेनरी लारेंस ने वडे साहस के साथ रेजी-डेंसी की रक्षा की किन्तु वह मारा गया। हैवलाक जेनरल आउट्रम के

साथ बडी तेजी से लखनऊ की ओर रवाना हुआ और नगर में प्रवेश करने के पहिले तीन और लड़ाइयो में उसने विद्रोहियो को हराया। किन्तु बागियो ने स्वय उनको ही घेर लिया। नवम्बर मे सर कोलिन कैम्पवेल (Colin Campbell) की अध्यक्षता में कुछ सैनिक सहायता के लिए आये किन्तु निरन्तर युद्ध करने के कारण थककर हैवलाक मर गया। लखनऊ को आउट्रम के सुपुर्द कर कैम्पवेल कानपुर लौट गया। वहाँ पर उसने मराठा नेता तातिया टोपे को—जिसकी अध्यक्षता में २० हज़ार आदमी थे—पराजित किया। तब वह लखनऊ की ओर बढ़ा और (मार्च में) नगर को अपने अधिकार में कर लिया। दो मास के बाद कैम्पवेल बरेली की ओर बढा। वहाँ बागी लोग तितर-बितर कर दिये गये और फिर से शान्ति स्थापित हो गई।

**मध्यभारत**—बुन्देलखड तथा मध्यभारत में विद्रोह का दमन करना एक कठिन काम था। सर ह्यू रोज (Hugh Rose) ने झाँसी को घेर लिया और एक सेना को, जिसका नेता तातिया टोपे था, पराजित कर क़िले पर कब्ज़ा कर लिया। झाँसी की वीर रानी लक्ष्मीबाई और तातिया टोपे ने ग्वालियर पर आक्रमण किया और सिन्धिया को खदेड कर आगरा में शरण लेने को बाध्य किया। ग्वालियर पर बागियो का कब्ज़ा हो गया और नाना पेशवा घोषित किया गया। सिन्धिया के योग्य तथा चतुर मत्री दिनकरराव ने उसे विद्रोहियो के दल में शरीक होने से बचा लिया। सर ह्य रोज ग्वालियर की ओर बढ़ा और उसने विद्रोहियो को दो लडाइयो में पराजित किया। वीर रानी पुरुष के वेप मे अन्त तक लडती हुई मारी गई। उसके वीरतापूर्ण सैनिक आचरण को देखकर सर ह्यू रोज़ ने भी उसकी प्रशसा की। उसने विद्रोही नेताओ मे उसे सबसे अधिक योग्य तथा बहादुर बतलाया। तातिया टोपे कुछ समय तक मालवा, बुन्देल-खड तथा राजपूताना में घूमता रहा किन्तु अन्त में (अप्रैल १८५९ ई० में) ग्वालियर के एक जागीरदार ने धोखा देकर उसे अँगरेज़ो के हाथ मे सौंप दिया। उसे फाँसी का दड दिया गया।

**लार्ड कैंनिग की बुद्धिमत्तापूर्ण नीति**—विद्रोह का दमन बडी वीरता से किया गया। बदला लेने के लिए यूरोपीय लोग चारो ओर आन्दोलन कर रहे थे। किन्तु लार्ड कैंनिग ने बडी शान्ति से काम लिया। उसने ऐसी नीति का अनुसरण किया जो न्याय-सगत तथा दयापूर्ण थी। उसके विरोधी उसे क्लीमेन्सी कैंनिग (Clemency Canning) अथवा दयावान् कैंनिग कहा करते थे परन्तु वह हिन्दुस्तानियो के प्रति बराबर विश्वास दिखाता रहा। उसने अपने विरोधियो से साफ-साफ कह दिया कि मैं ऐसी नीति का अवलम्बन नही कर सकता जो निर्दोष और अपराधी में कुछ भेद न करे और जो प्रत्येक हिन्दू तथा मुसलमान के सिर पर विद्रोह का अपराध मढे।

**विद्रोह की विफलता**—विद्रोह यद्यपि दूर-दूर तक फैल गया था किन्तु वह देश-व्यापक नही था। उत्तर-पश्चिम में अफग़ान लोग शान्त रहे और सिक्खो और गोरखो ने अँगरेजो की सहायता की। विद्रोह की असफलता का प्रधान कारण यह है कि उसकी उत्पत्ति किसी राष्ट्रीय भावना से नही हुई थी। विद्रोही लोग सगठित नही थे और झाँसी की रानी के अतिरिक्त उनमें कोई योग्य नेता नही था। उनका उद्देश्य भी एक नही था। मुसलमान मुग़ल-साम्राज्य को पुनर्जीवित करने की चेष्टा में लगे थे और हिन्दू लोग नाना की अध्यक्षता मे अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहते थे। भारतीय राजा लोग अँगरेजो के पक्ष में थे। सिन्धिया, होल्कर, निजाम तथा राजपूत नरेश सभी ने विद्रोह के दमन में अँगरेजो को सहायता पहुँचाई। इसके विपरीत अँगरेज अफसर, जिन्होने विद्रोह के दमन में भाग लिया था, योग्य तथा अनुभवी व्यक्ति थे। अपने देश की गौरव-रक्षा के लिए वे अपने प्राण देने को तैयार थे। लार्ड कैंनिग की क्षमा और धैर्य की नीति ने अँगरेजो को सबसे अधिक सहायता पहुँचाई। इस नीति का जनता पर अच्छा प्रभाव पडा और देश में शान्ति स्थापित करने का कार्य सरल हो गया।

**कम्पनी का अन्त**—इस विद्रोह ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अन्त

कर दिया। उसे फिर नया आज्ञापत्र नहीं दिया गया और भारत का शासन उससे ले लिया गया। सन् १८५८ ई० में एक कानून (Act for the Better Government of India) पास हुआ जिसके अनुसार भारत का शासन इंगलैंड के राजछत्र (Crown) के अधीन कर दिया गया। बोर्ड आफ कन्ट्रोल तोड दिया गया। उसके स्थान पर एक 'भारत-सचिव' (Secretary of State for India) नियुक्त किया गया जिसकी सहायता के लिए १५ सदस्यों की एक कौंसिल बना दी गई जो 'इण्डिया कौंसिल' के नाम से प्रसिद्ध है। इस कौंसिल के सात मेम्बरों को नामजद करने का अधिकार 'कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स' को दिया गया। गवर्नर-जनरल भारत का वाइसराय बना दिया गया। कम्पनी का अन्त कर देने से भारत मे दोहरे शासन का युग भी समाप्त हो गया। कम्पनी ने अँगरेजों के हितों की खूब रक्षा की। इंगलैंड के लिए उसने एशिया में एक बड़ा राज्य स्थापित कर दिया परन्तु उसने भारत की जनता के लाभ के लिए, उसके उद्योग-धन्धों तथा आर्थिक दशा को सुधारने के लिए, कुछ भी नहीं किया।

महारानी का घोषणा-पत्र—जनता को आश्वासन देने के लिए लार्ड कैनिंग ने इलाहाबाद में पहली नवम्बर सन् १८५८ ई० को एक दरबार किया और महारानी विक्टोरिया का प्रसिद्ध घोषणा-पत्र* पढ़ा। वह ऐसी भाषा में लिखा था जो 'उदारता, दया तथा धार्मिक सहिष्णुता के भावों' से ओतप्रोत था। घोषणापत्र-द्वारा महारानी ने विश्वास दिलाया कि कम्पनी और देशी नरेशों के बीच जो सन्धियां और प्रतिज्ञाएँ हुई हैं उनका पालन किया जायगा। देशी नरेशों को गोद लेने का अधिकार भी दे दिया गया। सरकारी नौकरियों का दरवाजा सबके लिए खोल दिया गया। जाति, वर्ण अथवा धर्म का कुछ भेद-भाव इस

---

* घोषणा-पत्र के लिए देखो परिशिष्ट (अ)

सम्बन्ध में नहीं रक्खा गया। यह भी वचन दिया गया कि धार्मिक मामलों में सरकार किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेगी। उन सब लोगों को

महारानी विक्टोरिया

क्षमा प्रदान की गई जो कि अँगरेजों की हत्या करने में शामिल नहीं थे। भारतवासी इस घोषणा-पत्र को अपनी स्वतन्त्रता का 'अधिकार-पत्र' (Magna Charta) मानते हैं।

## भारतीय समाज और संस्कृति

**सामाजिक स्थिति**—भारत के इतिहास म १८५८ का साल एक युग का अन्त करता है। मुग़ल-साम्राज्य के पतन और यूरोपीय लोगों के आगमन के कारण भारतीय समाज में एक महान् परिवर्तन हो गया

था। राजनीतिक अधिकार हाथ से निकल जाने से मुसलमानो की शक्ति घट गई थी। मगल-साम्राज्य के नष्ट होने के बाद जो राज्य प्रादुर्भूत हुए उनम से अधिकाश मे कोई शासन-सम्बन्धी अथवा आर्थिक सुधार नहीं किया गया। दीर्घ काल तक सारे देश में गडबडी मची रही और लोगो को पिण्डारी लटेरो तथा ठगो से उतनी ही मुसीबत उठानी पडी जितनी कि शक्तिहीन शासको से। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डाइरेक्टरो को मुख्य-तया अपने व्यापारिक लाभ की चिन्ता रहती थी। शिक्षा अथवा सामाजिक उन्नति की ओर उन्होने कुछ भी ध्यान नही दिया। भारत के उच्च श्रेणी के लोगो की उपाधियां और ज़मीनें छीन ली गईं। उनमें से बहुत-से देशी राज्यो म नौकरी करने लगे और बहुत-से निर्धनता और असन्तोष का जीवन व्यतीत करने के लिए विवश हो गये। भूमि के बन्दोवस्त से उनको वडी हानि उठानी पडी। दीवानी अदालतो ने ज़मीदारो और ताल्लुकदारो के हितो पर कोई विशेष ध्यान नही दिया। अदालती फैसलो ने प्राचीन भूस्वामियो को किसान बना दिया।

हिन्दुओ मे जात-पाँत के भेद-भाव का प्रावल्य था। उच्च जाति के लोगो को सती, शिशु-हत्या तथा बाल-विवाह में कोई बुराई नही देख पडती थी। समाज की प्रत्येक श्रेणी मे ब्राह्मण-धर्म का प्रभाव था। समुद्र-यात्रा को अब भी लोग बुरा समझते थे। पाश्चात्य साहित्य और विज्ञान के विषय मे बहुत-से लोग कुछ जानते ही नही थे। यहाँ तक कि १८५६ ई० में भी सार्वजनिक शिक्षा की योजना को लोगो ने हिन्दु-स्तानियो को ईसाई बनाने का एक साधन समझा था। नई शिक्षा ने मुसलमान मुल्लाओ के हृदय में भी सन्देह उत्पन्न कर दिया और उन्होने उन्नति के मार्ग मे बडी बाधा पहुँचाई।

**आर्थिक स्थिति**—ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन-काल में लोगो की आर्थिक दशा में कुछ उन्नति नही हुई। समुचित आश्रय और सरक्षकता के अभाव से कला और कारीगरी की अवनति हो गई। अधिक महसूल लगा कर रेशम के माल और सूती तथा रेशमी कपड़े विदेशी बाज़ारो

में जाने से रोक दिये गये। जो लोग स्वतन्त्रतापूर्वक इस प्रकार के माल तैयार करते थे उनका कारबार धीरे-धीरे बन्द हो गया। अकाल अनेक बार पड़े और यद्यपि सरकार ने दुर्भिक्ष-पीड़ितों को सहायता पहुँचाने की चेष्टा की तो भी लोगों को बहुत मुसीबत उठानी पड़ी। हर साल एक बड़ी रक़म सूद तथा डिविडेंड चुकाने के लिए कम्पनी के डाइरेक्टरों के पास भेजी जाती थी। साधारण लोगों के जीवन-निर्वाह का खर्च अधिक न था। टामस मनरो का कथन है कि उसके समय में खेत में काम करने-वाले मजदूरों की मजदूरी प्रतिमास ४ और ६ शिलिंग के बीच में थी और उनका सालाना खर्च १८ से २७ शिलिंग तक था। लार्ड डलहौज़ी के सुधारों से भारत की व्यापारिक दशा की उन्नति में बहुत प्रोत्साहन मिला और लोगों की माली हालत भी कुछ सुधर गई।

**कला और साहित्य**—मुग़ल-साम्राज्य के पतन से ललित कलाओं की उन्नति में भारी व्याघात पहुँचा। कारीगरों ने प्रान्तीय दरबारों में जाकर शरण ली और वहाँ उन्हें आश्रय मिला। भारतीय शिल्पकार तथा कारीगर अपने हिन्दू मालिकों के लिए घाट और मन्दिर बनाने में लग गये और उन्होंने अपने धार्मिक भावों को ईंटों और पत्थरों-द्वारा अभिव्यक्त किया। ब्रिटिश सरकार का सार्वजनिक कार्य-विभाग (Public Works Department) ऐसी इमारतें नहीं बनवा सका जिन्हें हम कला-कौशल के उत्तम नमूने कह सकें। चित्रकारी की भी अवनति हो गई। दिल्ली के दरबारी चित्रकार हैदराबाद और अवध को चले गये और उनमें से अनेक बंगाल और बिहार में बस गये। राजपूत अथवा हिन्दू चित्रकारों ने या तो हिन्दुओं के धर्म-ग्रन्थों से अच्छे-अच्छे दृश्य लेकर चित्रित किये अथवा सर्व-साधारण के जीवन का चित्र खींचा। उनका प्रधान केन्द्र जयपुर था। काँगड़ा में चित्रकारों का अलग एक नया दल (school) पैदा हुआ जिसे पहाड़ी दल कहते हैं। टेहरी तथा मध्यभारत के राज्यों में उसका अधिक प्रभाव था। सिक्खों के दरबार में भी अनेक चित्रकार थे। उनमें सबसे प्रसिद्ध कपूरसिंह था। जब पंजाब

अँगरेजी राज्य में मिला लिया गया तब उनका रोजगार जाता रहा और कला का शीघ्रता के साथ ह्रास हो गया।

दक्षिण में हैदराबाद तथा तजौर के दरबारो मे चित्रकला ने खूब उन्नति की। तजौर के चित्रकार लकडी तथा हाथी-दाँत पर बहुत सुन्दर खुदाई करते थे।

अन्य ललित कलाओ की भाँति सगीत को भी हिन्दू राजाओ के यहाँ प्रश्रय मिला। सगीत-विद्या पर अनेक ग्रन्थ रचे गये और सर विलियम जोन्स (Sir William Jones) जैसे यूरोपीय लोगो न भी भारतीय गाने की बडी प्रशसा की।

अठारहवीं शताब्दी में विद्या और साहित्य की भी अवनति हुई। १८५७ ई० के पहले भारत में विश्वविद्यालयो की स्थापना नही हुई थी और अँगरेजी शिक्षा अभी अपनी प्रारम्भिक अवस्था में थी। हैदराबाद, लखनऊ, मुर्शिदाबाद, दिल्ली तथा जौनपर आदि स्थानो में फारसी भाषा का पठन-पाठन अब तक ता था और राज्य का कारबार सब फारसी भाषा में ही किया जाता था। कुछ ग्रन्थ हिन्दी में लिखे गये। इस सम्बन्ध में सीरामपुर के पादरियो ने ही पहले-पहल प्रयास किया। फोर्ट विलियम कालेज में हिन्दी भाषा को गिलक्राइस्ट (Gilchrist) से प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। लल्लूजीलाल का 'प्रेमसागर' उसी प्रोत्साहन का परिणाम है।

उत्तरकालीन मुगल-सम्राटो की संरक्षकता में उर्दू-कविता ने बडी उन्नति की। ख्वाजा मीर दर्द, मीर हसन, सौदा तथा मीर उस समय के बहुत प्रसिद्ध कवि थे। अन्तिम मुगल-सम्राट बहादुर शाह द्वितीय स्वय एक अच्छा कवि था। वह 'जफर' के नाम से कविता करता था। अवध के नवाबो को भी उर्दू-कविता से बडा प्रेम था। अन्तिम नवाब वाजिद-अली शाह बडा अच्छा कवि था। शीराज के कवि सादी की भाँति आगरा-निवासी नासिर भी नीति की शिक्षा देता था। उसकी कविताओ में

शान्ति और कल्याण के भाव भरे हुए हैं। दिल्ली का कवि-समुदाय १९वी शताब्दी में फिर से पुनर्जीवित हुआ। ग़ालिब और जौक ने अपनी सुन्दर कविताओ से सारे ससार को मुग्ध कर दिया। गालिब फ़ारसी तथा उर्दू दोनो में उच्च कोटि की कविता करता था और जौक न कसीदो और गजलो की रचना में कमाल हासिल किया था। उर्दू-गद्य-रचना का सर्व-प्रथम प्रयास फोर्ट विलियम कालेज में किया गया। परन्तु सन १८३५ ई० से तो—जब कि उर्दू अदालतो की भाषा बन गई—उसकी उन्नति बडी द्रुत गति से हुई।

---

# अध्याय ३७

## भारत का नया शासन प्रबन्ध

### (१) विद्रोह के बाद नई व्यवस्था

**विधान में परिवर्तन**—विद्रोह के पश्चात् भारत का शासन-प्रबन्ध ब्रिटिश राजछत्र के अधीन कर दिया गया। जैसा पहले कहा जा चुका है, 'कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स' की जगह पर १५ मेम्बरो की एक कौंसिल (इडिया कौंसिल) नियक्त की गई। इनमे से ८ सदस्यो की नियुक्ति का अधिकार इँगलेड के राजा के हाथ मे रहा और बाकी ७ को डाइरेक्टर लोग निर्वाचित करने लगे। कौंसिल के सदस्यो के कार्य-काल की कोई अवधि नही बाँधी गई। यह नियम बना दिया गया कि जब तक वे ठीक काम करेंगे तब तक अपने पद पर बने रहेगे। उनको हटाने के लिए यह आवश्यक था कि पार्लियामेंट की दोनो सभाएँ एक प्रार्थना-पत्र उपस्थित करे। यह कौसिल केवल उन्ही मामलो मे अपनी राय दे सकती थी जिन्हें भारत-सचिव (सेक्रेटरी आफ स्टेट) उसके सामने पेश करता। भारत-सचिव उस कौसिल का सभापति था और उसे अधिकार था कि वह कौसिल के फैसले को रद कर दे। भारत के आन्तरिक शासन-प्रबन्ध में भी एक परिवर्तन किया गया। सन १८६१ ई० के इडियन कौंसिल ऐक्ट-द्वारा गवर्नर-जनरल की कौसिल के साधारण सदस्यो की सख्या पाँच कर दी गई और यह नियम कर दिया गया कि उनमे (१) कम-से-कम तीन ऐसे हो जो भारत मे नौकरी कर चुके हो, (२) एक बैरिस्टर हो अथवा स्काटलेड की 'फैकल्टी आफ एडवोकेट्स' का सदस्य हो, और (३) एक आर्थिक मामलो का विशेषज्ञ (अर्थ-विशेषज्ञ) हो।, प्रधान सेनापति कौंसिल का एक असाधारण सदस्य बना दिया गया। गवर्नर-जनरल को

यह अधिकार दिया गया कि वह ऐसे नियम बनावे जिससे कि कौंसिल की कार्यवाही सुविधा के साथ हो सके। इसके अतिरिक्त कौंसिल का सारा काम अलग अलग विभागो मे विभक्त कर दिया गया और प्रत्येक विभाग एक-एक सदस्य के सुपुर्द कर दिया गया। ये सदस्य अपने-अपने विभाग के कार्य के लिए गवर्नर-जनरल के प्रति उत्तरदायी थे। इस व्यवस्था की बदौलत कौंसिल के लिए यह सम्भव हो गया कि वह अपना काम योग्यता और तत्परता के साथ करे। कौंसिल के सदस्य सरकारी कर्मचारी थे और वे भारतीय जनता के प्रति नही बल्कि पार्लियामेंट के प्रति उत्तर-दायी थे।

कानून बनाने के अभिप्राय से गवर्नर-जनरल को अतिरिक्त सदस्य (additional member) नियुक्त करने का अधिकार दिया गया। ऐसे सदस्यो की सख्या ६ से कम और १२ से अधिक नही हो सकती थी। इनमे से कम से कम आधे सदस्यो का गैर-सरकारी होना आवश्यक था। विद्रोह के बाद तुरन्त ही कानून बनाने के काम में सहायता देने के लिए व्यवस्थापिका सभा मे कतिपय भारतीय सदस्य भी मनोनीत किये गये। ये सदस्य पटियाला के महाराज, बनारस के राजा तथा ग्वालियर के प्रसिद्ध मत्री सर दिनकरराव थे।

बम्बई, मद्रास तथा बगाल की कौसिलो को कानून बनाने का अधि-कार—जो सन् १८३३ ई० मे छीन लिया गया था—फिर से दिया गया। बाद में अन्य प्रान्तो को भी यह अधिकार प्रदान किया गया।

आर्थिक सुधार—विद्रोह के कारण देश की आर्थिक दशा अव्य-वस्थित हो गई थी। सन् १८५९ ई० मे जेम्स विल्सन (James Wilson) नामक एक अर्थशास्त्रवेत्ता तथा अर्थ-विशेषज्ञ आर्थिक सुधार करने के लिए इंगलैड से आया। उसने बजट बनाने की प्रथा प्रचलित की और तीन नये कर लगाने का प्रस्ताव किया। (१) ५०० रुपये से अधिक आय पर आय-कर अर्थात् इनकमटैक्स, (२) व्यापार और व्यवसाय (पेशे) पर एक लाइसेंस-कर और (३) एक कर भारत मे उत्पन्न होनेवाली

तम्बाकू पर। विदेश मे आनेवाली अधिकाश वस्तुओ पर १० प्रतिशत का एक साधारण कर और देश के बाहर भेजी जानेवाली अनेक वस्तुओ पर ४ प्रतिशत का टैक्स नियत किया गया। नमक का महसूल बढा दिया गया और फौजी तथा दीवानी दोनो महकमो मे खर्च घटाने का प्रस्ताव किया गया। आठ महीने के बाद विल्सन की मृत्यु हो गई किन्तु नये अर्थ-सचिव सैम्युएल लैंग (Samuel Lang) ने उसके काम को जारी रक्खा। उसने फौज का खर्च घटा दिया और बजट मे बचत दिखलाई।

सैनिक-सुधार—१८६१ ई० मे ब्रिटिश सैनिको की सख्या घटाकर ७६,००० और भारतीय सैनिको की १,२०,००० कर दी गई। भारतीय सेना तोड दी गई और उसके अफसरो को पेंशन दे दी गई। नाविको में से कुछ को बरखास्त कर दिया गया और कुछ को राजकीय नाविक सेना (Royal navy) में भर्ती कर लिया गया।

शिक्षा—सन १८५७ ई० में लन्दन-विश्वविद्यालय के आदर्श पर कलकत्ता, बम्बई और मद्रास के विश्वविद्यालयो की स्थापना की गई। प्रारम्भिक, माध्यमिक तथा शिल्प-सम्बन्धी शिक्षा को अग्रसर करने के लिए प्रयत्न किये गये। भारतीय लोगो ने अनेक समाचार-पत्र निकाले और बडी योग्यता के साथ उनका सचालन किया। पुस्तको की मांग बढ गई। सन् १८५७ ई० में केवल कलकत्ता में ३०० पुस्तकें बिक्री के लिए आईं।

अदालतो का सुधार—सन् १८६१ ई० मे इडियन हाईकोर्ट ऐक्ट पास हुआ। पुराना सुप्रीम कोर्ट तथा सदर अदालत तोड दी गई। कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रास मे हाईकोर्ट स्थापित किये गये। सन् १८६६ ई० में एक हाईकोर्ट इलाहाबाद में स्थापित किया गया। जजो की नियुक्ति ब्रिटिश सम्राट करता था और जब तक वह चाहता तब तक वे अपने पद पर रह सकते थे।

कानूनो का सशोधन किया गया। सर बार्नेस पीकौक (Sir Barnes Peacock) द्वारा सशोधित भारतीय दड-विधान (Indian

Penal Code) का मसविदा सन् १८६० ई० मे पास किया गया। एक साल बाद ज़ाब्ता फौजदारी (Criminal Procedure Code) जारी किया गया। इनका उपयोग कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रास की अदालतो के अतिरिक्त अन्य सब अदालतो मे होता था। ज़ाब्ता दीवानी (Code of Civil Procedure) भी पास किया गया और सन् १८६२ ई० में उसका उपयोग हाईकोर्टों मे होने लगा।

**बगाल का काश्तकारी क़ानून**—बगाल के इस्तमरारी बन्दोबस्त से ज़मीदारो का फायदा हुआ लेकिन किसानो के लिए वह हानिकारक सिद्ध हुआ। किसानो को बेदखल किया जा सकता था और बिना किसी उचित कारण के उनका लगान बढाया जा सकता था। सन् १८५९ ई० में बगाल का लगान-सम्बन्धी कानून पास हुआ। इसके अनुसार वे किसान जिन्हें किसी खेत को जोतते हुए बारह वर्ष से अधिक हो गये थे मौरूसी काश्तकार करार दिये गय। उनका लगान केवल उन्ही शर्तों के अनुसार बढाया जा सकता था जो उस कानून मे दर्ज थी। इस प्रकार काश्तकारो को कुछ आराम मिला लेकिन मुकदमेबाज़ी बढ गई और उनका बहुत-सा रुपया उसमें खराब होने लगा।

**सार्वजनिक हित के कार्य्य**—सन १८६२ ई० में इलाहाबाद तक ईस्ट इडियन रलवे की गाडी खुल गई और जी० आई० पी० रेलवे पर बम्बई से ४०० मील की दूरी तक ट्रेनें दौडने लगी। ग्राड ट्रक रोड कलकत्ता से पेशावर तक बन कर तैयार हो गई। देश के विभिन्न भागो में सैकडो मील तक पक्की सडकें बनवाई गई। नहरें भी खोदी गई। जगलो को आग और बरबादी से बचाने का प्रबन्ध किया गया। चाय, नील और सिनकोना की खेती को प्रोत्साहन दिया गया।

म्यूनिसिपैलिटी का शासन-प्रबन्ध अब भी बहुत असन्तोषप्रद था। सबसे बडे नगरो में भी नियमित रूप से मीठा पानी पहुँचाने का प्रबन्ध नही था। कलकत्ते के कुछ भागो मे सडको पर पानी का छिडकाव

भिश्तियो-द्वारा होता था। लोग परोपकार की दृष्टि से तालाव, मन्दिर अथवा कुआँ वनवाने के निमित्त, धन देने के लिए तैयार रहते थे।

**लार्ड कैनिंग का इस्तीफा**—सन १८६१ ई० के नवम्बर मे लार्ड कैनिंग की स्त्री का देहान्त हो गया, इसलिए उसे शीघ्र भारत छोडना पडा। अपने कार्य-काल मे उसे वडी कठिनाइयो का सामना करना पडा था। लेकिन वह इन कठिनाइयो के वाहर वेदाग निकल आया था। उसने वडी दृढता, वुद्धिमानी और धैर्य्य के साथ एक भीषण परिस्थिति को अपने कावू में किया। अपने यूरोपीय विरोधियो के—जो वदला लेने के लिए तैयार थे—निन्दापूर्ण शब्दो पर वह कभी क्रुद्ध नही हुआ। कभी किसी ने उसकी निष्कपटता, कर्त्तव्यपरायणता और न्यायशीलता पर सन्देह नही किया है। उसकी दयालुता ने, जिसकी उस समय इतनी निन्दा की गई थी, भारतीय साम्राज्य को नष्ट होने मे वचा लिया। उसके शासन-सुधारो ने उसके उत्तराधिकारियो के मार्ग को प्रशस्त कर दिया। उसके पश्चात् लार्ड एलगिन (Lord Elgin) वायसराय हुआ जो अपनी नियुक्ति के एक साल वाद ही पजाव मे, धर्मशाला नामक स्थान पर, मर गया।

## सक्षिप्त सनवार विवरण

| | |
|---|---|
| कलकत्ता, वम्वई और मद्रास-विश्वविद्यालयो की स्थापना | १८५७ ई० |
| वगाल का लगान-सम्वन्धी कानून | १८५६ ,, |
| इडियन हाईकोर्ट ऐक्ट | १८६१ ,, |
| कैनिंग की धर्मपत्नी का देहान्त | १८६१ ,, |
| इलाहावाद में हाईकोर्ट की स्थापना | १८६६ ,, |

## (२) सीमा-प्रान्तीय समस्यायें—अफ़ग़ानिस्तान और ब्रह्मा
## (शन् १८६२-९९ ई०)

**दोस्तमुहम्मद की मृत्यु के बाद अफगानिस्तान की दशा**—प्रथम अफ़ग़ान-युद्ध के बाद दोस्तमुहम्मद अमीर मान लिया गया। ग़दर के समय तक उसके और ब्रिटिश सरकार के बीच मैत्री सम्बन्ध स्थापित रहा। सन् १८६३ ई० मे दोस्तमुहम्मद ८० वर्ष की अवस्था में मर गया। उसने अपने लडके शेरअली को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया था किन्तु उसके सोलह लडको में से बारह गद्दी के लिए लडने-झगडने लगे। लार्ड लारेंस (Lord Lawrence) सन १८६४ ई० में वायसराय नियुक्त हुआ। उसने 'महान् अकर्मण्यता' (masterly inactivity) की नीति का अवलम्बन किया और अफग़ानिस्तान के झगडे में कुछ भी हस्तक्षेप नही किया। जब अफग़ान राजकुमारो ने सहायता माँगी, तब उसने उत्तर दिया कि जो काबुल की गद्दी पर अपना अधिकार जमा लेगा उसी को ब्रिटिश सरकार अमीर स्वीकार करेगी। इस उत्तर से शेरअली को यह शका हुई कि अँगरेजो को केवल अपने स्वार्थ का खयाल रहता है। शेरअली और उसके भाइयो में आपस में बहुत दिनो तक युद्ध हुआ। अत मे शेरअली की जीत हुई। उसने अपने प्रतिद्वन्द्वियो में से कुछ को मार डाला और बाकी को देश से बाहर खदेड दिया। इस प्रकार वह सन् १८६८ ई० मे अफग़ानिस्तान का अमीर बन गया।

इसी बीच मे रूसी लोग अफग़ानिस्तान की उत्तरी सीमा की ओर बढे चले आ रहे थे। उन्होने बुखारा को जीत लिया और एक साल बाद उसे तुर्किस्तान का सूबा बना दिया। सन् १८६८ ई० में उन्होने समरकन्द को ले लिया और उस पर अपना अधिकार जमा लिया। वे अफग़ानिस्तान के निकट बढे आ रहे थे। वे चाहते थे कि तुर्किस्तान में हम अपनी सैनिक-स्थिति को इतना दृढ बना ले कि जिससे भारत के मामलो

म हस्तक्षेप करने की धमकी देकर इँगलेंड को भयभीत कर सकें। लारेंस को मालूम हो गया कि मेरी नीति यथेष्ट नही है किन्तु तो भी वह चुप मार कर बैठा रहा।

उसके उत्तराधिकारी लार्ड मेयो (Lord Mayo सन् १८६९—७२ ई०) ने सन १८६९ ई० मे शेरअली से अम्वाला मे भेंट की। वायसराय के व्यक्तिगत शिष्टाचार और सहानुभति का उस पर वडा प्रभाव पडा। उसने एक निश्चित नीति वर्तने, प्रतिवर्ष आर्थिक सहायता देने तथा धन और जन से मदद करने की प्रार्थना की और कहा कि मेरे सवसे वडे लडके याकव खाँ के वदले मेरा लडका अब्दुल्लाजान मेरा उत्तराधिकारी माना जाय। लार्ड मेयो ने उसके पास एक पत्र भेजा जिसमें उसने सहायता देने का वादा किया और कहा कि यदि उसे गद्दी से उतारने का प्रयत्न किया जायगा तो ब्रिटिश सरकार बडी अप्रसन्नता प्रकट करेगी। सन् १८७३ ई० में जब रूस ने आम नदी के पास के छोट राज्यो को मिटा दिया तव अमीर ने ब्रिटिश सरकार के साथ मित्रता करने के लिए फिर प्रयत्न किया। उसने लार्ड नार्थब्रुक (Lord Northbrook सन् १८७३-७६ ई०) के पास जो लार्ड मेयो का उत्तराधिकारी था एक राजदूत भेजा और सहायता माँगी। किन्तु गवर्नर-जनरल ने, याकूव खाँ के वदले अब्दुल्ला जान को पसन्द करने के लिए उसे वुरा-भला कह कर वहुत नाराज कर दिया। शेरअली न रूस से सहायता माँगी। इँगलेंड की सरकार ने लार्ड नार्थब्रुक को सलाह दी कि अमीर से अपने देश में एक अँगरेज रेज़ीडेंट रखने के लिए कहा जाय। लार्ड नार्थब्रुक इस विचार से सहमत नही हुआ। उसने उत्तर दिया कि शेरअली इस प्रकार के प्रस्ताव का घोर विरोध करेगा। किन्तु परराष्ट्र-सचिव (Foreign Secretary) लार्ड सैलिसवरी (Lord Salisbury) अपनी वात पर डटा रहा। वायसराय ने सन् १८७६ ई० में अपने पद से इस्तीफा दे दिया। भारत से विदा होने के पहले उसने लार्ड सैलिसवरी से कह दिया कि तुम्हारी नीति का परिणाम निस्सन्देह अफगानिस्तान के साथ युद्ध करना होगा।

उसके बाद लार्ड लिटन (Lord Lytton सन १८७६-८० ई०) वायसराय होकर आया। वह 'आगे बढने की नीति' (Forward Policy) का समर्थक था। उसने शेरअली से एक मिशन स्वीकार करने के लिए कहा लेकिन उसने मजूर नही किया। सन् १८७६ ई० में रूस और टर्की के बीच यूरोप में युद्ध छिड गया। इँगलैंड ने तुर्कों के मामले में हस्तक्षेप करने से रूस को रोकने की चेष्टा की। रूसी लोगो ने जबर्दस्ती अपना एक राजदूत अमीर के यहाँ भेज दिया और उसे सधि करने के लिए विवश किया। लार्ड लिटन ने अमीर पर फिर जोर डाला कि वह एक अँगरेज़ रेजीडेंट अपने यहाँ रक्खे। किन्तु जिस दिन उसका यह पत्र काबुल पहुँचा उसी दिन अब्दुल्लाजान की मृत्यु हो चुकी थी। अत लार्ड लिटन को कोई उत्तर नही मिला। बर्लिन की सधि (सन् १८७८ ई०) से यूरोप का युद्ध समाप्त हो गया। किन्तु वायसराय ने अपने इस विचार को नही छोडा कि काबुल मे अँगरेजो का प्रभाव स्थापित किया जाय।

नैविल चैम्बर (Neville Chamberlain) राजदूत बना कर पेशावर से भेजा गया किन्तु उसे खैबर के दर्रे मे प्रवेश करने की आज्ञा नही मिली। लार्ड लिटन ने इसमें अपना बडा अपमान समझा और २१ नवम्बर सन १८७८ ई० को युद्ध की घोषणा कर दी।

**अफग़ानों की दूसरी लड़ाई**—अँगरेजो की फौजे अफगानिस्तान के तीन बडे दर्रों से घुस पडी। सर सैम्युएल ब्राउन (Samuel Browne) खैबर से तथा राबर्टस् (Roberts) कुर्रम की घाटी से होकर चले और स्टुअर्ट (Stewart) ने क्वटा से बोलान के दर्रे में होकर कन्दहार पर धावा किया। अफग़ानो ने उनका विरोध नही किया। शेरअली रूसी तुर्किस्तान की ओर भाग गया। वहाँ उसने रूस से सहायता माँगी किन्तु उसका कुछ फल न हुआ और वह फरवरी सन् १८७९ ई० में मजार शरीफ में मर गया।

मई के महीने में गडमक नामक स्थान पर शेरअली के बेटे याक़ूब

खाँ के साथ एक संधि हो गई। इस संधि के अनुसार वह अमीर स्वीकार किया गया। याकूब खाँ इस पर राज़ी हो गया कि ब्रिटिश सरकार उसकी विदेशी नीति पर नियन्त्रण रक्खे। इसके अतिरिक्त, वह अपने यहाँ एक अँगरेज़ रेज़ीडेंट रखने और कुर्रम दर्रे को अँगरेज़ों के हवाले कर देने के लिए भी राज़ी हो गया। अँगरेज़ों ने इसके बदले ६ लाख रुपया सालाना देना और अफ़ग़ानिस्तान से अपनी सब फ़ौजों को हटा लेना स्वीकार किया। गंडमक की संधि को लार्ड लिटन ने अपनी व्यक्तिगत विजय माना।

किन्तु वास्तव में उसने बड़ी भूल की। अफ़ग़ान लोग ऐसे राजा का कुछ आदर नहीं करते जो विदेशी सैनिक शक्ति पर निर्भर हो। अँगरेज़ रेज़ीडेंट सर लुई कैवगनरी (Louis Cavagnari) अपने रक्षकदल के समेत मार डाला गया। जनरल रावर्टस ने काबुल में प्रवेश किया। उसने कत्ल करनेवालों को दंड दिया। याकूब अँगरेज़ों से जा मिला। उसने कहा कि अफ़ग़ानिस्तान का बादशाह होने के बजाय मैं घसियारा होना अधिक पसन्द करूँगा। वह पेंशनर बनाकर भारत भेज दिया गया। यहाँ वह अपनी मृत्यु के समय सन १९२३ ई० तक रहा। अब्दुर्रहमान काबुल की गद्दी पर बैठने के लिए प्रोत्साहित किया गया। वह दोस्तमहम्मद का भतीजा था और सन १८७० ई० से निर्वासित था। इसी दर्मियान में इँगलेंड में लार्ड लिटन की पार्टी चुनाव में पराजित हो गई। अतः उसने १८८० ई० में अपने पद से इस्तीफ़ा दे दिया। उसके बाद लार्ड रिपन (Lord Ripon सन १८८०-८४ ई०) वायसराय होकर आया।

लार्ड लिटन की नीति असफल सिद्ध हुई थी। लार्ड रिपन से कहा गया कि वह अफ़ग़ानों के साथ शान्तिपूर्ण रीति से निपटारा करे। उसने अब्दुर्रहमान को काबुल का अमीर मान लिया (सन १८८१ ई०) और उसकी परराष्ट्र-नीति (foreign policy) पर अपना नियन्त्रण स्थापित किया। किन्तु अब्दुर्रहमान अभी तक सारे अफ़ग़ानिस्तान

अफगान फ्राटियर
बलख
हेरात
काबुल
जलालाबाद
गजनी
बालाहिसार
कन्धार
किलात
लाहौर
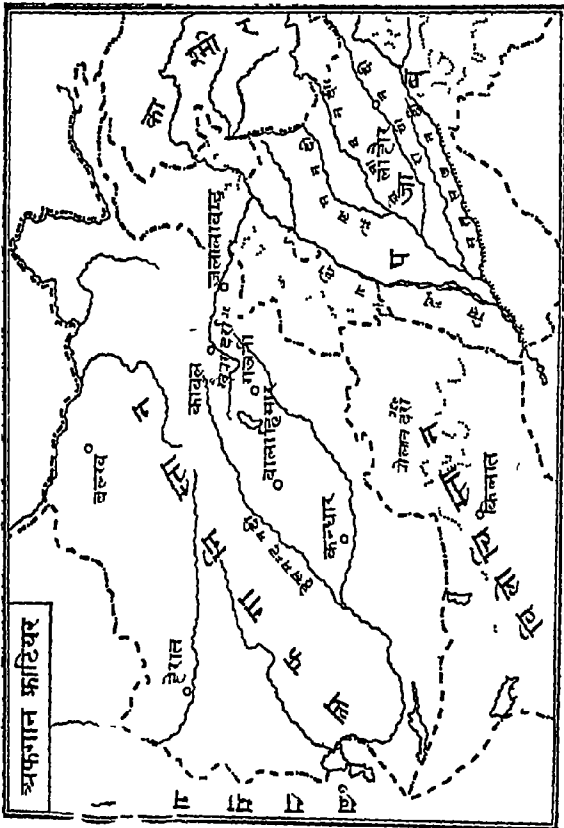
का मालिक नही हुआ था। हिरात अब भी शेरअली के लडके आयूब खाँ के कब्जे मे था। कन्दहार एक दूसरे सरदार के हाथ में था। लडाई फिर छिड गई। मैवन्द नामक स्थान पर आयूब खाँ ने शत्रुओ को गहरी पराजय दी। वहाँ से वह कन्दहार की ओर रवाना हुआ। जनरल रावर्टस फिर भेजा गया। आयूब खाँ कन्दहार की लडाई मे हार गया। कुछ ही महीनो के वाद अँगरेजी फौजे कावुल और कन्दहार से हटा ली गईं। अब्दुर्रहमान के हाथो से उसे फिर पराजित होना पडा। अब्दुर्रहमान अव निश्चिन्त हो सम्पूर्ण अफगानिस्तान का अमीर वन गया। कन्दहार का सरदार गद्दी छोड देने के लिए राजी किया गया और भारत भेज दिया गया। इस प्रकार अफगानो की दूसरी लडाई का अन्त हुआ।

पजदेह की घटना—नये वायसराय लार्ड डफरिन (सन् १८८४-८८ ई०) के सामने मुख्य प्रश्न रूस तथा अफगानिस्तान के वीच की सीमा को निश्चित करना था। अफगानो और रूसियो ने, झगडे की भूमि के अधिक से अधिक भाग पर कब्जा करने का प्रयत्न किया। रूसी लोगो ने मर्व पर कब्जा कर लिया। यह एक नखलिस्तान था जो आक्सस नदी के दक्षिण-पश्चिम लगभग १५० मील की दूरी पर स्थित था। हिरात जानेवाले मार्ग पर यह एक मुख्य स्थान था। रूसी लोगो ने मर्व के सर्दार पर अपना प्रभाव जमा लिया। इसका विरोध किया गया किन्तु उन्होने उस पर कुछ भी ध्यान नही दिया। इसके वाद वे मर्व के दक्षिण में पजदेह नामक गाँव की ओर वढे। यह गाँव अफगान-राज्य में शामिल था और उस पर अफगानी फौजो का अधिकार था। अफगानो ने रूसी लोगो को लौट जाने के लिए कहा किन्तु वे हटे नही। उन्होने अफगानो पर हमला कर दिया और उन्हें वहाँ से खदेड दिया। इँगलैंड और रूस के वीच युद्ध छिडने के लक्षण प्रकट दिखाई देने लगे। स्थिति वडी नाजुक हो गई।

लार्ड डफरिन की चतुरता और अब्दुर्रहमान की वुद्धिमानी ने इस

परिस्थिति को सँभालने में बड़ा काम किया। अमीर ने मामलो को खूब समझ कर घोषित किया कि मै निश्चय रूप से नही कह सकता कि पजेदेह मेरे अधिकार में है कि नही। वह एक दूसरे दर्रे के बदले में उसे छोड देने को राजी हो गया। रूसी लोग पजदेह से हट गये और अफग़ानिस्तान की उत्तरी सीमा को निर्धारित करने के लिए एक साहसी कमीशन नियुक्त हुआ।

लार्ड डफरिन के शिष्टाचार और वर्ताव से अमीर बहुत प्रसन्न हुआ किन्तु अपने देश में ब्रिटिश सेना के प्रवेश का भी विरोध करने मे वह उतना ही दृढ था जितना कि शेरअली। सन् १८८५ ई० मे रावलपिंडी में लार्ड डफरिन के साथ उसकी जो भेंट हुई, उसका अमीर पर अच्छा प्रभाव पडा। इस मुलाकात नें अमीर और ब्रिटिश सरकार की मित्रता को दृढ कर दिया।

परन्तु यह मित्रता अधिक समय तक कायम न रही। दोनो ओर शीघ्र उदासीनता और अविश्वास का भाव पैदा हो गया। झगडा सरहदी मामले के बारे में उठा। सिन्ध की सीमा पूर्णरूप से कब्ज़े में कर ली गई थी। उस पर कडा पहरा विठला दिया गया था। बिना पास के सरहदी फिरके का कोई आदमी अँगरेज़ी राज्य में आने नही दिया जाता था। ब्रिटिश सरकार और बलूची सरदारो के बीच मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित हुआ। सरहदी जातियो पर इन सरदारो का बडा प्रभाव था। किन्तु पजाब की सीमा के बारे में यह बात नही थी। सन् १८९३ ई० में ड्यूरेंड (Durand) नें अफग़ानिस्तान और भारत के बीच सीमा नियत कर अमीर को राज़ी कर लिया। उसके साथ एक सधि हो गई। इस सधि के अनुसार अमीर ने यह वचन दिया कि वह भारतीय सीमा के इस ओर बसनेवाली सरहदी जातियो के साथ किसी प्रकार का हस्तक्षेप नही करेगा। उसने चमन के रेलवे स्टेशन पर से भी अपना अधिकार उठा लिया। इसके बदले भारत-सरकार ने अमीर को दी जानेवाली मदद १२ लाख से बढा कर १८ लाख कर दी।

**चितराल का मामला**—सन १८९४ ई० मे लार्ड लैन्सडौन (Lord Lansdowne) के बाद लार्ड एलगिन द्वितीय वायसराय बना कर भेजा गया। उसके समय मे चितराल मे एक उपद्रव खड़ा हो गया। चितराल, हिन्दूकुश के दक्षिण में एक छोटी-सी पहाड़ी रियासत थी। सन १८९३ ई० के ड्युरेंड के समझौते के द्वारा उस पर अँगरेजो ने अपना प्रभाव जमा लिया था। सन १८९५ ई० मे चितराल का मेहतर, एक पूर्ववर्ती सरदार के उभाड़ने से मार डाला गया। ब्रिटिश प्रतिनिधि विद्रोहियो को दवाने के लिए रवाना हुआ किन्तु वह राजधानी मे घर लिया गया। ब्रिटिश सेना वहाँ गई और उसने चितराल को विद्रोहियो से मुक्त कर दिया। चितराल से लेकर अँगरेजी राज्य की सीमा तक एक सड़क बनवाई गई और उस पर बहुत-से सिपाही तैनात कर दिये गये। चितराल के इस मामले ने सरहदी जातियो मे बड़ी अशान्ति उत्पन्न कर दी। कई बड़े बड़े उपद्रव हुए। अमीर तथा सरहदी-प्रदेश के सर्दारो ने ब्रिटिश सरकार की नीयत पर सन्देह किया। सन १८९७ ई० मे मोहमन्द लोगो ने पेशावर तक अँगरेजी राज्य पर हमला किया। खैबर दर्रे के समीप अफरीदियो ने भी विद्रोह किया। सन् १८९८ ई० मे घोर युद्ध करके उनका दमन किया गया।

**तीराह की लड़ाई**—इस सिलसिले में तीराह की चढ़ाई (सन १८-९८ ई०) भी उल्लेखनीय है। तीराह की घाटी पेशावर के दक्षिण-पश्चिम मे है। अफरीदियो ने अँगरेजी सरकार के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। घोर युद्ध के बाद वे पराजित हुए। जब दोबारा हमला करने की धमकी दी गई तब उन्होने हार मान ली।

**उत्तरी ब्रह्मा की विजय**—ब्रह्मा की पहली लड़ाई के बाद अराकान और टनासरिम अँगरेजी राज्य मे मिला लिये गये थ। सन् १८५२ ई० मे पीग को जीत कर लार्ड डलहौजी न अँगरेजो के प्रभाव-क्षेत्र को और अधिक बढ़ा दिया था। उत्तरी ब्रह्मा अभी तक स्वतन्त्र था। ब्रह्मावालो ने अँगरजो की व्यापारिक उन्नति मे बाधा पहुँचाई।

थीबौ ने जो सन् १८७९ ई० में ब्रह्मा का राजा हुआ था, अँगरेज़ो की एक व्यापारिक कम्पनी पर भारी जुर्माना कर दिया। भारतीय सरकार ने प्रस्ताव किया कि मामला एक स्पेशल अँगरेज़ कमिश्नर के सामने पेश किया जाय। किन्तु थीबौ ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। इसके अतिरिक्त उसने जर्मनी इटली और फ्रांस के साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए लिखा-पढ़ी करना भी आरम्भ कर दिया था। उसने अपने दरबार में एक फ्रांसीसी राजदूत रख लिया। इस पर उससे कहा गया कि अपने यहाँ एक ब्रिटिश रजीडेंट रक्खे, अँगरेज़ी व्यापारिक कम्पनी के मामलों में कोई हस्तक्षेप न करे और विदेशों के साथ कोई सम्बन्ध न रक्खे। इस अनुचित माँग की पूर्ति करने के लिए रंगून में दस हज़ार सैनिक जमा किये गये। थीबौ ने अँगरेज़ों की इस माँग को पूरा करने से इनकार कर दिया। इस पर युद्ध छिड़ गया। बर्मी लोग थोड़ी-सी लड़ाई के बाद ही पराजित हो गये। थीबौ ने अपने को स्वयं एक क़ैदी के रूप में अँगरेज़ों के हवाले कर दिया। लार्ड डफरिन मांडले की ओर बढ़ा। सन १८८६ ई० की पहली जनवरी को एक घोषणा-पत्र जारी किया गया जिसके अनुसार उत्तरी ब्रह्मा अँगरेज़ी राज्य में मिला लिया गया। देश को जीत लेने की अपेक्षा उसे शान्त करने का कार्य अधिक कठिन था। दल के दल हथियार-बन्द डाकू देश में लूट-मार करते थे। दो साल तक वे अँगरेज़ अफ़सरों से लड़ते रहे। अन्त में सेना की सहायता से शान्ति स्थापित की गई। सन १८९७ ई० में उत्तरी और दक्षिणी ब्रह्मा दोनों एक कर दिये गये और वह एक लेफ्टिनेंट गवर्नर के सुपुर्द कर दिया गया। सन १९२२ ई० में भारत के अन्य प्रान्तों की भाँति ब्रह्मा को भी एक प्रान्त बना दिया गया और शासन के लिए एक गवर्नर नियुक्त किया गया।

ब्रह्मा के सम्बन्ध में भारत-सरकार ने जो नीति बर्ती उसे हम किसी प्रकार उचित अथवा न्याय-संगत नहीं कह सकते। हो सकता है कि थीबौ एक निर्दयी और निरंकुश शासक रहा हो। परन्तु वह एक स्वाधीन राजा था और किसी भी विदेशी राज्य के साथ सम्बन्ध स्थापित करने

ब्रह्मा
ब्रह्मपुत्र नदी
आसाम
गंगा नदी
ढाका
कलकत्ता
गंगा का मुहाना
चटगाँव
मनीपुर
मॉडले
आवा
सालवीन नदी
प्रोम
पीगू
रंगून
मर्तबान
मर्तबान की खाड़ी
श्याम
बंगाल की खाड़ी
अण्डमान
पोर्ट ब्लेअर
निकोबार
श्याम की खाड़ी
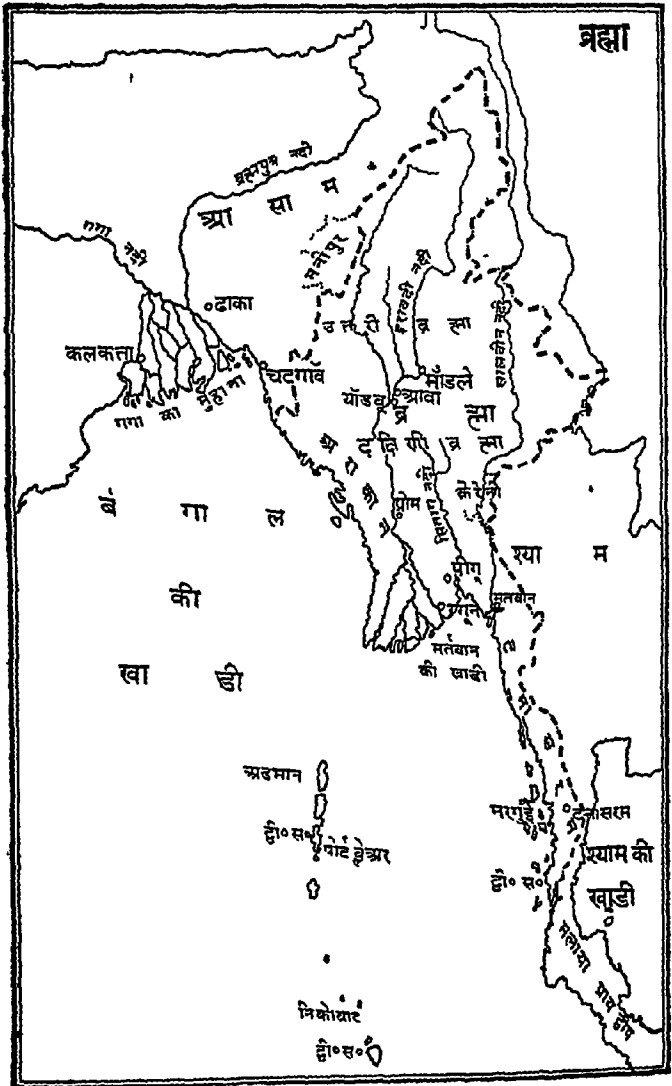
का और लिखा-पढ़ी करने का उसे पूर्ण अधिकार था। उत्तरी ब्रह्मा पर अधिकार स्थापित हो जाने से भारत-सरकार का चीन के साथ अधिक सम्पर्क हो गया और उसके राजनीतिक सम्बन्ध में कुछ परिवर्तन हुआ।

### संक्षिप्त सन्‌वार विवरण

| | |
|---|---|
| दोस्तमहम्मद की मृत्यु . .. .. | १८६३ ई० |
| समरकन्द पर रूस का अधिकार .. | १८६८ ,, |
| दजला (आक्सस) के राज्यो पर रूस का अधिकार .. | १८७३ ,, |
| रूस तथा टर्की के बीच युद्ध . .. | १८७६ ,, |
| अफ़ग़ानो की दूसरी लड़ाई .. .. .. | १८७८ ,, |
| शेरअली की मृत्यु . .. .. | १८७९ ,, |
| गडमक की संधि .. .. .. | १८७९ ,, |
| अब्दुर्रहमान का अमीर होना .. | १८८१ ,, |
| उत्तरी ब्रह्मा का अँगरेजी राज्य में मिलाया जाना .. | १८८६ ,, |
| ड्युरेंड कमीशन और अफ़गानिस्तान की हदबन्दी .. | १८९३ ,, |
| चितराल का मामला . .. | १८९५ ,, |
| मोहमन्दो का विद्रोह . | १८९७ ,, |
| उत्तरी और दक्षिणी ब्रह्मा का एक होना .. .. | १८९७ ,, |
| मोहमन्दो का दमन .. .. .. | १८९८ ,, |
| तीराह की चढ़ाई .. .. .. .. | १८९८ ,, |

## (३) आन्तरिक शासन-प्रबन्ध (१८६२-९९)

**लार्ड लारेन्स**—लार्ड लारेंस (Lord Lawrence) एक योग्य और अनुभवी शासक था। उसके प्रत्येक कार्य में सचाई और सुविचार-बुद्धि दिखाई देती थी। यद्यपि उसे सबसे अच्छी सफलता कूटनीति के क्षेत्र मे प्राप्त हुई परन्तु उसने देश के शासन का भी अच्छा प्रबन्ध किया।

किसानो के प्रति उसने सहानुभूति प्रकट की और उनकी स्थिति को सुधारने की चेष्टा की। सन् १८६६ ई० में पजाब का काश्तकारी कानून पास हुआ। इस कानन में काश्तकारो के मौरूसी हकों की स्पष्ट व्याख्या की गई और इसके पास हो जाने से जमीदारो को अपने इच्छानसार मालगुजारी बढाने का अधिकार न रहा। अवध के काश्तकारी कानून (सन १८६८ ई०) मे काश्तकारो को कुछ शर्तो पर मौरूसी हक मिल गया। खेतो में तरक्की दिखाने पर कुछ मुआविजा दिलाने की व्यवस्था भी की गई। सन १८६८ ई० में उडीसा मे बडा भारी दुर्भिक्ष पडा। उसके बाद ही बाढ आई जिससे लोग बहुत दुखी हुए। दूसरा दुर्भिक्ष बुन्देलखड और राजपूताना मे पडा। सरकार ने इस बात को स्वीकार किया कि अकाल के भीषण परिणामो मे प्रजा की रक्षा करना उसका कर्तव्य है। सार्वजनिक कार्य-विभाग (Public Works Department) की ओर वायसराय ने पूरा ध्यान दिया और आमदनी बढानेवाले कामो के लिए उसने ऋण लेने की प्रथा जारी की।

**लार्ड मेयो का आर्थिक सुधार**—लार्ड लारेंस के शासन-काल के अन्त में २५ लाख रुपये की कमी थी। लार्ड मेयो (Lord Mayo) ने शिक्षा और सार्वजनिक कार्यो का खर्चा घटा दिया। इनकमटैक्स को बढ़ाकर उसने ३ फी सदी कर दिया। इसका जनता ने बडा विरोध किया। टैक्स वसूल करने के समय सख्ती की जाती थी और घूस ली जाती थी। इससे लोगो को बडा कष्ट होता था। अमीर लोग तो टैक्स की अदायगी के समय अपना बचाव कर जाते थे परन्तु गरीबो को अधिकारियो का विरोध करने पर कडी सजा दी जाती थी। साल के अन्त में रुपयों की बचत हुई और दूसरे वर्ष उसने एक फी सदी के हिसाब से टैक्स लगाया।

**प्रान्तीय व्यवस्था**—इस समय तक प्रान्तीय सरकारो को अपनी आमदनी का रुपया खर्च करने का अधिकार नही था। रुपये की स्वीकृति के लिए उन्हें केन्द्रीय सरकार के पास प्रार्थना-पत्र भेजना पडता था। स्वीकृत

धन को भी वे अपनी इच्छानुसार खर्च नही कर सकती थी। बिना वायसराय की आज्ञा लिये कुछ भी रुपया खर्च नही किया जाता था। प्रान्तीय सरकारें मितव्ययता की ओर कुछ भी ध्यान नही देती थीं क्योंकि बचे हुए धन को उन्हें भारत-सरकार के खजाने में भेजना पड़ता था। इसका परिणाम यह हुआ कि वास्तव में खर्च के लिए जितने धन की आवश्यकता रहती थी उससे कही अधिक रुपये की माँग पेश की जाती थी। सबसे भारी रक़म उसी प्रान्तीय सरकार को मिलती थी जो बड़े आग्रह के साथ अपनी माँग पर जोर देती थी।

सन १८७० ई० में लार्ड मेयो ने प्रान्तीय सरकारो को एक नियत वार्षिक रक़म देना प्रारम्भ किया। हर पाँचवे वर्ष इस निर्दिष्ट धन के घटाने-बढ़ाने के बारे में विचार किया जा सकता था। कुछ निश्चित सीमा के अन्दर प्रान्तीय सरकारो को अपना बजट बनाने तथा प्राप्त आय को अपनी इच्छानुसार खर्च करने की आज्ञा दी गई। एक मद का बचा हुआ रुपया दूसरी मद में खर्च किया जा सकता था। यह व्यवस्था बहुत सफल और सन्तोषप्रद सिद्ध हुई और सन् १८७१ ई० में बजट में बचत दिखाई पड़ी।

नमक का कर—लार्ड मेयो के समय में, ८२ पौंड के मन पर साढ़े तीन रुपया नमक-कर लिया जाता था। इस कर का अधिकाश भार ग़रीबो के सिर पर पड़ता था। महँगी के कारण उन्हें नमक का खर्च कम कर देना पड़ा। लाखो आदमी बीमारी और खराब भोजन के कारण मर गये। लार्ड मेयो ने नमक को सस्ता कर दिया और जयपुर एव जोधपुर के राजाओ से साँभर झील का पट्टा ले लिया। पंजाब की नमक की खानें भी खोली गई और अवध में नमक बनाने की पुरानी प्रथा फिर से जारी की गई।

कृषि—एक कृषि-विभाग खोला गया। किसानो और ज़मींदारो को खेती करने के नये उपायो की उपयोगिता बतलाने के लिए आदर्श खेत (Model farms) कायम किये गये। नहरो की संख्या बढ़ाई

गई और पजाब में एक अतिरिक्त कर लगाया गया जिसका देना सबके लिए अनिवार्य था।

**शिक्षा और सामाजिक सुधार**—शिक्षा के प्रचार में वायसराय ने बडी मदद दी। प्रान्तो मे प्राइमरी स्कूलो की सख्या बढ गई। राजकुमारो तथा रईसो के लडको की शिक्षा के लिए अजमेर में एक कालेज स्थापित किया गया। किन्तु उसका कार्य ठीक से १८८५ ई० के पहले नही प्रारम्भ हुआ। देशी नरेशो न इस योजना का समर्थन किया और शिक्षा के लाभो को पूर्णतया स्वीकार किया।

नये विचारो के प्रभाव से भारतीय समाज अपना रूप बडे वेग के साथ बदल रहा था। बगाल में, ब्रह्म-समाज का आन्दोलन बडी तेजी के साथ अपनी उन्नति कर रहा था। केशवचन्द्र की देखादेखी हजारो आदमी इस समाज के अनुयायी बन गये।

ब्रह्म-समाज के सदस्यो की सुविधा के लिए एक विवाह-सम्बन्धी क़ानून पास किया गया। सन १८७० ई० मे छोटी छोटी लडकियो की हत्या को रोकने के लिए एक कानून पास हुआ और दड-विधान में सशोधन किया गया। अवध के तालुकदारो के सुभीते के लिए एक कानून पास किया गया। इस कानन ने यह व्यवस्था दी कि उनका कर्ज चुकाने के लिए उनकी रियासतो का प्रबन्ध सरकार अपने हाथो मे ले ले।

**लार्ड मेयो की मृत्यु**—जनवरी सन् १८७२ ई० में, लार्ड मेयो कालेपानी के अपराधियो की बस्ती को देखने के लिए अन्डमन द्वीप गया। वहा एक मुसलमान ने उसके पेट मे कटार भोक कर उसका प्राणान्त कर दिया। उस व्यक्ति को तीन वर्ष पूर्व कत्ल के अपराध में कालेपानी की सजा मिल चुकी थी। लार्ड मेयो आयर्लेंड का निवासी था। उसका व्यक्तित्व बडा आकर्षक था। उसकी मृत्यु का शोक चारो ओर मनाया गया।

**लार्ड नार्थब्रुक की आर्थिक नीति**—लार्ड मेयो के आर्थिक सुधारो ने लोगो के मन मे सन्देह उत्पन्न कर दिया। इनकमटैक्स लोगो को अच्छा नही लगा। प्रान्तीय सरकारो को बजट बनाने का जो अधिकार दिया गया

था उसकी काफी क़द्र नही हुई। इनकमटैक्स बन्द कर दिया गया और स्थानीय सरकारो को इस बात की ताकीद की गई कि अब किसी प्रकार के टैक्स का भार न बढने पावे।

लार्ड नार्थब्रुक को आर्थिक समस्याओं का अच्छा ज्ञान था। उसने कभी कभी सर जान स्ट्रैची (John Strachey) जैसे विशेषज्ञो के परामर्श के विरुद्ध काम कर डाला। वह 'स्वतन्त्र व्यापार' का समर्थक था। आयात-कर को घटा कर उसने ५ फी सदी कर दिया। तेल, चावल, नील तथा लाख के अतिरिक्त अन्य वस्तुओ पर से निर्यात-कर उठा दिया गया। उससे कर को और कम करने के लिए कहा गया परन्तु उसने इनकार कर दिया और कहा कि ऐसा करने से आमदनी कम हो जायगी।

सन १८७३-७४ ई० में वृष्टि न होने के कारण बगाल तथा विहार में बडा भारी अकाल पड गया। पश्चिमोत्तर प्रान्त तथा अवध के कुछ भागो में भी इस सूखा का बुरा प्रभाव पडा। अकाल-पीडितो की सहायता के लिए वायसराय ने कुछ उपाय किये। अफसरो को उसने आदेश किया कि भोजन के अभाव के कारण कोई व्यक्ति मरने न पाये। एक स्थान से दूसर स्थान तक अनाज ले जाने के लिए उसने रेलवे कम्पनियो को किराया कम करन के लिए उत्साहित किया। इस अकाल में पीडितो को सहायता देने में ६५ लाख रुपया खर्च किया गया।

**शिक्षा और सामाजिक सुधार**—स्कूलो की संख्या बढ गई। चिकित्सा-शास्त्र की पढाई का अधिक प्रचार हुआ। विज्ञान की उन्नति हुई। कलकत्ता में एक विज्ञान-परिषद् स्थापित की गई। सन् १८७५ ई० में, लोगों को विभिन्न प्रकार के माल तैयार करने के बढिया तरीक़े सिखान के लिए लाहौर में कला का एक विद्यालय स्थापित किया गया। पादरिओ की स्त्रियाँ भारतीय लोगो के घरो में आने-जाने लगी। लोगो का सामाजिक दृष्टिकोण बदल गया और स्त्रियाँ स्वतन्त्रता प्राप्त करने की इच्छा करन लगी। कुछ हिन्दुओ ने बहु-विवाह की प्रथा की निन्दा की और वे अपनी

लड़कियों को अँगरेजी स्कूलों मे भेजने लगे। समाज-सुधारको ने अपनी सम्मति प्रकट की कि विधवा-विवाह तथा समुद्र-यात्रा शास्त्र-विरुद्ध नही हैं।

समाचार-पत्रो की सख्या बढ़ गई। सरकारी कर्मचारीगण तो आलोचना से सदैव घबडाते हैं। उन्होने समझा कि इन पत्रो से जनता की दृष्टि में सरकार की प्रतिष्ठा कम होती है।

प्रिन्स आफ वेल्स का आगमन—प्रिन्स आफ वेल्स (Prince of Wales) जो पीछे से एडवर्ड सप्तम के नाम से गद्दी पर बैठे, सन् १८७५ ई० में भारत आये। जनता तथा नरेशो ने बडे आनन्द और धमधाम के साथ उनका स्वागत किया। सभी श्रेणी के लोगो ने इँग्लेंड के युवराज के प्रति अपनी राजभक्ति का परिचय दिया। युवराज अनेक स्थानो में गये और सब जगह उनके साथ बडे आदर और मित्रता का व्यवहार किया गया।

लार्ड नार्थब्रुक का इस्तीफा—अफग़ानो के प्रश्न तथा रुई के महसूल के सम्बन्ध में इँगलेंड की सरकार के साथ लार्ड नार्थब्रुक का मतभेद हो गया और सन १८७६ ई० में उसने अपने पद से इस्तीफा दे दिया। उसके बाद लार्ड लिटन (Lord Lytton) वायसराय हुआ।

लार्ड लिटन का शासन-प्रबन्ध—लार्ड लिटन बडा योग्य पुरुष था। वह कवि और कूटनीतिज्ञ था। किन्तु भारत के वायसराय में जिन गुणो की आवश्यकता थी वे उसमे न थे। वायसराय को चतुर और बुद्धिमान् होना चाहिए। इसके अतिरिक्त उसे उन लोगो के प्रति सहानुभूति होनी चाहिए जिन पर वह शासन करने के लिए नियुक्त किया जाता है।

दिल्ली-दर्बार—लार्ड बेकन्सफील्ड (Lord Beaconsfield) ने जो इँगलेंड का प्रधान मन्त्री था कहा कि रूस के साथ युद्ध रोकने का सबसे अच्छा उपाय रानी को सम्राज्ञी बना देना है। उसके इस प्रस्ताव को पार्लियामेंट ने स्वीकार कर लिया। सन् १८७७ ई० में नये वर्ष के पहले दिन लार्ड लिटन ने दिल्ली मे एक शानदार दर्बार किया। इस दर्बार

में रानी विक्टोरिया को सम्राज्ञी की उपाधि से विभूषित किया गया। सभी बड़े बड़े स्थानो में दर्बार किए गये और राजभक्त व्यक्तियो को उपाधियाँ दी गई। उसी साल वायसराय ने अलीगढ में एम० ए० ओ० कालेज की नीव डाली।

आर्थिक सुधार—नमक के कर का समुचित प्रबन्ध नही किया गया। टैक्स से बचने के लिए नमक को छिपा कर ले जाने का रवाज हो गया। किन्तु वह आमदनी का एक खास जरिया था इसलिए सरकार उसकी उपेक्षा नही कर सकती थी। जयपुर और जोधपुर से नमक की झीलो का अधिकार पहले ही से ले लिया गया था। अब सर जॉन स्ट्रैची ने अन्य राज्यो के साथ, उनके नमक के साधनो पर अपना अधिकार करने के लिए, समझौता करना प्रारम्भ किया। नमक का कर अब भी बना रहा किन्तु मल्य की विषमता बहुत कुछ दूर हो गई। वायसराय ने सोचा कि एक मन नमक पर ढाई रुपया कर अधिक नहीं है। सन् १८७९ ई० में लंकशायर के सौदागरो के आन्दोलन करने पर मोटे कपड़े पर से रुई के कर उठा दिये गये। कौंसिल के सदस्यो ने इसका विरोध किया परन्तु गवर्नर-जनरल ने उनके बहुमत को रद कर दिया। भारतीय लोकमत उक्त करो को उठा देने के विरुद्ध था।

प्रान्तो को मिला हुआ स्वीकृत धन (Provincial grants)—लार्ड मेयो ने प्रान्तीय सरकारो को यह अधिकार दिया था कि स्वीकृत धन को वे जिस तरह से चाहें खर्च करें और यदि उसमे से कुछ रक़म बचे तो उसे प्रान्त के हित में ही लगा दें। किन्तु इस व्यवस्था से कोई मितव्ययता नही हुई। सन् १८७८ ई० में यह निश्चय किया गया कि स्थानीय सरकारो के खर्च के लिए आय की कुछ मदें—जैसे आबकारी-कर, स्टाम्प-कर आदि—निर्दिष्ट कर दी जायें ताकि उन्हें शासन-प्रबन्ध म कुछ सुधार और उन्नति करने के लिए प्रोत्साहन मिले। कभी कभी इस प्रकार निर्दिष्ट की हुई आय अपर्याप्त सिद्ध होती थी और उस कमी की पूर्ति के लिए प्रतिवर्ष कुछ धन केन्द्रीय सरकार के

कोष में से दे दिया जाता था। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रान्तीय सरकारो ने बहुत-सा धन बचा लिया। अफ़गानो की दूसरी लड़ाई के बाद यह मालूम हुआ कि प्रान्तीय सरकारो के ख़ज़ाने भरे हुए हैं। और केन्द्रीय सरकार के पास रुपया नही है। सन् १९१२ ई० में लार्ड हार्डिंज के समय में उक्त प्रान्तीय व्यवस्था को स्थायी रूप दे दिया गया।

**वर्नाक्यूलर प्रेस ऐक्ट**—मार्च सन् १८७८ ई० में वायसराय ने अपनी कौंसिल से वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट पास करा लिया। इस क़ानून ने समाचार-पत्रो की स्वतन्त्रता का अपहरण कर लिया। स्मरण रखना चाहिए कि यह स्वतन्त्रता ४३ वर्ष पूर्व लार्ड मेटकाफ ने दी थी। समाचार-पत्रो के सम्पादक ज़िले के हाकिमो के नियन्त्रण में कर दिये गये। ये हाकिम कभी कभी उक्त क़ानून का प्रयोग बडी सख्ती के साथ करते थे। लार्ड लिटन ने उचित आलोचना तथा राजद्रोह के बीच कोई विभाजक रेखा नही खीची। कुछ इने-गिने ग़ैर ज़िम्मेदार सम्पादको के अपराध के कारण सारे समाचार-पत्रों को दड दिया गया। आन्दोलन दबा दिया गया। वायसराय के उतावले कार्य से एक दूसरी बुराई पैदा हुई जो और भी अधिक हानिकर थी।

**क़ानून-द्वारा निर्धारित सिविल सर्विस**—लार्ड लिटन ने अपने शासन-काल के अन्तिम वर्ष में सन् १८५८ ई० के राजकीय घोषणा-पत्र में उल्लिखित सिद्धान्त को कार्यरूप में परिणत किया। उसमें लिखा था कि ब्रिटिश भारत का कोई भी व्यक्ति अपनी जाति, वर्ण अथवा धर्म के कारण किसी सरकारी ओहदे से वचित नही किया जायगा। सन १८५३ ई० में भारतीयो के लिए सिविल सर्विस की परीक्षा का द्वार खोल दिया गया। किन्तु परीक्षा लन्दन में होती थी इस कारण बहुत ही थोडे भारतीय सिविल सर्विस में प्रवेश कर सके। अनेक प्रतिभाशाली युवक जाति-पाँत के कारण इँगलेंड न जा सके। इसका परिणाम यह हुआ कि सन् १८७८ ई० में कवनैन्टेड (Covenanted) सिविल सर्विस में केवल ९ भारतीय थे। लार्ड लारेंस द्वारा चलाई हुई छात्रवृत्ति

की प्रणाली व्यावहारिक रूप से सन्तोषप्रद नही सिद्ध हुई। इसलिए सन् १८७८ ई० मे यह घोषणा की गई कि कवनैन्टेड सिविल सर्विस में लिये गये कुल व्यक्तियो में से अधिक से अधिक ⅙ भारतीय होंगे। उनका चुनाव स्थानीय सरकारे करेंगी और इस चुनाव को स्वीकार अथवा अस्वीकार करने का अधिकार गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल को होगा। चुने हुए लोगों का दो साल उम्मेदवारी करनी पड़ती थी। वे स्टेटयुटरी सिविलियन (Statutory Civilian) कहलाते थे।

लार्ड लिटन की नीति—लार्ड लिटन ने सन १८८० ई० मे पद-त्याग कर दिया। वह बड़ा योग्य और प्रतिभाशाली व्यक्ति था। किन्तु उसकी राजनीतिज्ञता बुद्धिमानी और गम्भीरता से खाली थी। अफग़ानो के प्रति उसने जो नीति बर्ती थी वह उसकी बड़ी भारी भूल थी। सरकारी कर्मचारियो और ग़ैर-सरकारी व्यक्तियो ने जो उसकी आलोचना की वह ठीक थी। अफग़ान-युद्ध में धन और जन की बड़ी बर्बादी हुई। जैसा लार्ड रिपन ने कहा था कि अफ़ग़ानिस्तान को अँगरेज़ी राज्य में मिलाना चन्द्रमा को मिलाने के समान था। परन्तु यह मानना पड़ेगा कि लार्ड लिटन के दिमाग मे उपयोगी बातो को सोचने की शक्ति थी। उसने भारत के लिए सोने का सिक्का स्वीकार करने की सलाह दी और यह भी प्रस्ताव किया कि पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्त बनाया जाय। उन यूरोपीय लोगों के आचरण की उसने निन्दा की जो अपने हिन्दुस्तानी नौकरो के साथ मार-पीट करते थे। उसके दर्बार ने देशी नरेशो की राजभक्ति को दृढ़ कर दिया। किन्तु यह दर्बार ऐसे समय में किया गया था जब कि देश में भीषण अकाल पड रहा था। वर्नाक्यूलर प्रेस-ऐक्ट उसका दूसरा उतावला कार्य था। इस ऐक्ट को पास करके उसने शिक्षित भारतवासियों को अपने विरुद्ध कर लिया।

एक उदार वायसराय—लार्ड रिपन (Lord Ripon) एक उदार राजनीतिज्ञ था। वह भारतवासियो की आकाक्षाओ के प्रति सहानुभूति रखता था और भारतीय शासन में अँगरेजी शासन के उदार भावो

का समावेश करना चाहता था। उसे प्रतिनिधि-संस्थाओं (Representative Institutions) की उपयोगिता में बड़ा विश्वास था। वह चाहता था कि शासन के कार्य में भारतीयों को भाग दिया जाय। किन्तु बड़े बड़े सरकारी कर्मचारी इस विचार से सहमत न थे। उनका मत था कि भारत की परिस्थिति स्वायत्त शासन और जनसत्तात्मक शासन के विकास के उपयुक्त नहीं है। परन्तु वायसराय का विचार दृढ़ था। उसने अपनी नीति को बड़े साहस के साथ कार्यान्वित किया।

लार्ड रिपन

आर्थिक सुधार—उसने स्वतन्त्र व्यापार को प्रोत्साहित किया और इस बात के लिए उद्योग किया कि नमक, शराब और हथियारों के अतिरिक्त विदेशों से आनेवाली अन्य वस्तुओं पर से ५ फ़ी सदी का कर उठा दिया जाय। सारे देश में नमक का टैक्स कम कर दिया गया। कृषि-विभाग का फिर से संगठन किया गया। बंगाल में भी ज़मींदारों तथा काश्तकारों के अधिकार निश्चित और सुरक्षित किये गये।

स्थानीय स्वायत्त शासन (Local Self-Government)—लार्ड रिपन का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण सुधार स्थानीय स्वायत्त शासन की योजना को काम में लाना था। सन १८८३-८५ ई० के बीच उसने कई क़ानून पास कराये। इन क़ानूनों ने डिस्ट्रिक्ट और लोकल बोर्डों

की स्थापना की। म्युनिसिपल बोर्डों के अधिकार बढा दिये गये। उनको यह अधिकार भी दिया गया कि जहाँ कही सम्भव हो वे अपना चयरमैन चुन लें। इन बोर्डों के सुपुर्द कुछ धन भी कर दिया गया जिसे वे सार्वजनिक कार्यों—स्वास्थ्य तथा शिक्षा आदि—में खर्च कर सकते थे। बाद को निर्वाचन का सिद्धान्त काम में लाया गया। सदस्यों को किराया और टैक्स देनेवाले चुनते थे। स्थानीय सरकारो ने अनेक अधिकारो को अपने हाथ में सुरक्षित रक्खा ताकि बोर्डों को अपना काम सुचारु रूप मे करने के लिए वे बाध्य कर सकें और उन्हे अनुचित काम करने से रोक सकें। यद्यपि स्वायत्त शासन की प्रणाली बिलकुल निर्दोष नही सिद्ध हो सकी तथापि इसमें सन्देह नही कि उसके द्वारा लोगो को राजनीतिक शिक्षा मिली। शिक्षित लोगो ने लार्ड रिपन की इस नीति का स्वागत किया। अभी तक वह स्थानीय स्वायत्त शासन का जन्मदाता समझा जाता है।

शिक्षा और कानून—लार्ड रिपन ने सन् १८८१ ई० में वर्नाक्यूलर प्रेस ऐक्ट को रद कर दिया। उसी साल सरकार की शिक्षा-नीति पर विचार करने के लिए एक कमीशन नियुक्त हुआ। इस कमीशन का अध्यक्ष, डब्ल्यू० डब्ल्यू० हन्टर (W W Hunter) बनाया गया। बाद को उसे 'सर' की उपाधि मिली। कमीशन की सिफारिशो के आधार पर एक प्रस्ताव तैयार किया गया परन्तु उसे कार्यरूप मे परिणत करने के पूर्व ही लार्ड रिपन ने इस्तीफा दे दिया।

फैक्टरियो मे काम करनेवाले मजदूरो के जीवन में सुधार करने का प्रयत्न किया गया। सन् १८८१ ई० में एक ऐक्ट पास किया गया जिसके अनुसार यह नियम कर दिया गया कि सात और बारह वर्ष की अवस्था के बीच के बच्चो से प्रतिदिन ६ घटे से अधिक काम नही लिया जा सकता। यह भी नियम हो गया कि उन सब मशीनो को—जिनसे प्राण जाने का अथवा शरीर के किसी अवयव के कट जाने की सम्भावना हो—ठीक से बन्द कर रक्खा जाय।

किन्तु शीघ्र ही 'इल्वर्ट विल' पर एक वडा तूफान उठ खडा हुआ और वायसराय को उससे वडा कष्ट हुआ। पुराने जाव्ता फ़ौजदारी के अनुसार कलकत्ता, वम्वई तथा मदरास नगर के वाहर कोई भी हिन्दुस्तानी मजिस्ट्रेट अथवा जज किसी भी यूरोपीय व्यक्ति का जो ब्रिटिश सरकार की प्रजा हो, मुक़दमा नही कर सकता था। अव अनेक भारतीय कवनैन्टेड सिविल सर्विस में ऊँचे ऊँचे ओहदो पर पहुँच चुके थे। इसलिए गोरो और भारतीयो के वीच का उपरोक्त भेद-भाव अन्यायपूर्ण दिखाई देने लगा। भारतीय जनता उसे पसन्द नही करती थी। सन् १८८३ ई० में, सी० पी० इल्वर्ट (C.P Ilbert) ने जो गवर्नर-जनरल की कौंसिल का क़ानूनी मेंवर था, इस भेद-भाव को मिटाने की चेष्टा की। यरोपीय समाज में वडा तहलका मच गया। गैर-सरकारी यूरोपीय व्यक्तियो ने इस विल का घोर विरोध किया। यही नही उन्होने वायसराय का अपमान तक किया। शिक्षित लोगो ने यूरोपीय लोगो के आन्दोलन के विरुद्ध एक दूसरा आन्दोलन किया और विल को वडी दूरदर्शिता और राजनीतिज्ञता का काम वतला कर उसका समर्थन किया। दोनो ओर घोर जातीय वैमनस्य का भाव फैल गया और वडी गाली-गलौज हुई। अत में सरकार को हार माननी पडी और एक समझौता किया गया। समानता के सिद्धान्त का जिसके लिए लार्ड रिपन लडा था परित्याग कर दिया गया। समझौता यह हुआ कि प्रत्येक यूरोपीय अभियक्त जो अँगरेजी सरकार की प्रजा हो अपना मुकदमा एक जूरी से जिसमे आधे यूरोपीय अथवा अमरीकन लोग हो कराने का दावा कर सकता है।

**लार्ड रिपन का पदत्याग**—दिसम्वर सन् १८८४ ई० में लार्ड रिपन ने इस्तीफ़ा दे दिया। उसकी विदाई के समय शिक्षित भारतवासियो की ओर से उसे सैकडो मानपत्र दिये गये। शिमला से लेकर वम्वई तक उसकी यात्रा एक 'विजय का जलूस' हो गई जिसमें उत्साह तथा राजभक्ति के अपूर्व दृश्य दिखाई दिये। सारे देश में सार्वजनिक सभायें की गईं। इन सभाओ म प्रतिष्ठित व्यक्तियो ने उसकी हितकारी तथा

बुद्धिमत्ता-पूर्ण नीति की प्रशसा की। इसके पहले किसी भी वायसराय को भारतीय जनता की ओर से इतना अधिक प्रेमपूर्ण सम्मान नही प्राप्त हुआ था।

**लार्ड डफरिन, एक महान् कूटनीतिज्ञ**—लार्ड रिपन के बाद लार्ड डफरिन (Lord Dufferin) वायसराय होकर आया। वह बडा कूटनीतिज्ञ था और सार्वजनिक मामलो का उसे बडा अनुभव प्राप्त था। इसके अतिरिक्त वह एक ओजस्वी वक्ता भी था और उसका शिष्टाचार बडा ही मनोहर था। इलबर्ट बिल के सम्बन्ध मे होनेवाले कटुतापूर्ण वाद-विवाद के कारण जो मनोमालिन्य उत्पन्न हो गया था उसे दूर करने के लिए वह उपयुक्त था। उसका बहुत-सा समय विदेशो के मामलो में खर्च होता था परन्तु तो भी उसने शासन-प्रबन्ध की ओर काफी ध्यान दिया।

**भूमि-सम्बन्धी कानून**—नये वायसराय ने बगाल, अवध और पजाब की भूमि-समस्या पर बडा ध्यान दिया। सन् १८८५ ई० मे बगाल का काश्तकारी क़ानून पास हुआ। इसमे अब जमीदारो के लिए यह सम्भव नहीं रहा कि वे काश्तकारो को बेदखल कर दें अथवा इनका लगान बढा दें। सन् १८८६ ई० के अवध के कानून ने काश्तकारो को अपने खेतो मे तरक्की करने और बेदखल किये जाने पर मुआविज़ा मिलने का अधिकार दिया था। इस कानून के अनुसार काश्तकार सात साल तक अपने खेत पर क़ब्ज़ा रख सकता था। सन् १८८७ ई० के पजाब के काश्तकारी कानून ने ज़मीदारो और काश्तकारो के पारस्परिक सम्बन्ध को निश्चित कर दिया। लगान और तरक्की के मुआविज़े का उचित निर्णय करने की भी व्यवस्था की गई। यह सत्य है कि भूमि-सम्बन्धी क़ानूनो को पास करने का अधिक श्रेय स्थानीय अफसरो को प्राप्त था परन्तु वायसराय ने भी इस कार्य में सराहनीय भाग लिया था।

**ग्वालियर का क़िला वापस दिया गया**—सन् १८८६ ई० में ग्वालियर का क़िला सिन्धिया को वापस कर दिया गया और झाँसी नगर

के बदले मुरार छोड दिया गया। सिन्धिया बहुत प्रसन्न हुआ और इस प्राचीन दुर्ग की प्राप्ति से उसकी प्रतिष्ठा और भी बढ गई।

**महारानी विक्टोरिया की जयन्ती**—सन् १८८७ ई० में महारानी विक्टोरिया की जुबिली बडी धूमघाम के साथ मनाई गई। सरकारी और गैर-सरकारी सभी लोग उसके लिए मगलकामना करने में सम्मिलित हुए।

**शिक्षा**—शिक्षा ने कुछ उन्नति की। सन १८८२ ई० में पजाब-विश्वविद्यालय तथा सन् १८८७ ई० मे इलाहाबाद-विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। सर आलफ्रेड ल्याल (Alfred Lyall) प्रयाग-विश्वविद्यालय के प्रथम चान्सलर नियुक्त हुए।

मार्च सन् १८८८ ई० में घरेलू कारणो के वश लार्ड डफरिन ने इस्तीफा दे दिया। उसके बाद लार्ड लैन्सडौन (Lord Lansdowne) वायसराय होकर आया।

**शासन-सुधार**—सन १८५७ ई० के सिपाही-विद्रोह के समय से भारतीय लोगो में राष्ट्रीय जाग्रति पैदा करने के लिए बहुत-सी बातें हुई थीं—कानून बनाने में भारतीयो का सहयोग, स्थानीय स्वायत्त शासन-सम्बन्धी कानून का पास होना, प्रेस-ऐक्ट का रद हो जाना, स्त्री-शिक्षा की उन्नति, हिन्दू-मुसलमानो के आर्थिक और सामाजिक सुधार—इन सब कारणो से भारतवासियो में अशान्ति फैली और उनकी राष्ट्रीय आकाक्षायें बढ गईं। भारत की राष्ट्रीय महासभा (काग्रेस) का प्रथम अधिवेशन सन १८८५ ई० में बम्बई मे हुआ। कई प्रस्ताव पास किये गये। प्रधान माँग यह थी कि व्यवस्थापिका सभाओ के मेम्बरो की सख्या बढाई जाय। लार्ड डफरिन ने इस माँग का समर्थन किया और विधान में कतिपय परिवर्तन करने की सलाह दी। सन् १८९२ ई० मे लार्ड क्रास (Lord Cross) का इण्डियन कौंसिल ऐक्ट पास हुआ। इस एक्ट ने भारत-सरकार की व्यवस्थापिका सभाओ के सदस्यों की सख्या बढा दी।

तीनों अहातो की कौंसिलो की भाँति एक कौंसिल सयुक्त-प्रान्त में पहले ही (सन १८८६ ई०) में स्थापित की जा चुकी थी।

इस सुधार का उद्देश्य गैर-सरकारी भारतीयो को शासन में भाग लेने के लिए अवसर-प्रदान करना था। यह नियम कर दिया गया कि वायसराय की कौंसिल में अतिरिक्त सदस्यो की सख्या १६ तक बढाई जा सकती थी। वायसराय को नामजदगी के लिए नियम बनाने का अधिकार दिया गया।

प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओ के सदस्यो की सख्या बढा दी गई। गैर-सरकारी सदस्य, म्यूनिसिपल बोर्डों, विश्वविद्यालयो की सैनेट तथा अनेक व्यापारिक समितियो के द्वारा नामजद किये गये। निर्वाचन-सिद्धान्त का अवलम्बन तो नही किया गया किन्तु प्रतिनिधि-प्रणाली का सूत्रपात हो गया। व्यवस्थापिका सभा बजट पर वाद-विवाद कर सकती थी और मेम्बर कुछ शर्तों के भीतर प्रश्न भी पूछ सकते थे। इन परि-वर्तनो से भारतीय लोकमत सन्तुष्ट नही हुआ किन्तु इसमें सन्देह नही कि उनके द्वारा व्यवस्थापिका सभाओ का कार्यक्षेत्र अधिक विस्तृत हो गया।

**अन्य परिवर्तन**—लार्ड लैन्सडौन के शासन-काल में कई और महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। सन् १८८६-८७ ई० में जो 'पब्लिक सर्विसेज कमीशन' नियुक्त किया गया था उसकी सिफारिशो को सन् १८९१ ई० में स्वीकार कर लिया गया। सिविल सर्विस तीन श्रेणियो में विभक्त कर दी गई—अखिल भारतीय (Imperial), प्रान्तीय (Provincial) तथा अधीनस्थ (Subordinate)। स्टैट्यूटरी सिविल सर्विस तोड दी गई और यह नियम बना दिया गया कि इम्पीरियल सर्विस में वे लोग लिये जायें जो लन्दन की सिविल सर्विस की परीक्षा को पास करें। प्राविन्शल सर्विस में वे व्यक्ति लिये जाते थे जो परीक्षा पास करते थे अथवा जिन्हें मातहती नौकरियो से तरक्की मिलती थी। सन् १८९३ ई० मे पार्लिया-मेंट ने इस आशय का एक प्रस्ताव पास किया कि इडियन सिविल सर्विस

की परीक्षा भारत और इँगलेंड दोनो जगह् एक साथ ली जाय। किन्तु यह प्रस्ताव कार्यान्वित नही हुआ।

**सिक्का-सम्बन्धी सुधार**—लार्ड लैन्सडौन का सिक्का-सम्बन्धी सुधार भी उल्लेखनीय है। भारत के प्रचलित सिक्को का आधार चाँदी का रुपया था। जब से सार्वजनिक उपयोग के लिए टकसाल खोली गई तब से रुपये का मूल्य सोने पर निर्भर रहने लगा। सन् १८९० ई० में रुपये का मूल्य घट कर १ शिलिंग ४ पेन्स तथा सन् १८९३ ई० में एक शिलिंग दो पेन्स हो गया। इससे भारतीय सरकार की आर्थिक स्थिति को बडा धक्का पहुँचा क्योकि उसे इँगलेंड में अपना ऋण सोने के सिक्को में चुकाना पडता था। अन्त मे सन १८९३ ई० में टकसालो में अधिक रुपया ढालना बन्द कर दिया गया। 'सावरेन' (गिन्नी) तथा अर्द्ध-सावरेन का विनिमय मूल्य क्रमश १५ और ७½ रुपया हो गया। किन्तु विनिमय की दर की अस्थिरता के कारण सन् १८९८-९९ ई० में रुपये का मूल्य १ शिलिंग ४ पेन्स हो गया। अन्त में एक कानून पास हुआ और सावरेन तथा अर्द्ध-सावरेन को क्रमश १५ और ७½ रुपये पर ग्राह्य ठहरा दिया गया। यह नियम कर दिया गया कि ऋण का चुकौता चाहे चाँदी के सिक्को में किया जाय चाहे सोने के सिक्को में। इस व्यवस्था का परिणाम यह हुआ कि भारत-सरकार की आर्थिक स्थिति बहुत सुधर गई और कुछ बचत भी हो गई।

**लार्ड एलगिन द्वितीय का शासन**—सन् १८९४ ई० में लार्ड एलगिन द्वितीय वायसराय होकर आया। उसमें कोई बडा व्यक्तिगत गुण अथवा प्रतिभा न थी। अपने शासन-काल में उसने कोई उल्लेखनीय कार्य नही किया। तीनो अहातो के लिए तीन सेनापतियो को रखने की प्रथा तोड दी गई। अब से समस्त भारत के लिए केवल एक ही सेनापति रक्खा जाने लगा। अफीम के कमीशन ने सिफारिश की कि चीन में अफीम का भेजना एकदम बन्द न किया जाय। लार्ड एलगिन की सरकार को एक बडी भारी विपत्ति का सामना करना पडा। सन् १८९६ ई० में बम्बई

में प्लेग फैल गया। नगर के उन भागो मे जो खूब सघन ग्राबाद थे बहुत-से ग्रादमी मरने लगे। भय के मारे हजारो ग्रादमी शहर के बाहर भाग गये। धीरे धीरे यह भीषण रोग प्रत्येक नगर में फैल गया ग्रौर लाखो मनुष्य काल के ग्रास हुए। उसी समय के लगभग (सन् १८९६-९७ ई०) सयुक्त-प्रान्त, मध्य-प्रान्त, बिहार तथा पजाब के कुछ जिलो में घोर ग्रकाल पड गया। पजाब के गवर्नर सर ऐंटनी मैकडानेल (Antony Macdonnell) ने ग्रकाल-पीडितो को सहायता पहुँचाने के लिए बडी कोशिश की। एक ग्रकाल-कमीशन नियुक्त किया गया। कमीशन ने ग्रपनी रिपोर्ट प्रकाशित की ग्रौर उसमें ग्रकाल से बचने के साधनो की विवेचना की।

राष्ट्रीय ग्रान्दोलन—इडियन नेशनल काग्रेस—भारतवर्ष ग्रनेक जातियो, धर्मो तथा भाषाग्रो का देश है। राजनीतिक, धार्मिक तथा सास्कृतिक एकता का ग्रादर्श भारतवासियो को पहले से ज्ञात था। किन्तु १८वी शताब्दी में मुग़ल-साम्राज्य के पतन के बाद ग्रनेक राज्य ग्राविर्भूत हो गये जो सदा ग्रापस में लडा झगडा करते थे। कोई दृढ केन्द्रीय सरकार नही थी, इसलिए राजनीतिक एकता का ग्रभाव था। शिक्षा के ग्रभाव ने लोगो के लिए यह ग्रसम्भव कर दिया कि वे एक ऐसे समाज का सगठन करते जिसमें विभिन्न जाति, मत तथा भाषा के लोग समष्टिरूप में एक होकर जीवन-निर्वाह करते हो। लोगो में न देश-भक्ति थी ग्रौर न राष्ट्रीयता का भाव। मराठो, सिक्खो, राजपूतो तथा मुसलमानो ने सम्मिलित होकर किसी एक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्न नही किया। वे ग्रपने हितो का देश के हितो के साथ एकाकार नही कर सके। उन्नीसवी शताब्दी के मध्य में लोगो में जाग्रति उत्पन्न हुई। इस जाग्रति के ग्रनेक कारण थे। पहला कारण यूरोपीय लोगो का इस देश में ग्रागमन था। वे ग्रपने साथ नये विचार ग्रौर नये ग्रादर्श लाये। दूसरा कारण यह था कि ग्रंगरेजो ने सारे भारत को एक शासन-सूत्र में बाँध दिया था। सारा देश एक शासन के ग्रन्तर्गत हो गया ग्रौर सर्वत्र शिक्षा, कानून तथा

न्याय की एक-सी पद्धति प्रचलित हो गई। आने जाने की सुविधाओ के वढ जाने से देश के विभिन्न भागो के लोगो के लिए यह सम्भव हो गया कि वे एक दूसरे के साथ अधिक सम्पर्क में आवें और सब एक ही दृष्टिकोण का विकास करें। जाति और धर्म के पुराने वन्धन ढीले पड गये। सामाजिक द्वेष का भाव विलीन होने लगा। विश्वविद्यालयो की स्थापना से लोगो के लिए पाश्चात्य विज्ञान और सस्कृति का ज्ञान प्राप्त करना सहज हो गया और वे लोकसत्तात्मक सस्थाओ को चाहने लगे। वगाल में राजा राममोहन राय ने सती-प्रथा का विरोध किया और व्रह्मसमाज की स्थापना की। यह समाज मूर्तिपूजा तथा जाति-पाँत के भेद-भाव के विरुद्ध था। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वैदिक धर्म का पुनरुद्धार करने का वीडा उठाया। उन्होने आर्यसमाज स्थापित किया और लोगो को वैदिक धर्म का उपदेश दिया। उन्होने मूर्तिपूजा की निन्दा की और अनेक धार्मिक तथा सामाजिक सुधारो की ओर लोगो का ध्यान आकर्पित किया। सन् १८७५ ई० मे कर्नल आलकाट (Colonel Olcott) और मैडम ब्लावस्की (Madame Blavatsky) ने थियोसोफिकल सोसाइटी की स्थापना की। इस सोसाइटी ने सव धर्मों की सत्यता तथा विश्ववन्धुत्व (Brotherhood) के सिद्धान्त पर ज़ोर दिया। इसने प्राचीन हिन्दू-आदर्शों को एक नये रूप मे प्रस्तुत किया और शिक्षित समुदाय पर अपना विशेष प्रभाव डाला। लोगो का जीवन अनेक साधनो-द्वारा अधिक सुखद और सम्पन्न हो गया। राजनीतिक उन्नति के लिए उनके हृदय में एक प्रवल आकाक्षा उत्पन्न हो गई। भारतीय व्यापार तथा उद्योग-धन्धो के ह्रास से लोगो के चित्त में यह खयाल पैदा हो गया कि देश में जो शासन-प्रणाली स्थापित हुई है वह विलकुल दोपरहित नही है। आर्थिक तथा राजनीतिक प्रश्नो का अध्ययन करने के लिए अनेक सभा-समितियाँ स्थापित हो गईं। मिस्टर ए० ओ० ह्यूम (A. O. Hume) नामक एक अँगरेज़ सिविलियन के प्रयत्न से इडियन नेशनल काग्रेस का पहला अधिवेशन वम्वई मे, सन् १८८५ ई० के दिसम्वर मास मे हुआ।

उसके सभापति श्री व्योमेशचन्द्र बनर्जी बनाये गये थे जो बड़े योग्य तथा प्रतिष्ठित बंगाली वकील थे। ब्रिटिश सरकार के प्रति कांग्रेस का रुख मित्रता-पूर्ण था। उनका लक्ष्य ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वराज्य प्राप्त करना था। कांग्रेस के प्रस्तावों में निम्नलिखित बातों पर जोर दिया गया—

(१) भारत-सचिव (सेक्रेटरी आफ स्टेट) की कौंसिल तोड़ दी जाय, (२) व्यवस्थापिका सभाओं का सुधार किया जाय और उनके सदस्यों की संख्या बढ़ा दी जाय, (३) इंडियन सिविल सर्विस की परीक्षा इंगलैंड तथा भारत में एक साथ ली जाय, (४) निर्धनता दूर की जाय, और (५) सैनिक व्यय घटा दिया जाय।

कांग्रेस के आन्दोलन में मध्य श्रेणी के शिक्षित लोग सम्मिलित हुए किन्तु शुरू में मुसलमानों ने अपने को उससे अलग रक्खा। दूसरी कांग्रेस (सन १८८६ ई०) के प्रतिनिधियों को लार्ड डफरिन ने 'गवर्नमेंट हाउस' में प्रीति-भोज दिया। किन्तु बाद को सरकार कांग्रेस से अप्रसन्न हो गई और उसके आन्दोलन को बड़े सन्देह की दृष्टि से देखने लगी। तो भी वायसराय ने कौंसिलों में सुधार करने की सलाह दी और उसके परिणाम-स्वरूप सन् १८९२ ई० का कौंसिल-ऐक्ट पास हुआ। सरकारी कर्मचारियों, ऐंग्लो-इंडियन समाचारपत्रों तथा उनके कुछ हिन्दू और मुसलमान सहायकों के विरोध की कुछ पर्वाह न करके कांग्रेस अपने मार्ग पर चलती रही। श्री दादा भाई नौरोजी, सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, सर फ़ीरोजशाह मेहता, श्री गोखले आदि कांग्रेस के बड़े प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित नेता थे। उन्होंने अपने लेखों और व्याख्यानों-द्वारा कांग्रेस के आन्दोलन का खूब प्रचार किया और लोकमत को संगठित करने का प्रयत्न किया।

**भारत के देशी राज्य**—ग़दर के बाद तुरन्त ही लार्ड कैनिंग ने एक दर्बार किया जिसमें उसने देशी नरेशों को ब्रिटिश सम्राट् की सदिच्छा का विश्वास दिलाया और गोद लेने के अधिकार को फिर से दृढ़ कर दिया।

लार्ड एलगिन ने भी वही किया। उसने राजाओ से कहा कि स्कूल खोल कर, अच्छी अच्छी सडकें बनवाकर तथा बुरे बुरे रीति-रवाजो को बन्द कर अपनी प्रजा को सुखी और समृद्धिशाली बनाने की चेष्टा करो।

लार्ड लारेंस ने आगरे में (सन् १८६६ ई० मे) एक दर्बार किया जिसमें अनेक राजा सम्मिलित हुए। उसने उनके इस कर्तव्य पर ज़ोर दिया कि प्रजा पर अच्छा शासन किया जाय। कुछ राज्यो ने उसकी सलाह के अनुसार काम किया और शासन का कार्य करने के लिए योग्य अफसरो को नियुक्त किया। किन्तु कुछ राज्य ऐसे भी थे जिनका शासन-प्रबन्ध बहुत ही बुरा था। सन् १८६० ई० में टोक का नवाब अपने एक सर्दार का कत्ल कराने के कारण गद्दी से उतार दिया गया और ६०,००० रुपये की वार्षिक पेंशन देकर बनारस भेज दिया गया। उसका लडका जो अभी कम अवस्था का था गद्दी पर बिठाया गया। रियासत का प्रबन्ध करने के लिए एक ब्रिटिश अफसर की अध्यक्षता में शासन-समिति (Council of Regency) स्थापित की गई। जोधपुर के राजा को चेतावनी दी गई कि वह दुराचरण करना छोड दे। किन्तु सन १८७१ ई० में जब लार्ड मेयो ने अजमेर में दर्बार किया तो राजा उसमें सम्मिलित न हुआ। उसका यह अविनीत व्यवहार ब्रिटिश सरकार के हक में अपमानजनक समझा गया और उसे तुरन्त वहाँ से चले जाने का हुक्म दिया गया।

अलवर का नाबालिग राजा बडी फिजूलखर्ची करता था। उसने सारे ख़जाने को लुटा दिया और बहुत-सा रुपया कर्ज़ लेकर उडा दिया। प्रजा उसके बुरे शासन से तग आगई थी। फलत राजशक्ति उससे छीन ली गई। शासन का सारा अधिकार एक कौंसिल के सुपुर्द कर दिया गया और एक ब्रिटिश अफसर उसका अध्यक्ष बनाया गया।

लार्ड मेयो ने देखा कि देशी राज्यो के शासन में बडी बुराइयाँ हैं। राजाओ मे शिक्षा का अभाव ही उसे सारी अव्यवस्था और कुशासन का मूल कारण जान पडा। अत उसने एक कालेज अजमेर मे और दूसरा

काठियावाड में राजकोट में स्थापित किया। राजवशो के अनेक युवक वडे परिश्रम और उत्साह के साथ इन कालेजो में पढने लगे और वडे अच्छे शिकारी और खिलाडी वन गये।

कुशासन का एक और मामला, सन १८७४ ई० में लार्ड नार्थब्रुक के शासन-काल में, बडौदा-राज्य में हुआ। महाराज गायकवाड पर ब्रिटिश रेजीडेंट को जहर देकर मार डालने का प्रयत्न करने का अपराध लगाया गया। राजा गिरफ्तार कर लिया गया और एक कमीशन के सामने उसके अभियोग की सुनवाई हुई। कमीशन में तीन अँगरेज़ और तीन हिन्दुस्तानी थे। सर दिनकरराव तथा जयपुर और ग्वालियर के राजा उसके भारतीय सदस्य थे। यरोपीय सदस्यो ने गायकवाड को अपराधी ठहराया। किन्तु भारतीय सदस्यो न कहा कि महाराजा पर लगाया गया अपराध पूणतया प्रमाणित नही होता है। इस प्रकार जब कमीशन में मतभेद हो गया तब हत्या का अभियोग उठा लिया गया और महाराजा को, यह कारण दिखलाकर कि उसका शासन-प्रबन्ध बुरा है, गद्दी से उतार दिया गया। वह मदरास भज दिया गया और वहाँ सन १८९३ ई० में उसकी मृत्यु हो गई। सयाजीराव नामक एक बालक जिसका राजवश से दूर का सम्बन्ध था, गद्दी पर बिठाया गया। उसकी नाबालगी में राज्य का सारा प्रबन्ध सर टी माधवराव ने किया। सयाजीराव एक योग्य शासक सिद्ध हुआ। उसके राजत्वकाल में बडौदा ने बडी उन्नति की है।

राजपूत-राज्यो की दशा सुधर गई। राजाओ और सर्दारो ने अपने लडको को मेयो कालेज मे भेजा और समाज की बुरी प्रथाओ को दूर करने का प्रयत्न किया। उनमें से कुछ ने—उदाहरणार्थ जयपुर के महाराजा ने—अपनी उदारता का परिचय दिया और अँगरेजी शिक्षा को प्रोत्साहित किया।

सन् १८९० ई० में मनीपुर की पहाडी रियासत में उपद्रव खडा हो गया। वहाँ के राजा को उसके भाई ने जो सेनापति था, गद्दी से उतार

दिया। शासन में बडी गडबडी फैल गई। जब भारत-सरकार ने सेनापति के विरुद्ध कडी कार्यवाही की तब उसने कुछ अँगरेज़ अफसरो को प्रलोभन देकर अपने महल मे बुलाया और उन्हें मरवा डाला। ब्रिटिश सेना ने तुरन्त उससे इस अपराध का बदला लिया। सेनापति और उसके साथियो पर मुकदमा चलाया गया और उन्हें फाँसी दी गई। उस वश का एक छोटा-सा लडका गद्दी पर बिठाया गया और शासन का कार्य एक अँगरेज़ रेज़ीडेंट के हाथ में सौंप दिया गया।

इस घटना के थोडे ही समय बाद भारत-सरकार को सन् १८९२ ई० के अन्तिम दिनो में किलात की गद्दी के मामलो में हस्तक्षेप करना पडा। किलात के खाँ ने कई हिंसापूर्ण कार्य किये, उसने ९४ वर्ष के बूढे वज़ीर को मरवा डाला। उसकी जगह उसका लडका गद्दी पर बिठाया गया।

लार्ड लैन्सडौन ने पूर्वी सीमा पर रहनेवाली कुछ जगली जातियो पर सरक्षित राज्य स्थापित किया। इसके अतिरिक्त उसने शान-राज्यों के साथ एक समझौता किया जिसके अनुसार उन्होने ब्रिटिश सरकार को कर देना स्वीकार किया।

## सक्षिप्त सन्‌वार विवरण

| | |
|---|---|
| अवध का काश्तकारी क़ानून .. .. .. | १८६८ ई० |
| पजाब का काश्तकारी कानून . .. .. | १८६९ ,, |
| बगाल में दुर्भिक्ष .. .. .. | १८७३-७४ ,, |
| गायकवाड का गद्दी से उतारा जाना .. .. | १८७४ ,, |
| प्रिंस आफ वेल्स का आगमन .. .. | १८७५ ,, |
| आर्यसमाज और थियोसोफिकल सोसाइटी की स्थापना | १८७५ ,, |
| दिल्ली-दर्बार .. .. .. | १८७७ ,, |
| अलीगढ कालेज की स्थापना .. .. | १८७८ ,, |
| लार्ड लिटन का वर्नाक्यूलर प्रेस-ऐक्ट .. .. | १८७८ ,, |
| वर्नाक्यूलर प्रेस-ऐक्ट का रद होना .. .. | १८८१ ,, |

| | |
|---|---|
| पजाब-यूनिवर्सिटी की स्थापना | १८८२ ई० |
| इलबर्ट बिल-आन्दोलन | १८८३ ,, |
| इडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना | १८८५ ,, |
| अवध का लगान-सम्बन्धी कानून | १८८६ ,, |
| ग्वालियर के क़िले का लौटाना | १८८६ ,, |
| पजाब का लगान-सम्बन्धी कानून | १८८७ ,, |
| महारानी विक्टोरिया की जुबिली | १८८७ ,, |
| इलाहाबाद-यूनिवर्सिटी की स्थापना | १८८७ ,, |
| मनीपुर की रियासत का झगडा | १८९० ,, |
| लार्ड क्रास का कौंसिल ऐक्ट | १८९२ ,, |
| प्लेग का बम्बई में आरम्भ होना | १८९६ ,, |
| सयुक्तप्रान्त मे भीषण दुर्भिक्ष | १८९६-९७ ,, |

## (४) लार्ड कर्जन का शासन-काल (१८९९-'०५)

एक प्रतिभाशाली वायसराय—लार्ड कर्जन ( Lord Curzon) सन् १८९९ ई० में वायसराय होकर आया। उस समय उसकी अवस्था पूरे चालीस वर्ष की भी नही थी। लार्ड डलहौजी को छोड कर जितने भी गवर्नर-जनरल आये थे उनमे वह सबसे कम अवस्था का था। भारत तथा उसके निवासियो से वह भली भाँति परिचित था। उसमें वक्तृता-शक्ति की योग्यता तथा महत्त्वाकाक्षा थी। इसके अतिरिक्त उसमें एक गुण यह था कि वह बडा परिश्रमी था। कितना भी काम करता, वह कभी थकता नही था। वह बडे उत्साह और परिश्रम के साथ शासन की समस्याओ को हल करने में जुट जाता था। जो लोग उसके सम्पर्क में आये उन सब को उसने अपनी अपूर्व कार्य-शक्ति दिखाकर चकित कर दिया।

उसके सामने मुख्य प्रश्न—भारत मे लार्ड कर्जन के सामने तीन बडे प्रश्न उपस्थित थे। (१) पश्चिमोत्तर सीमा के झगडे को तय करना, (२) प्लेग और अकाल से बचने का उपाय सोचना तथा (३) शासन

मे सुधार कर उसको एक नया रूप देना जो परिवर्तित अवस्थाओ के उपयुक्त हो। इन प्रश्नो का सामना उसने बडे साहस के साथ किया। आवश्यकता से अधिक जोश में आकर वह बहुधा ऐसे काम कर बैठता था कि भारतीय लोकमत उससे रुष्ट और असन्तुष्ट हो जाता था। किन्तु वह सदा धैर्य्य के साथ अपने प्रयत्न मे लगा रहा और निराश होकर उसने कभी किसी काम को बीच में नही छोडा।

**पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त**—भारत मे आने के बाद तुरन्त ही, लार्ड कर्जन को चितराल की समस्या का सामना करना पडा। चितराल मे रूसी लोगो के षड्यन्त्र का भय रहता था। शत्रु के आक्रमण को रोकने तथा सीमाप्रान्त मे शान्ति कायम रखने के लिए एक सेना नियत की गई। सडक ठीक की गई और साल दो साल के बाद तार लगा दिया गया।

चितराल के प्रश्न के बारे में लार्ड कर्जन को पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त की ओर ध्यान देना पडा। वह 'आगे बढने की नीति' का विरोधी था। उसने अपने लिए एक बीच का रास्ता नियत किया और प्रस्ताव किया कि अँगरेज़ी फौजें आगे के स्थानो से हटा ली जायँ, सरहदी प्रदेश की रक्षा के लिए वहाँ की जातियो की सेना से काम लिया जाय और उसके पीछे ब्रिटिश राज्य की सीमा के इस पार अँगरेज़ी फौजो को रक्खा जाय ताकि आवश्यकता पडने पर वे उसकी सहायता कर सकें। सीमा प्रान्तीय शासन का अधिकार पजाब-सरकार से ले लिया गगा क्योकि वह उस प्रान्त का समुचित प्रबन्ध करने में विफल हो चुकी थी। सन् १९०१ ई० मे लार्ड कर्जन ने पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्त को एक नया सूबा बना दिया और उसे एक कमिश्नर के सुपुर्द कर दिया। पेशावर उसकी राजधानी बनाई गई। पजाब के 'सिविलियन' अफसरो ने इस व्यवस्था का घोर विरोध किया परन्तु उनके विरोध पर कुछ ध्यान नही दिया गया।

जब से उक्त प्रान्त की सृष्टि हुई तब से सन् १९०८ ई० के उपद्रव के सिवाय, सीमाप्रान्त मे बराबर शान्ति क़ायम रही। ब्रिटिश सरकार

और सरहदी प्रदेश के सरदारों के बीच पहले की अपेक्षा अधिक सन्तोष-प्रद सम्बन्ध स्थापित हो गया है।

पुराने पश्चिमोत्तर प्रान्त का नाम बदल कर 'आगरा और अवध का संयुक्त-प्रान्त' रख दिया गया। इसकी राजधानी इलाहाबाद हो गई। किन्तु अब सरकार लखनऊ में रहती है और वहीं हाल में सेक्रेटरियट का दफ्तर उठ कर चला गया है।

**अफ़ग़ानिस्तान**—ब्रिटिश सरकार की नीति थी कि अफ़ग़ानिस्तान को एक तटस्थ मध्यस्थ राज्य बनाये रक्खें और किसी भी विदेशी शक्ति को उसके मामलों में हस्तक्षेप न करने दें। अब्दुर्रहमान सन् १९०१ ई० में मर गया। उसके बाद उसका बेटा हबीबुल्ला गद्दी पर बैठा। हबीबुल्ला ने यह मानने से इनकार कर दिया कि उसके पिता और ब्रिटिश सरकार के बीच जो समझौता हुआ था वह बिल्कुल व्यक्तिगत था। उसने इस बात पर ज़ोर दिया कि उन सन्धियों पर अब भी अमल होना चाहिए। इसके सिवाय, ब्रिटिश सरकार की अपेक्षा रूस के प्रति उसका झुकाव अधिक था। बड़ी कठिनाइयों के बाद वह ब्रिटिश राजदूत से भेंट करने के लिए राजी किया गया। अन्त में उसके साथ एक सन्धि हो गई। ब्रिटिश राजदूत को उसकी माँगों को स्वीकार करना पड़ा।

**फ़ारस की खाड़ी**—लार्ड कर्ज़न ने इस बात की कोशिश की कि फ़ारस की खाड़ी पर अँगरेज़ों का प्रभाव सुरक्षित रहे। खाड़ी में शान्ति कायम रखने के लिए उसके किनारे रहनेवाले लोगों की रक्षा के लिए और विदेशी शक्तियों को वहाँ से अलग रखने के लिए ऐसा करना आवश्यक था। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक भाग में, जर्मनी की इच्छा थी कि एक रेलवे लाइन बनवा कर कुस्तुन्तुनियाँ को फ़ारस की खाड़ी से मिला दें। टर्की, फ्रांस और रूस भी खाड़ी पर अपना अधिकार जमाना चाहते थे। ग्रेट ब्रिटेन ने स्पष्ट रूप से कह दिया कि यदि ऐसा करने का प्रयत्न किया जायगा तो वह ब्रिटिश हित के विरुद्ध समझा जायगा।

**तिब्बत पर चढ़ाई**—उत्तर-पूर्वी सीमा पर तिब्बत का देश राज-

मात्र के लिए चीन के अधीन था। वहाँ दलाईलामा की ओर से एक कौंसिल शासन करती थी। दलाईलामा तिब्बत के बौद्धो के दो नेताओ में से एक था। तिब्बतवाले अँगरेजो की नीति और नीयत पर बहुत सन्देह करते थे। सन् १८८६ ई० में तिब्बत की राजधानी लासा को एक मिशन भेजा गया किन्तु चीनवालो के विरोध करने पर वह वापस बुला लिया गया। बाद को एक व्यापारिक सन्धि की गई। किन्तु तिब्बत-वालो ने उस सन्धि का पालन नही किया। जब तिब्बत से रूस को राज-दूत भेजे गये तब ब्रिटिश सरकार बहुत भयभीत हो गई।

भारत आने पर लार्ड कर्जन ने देखा कि तिब्बत का मामला झंझट में पडा हुआ है। इँगलेड की सरकार की सलाह से नये वायसराय ने १९०३ ई० के नवम्बर मास में, कर्नल यगहस्वैन्ड (Colonel Young-husband) की अध्यक्षता में लासा को एक मिशन भेजा। दलाईलामा भाग गया और नगर पर कब्जा कर लिया गया। वहाँ के प्रमुख राजकर्म-चारियो के साथ एक समझौता किया गया। इस समझौते के अनुसार उन्होंने हरजाना देना और अँगरेजो के साथ व्यापार करना स्वीकार किया। यह चढाई निरर्थक सिद्ध हुई क्योकि तिब्बतवाले चीन की अधीनता में छोड दिये गये थे। व्यापार की उन्नति के लिए कुछ भी नही किया गया।

**प्लेग और अकाल**—पहले-पहल प्लेग सन् १८९६ ई० में बम्बई में फैला था। वहाँ से वह भारत के अन्य भागो में फैला और बहुत-से स्त्री-पुरुष काल के ग्रास हुए। जब सरकार ने इस रोग से बचने के लिए कुछ प्रारम्भिक कार्रवाई की तब कई स्थानो पर उपद्रव हो गये। सन् १९०० ई० मे लार्ड कर्जन ने एक प्रस्ताव जारी किया जिसमे उसने अनिवार्य रूप से टीका लगवाने और मकानो की तलाशी लेने की निन्दा की। सरकारी अफ़सरो को उसने आदेश किया कि टीका आदि लगवाने के लिए लोगो को समझा-बुझा कर राज़ी किया जाय, बल-प्रयोग न किया जाय। प्लेग के कारणो की जाँच-पडताल करने की आज्ञा दी गई। इस भीषण रोग को

रोकने के उपाय किये गये। सन् १८९९-१९०० ई० मे वर्षा न होने के कारण, पजाब, राजपूताना, बडौदा तथा बम्बई, मध्यप्रान्त तथा गुजरात में घोर अकाल पड गया। लाखो पशु मर गये। लोग बडी मुसीबत में पड गये, उनकी दशा शोचनीय हो गई। अकाल-ग्रस्त प्रदेशो में वायसराय ने स्वय दौरा किया और एक सहायक फड स्थापित किया। जमीदारो और किसानो को बहुत-सा रुपया कर्ज दिया गया। उनकी मालगुजारी माफ कर दी गई।

**आर्थिक सुधार**—इनकमटैक्स लगाने के लिए वार्षिक आय कम से कम ६६ पौंड होनी चाहिए। नमक-कर घटा कर आधा कर दिया गया। केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकार के बीच पहले की अपेक्षा अधिक सन्तोषप्रद आर्थिक व्यवस्था की गई। सन् १९०२ ई० में एक प्रस्ताव जारी किया गया जिसमे मालगुजारी की नीति के सिद्धान्तो का समावेश किया गया। यह सिद्धान्त कि लगान की अधिकता के ही कारण अकाल पडा, गलत साबित हो गया। यह नियम कर दिया गया कि लगान आदि की वसूली में सख्ती न की जाय।

**पजाब में भूमि-रक्षा क़ानून**—लार्ड कर्जन का ध्यान पजाब के किसानो की ओर आकर्षित हुआ। गरीब किसानो की जमीन धीरे धीरे महाजनो के हाथ में चली जा रही थी। वे बहुत गरीब हो गये थे। अक्टूबर सन् १९०० ई० में एक कानून पास किया गया। इस कानून से दूकानदार, साहूकार और पेशेवाले लोग मौरूसी काश्तकारो से जमीन नही खरीद सकते थे और न बिना सरकार की अनुमति लिये हुए बीस साल से अधिक किसी खेत को रहन ही रख सकते थे। यह भी नियम हो गया कि किसी डिग्री मे मौरूसी काश्तकार की जमीन नही बेची जा सकती। पजाब के किसानो के हक में यह कानून बहुत हितकर सिद्ध हुआ। जमीन का बेचना अथवा उसे बन्धक में रखना बहुत कम हो गया। जमीदारो और किसानो के हाथ से जो जमीनें निकल गई थी उनमें से अधिकाश वापस मिल गई।

सन् १६०१ ई० में लार्ड कर्जन ने कृषि की देख-भाल करने के लिए एक इन्सपेक्टर जनरल नियुक्त किया। उसकी सहायता के लिए कुछ विशेषज्ञ भी नियत कर दिये गये। इन विशेषज्ञो का काम अन्वेषण करना तथा कृषि की भावी उन्नति के लिए उपाय बतलाना था।

कृषक-वर्ग के हित में लाभदायक सिद्ध होनेवाला दूसरा क़ानून 'कोआपरेटिव क्रैडिट सोसाइटीज़ ऐक्ट' था। यह कानून किसानो के कर्ज़ के भार को घटाने के लिए सन् १६०४ ई० में पास किया गया था। इसके अनुसार किसानो को आर्थिक सहायता देने के लिए सहयोग-समितियो की स्थापना का प्रबन्ध किया गया।

**व्यापार और दस्तकारी**—व्यापार और उद्योग-धन्धो का एक नया विभाग खोला गया। वायसराय की कार्यकारिणी समिति का एक सदस्य इसका अध्यक्ष हुआ। पहला अध्यक्ष सर जान हिवेट (Sir John Hewett) था। उसने रेल की लाइनो का विस्तार किया और तारो में, जो पहले ही लगाये जा चुके थे, सुधार किया। रेलवे-सम्बन्धी सभी मामले एक रेलवे बोर्ड के सुपुर्द कर दिये गये।

लार्ड कर्ज़न ने उद्योग-धन्धो को बहुत प्रोत्साहन दिया। उसी के समय मे जमशेदजी ताता की बडी बडी योजनाये काम मे लाई गईं और बँगलोर में 'इडियन इन्स्टिटयूट आफ सायन्स' की स्थापना हुई। लार्ड कर्ज़न से उसे बडी सहायता मिली।

**महारानी विक्टोरिया की मृत्यु (१६०१)**—सन् १६०१ ई० में महारानी विक्टोरिया का देहान्त हो गया। वह एक न्यायप्रिय और उदार महारानी थी। अपनी भारतीय प्रजा के कल्याण का उसे सदैव ध्यान रहता था। जब वायसराय ने फरवरी सन् १६०१ ई० में उसका स्मारक बनवाने का प्रस्ताव किया तब भारतीय नरेशो और जनता ने उसका हृदय से समर्थन किया। विक्टोरिया के स्मारक की गिनती कलकत्ता की बहुत सुन्दर इमारतो मे है। यह स्मारक उस महारानी की नेकी और न्याय का हमें सदा स्मरण करायेगा।

दिल्ली का दर्बार (१६०३)—सम्राट् एडवड सप्तम का अभिषेकोत्सव मनाने के लिए लार्ड कर्ज़न ने सन् १६०३ ई० में नये वर्ष के पहले दिन दिल्ली में एक बड़ा शानदार दर्बार किया। उससे अधिक शान का दर्बार आज तक नही हुआ था। सम्राट् का सन्देश सुनाया गया। उसमें यह कहा गया कि देशी राज्यो ने अकाल के समय जो कर्ज़ा लिया था उसका तीन साल का सूद माफ कर दिया गया। परन्तु जनता के लिए कुछ भी नही किया गया। भारतीय समाचार-पत्रो में दर्बार की कडी आलोचना हुई। परन्तु लार्ड कर्ज़न ने अपनी नीति का समर्थन किया और कहा कि दर्बार से भारतीय जनता में एकता की भावना उत्पन्न हुई है और उसकी राजभक्ति दृढ हुई है। भारतीय लोकमत इस विचार से सहमत नही था। उस समय जब कि देश में घोर अकाल पड रहा था दर्बार का ठाट-बाट, बहुत-से लोगो को अच्छा नही लगा।

शिक्षा—लार्ड कर्ज़न ने शिक्षा में जो सुधार किया उसका शिक्षित लोगो ने विरोध किया। वह उच्च शिक्षा मे परिवर्तन करना और विश्वविद्यालयो पर सरकार का अधिक नियन्त्रण स्थापित करना चाहता था। उसने सन् १६०१ ई० में शिमला में एक सभा की और कहा कि मेरा उद्देश्य देश की शिक्षा-प्रणाली का सशोधन करना है। इसके बाद जनवरी सन् १६०२ ई० में एक कमीशन नियक्त किया गया। उसका काम विश्वविद्यालयो की दशा की जाँच करना और ऐसे उपायो का निर्देश करना था जिनसे कि विद्या की उन्नति हो और पढाई अच्छी हो सके। कमीशन की सिफारिशो को लेकर यूनिवर्सिटी-बिल तैयार किया गया और वह बिल मार्च सन् १६०४ ई० में पास होकर कानून बन गया। भारतीयो ने, जिनमें प्रधान श्री गोपाल कृष्ण गोखले थे, उसका घोर विरोध किया। वायसराय की नियत पर सन्देह किया गया, और उस पर यह दोष लगाया गया कि उसनें उच्च शिक्षा की उन्नति को रोकने का प्रयत्न किया था।

उसी साल, वायसराय ने सरकार की शिक्षा-नीति पर एक प्रस्ताव जारी किया जिसमें अफ़सरो के पथ-प्रदर्शन के लिए सिद्धान्त निर्धारित

किये गये। वह भी दोपरहित नही था, किन्तु यह मानना पडेगा कि लार्ड कर्ज़न ने सरकार की सम्पूर्ण शिक्षा-नीति में एक नई शक्ति और जीवन का सचार कर दिया।

**प्राचीन स्मारको की रक्षा**—लार्ड कर्ज़न को भ्रमण का बडा शौक था। हिन्दुओ और मुसलमानो के प्राचीन स्मारको की रक्षा करने की उसकी प्रवल इच्छा थी। सन् १९०४ ई० मे 'एँशेंट मौन्यूमेन्ट्स ऐक्ट' (प्राचीन स्मारक कानून) पास हुआ। इसकी वदौलत अनेक प्राचीन इमारतें नष्ट होने से वच गईं। पुरातत्व का एक विभाग खोला गया और प्राचीन इमारतो की रक्षा तथा मरम्मत के काम की निगरानी करने के लिए एक डाइरेक्टर नियुक्त किया गया। यह डाइरेक्टर ही उस विभाग का अध्यक्ष हुआ। लार्ड कर्ज़न का यह कार्य चिरस्थायी रहेगा और कला तथा सस्कृति के प्रेमी सदा उसकी प्रशसा करेंगे।

**वग-विच्छेद**—लार्ड कर्ज़न के शासन-काल का कोई भी काम जनता के लिए इतना अप्रिय नही सिद्ध हुआ जितना कि वगाल का विच्छेद। सम्पूर्ण वगाली समाज के विरोध करने पर भी वगाल दो भागो में विभक्त कर दिया गया। वात यह थी कि वगाल का प्रान्त वहुत वडा हो गया था, उसका प्रवन्ध ठीक न था। सरकारी पक्ष का कहना था कि पूर्वी वगाल की उपेक्षा की जाती है, वहाँ के लोगो की नैतिक अथवा भौतिक उन्नति के लिए कुछ भी नही किया जाता। फलत सन् १९०५ ई० में एक नया सूवा वनाया गया जिसका नाम 'पूर्वी वगाल और आसाम' पडा। यह प्रान्त एक लेफ्टिनेंट गवर्नर के सुपुर्द किया गया और ढाका उसकी राजधानी हुई। शासन-प्रवन्ध के सुभीते की दृष्टि से लार्ड कर्ज़न ने अपने काम को न्याय-सगत सिद्ध किया। इँगलेंड की सरकार ने उसके मत को स्वीकार कर लिया।

देश में वडा भारी आन्दोलन उठ खडा हुआ। वग-विच्छेद का विरोध करने के लिए अनेक सार्वजनिक सभायें की गईं। स्वदेशी वस्तुओ के प्रचार और विदेशी वस्तुओ के वहिष्कार पर ज़ोर दिया गया। सर-

कार के कार्य पर बडा क्रोध प्रकट किया गया। वग-विच्छेद के विरुद्ध जो आन्दोलन किया गया उसके नेता पीछे से सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी थे। उन्होने वग-विच्छेद को रद करने का भरसक प्रयत्न किया।

सन् १९११ ई० में बगाल का विच्छेद रद कर दिया गया। राज्याभिषेक के अवसर पर जो दर्बार हुआ, उसमें सम्राट् ने घोषणा की कि आसाम फिर एक चीफ कमिश्नर के अधीन कर दिया जाता है और छोटा नागपुर-समेत विहार और उडीसा को नया सूबा बनाया जाता है जिसकी राजधानी पटना होगी।

भारत के देशी राज्य—वायसराय ने भारत के देशी राज्यो की ओर काफी ध्यान दिया। उसने बतलाया कि "ब्रिटिश सरकार और देशी राजाओ के बीच कैसा सम्बन्ध होना चाहिए। उसने देशी नरेशो से तत्परता के साथ अपने कर्तव्यो का पालन करने के लिए कहा। उसने कहा कि ये देशी राज्य साम्राज्य के शासनरूपी शृखला की कडियाँ हैं, यह कभी ठीक (हितकर) न होगा कि ब्रिटिश कडियाँ मजबूत हो और देशी कडियाँ कमजोर हो।"

अपने शासन-काल में वह ४० राज्यो में गया और उन राज्यो की वास्तविक दशा का ज्ञान प्राप्त करने का उसने प्रयत्न किया। उसने ब्रिटिश शासन के विभिन्न विभागो के अध्यक्षो के साथ देशी नरेशों का सम्पर्क कराया और उनके साथ व्यक्तिगत रूप से परामर्श किया। 'इम्पीरियल सर्विस' की फौजें प्रधान सेनापति के अधीन कर दी गईं। ब्रिटिश अफसर उनका निरीक्षण करने लगे। राजवशो के लडको को सैनिक शिक्षा देने और उनको सेना में भर्ती करने के लिए उसने सन् १९०१ ई० में, 'इम्पीरिलय केडेट कोर' स्थापित की। राजकुमारो की शिक्षा में उसने बडी दिलचस्पी ली और उनके पाठ्य-ग्रन्थो की विवरण-पत्रिका का सशोधन किया। सन् १९०२ ई० में बरार के सम्बन्ध में उसने निज़ाम के साथ एक समझौता किया। बरार का प्रान्त सदा के लिए पट्टे पर १,६८,००० पौंड सालाना लगान पर ब्रिटिश सरकार को दे दिया गया

और नाममात्र के लिए हैदराबाद का प्रभुत्व उस पर सुरक्षित रक्खा गया। निज़ाम सन्तुष्ट हो गया और इस प्रकार एक पुराना झगडे का अन्त हो गया।

होल्करराज्य का शासन-प्रवन्ध खराव था, इसलिए सन् १९०३ ई० मे वहाँ का राजा गद्दी से उतार दिया गया। उसके स्थान मे उसका पुत्र उत्तराधिकारी स्वीकार किया गया।

दो वर्ष वाद काश्मीर के महाराजा को उनके पुराने अधिकार लौटा दिये गये। वायसराय ने जनता को विश्वास दिलाया कि सरकार का कभी यह इरादा नही था कि काश्मीर को ब्रिटिश राज्य में मिला लिया जाय।

**लार्ड कर्जन का इस्तीफा (सन् १९०५ ई०)**—लार्ड कर्जन और प्रधान सेनापति लार्ड किचनर (Lord Kitchner) के बीच घोर मतभेद पैदा हो गया। इसका परिणाम अन्त मे यह हुआ कि सन १९०५ ई० मे लार्ड कर्ज़न ने इस्तीफा दे दिया। उनका मतभेद सैनिक विभाग के सगठन तथा सैनिक सदस्य की स्थिति के विषय मे था। लार्ड कर्जन का मत था कि सेना को सिविल अधिकारियो के मातहत रहना चाहिए। इस सिद्धान्त की रक्षा के लिए उसने अपने उच्च पद का त्याग कर दिया।

**लार्ड कर्जन की सफलता**—लार्ड कर्जन साम्राज्यवादी था। उसके कार्यों और भाषणो का देश मे बडा विरोध हुआ। इसमें सन्देह नही कि उसमे वडी नैसर्गिक योग्यता थी, किन्तु शासन की उत्तमता के लिए जोश मे आकर वह बहुधा मर्यादा का उल्लघन कर बैठता था। उसकी नीति की तीव्र आलोचना करनेवाले शिक्षित-समाज के लोगो के मत की उसने अधिक पर्वाह नही की। उसमें दो वडे दोप थे। वह आलोचना को सहन नही कर सकता था वल्कि उससे घवडाता और दुखित होता था। वाद-विवाद करते समय छोटी वातो और वडे महत्त्वपूर्ण प्रश्नो के बीच कोई भेद नही करता था। किन्तु इस वात को कोई अस्वीकार नही कर सकता कि उसने अपनी शक्ति और योग्यता के अनुसार अपने देश और राजा की सेवा करने का पूर्ण प्रयत्न किया, जव तक वह भारत में रहा, उसने कभी अपने कर्तव्य का पालन करने से मुख नही मोड़ा।

### संक्षिप्त सन्‌वार विवरण

| | |
|---|---|
| पंजाब का भूमि-रक्षा-कानून . . | १६००ई० |
| महारानी विक्टोरिया की मृत्यु .. | १६०१ ,, |
| बरार का समझौता . .. .. | १६०२ ,, |
| शिक्षा-कमीशन . . | १६०२ ,, |
| दिल्ली का दर्बार . . . | १६०३ ,, |
| तिब्बत का मिशन . .. | १६०३ ,, |
| होल्कर को गद्दी से उतारना .. .. | १६०३ ,, |
| इंडियन यूनिवर्सिटीज़ ऐक्ट .. . .. | १६०४ ,, |
| सहायक-समिति-ऐक्ट .. .. .. | १६०४ ,, |
| बंग-विच्छेद .. .. | १६०५ ,, |
| लार्ड कर्ज़न का इस्तीफ़ा .. .. .. | १६०५ ,, |

## (५) राजनीतिक अशान्ति और शासन-सुधार
## (सन् १६०५-२१ ई०)

**राजनीतिक स्थिति**—लार्ड कर्ज़न ने उतावलेपन के साथ जो सुधार किये और भारतीय लोकमत की जो अवहेलना की उससे देश में बड़ी अशान्ति उत्पन्न हो गई। प्लेग, अकाल तथा आर्थिक संकट ने जनता में असन्तोष का भाव पैदा कर दिया। सरकार की स्वतन्त्र व्यापार की नीति के कारण व्यापारी वर्ग को हानि पहुँची। विदेशी प्रतिद्वन्द्विता के कारण भारत के उद्योग-धन्धे शिथिल पड़ गये और बहुत-से आदमी बेकार हो गये। शासन का खर्च बढ़ जाने के कारण लोगों पर भारी भारी टैक्स लगा दिये गये। शहर और देहात के लोगों को जीविका चलाना कठिन हो गया। भारतीय लोग आर्थिक प्रश्नों का अध्ययन करने लगे। उन्होंने सरकार का ध्यान जनता की बढ़ती हुई ग़रीबी की ओर आकर्षित किया। स्वामी विवेकानन्द के धार्मिक पुनरुद्धार-कार्य ने बंगाल में एक नई

जान पैदा कर दी और राष्ट्रीयता के भाव को दृढ कर दिया। रूस-जापान-युद्ध (सन् १६०५ ई०) मे, जापान जैसे छोटे से एशियाई देश ने रूस जैसे विशाल यूरोपीय देश को पराजित कर दिया। इस विजय ने शिक्षित लोगो में आशा का सचार कर दिया और उनकी राजनीतिक आकाक्षाओ को प्रोत्साहित किया। विदेशी वस्तुओ के बहिष्कार का प्रचार किया गया और कुछ स्थानो में बल का भी प्रयोग हुआ। काग्रेस के अन्दर भी, नीति और कार्य-प्रणाली के सम्बन्ध मे, घोर मतभेद उत्पन्न हो गया। गरम-दल के नेता महाराष्ट्र मे बाल गगाधर तिलक, पजाब में लाला लाजपतराय और बगाल में अरविन्द घोष थे। इनके विरुद्ध दादाभाई नौरोजी, सुरेन्द्र-नाथ बनर्जी, गोखले और पडित मदनमोहन मालवीय जी आदि नरम विचार के लोग थे। दादाभाई नौरोजी ने सन् १६०६ ई० में, कलकत्ता-काग्रेस के सभापति की हैसियत से, पहले-पहल स्वराज्य को काग्रेस का ध्येय बतलाया। काग्रेस में बडा जोश फैल गया और बहिष्कार, स्वदेशी-प्रचार तथा राष्ट्रीय शिक्षा के सम्बन्ध मे प्रस्ताव पास किये गये। बगाल के कुछ भागो मे ऐसी समितियाँ स्थापित की गई जिनका काम सरकार के विरुद्ध तरह तरह के सिद्धान्तो का प्रचार करना था। इन समितियो ने देश के नवयुवको को क्रान्तिकारी आन्दोलन में सम्मिलित होने के लिए उत्तेजित किया। सन् १६०७ ई० मे जब सूरत मे काग्रेस का अधिवेशन हुआ तो गरम-दल के नेताओ ने नरम-दल के लोगो की नीति को नापसन्द किया और शान्तिमय उपायो का घोर विरोध किया। दोनो दलों मे झगडा हो गया और काग्रेस भग हो गई। नरम-दल के नेता काग्रेस का ध्येय स्थिर करने के लिए तुरन्त एक जगह पर एकत्रित हुए। दक्षिण में तिलक महाराज की प्रतिष्ठा बहुत बढ गई। महाराष्ट्र के लोगो पर उनका बहुत प्रभाव जम गया। 'केसरी' मे प्रकाशित उनके लेख दूर दूर तक पढे जाने लगे। इन लेखो ने लोगो के हृदय में राजनीतिक सुधार के लिए एक महती आकाक्षा उत्पन्न कर दी।

मुसलमान लोग भी अपनी राजनीतिक अवस्था को सुधारने के लिए

उत्सुक थे। अक्टूबर सन् १९०६ ई० में आगा खाँ की अध्यक्षता में एक डेप्यूटेशन वायसराय के पास गया। उसने पृथक् निर्वाचन (Separate Representation) की व्यवस्था करने की प्रार्थना की। लार्ड मिन्टो इस विचार से सहमत हो गया और उसने मुसलमानो की माँग का समर्थन किया। इसी समय मुस्लिम लीग की स्थापना हुई। ब्रिटिश सरकार के प्रति राजभक्ति प्रकट करते हुए उसने अल्पसख्यक जातियो (minorities) के विशेष अधिकारो पर जोर दिया और साम्राज्य के अन्तर्गत स्वायत्त शासन प्राप्त करना अपना ध्येय स्थिर किया।

सन १९०७–८ ई० में बगाल में क्रान्तिकारियो ने जहाँ-तहाँ अँगरेज़ों को बम फेंक कर मारा। विद्यार्थियो में बडी हलचल मची। श्री तिलक के कुछ लेखो को राजद्रोहात्मक बतलाकर सरकार ने उन्हें ६ वर्ष की कैद की सजा दी। एक पुराने कानून के अनुसार, लाला लाजपतराय भी निर्वासित कर दिये गये। जातीय ईर्ष्या-द्वेष और वर्गीय शत्रुता ने परिस्थिति को और भी अधिक चिन्तनीय बना दिया। क्रान्तिकारियो और षड्यन्त्रकारियो के हाथो से अनेक व्यक्ति मारे गये। बम का फेंकना एक साधारण बात हो गई। सरकार को नष्ट करने के लिए, यूरोप की भाँति यहाँ भी गुप्त समितियाँ सङ्गठित की गईं। सक्षेप में हम कह सकते हैं कि स्थिति की गम्भीरता तीन कारणो से बढ गई थी, (क) रूस पर जापान की विजय, (ख) राष्ट्रीयता का नया जोश और (ग) जनता की बढती हुई निर्धनता।

मार्ले-मिन्टो-सुधार (सन् १९०९ ई०)—वायसराय लार्ड मिन्टो, (Lord Minto) भारत-सचिव लार्ड मार्ले (Lord Morley) के साथ स्थिति पर भलीभाँति विचार कर चुका था। लार्ड मार्ले एक बडा विद्वान् राजनीतिज्ञ था। भारतीय आकाक्षाओ के प्रति दोनो की सहानुभूति थी और दोनो उचित समय पर कुछ शासन-सुधार देकर जनता को सन्तुष्ट करना चाहते थे। लार्ड मार्ले का विचार था कि गरम-दल के लोगो की शक्ति को कमजोर करने का सबसे अच्छा उपाय शासन-सुधार करना है। उसके प्रस्तावो के आधार पर अन्त में 'गवर्नमेंट आफ़ इडिया ऐक्ट' सन्

१९०९ मे पास हुआ। इस ऐक्ट के अनुसार शासन-विधान में कई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो गये। वायसराय की कार्यकारिणी समिति मे, एक भारतीय सदस्य बढा दिया गया। कलकत्ता हाईकोर्ट के प्रसिद्ध वैरिस्टर सर सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह (जिन्हे पीछे से लार्ड की उपाधि मिली) वायसराय की कौंसिल के कानूनी मेम्बर नियुक्त किये गये। कौंसिलो के सदस्यो की सख्या बढा दी गई और उनके अधिकार भी बढा दिये गये। मदरास और बम्बई की कार्यकारिणी समितियो में भी और सदस्य बढाये गये। लेफ्टिनेट गवर्नरो-द्वारा शासित प्रान्तो मे ऐसी समितियो की स्थापना की व्यवस्था की गई। बडी व्यवस्थापिका सभा के सदस्यो की सख्या २१ से बढाकर ६० कर दी गई। विभिन्न श्रेणियो और हितो के प्रतिनिधि कौंसिलो मे पहुचे, इस बात पर ध्यान दिया गया। वायसराय की कौंसिल को छोडकर, अन्य सभी कौंसिलो मे गैर-सरकारी सदस्यो की सख्या आधे से अधिक रक्खी गई। मेम्बरो को बजट पर बहस करने तथा उपप्रश्न पूछने का अधिकार दिया गया। नामजदगी के स्थान पर निर्वाचन का सिद्धान्त काम में लाया गया।

मार्ले-मिन्टो-सुधार अधूरा था। वह एक बडे जन-समदाय को सन्तुष्ट नही कर सका। पृथक् निर्वाचन का तीव्र विरोध किया गया और कहा गया कि उससे देश मे फूट बढेगी। अप्रत्यक्ष निर्वाचन (indirect election) और परिमित मताधिकार (limited franchise), नये विधान के दो बडे दोष थे। इतने पर भी, श्री गोखले जैसे नरम-दल के नेताओ न शासन-सुधारो को कार्यान्वित करने की सलाह दी। परन्तु उनकी दृष्टि मे भी ये सुधार पर्याप्त नही थे।

**शिक्षा और कानून**—यद्यपि लार्ड मिन्टो जनता के असन्तोष को कम करना चाहता था। परन्तु राजनीतिक अशान्ति को दबाने के लिए उसने बडी कडाई की। सन १९०७ ई० में एक नया कानून (Seditions Meetings Act) पास किया गया और सन १८१८ ई० का रेग्यूलेशन फिर से जारी किया गया। उस पुरान कानून के अनसार, लाला लाजपतराय, अजीतसिंह तथा ९ बगाली नेता निर्वासित किय गये। राज-

द्रोहात्मक बातों को छापनेवाले और जनता को हिंसा के लिए उत्तेजित करनेवाले समाचार-पत्रो को दण्ड देने के निमित्त सन् १९१० ई० का प्रेस ऐक्ट पास किया गया। जिस दिन यह प्रेस-ऐक्ट पास हुआ उसी दिन बगाल के निर्वासित नेता छोड दिये गये।

मार्च सन् १९१० ई० में श्री गोखले ने बडी व्यवस्थापिका सभा में प्रारम्भिक शिक्षा (Elementary Education Bill) के सम्बन्ध में अपना प्रस्ताव उपस्थित किया। उसका उद्देश्य सर्व-साधारण में शिक्षा का प्रचार करना था। किन्तु सरकारी विरोध के कारण वह प्रस्ताव स्वीकृत न हो सका।

**लार्ड मिन्टो का चरित्र**—लार्ड मिन्टो एक बुद्धिमान् और चतुर व्यक्ति था। अपनी चतुरता और दृढता के कारण उसने सफलता-पूर्वक एक कठिन परिस्थिति को अपने काबू में कर लिया। जहाँ पहले वैमनस्य और लडाई-झगडा फैला हुआ था वहाँ उसने सदिच्छा और शान्ति की स्थापना कर दी। भारतवासियो के लक्ष्य के साथ उसकी सहानुभूति थी। उसने उनके प्रति कभी घृणा अथवा उदासीनता का भाव नही दिखाया। यद्यपि उसने दमन-कानून पास किये तथापि अपनी स्वाभाविक दयालुता और शिष्टता के कारण वह सर्वप्रिय बन गया था। उसके शासन-काल में, भारत में ऐसे लोगों की कमी नही थी जो सख्ती और दमन करने के लिए चिल्ला रहे थे, परन्तु उनकी राय पर उसने कुछ भी ध्यान न दिया। अपनी विदाई के अवसर पर उसने जो व्याख्यान दिया उसमें उसने कहा था कि सबसे अधिक शक्तिशाली व्यक्ति वह है जिसे निर्बल कहलाने का भय नही है।

लार्ड मिन्टो सन् १९१० ई० में इंग्लैंड वापस चला गया और लार्ड हार्डिन्ज (Lord Hardinge) भारत का वायसराय होकर आया।

**सम्राट् का आगमन (सन् १९११ ई०)**—मई सन् १९१० ई० में सप्तम एडवर्ड की मृत्यु हो गई। उनके पुत्र, प्रिन्स आफ वेल्स पचम जार्ज के नाम से गद्दी पर बैठे। लन्दन में राज्याभिषेक हो जाने के पश्चात् सम्राट् और सम्राज्ञी दोनो भारत आये। १२ दिसम्बर को दिल्ली में

बडी धूम-धाम से एक दर्बार किया गया और उसमें राज्याभिषेक की घोषणा की गई। सम्राट् ने भारतीय जनता को प्रसन्न करने के लिए उनके हितार्थ अनेक बातें कही। सैनिकों और 'सबार्डिनेट ग्रेड' (Subordinate Grades) के नौकरो को एक महीने का अतिरिक्त वेतन दिया गया। सरकार ने ५० लाख रुपया जन-साधारण की शिक्षा के लिए भी दिया। भारत की राजधानी कलकत्ता से हटाकर दिल्ली कर दी गई। बगाल का विच्छेद रद किया गया और आसाम फिर एक चीफ कमिश्नर के अधीन कर दिया गया। बिहार, उडीसा और छोटानागपुर को मिलाकर एक नया प्रान्त बनाया गया और उस पर शासन करने के लिए एक गवर्नर नियुक्त हुआ। पटना को इस प्रान्त की राजधानी बनाया गया। यह भी घोषणा की गई कि 'विक्टोरिया क्रास' (Victoria Cross) नामक पदक अब भारतीयो को भी मिल सकेगा। भारत और इँग्लैंड दोनो देशो में इन परिवर्तनो की आलोचना की गई। यह कहा गया कि राजधानी को कलकत्ता से दिल्ली ले जाने मे बडी फिजूलखर्ची होगी। बग-विच्छेद को रद किया जाना सरकार की कमजोरी का चिह्न समझा गया। किन्तु इसमें कुछ भी सन्देह नही कि दर्बार ने, भारतवासियो में, एकता के भाव को दृढ कर दिया। सम्राट् की उदारता और प्रजा-वत्सलता की सब जगह बडी प्रशसा हुई।

**रायल कमीशन**—लार्ड हार्डिञ्ज हिन्दुस्तानियो को सरकारी नौकरियो में एक बडा हिस्सा देना चाहता था। इसी उद्देश्य से उसने सन् १९१२ ई० में एक शाही कमीशन नियुक्त किया। कमीशन का काम नौकरियो की दशा की जाँच करना था। श्री गोपाल कृष्ण गोखले भी इस कमीशन के मेम्बर थे। अनेक दृष्टिकोणो से उक्त विषय पर विचार किया गया और यद्यपि सदस्यो में मतभेद रहा तो भी सरकारी नौकरो को अपनी तरक्की की बडी आशा हो गई।

भारत के उद्योग-धंधो की दशा पर रिपोर्ट तैयार करने के लिए एक औद्योगिक कमीशन (Industrial Commission) भी नियुक्त किया

गया। सन् १६१३ ई० के 'करेन्सी कमीशन' (Currency Commission) ने सरकार की आर्थिक स्थिति के आधार को दृढ करने और सिक्को का अच्छा प्रबन्ध करने के लिए कुछ उपाय बतलाये।

पंडित मदनमोहन मालवीय

शिक्षा और क़ानून—संयुक्त-प्रान्त के प्रसिद्ध नेता पडित मदनमोहन मालवीय और दरभंगा-नरेश सर रामेश्वरसिंह ने काशी में एक हिन्दू-विश्व-विद्यालय स्थापित करने की योजना तैयार की। लार्ड हार्डिञ्ज की सरकार

ने इस योजना के साथ अपनी सहानुभूति प्रकट की। फलत सन् १९१५ ई० में 'दि हिन्दू यूनिवर्सिटी ऐक्ट' पास हुआ और लार्ड हार्डिञ्ज ने एक विराट सभा के सामने—जिसमे देशी नरेश, ज़मीदार एव ताल्लुकेदार, सरकारी कर्मचारी, प्रोफेसर, विद्यार्थीगण तथा अन्य लोग लम्मिलित थे—फरवरी सन् १९१६ ई० मे अपने हाथ से उसकी नीव रक्खी।

बनारस-हिंदू यूनिवर्सिटी

यूरोपीय महायुद्ध (सन् १९१४ ई०) के छिडने के वाद भारत-रक्षा कानून (Defence of India Act) पास हुआ। इसके अनुसार, वायसराय को देश की रक्षा करने और शान्ति को सुरक्षित रखने के लिए विस्तृत अधिकार मिले।

यूरोपीय महायुद्ध (सन् १९१४-१९ ई०)—सन् १९१४ ई० में यूरोपीय युद्ध छिड गया और थोडे ही समय में उसने बडा भीषण रूप धारण कर लिया। यूरोपीय राष्ट्रो की पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता और उनकी आकाक्षाओ का सघर्ष ही इस युद्ध का कारण था। लडाई छेडने का मौका

इस प्रकार मिला। बोसनिया की राजधानी मे आस्ट्रिया के आर्च ड्यूक और उसकी स्त्री दोनो की हत्या की गई। जिन व्यक्तियो ने यह घृणित कार्य किया वे आस्ट्रिया की प्रजा थे किन्तु थे सर्व (Serb) जाति के। फलत उक्त अपराध के लिए सर्विया ही उत्तरदायी समझा गया और २३ जून सन् १९१४ ई० को आस्ट्रिया ने लडाई की घोषणा कर दी। युद्ध आरम्भ हो गया और यूरोप के प्राय सभी देश उसमें सम्मिलित हो गये। इँगलेंड, फ्रास, वेलजियम, इटली, अमरीका और यूनान एक तरफ थे और जर्मनी, आस्ट्रिया, टर्की, वलगेरिया तथा अन्य छोटे छोटे राज्य दूसरी तरफ। भारत ने सत्य और न्याय के पक्ष की सहायता, धन और जन दोनो से की। सारे देश में सभायें की गई और सब दल के लोगो ने यह इच्छा प्रकट की कि ऐसे सङ्कट के अवसर पर ब्रिटिश साम्राज्य की सहायता करना हमारा कर्त्तव्य है। औपनिवेशिक सेनाओ के साथ-साथ, भारतीय सेनाओ ने भी फ्रास, फ्लैन्डर्स, मिस्र, पैलेस्टाइन तथा मेसोपोटामिया के युद्ध-क्षेत्रो में शत्रुओ से युद्ध किया और अपने पराक्रम का प्रमाण दिया। भारतीय नरेशो ने उदारता-पूर्ण सहायता पहुँचाई और उनमें से कई एक ने तो युद्ध में भाग भी लिया। सन् १९१६ ई० में लार्ड हार्डिञ्ज वापस चला गया और उसकी जगह लार्ड चेम्सफोर्ड (Lord Chelmsford) वायसराय होकर आया। भारत की राजभक्ति और सहायता का इँग्लैंड पर बडा प्रभाव पडा। सन् १९१७ ई० में भारत-सचिव ने पार्लियामेंट मे यह प्रसिद्ध घोषणा की कि भारत में ब्रिटिश शासन की नीति का लक्ष्य धीरे धीरे उत्तरदायित्वपूर्ण शासन स्थापित करना है।*

---

* घोषणा की कुछ पक्तियां इस प्रकार है —

'The policy of His Majesty's Government, with which the Government of India are in complete accord, is that of the increasing association of Indians in every branch of administration, and the gradual development of self-governing institution with a view to the progressive realisation of responsible government in India as an integral part of the British Empire. They have decided that substantial steps in this direction should be taken as soon as possible."

इम्पीरियल वार कान्फ्रेन्स (सन् १९१७ ई०) में, तथा बाद को संधि महासभा में, भारत के दो प्रतिनिधियो ने भी भाग लिया। वे बीकानेर के महाराज और सर एस० पी० सिंह थे। सन् १९१९ ई० में वर्साई (Versailles) की संधि हुई और युद्ध का अन्त हो गया।

सुधार के लिए आन्दोलन (सन् १९०९-१९१९ ई०)—लार्ड मार्ले के सुधारो से नरम-दल के लोग सन्तुष्ट हो गये थे किन्तु गरम-दल के नेता अब भी शान्तिपूर्ण उपायो का विरोध करते थे। नई कौंसिलो का काम चल रहा था, उनके काम से हिन्दू और मुसलमान दोनो सन्तुष्ट प्रतीत होते थे।

श्री गोखले का सन् १९१५ ई० में देहान्त हो गया। उनकी मृत्यु से भारत को बडा धक्का लगा। जब सर एस० पी० सिंह के सभापतित्व मे बम्बई में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ तब भारत की युद्धकालीन सेवाओ का उल्लेख किया गया और भारत का उद्देश ऐसे शासन का स्थापित करना बतलाया गया जो जनता का हो, जनता के हित के लिए हो और जनता-द्वारा सञ्चालित हो। श्रीमती एनीबेसेन्ट ने सन् १९१६ ई० में 'होमरूल लीग' की स्थापना की और अपने पत्र 'न्यू इण्डिया' द्वारा उसका प्रचार-कार्य प्रारम्भ किया। श्री तिलक ने उनका साथ दिया और होम रूल आन्दोलन ने खूब जोर पकडा। सन् १९१६ ई० में लखनऊ-कांग्रेस में कांग्रेस के नरम और गरम-दल दोनो मिल गये। हिन्दू और मुसलमानो में भी मेल कराने का प्रयत्न किया गया। स्वायत्त शासन-सम्बन्धी प्रस्ताव का समर्थन दोनो दलो के नेताओ ने किया। श्री० जिन्ना के सभापतित्व में, लखनऊ में, मुस्लिम लीग का भी अधिवेशन हुआ। साम्राज्य के अन्तर्गत, स्वायत्त शासन प्राप्त करना ही उसने अपना ध्येय घोषित किया। कांग्रेस और मुस्लिम लीग की एक सम्मिलित बैठक में स्वायत्त शासन की मांग का समर्थन किया गया।

सन् १९१७ ई० में 'होमरूल आन्दोलन' बहुत ज़ोर पकड गया। मदरास-सरकार ने श्रीमती एनीबेसेन्ट को उनके दो अन्य साथियो के साथ नज़रबन्द कर दिया। इस पर जनता ने बडा क्रोध प्रकट किया और वह

वृद्ध महिला कलकत्ता में होनेवाली आगामी कांग्रेस के लिए सभानेत्री निर्वाचित की गई। इसी समय उदार-दल के लोगो का प्रभाव कांग्रेस पर से उठ गया और उन्होंने उदार-संघ का (Liberal Federation) संगठन किया।

भारत की युद्धकालीन सेवाओं का खयाल करके भारत-सचिव मान्टेग्यू (Montagu) ने सन् १९१७ ई० को घोषणा की जिसमे कहा गया कि भारत में ब्रिटिश नीति का ध्येय उत्तरदायित्वपूर्ण शासन स्थापित करना है। उसी साल वायसराय, प्रमुख राजकर्मचारियो तथा भारत के नेताओ के साथ सुधार के प्रस्तावो पर बहस करने के लिए मि० मान्टेग्यू भारत आये। छ मास के कठिन परिश्रम के बाद उन्होंने एक रिपोर्ट तैयार की जिसमें शासन-सुधार-सम्बन्धी प्रस्तावो का समावेश किया गया। इन्हीं प्रस्तावो के आधार पर अन्त में गवर्नमेंट आफ इंडिया बिल तैयार किया गया जो दिसम्बर सन् १९१९ ई० में पास होकर कानून बना दिया गया।

मान्टेग्यू चेम्सफोर्ड-सुधार (सन् १९१९ ई०)—सन् १९१९ ई० के गवर्नमेंट आफ इंडिया-ऐक्ट का उद्देश्य जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियो को कुछ उत्तरदायित्व प्रदान करना था। उसमे विधान मे कई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो गये। भारत-सचिव की कौंसिल तोडी नही गई किन्तु उसके हिन्दुस्तानी मेम्बरो की संख्या बढ़ा दी गई। वायसराय की कार्यकारिणी समिति मे भी कुछ सदस्य बढा दिये गये। पुरानी बडी व्यवस्थापिका सभा के स्थान पर कौंसिल आफ स्टेट तथा लेजिस्लेटिव एसेम्बली नामक दो सभाओ (Chambers) की व्यवस्था की गई। कौंसिल आफ़ स्टेट में कुल ६० सदस्य थे जिनमें २६ गवर्नर-जनरल द्वारा नामज़द किये गये थे। लेजिस्लेटिव एसेम्बली 'लोअर हाउस' था जिसमें निर्वाचित प्रतिनिधियो का बहुमत था। उसे बजट पास करने अथवा रुपये की मंजूरी के लिए पेश की हुई सरकार की माँगो को एकदम से अस्वीकार कर देने का

अधिकार दिया गया। प्रत्यक्ष निर्वाचन-प्रणाली (Direct Election) का सूत्रपात हुआ।

प्रान्तीय कौंसिलो के सदस्यो की सख्या भी बढा दी गई। प्रान्तीय सरकारो को दो विभागो में विभक्त कर दिया गया—सरक्षित (Reserved) तथा हस्तान्तरित (Transferred)। सरक्षित विषयो पर गवर्नर की कार्यकारिणी समिति के सदस्यो का अधिकार था और हस्तान्तरित विषय मन्त्रियो (Ministers) के सुपुर्द कर दिये गये। ये मत्री लेजिस्लेटिव कौंसिल के निर्वाचित सदस्यो में से चुन कर नियुक्त किये गये थे।

विभिन्न जातियो और हितो के विशेष प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की गई। प्रत्यक्ष निर्वाचन-पद्धति चलाई गई और मताधिकार का क्षेत्र बहुत विस्तृत कर दिया गया।

नई सुधार-योजना के थोडे ही समय बाद दिल्ली में नरेन्द्र-मण्डल (Chamber of Princes) की स्थापना की गई। उसका उद्देश्य देशी नरेशो के हितो से सम्बन्ध रखनेवाले विषयो पर बहस और विचार करना है। इसका सभापति वायसराय होता है। यह एक विचारक सस्था है। उसके प्रस्तावो को स्वीकार करने के लिए भारत-सरकार बाध्य नही है।

किन्तु पूर्व इसके कि शासन-सुधार अपना पूरा प्रभाव दिखा सके, सारे देश में एक नया आन्दोलन उठ खडा हुआ। इस आन्दोलन ने जनता और सरकार दोनो का पूरा ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया।

नये विधान को ड्यूक आफ कनाट (Duke of Connaught) ने सन् १९२१ ई० के जनवरी-फरवरी मास मे कार्यान्वित किया।

**कलकत्ता-यूनिवर्सिटी कमीशन**—सन् १९१७ ई० में लार्ड चेम्सफोर्ड ने कलकत्ता-विश्वविद्यालय की दशा की जाँच करने के लिए एक कमीशन नियुक्त किया। कमीशन के अध्यक्ष, लीड्स यूनिवर्सिटी के वाइस-चान्सेलर सर माइकल सैडलर (M Sadler) बनाये गये। इस कमीशन

ने उच्च शिक्षा की व्यवस्था के लिए महत्त्वपूर्ण सिफारिशें की और अन्वेषण (research) पर बडा जोर दिया।

**असहयोग-आन्दोलन की उत्पत्ति**—कांग्रेस के राष्ट्रवादियो ने सुधार-योजना की निन्दा की और उसके साथ किसी प्रकार का सहयोग करने से इनकार कर दिया। क्रान्तिकारियो को दण्ड देने के लिए सरकार ने रौलट बिल (Rowlatt Bill) पास किया। इससे देश में बडा असन्तोष फैला। इस समय भारत में महात्मा गाधी की बडी ख्याति हो गई। वे दक्षिणी अफ्रीका में भारतीयो के लिए काफी लड चुके थे और बहुत काम कर चुके थे। उन्होने 'काले बिलो' (Black Bills) के विरुद्ध आन्दोलन करना आरम्भ किया और लोगो को सरकार से असहयोग करने की सलाह दी। विरोध के इस नवीन

महात्मा गाधी

रूप को 'सत्याग्रह' का नाम दिया गया। सत्याग्रह आत्मबल के सिद्धान्त पर अवलम्बित था। सत्याग्रही का कर्तव्य था कि अत्याचार अथवा अन्याय का सामना आत्मबल से करे और धैर्य के साथ सब कष्टो को सहन करे। सत्य, एव अहिंसा का पालन और घृणा अथवा ईर्ष्या-द्वेष का परित्याग करना ही उसका धर्म था। शत्रुओ के विरुद्ध भी बल का प्रयोग उसके लिए मना था। अनेक स्थानो में उपद्रव हो गये किन्तु सबसे भीषण काण्ड पजाब में हुआ जहाँ अधिकारियो ने 'मार्शल-ला' (Martial Law) जारी कर दिया। अमृतसर में दो स्थानीय नेताओ को गिरफ्तार करना ही इस काण्ड का मूल कारण था। जलियानवाला बाग़ में एक सभा की गई। जनरल डायर (Dyer) ने निर्दोष भीड पर

गोली चलाकर उसे तितर-वितर कर दिया और बहुत-से मनुष्यो को मार डाला। पजाब के सरकारी कर्मचारियो के व्यवहार की जाँच करने के लिए सरकार ने हन्टर कमेटी (Hunter Committee) की नियुक्ति की। कमेटी ने डायर के कार्य को 'विचार की भूल' बतलाया। सरकारी अफसरो को अदालती कार्रवाई से बचाने के लिए राष्ट्रवादियो के विरोध की कुछ परवाह न करके बडी व्यवस्थापिका सभा में इन्डेमनिटी बिल (Indemnity Bill) पास किया गया।

आन्दोलन बल पकडता गया। कलकत्ता में काग्रेस के विशेष अधिवेशन (सितम्बर सन् १९२० ई०) के अवसर पर असहयोग का कार्यक्रम निश्चय किया गया। उसमें चार बातें थी (१) सरकारी उपाधियो का परित्याग, (२) विदेशी माल का बहिष्कार, (३) सरकारी स्कूलो से लडको को हटा लेना, और (४) अदालतो सरकारी नौकरियो तथा व्यवस्थापिका सभाओ के निर्वाचनो का बहिष्कार।

अप्रैल सन् १९२१ ई० में, लार्ड चेम्सफोर्ड वापस चला गया और लार्ड रीडिङ्ग (Lord Reading) वायसराय होकर आया।

अफगान-युद्ध—२० फरवरी सन् १९१९ ई० को अमीर हबीबुल्ला को उसके शत्रुओ ने मार डाला। उसके बडे लडके इनायतउल्ला ने, अमीर के भाई नसरुल्ला के लिए गद्दी पर बैठने का दावा छोड दिया। नसरुल्ला इस प्रकार अफगानिस्तान का अमीर बन गया। किन्तु हबीबुल्ला के छोटे भाइयो ने इन कार्यवाहियो को जायज मानने से इनकार कर दिया। थोडे समय तक राज्य करने के बाद नसरुल्ला को हबीबुल्ला के छोटे लडके अमानुल्ला के लिए गद्दी छोड देनी पडी। अमानुल्ला को अल्पकाल ही में सेना बहुत मानने लगी। उसने एक दर्बार किया और नसरुल्ला तथा इनायतउल्ला को जीवन भर के लिए निर्वासित कर दिया।

इधर भारत में रौलट बिल के कारण बडी अशान्ति फैली हुई थी। इस अवसर से लाभ उठाकर अफगानो ने खैबर की घाटी पर आक्रमण कर दिया परन्तु अँगरेजी सेना से उन्हे हार खानी पडी। २१ फरवरी

सन् १९२१ ई० को एक सन्धि हुई और उसके अनुसार अफ़ग़ानिस्तान की स्वाधीनता स्वीकार की गई। इसके बदले अमीर ने ब्रिटिश भारत और अफ़ग़ानिस्तान के बीच की निश्चित की हुई सीमा को स्वीकार कर लिया।

अमानुल्ला ने अफ़ग़ानिस्तान को एक आधुनिक देश बनाने का प्रयत्न किया किन्तु अफ़गानो ने उसके सुधारो को पसन्द नही किया। बच्चा सकाओ नामक एक नीच कुल के आदमी ने सेना की सहायता से उसे हटाकर बलपूर्वक गद्दी पर अधिकार कर लिया। किन्तु कुछ समय के पश्चात् वह मार डाला गया और अफ़ग़ान-सेना का सेनापति नादिरख़ाँ सन् १९२९ ई० मे अमीर चुना गया। उसने देश में शान्ति स्थापित की परन्तु अन्त में वह भी मारा गया और उसका लडका गद्दी का मालिक हुआ।

### संक्षिप्त सन्वार विवरण

| | |
|---|---|
| मुसलमानो का डेप्यूटेशन . . . | १९०६ ई० |
| सूरत की कांग्रेस . . | १९०७ ,, |
| राजद्रोही सभाओ को रोकने का कानून . | १९०७ ,, |
| मिन्टो-मार्ले सुधार .. . .. . | १९०९ ,, |
| गोखले का शिक्षा-बिल .. . .. | १९१० ,, |
| भारतीय प्रेस-ऐक्ट .. .. .. .. . | १९१० ,, |
| सम्राट् का आगमन . .. . . | १९११ ,, |
| पबलिक सर्विस कमीशन .. . .. . | १९१२ ,, |
| सिक्खो का कमीशन .. .. .. .. | १९१३ ,, |
| यूरोपीय महायुद्ध . .. .. . | १९१४ ,, |
| बनारस-हिन्दू-यूनिवर्सिटी-ऐक्ट . . .. .. | १९१५ ,, |
| बनारस-हिन्दू-यूनिवर्सिटी की नींव . . . | १९१६ ,, |
| मिस्टर मान्टेग्यू की विज्ञप्ति .. . . | १९१७ ,, |
| वैसीन की सन्धि .. . . . | १९१९ ,, |
| रौलट बिल .. .. .. .. . | १९१९ ,, |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| गवर्नमेंट श्राफ इडिया-ऐक्ट | .. | .. | .. | १६१६ ई० |
| अमीर हवीवुल्ला की मृत्यु | .. | .. | .. .. | १६१६ ,, |
| सत्याग्रह-आन्दोलन का आरम्भ | .. | .. | . | १६२० ,, |
| अफगान-युद्ध | .. . | .. | .. | १६१६-२१ ,, |

---

## (६) आन्दोलन के नये ढंग और शासन-सुधार के नये प्रस्ताव (सन् १६२०-३५)

लार्ड रीडिंग की कठिनाइयाँ—असहयोग-आन्दोलन वडे वेग के साथ वढने लगा। काग्रेस ने अपना कार्यक्रम निश्चित किया और खद्दर तथा चर्खा कातने पर वडा जोर दिया। अनेक स्थानो में उपद्रव हो गये। अगस्त सन् १६२१ ई० में मलावार में मोपला-विद्रोह उठ खडा हुआ। मोपलाओ ने वडे भीषण अत्याचार किये। इसके वाद चोरी-चोरा की दुर्घटना हुई और फिर मदरास तथा वम्वई के उपद्रवो में भीषण निर्दयता के व्यवहार हुए। मार्च सन् १६२२ ई० में महात्मा गाधी गिरफ्तार कर लिये गये। उन पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया और ६ साल कैद की सज़ा दी गई। जज ने खेद प्रकट किया कि मुझे श्री गान्धी जैसे उच्च आदर्श और चरितवाले व्यक्ति के साथ इस प्रकार का वर्ताव करना पडा।

इन सव कारणो से आन्दोलन को वडा भारी धक्का लगा। गान्धी जी दो वर्ष वाद छोड दिये गये, किन्तु कौंसिल-प्रवेश के प्रश्न पर काग्रेस मे घोर मतभेद उत्पन्न हो गया। कलकत्ता के प्रसिद्ध वकील श्री सी० आर० दास ने कौंसिल के अन्दर से सरकार को नष्ट करने के उद्देश्य से कौंसिलो में जाने पर जोर दिया। इलाहावाद के प्रसिद्ध नेता पडित मोतीलाल नेहरू ने उनके मत का समर्थन किया। फलत सन् १६२३ ई० में स्वराज्यपार्टी की स्थापना हुई। दिल्ली में मौलाना मुहम्मदअली के सभापतित्व में काग्रेस की जो वैठक हुई उसने कौंसिल-प्रवेश के पक्ष मे एक प्रस्ताव पास किया। इसी समय हिन्दुओ और मुसलमानो के वीच साम्प्रदायिक वैमनस्य ने भीषण

रूप धारण कर लिया और पजाव, सयुक्तप्रान्त तथा मध्यप्रान्त में उपद्रव हो गये। सबसे भीषण उपद्रव कोहाट (पजाव) में हुआ जिसमें बहुत-से हिन्दुओ की जान गई, इस पर महात्मा गान्धी ने प्रायश्चित्तस्वरूप २१ दिन का उपवास किया। दिल्ली में एकता-सम्मेलन किया गया किन्तु उसका कुछ परिणाम न हुआ। काग्रेस में स्वराज्यपार्टी का प्रभाव बढ गया। सरकार ने दमननीति का अवलम्बन किया और बगाल आर्डिनेन्स (Bengal Ordinance) पास किया जिसके अनुसार अनेक शिक्षित एव प्रतिष्ठित व्यक्ति जेल भेज दिये गये। जून, सन् १९२५ ई० में स्वराज्यपार्टी के नेता श्री सी० आर० दास की मृत्यु हो गई और पडित मोतीलाल नेहरू ने उनके स्थान को ग्रहण किया।

शासन-प्रबन्ध—सन् १९२२ ई० में इन्चकेप कमेटी (Inchcape Committee) ने विभिन्न मदों के खर्चे को घटाने की सलाह दी। बडी व्यवस्थापिका सभा के विरोध करने पर भी नमक का कर बढा दिया गया। उसी साल आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलेंड और कनाडा में रहनेवाले भारतीयो की दशा की जांच करने के लिए श्री (बाद को राइट आनरेबुल) श्रीनिवास शास्त्री बाहर भेजे गये। उन्होंने औपनिवेशिक सरकारो पर अच्छा प्रभाव डाला और उनसे भारतीयो की दशा मे सुधार करने का वचन लिया। यह नियम कर दिया गया कि भारत-सरकार की स्वीकृति के लिये बिना, भारत के बाहर काम करने के लिए मज़दूरो की भर्ती नहीं की जा सकती। ली कमीशन (Lee Commission) ने इडियन सिविल सर्विस के मेम्बरो का वेतन बढा देने तथा उनकी दशा में अन्य सुधार करने का प्रस्ताव किया। नरेश-रक्षा-बिल (The Princes' Protection Bill) ने देशी नरेशो को समाचार-पत्रो के आक्रमण से सुरक्षित कर दिया।

सरकार ने भारतीयो को कुछ सैनिक सुविधायें प्रदान कीं। सम्राट् के कमीशन (King's Commission) का द्वार उनके लिए खोल दिया और सैण्डहर्स्ट (Sandhurst) के सैनिक कालिज मे उनके लिए १० जगहें सुरक्षित कर दी। देहरादून मे भी एक सैनिक विद्यालय खोला गया।

सन् १९२० ई० में सिक्ख-गुरुद्वारो का सुधार करने के लिए एक प्रवल आन्दोलन आरम्भ हुआ। अकालियों ने अपना सगठन कर उनके प्रवन्ध मे हस्तक्षेप करना शुरू किया। जव अकालियो ने सत्याग्रह किया और अधिकारियो को चुनौती दी तव घोर उपद्रव खडा हो गया। सन् १९२३ ई० मे पटियाला और नाभा के राजदरवारो के वीच झगडा हो गया। उसके परिणामस्वरूप नाभा के महाराज को सिहासन का त्याग करना पडा। शासन-प्रवन्ध का भार ब्रिटिश सरकार ने अपने हाथ मे ले लिया और महाराजा को देहरादून मे रहने की आज्ञा दे दी।

सुधार-जाँच-कमेटी (सन् १९२४ ई०)—वडी व्यवस्थापिका सभा में स्वराज्यपार्टी ने सन् १९१९ ई० के शासन-विधान को दोहराने और सशोधित करने का प्रस्ताव किया। उसके फलस्वरूप सन् १९२४ ई० में, भारत-सरकार के तत्कालीन गृह-सचिव सर एलेक्जेन्डर मुडीमैन (Alexander Muddiman) की अध्यक्षता में एक कमेटी नियुक्त की गई। सन् १९२५ ई० में उस कमेटी ने अपनी रिपोर्ट तैयार की। डा० (अव राइट आनरेवुल सर) तेजवहादुर सप्रू, श्रीमुहम्मद अली, जिन्ना आदि मेम्वरो ने अन्य मेम्वरो के साथ मतभेद किया और इस वात पर ज़ोर दिया कि भारत को उत्तरदायित्वपूर्ण शासन दिया जाना चाहिए।

लार्ड रीडिंग का वापस लौटना—अप्रैल सन १९२६ ई० में लार्ड रीडिङ्ग चला गया और उसकी जगह पर लार्ड अरविन (अव लार्ड हेलीफैक्स) वायसराय होकर आया, यहाँ आने पर उसने देखा कि सारे देश में निराशा और असन्तोष फैला हुआ है और साम्प्रदायिक कलह पराकाष्ठा पर पहुँच गई है। ब्रिटिश सरकार और पार्लियामेंट की घोषणाओ की सत्यता पर काग्रेस की प्रायः विलकुल आस्था नही रह गई थी।

राजनीतिक प्रगति (सन् १९२६-३१ ई०)—सन् १९२५ ई० में वडी व्यवस्थापिका सभा ने जो राष्ट्रीय माँग पेश की थी उस पर ब्रिटिश मत्रि-मण्डल ने कुछ भी ध्यान नही दिया था। किन्तु सन् १९२७ ई० में उसने सर जान साइमन (Sir John Simon) की अध्यक्षता में एक

कमीशन नियुक्त किया जिसके सभी सदस्य अँगरेज थे। कमीशन का काम शासन-सुधार के प्रश्न की जाँच करना था। सभापति सर साइमन के अतिरिक्त उस कमीशन का कोई भी सदस्य उच्च कोटि का राजनीतिज्ञ नहीं था। भारतीयो ने कमीशन का बहिष्कार किया और प्रतिष्ठित व्यक्तियो ने उसके सामने गवाही देने से इनकार कर दिया। सर तेजबहादुर सप्रू तथा कतिपय अन्य नेताओ ने एक विज्ञप्ति प्रकाशित की और एक ऐसे कमीशन की माँग पेश की जिसमें अँगरेज और हिन्दुस्तानी दोनो हो। बहिष्कार जारी रहा। इसी बीच में मिस कैथराइन मेयो (Miss Katharine Mayo) की पुस्तक 'मदर इडिया' प्रकाशित हुई। उससे ब्रिटिश सरकार पर जनता का अविश्वास और बढ़ गया। उस पुस्तक में हिन्दुओ और मुसलमानो की सामाजिक रीतियो पर जघन्य आक्रमण किया गया था। मदरास-कांग्रेस ने (सन् १९२७ ई०) बहिष्कार की नीति का समर्थन किया।

लार्ड अरविन ने भारत के लोगो को यह विश्वास दिलाने की कोशिश की कि सरकार अपनी उस प्रतिज्ञा को भग नही करेगी जिसमें कहा गया है कि ब्रिटिश नीति का लक्ष्य औपनिवेशिक शासन स्थापित करना है। भारत के विधान के सम्बन्ध में बहस करने के लिए उसने लन्दन मे एक गोलमेज-परिषद् (Round Table Conference) करने का भी प्रस्ताव किया। किन्तु पार्लियामेंट के वाद-विवादों से भारतीयो के हृदय में कुछ सन्देह उत्पन्न हुआ। कांग्रेस के कतिपय नेता वायसराय के पास गये और उन्होने उससे कहा कि गोलमेज परिषद् का उद्देश्य औपनिवेशिक शासन-विधान तैयार करना होना चाहिए न कि स्वराज्य के लिए भारत की योग्यता की जाँच करना। वायसराय इस बात से सहमत नहीं हुआ। लाहौर-कांग्रेस ने, जिसका अधिवेशन दिसम्बर सन् १९२९ ई० में पंडित जवाहरलाल नेहरू के सभापतित्व में हुआ, निश्चित किया कि कांग्रेस का ध्येय पूर्ण स्वराज्य और स्वाधीनता है। सरकार और कांग्रेस के बीच फिर लड़ाई छिड़ गई और सविनय अवज्ञा आन्दोलन फिर चलाया गया। महात्मा गान्धी नमक

के कानून को तोडने के लिए समुद्र-तट की ओर रवाना हुए। सारे देश में नमक-कानून तोडा गया और हजारो आदमी जेल भेज दिये गये। स्त्रियो ने भी आन्दोलन मे भाग लिया और पुरुषो की तरह वे भी जेल गईं। विदेशी माल का वहिष्कार और शराव की दूकानो पर धरना देना जारी रहा। व्यापार को वडा धक्का पहुँचा। इसी समय साइमन कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित हुई किन्तु उसका वहुत कम स्वागत हुआ। तेजवहादुर सप्रू और मि० जयकर ने सरकार तथा काग्रेस के वीच समझौता कराने की चेष्टा की किन्तु उनके सब प्रयत्न विफल सिद्ध हुए।

पहली गोलमेज परिषद् नवम्वर (सन १६३० ई०) लदन में हुई। देशी नरेशो की ओर से बीकानेर के महाराजा ने घोषित किया कि हम लोग व्रिटिश भारत के साथ एक सघ में सम्मिलित होने के लिए तैयार हैं। सर तेजवहादुर सप्रू ने परिषद के मुख्य परिणामो का निम्नलिखित शब्दो में वर्णन किया —

(१) अखिल भारतीय सघ (All India Federation) का विचार।

(२) केन्द्रीय उत्तरदायित्व का विचार (Responsibility at Centre)।

(३) भविष्य में भारत का अपनी रक्षा के लिए तैयार होना।

काग्रेस पहले गोलमेज परिषद से अलग रही। उसमें उसने कुछ भाग नही लिया। किन्तु इसके वाद तुरन्त ही सरकार ने विना किसी शर्त के राजनीतिक कैदियो को छोड दिया और ३१ मार्च सन् १६३१ ई० को गाधी-अरविन-समझौता हुआ। सत्याग्रह-आन्दोलन वद कर दिया गया और सरकार राजनीतिक कैदियो को क्षमा प्रदान करने के लिए तैयार हुई। इस प्रकार लार्ड अरविन की राजनीतिज्ञता ने देश में शाति स्थापित कर दी।

**शासन-सम्बन्धी कार्य**—लार्ड अरविन एक वुद्धिमान् राजनीतिज्ञ था। उसने भारत की समस्याओ का सामना साहस और सहानुभूति के साथ किया। विभिन्न श्रेणियो में सद्भावना वढाने के लिए उसने

बतलाया कि साम्प्रदायिक सम्बन्ध और अच्छा होना चाहिए। सन् १६२७ ई० में स्कीन कमेटी (Skeen Committee) ने अपनी रिपोर्ट पेश की और अफ़सरो के दर्जे पर भारतीयो को नियुक्त करने की सिफारिश की। भारतीय नरेशो तथा भारत-सरकार के पारस्परिक सम्बन्ध की जाँच करने के लिए बटलर-कमेटी (Butler Committee) नियुक्त की गई। कमेटी ने कहा कि सार्वजनिक हित की रक्षा के लिए भारत-सरकार को देशी राजाओ के मामलो में हस्तक्षेप करने का अधिकार है। उसने यह मानने से इनकार कर दिया कि ब्रिटिश शक्ति के सम्पर्क में आने के समय देशी राज्य स्वाधीन थे।

लाड अरविन की कृषि में बडी रुचि थी। उसने सन १६२७ ई० में मारक्विस आफ लिन्लिथगो (Marquess of Linlithgow) की अध्यक्षता में एक कमीशन नियुक्त किया। कमीशन को कृषि की दशा पर रिपोर्ट पेश करने और सुधार के उपायो को बताने का काम सौंपा गया। उसने अन्य सब कृषि-सस्थाओ का पथ प्रदर्शन करने तथा उन्हें सलाह देने के लिए एक अखिल भारतीय अनुसन्धान-समिति (Imperial Council of Research) स्थापित करने की सिफ़ारिश की। इस समिति का काम देश में कृषि-सम्बन्धी अनुसन्धान को प्रोत्साहित करना है।

लार्ड अरविन ने सन् १६३१ ई० में इस्तीफ़ा दे दिया और लार्ड विलिंगडन (Lord Willingdon) जिन्हें भारत की स्थिति का बडा अनुभव था, उसकी जगह वायसराय होकर आया।

लार्ड विलिंगडन (१६३१-३६)—कांग्रेस ने दूसरी गोलमेज परिषद् में भाग लेने का निश्चय किया। लदन में उस परिषद् की बैठक हुई। महात्मा गान्धी, पडित मदनमोहन मालवीय तथा श्रीमती सरोजिनी नायडू को साथ लेकर कांग्रेस के प्रतिनिधि होने के रूप में वहाँ गये। वायसराय ने बडी दृढता के साथ सत्याग्रह-आन्दोलन का दमन किया। जनवरी सन् १६३२ ई० मे महात्मा गान्धी और उनके साथी फिर जेल में

वन्द कर दिये गये। आन्दोलन को एकदम कुचल डालने के लिए उपाय किये गये। उसे काबू में करने के लिए 'स्पेशल आर्डिनेन्स' जारी हुए।

सुधार के प्रस्तावो पर वहस होती रही। जव विभिन्न जातियाँ प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर आपस में कोई समझौता न कर सकीं तव प्रधान सचिव ने अपना निर्णय जारी किया जो 'कम्युनल एवार्ड' (Communal Award) अर्थात् साम्प्रदायिक निर्णय के नाम से प्रसिद्ध है। हिन्दू उससे असन्तुष्ट रहे। उसमें परिवर्तन करने का आन्दोलन अभी चल रहा है। नवम्वर सन् १९३२ ई० में तीसरी गोलमेज परिषद् हुई। उसके प्रस्तावो के आधार पर 'श्वेत पत्र' (White Paper) तैयार किया गया जो सन १९३३ ई० में प्रकाशित हुआ।

ब्रिटिश सरकार ने अव एक 'गवर्नमेंट आफ इंडिया-ऐक्ट' पास किया है जिसमें केन्द्र-संघ-शासन (Federation) और प्रान्तो में पूर्ण स्वायत्त शासन की व्यवस्था की गई है। इस ऐक्ट के अनुसार गवर्नर-जनरल और गवर्नरो को वडे वडे अधिकार दिये गये हैं। भारतीय अखिल संघ (Federation) में गवर्नरो के सूवे, चीफ कमिश्नरो के सूवे और देशी रियासतें जो उसे स्वीकार करेंगी सम्मिलित होंगी। फेडरल सरकार का कार्य-संचालन गवर्नर-जनरल और एक मंत्रिपरिषद्-द्वारा होगा जो फेडरल व्यवस्थापिका सभाओ से चुना जायगा। कई मामले ऐसे है जिनकी जिम्मेदारी खास तौर पर गवर्नर-जनरल पर रक्खी जायगी। मंत्रियो की राय मानने के लिए वह कभी वाध्य नही किया जा सकेगा। फेडरल व्यवस्थापिका सभा में दो कौंसिलें (परिषद्) होगी। एक तो कौंसिल आफ स्टेट और दूसरी हाउस आफ ऐसेम्वली। दोनो परिषदो में देशी राज्यो के प्रतिनिधि वैठ सकेंगे। ये सभायें अपना प्रेसीडेंट आप निर्वाचित करेंगी। जिन विषयो का फेडरल सरकार प्रवन्ध करेगी वे गवर्नमेंट आफ इंडिया-ऐक्ट में वर्णित है।

साइमन कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में लिखा था कि सूवो में पूर्ण स्वायत्त शासन स्थापित कर देना चाहिए। नये ऐक्ट में इस सिद्धान्त

को स्वीकार कर लिया गया है। सूबो की गवर्नमेंट का कार्य-सचालन मन्त्रियो-द्वारा होगा जो व्यवस्थापिका सभा के मेम्बरो मे से चुने जायँगे और जो उसी समय तक अपने पद पर रह सकेंगे जब तक गवर्नर उन्हें चाहे। सूबे की व्यवस्थापिका सभायें मदरास, बम्बई, बगाल, सयुक्त-प्रान्त, बिहार और आसाम में दो होगी और अन्य सूबो मे एक ही सभा होगी। इनके नाम होगे लेजिस्लेटिव कौंसिल (Upper House) और लेजिस्लेटिव ऐसेम्बली (Lower House)। विशेष मताधिकार (Special Representation) का सिद्धान्त फिर भी स्वीकार कर लिया गया है। लेजिस्लेटिव ऐसेम्बली का कार्य-काल ५ वर्ष होगा। लेजिस्लेटिव कौंसिलो के एक तिहाई मेम्बर हर तीसरे साल हट जाया करेंगे। सभायें अपना प्रेसीडेंट अपने आप चुनेंगी। वोट देनेवालो की सख्या शहरो और देहातो में अधिक कर दी जायगी। स्त्रियो को भी अधिक सख्या मे वोट देने का अधिकार दिया जायगा। इस ऐक्ट के अनुसार एक फेडरल कोर्ट (Federal Court) यानी बडी अदालत स्थापित की जायगी जिसमें एक चीफ जस्टिस अर्थात् बडा जज और अन्य जज होगे। इस अदालत के सामने वे मामले आयेंगे जिनमे फेडरेशन, ब्रिटिश सूबे और देशी रियासतें शामिल होगी। परन्तु इसके सम्मुख ऐसा कोई प्रश्न नही आवेगा जिसमे कानूनी अधिकार पर झगडा न हो। ऐसे भी कई मामले है जो इस अदालत के सामने नही लाये जा सकेंगे। कानूनी बिना पर हाईकोर्टों के फैसलो की अपील फेडरल कोर्ट में हो सकेगी।

ज्वाइन्ट सिलेक्ट कमेटी (Joint Select Committee) ने सिफारिश की थी कि उत्तरदायित्व शासन मे इडिया कौंसिल की आवश्यकता न रहेगी। इसी लिए नये गवनमेंट आफ इडिया में यह तय किया गया है कि यह कौंसिल बर्खास्त कर दी जायगी और भारत सेक्रेटरी और उसकी कौंसिल के अधिकार सम्राट (Crown) को दे दिये जायँगे।

सम्राट् पचम जार्ज की मृत्यु—२० जनवरी सन् १९३६ को सम्राट्

पचम जार्ज की मृत्यु हो गई। देश भर में शोक मनाया गया और सार्व-जनिक सभाओ में सम्राट् का गुण-गान किया गया।

**लार्ड लिन्लियगो**—लार्ड विलिंगडन के इस्तीफा देकर चले जाने के वाद उनके स्थान में लार्ड लिन्लिथगो (Lord Linlithgow) जो पहले कृषिकमीशन के अध्यक्ष होकर भारत आये थे वायसराय नियुक्त हुए। नये वायसराय को कृषि मे वडी रुचि है और देहाती जनता के हित का उन्हें वडा खयाल है। उन्होंने आते ही प्रजा के कल्याण का उपाय करना आरम्भ कर दिया है।

**सम्राट् का पद-त्याग**—स्वर्गीय सम्राट् के ज्येष्ठ पुत्र प्रिंस आफ वेल्स एडवर्ड अष्टम की उपाधि लेकर गद्दी पर वैठे। उन्होंने साम्राज्य का काम वडी उत्तमता से किया और थोडे ही दिनो में उनकी लोक-प्रियता की ख्याति सारे देश मे फैल गई। परन्तु लगभग डेढ साल के वाद अपने विवाह के सम्वन्ध में मन्त्रिमडल के साथ मतभेद हो जाने के कारण सम्राट् ने राजसिंहा-सन का परित्याग कर दिया। उन्होंने एक अमरीकन महिला मिसेज सिम्सन के साथ विवाह कर लिया। आजकल वे फ्रास के एक गाँव में रहते हैं। ड्यूक आफ विंडसर की उन्हें उपाधि दी गई है।

एडवर्ड के राजगद्दी छोडने के वाद उनके छोटे भाई ड्यूक आफ यार्क जार्ज षष्ठ के नाम से राजसिंहासनारूढ हुए है। इनके समय में यूरोप में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे हैं। इटली तथा जर्मनी की शक्ति उत्तरोत्तर वढ रही है और युद्ध की प्रतिक्षण आशका रहती है। इंगलैंड शान्ति का समर्थक है और वरावर इसी नीति का पालन कर रहा है। आगे चलकर क्या होगा यह नही कहा जा सकता।

भारत मे नये विधान के अनुसार जो चुनाव हुए उनमें काग्रेस को पूर्ण विजय प्राप्त हुई। पहले तो काग्रेस ने मन्त्रिपद ग्रहण नही किया परन्तु वाय-सराय के आश्वासन देने पर कि गवर्नर मन्त्रियो के काम में हस्तक्षेप न करेंगे मन्त्रिमडल वनाना स्वीकार किया। फलत इस समय आठ सूवो में काग्रेस के मन्त्रिमडल शासनकार्य कर रहे है। इन मन्त्रियो ने प्रजा के हित के लिए

अनेक योजनायें देश के सम्मुख रक्खी हैं और कृषको, मजदूरो तथा अन्य दीन लोगो की दशाको सुधारने का पूर्ण उद्योग किया है। कुछ समय के बाद फैडरेशन का सवाल पैदा होगा। कांग्रेस बराबर इसका विरोध करती आई है। आशा की जाती है कि समय आने पर कोई न कोई समझौता ऐसा हो जायगा जिससे शासन-विधान को कार्यान्वित करने में कोई रुकावट न हो।

## संक्षिप्त सन्वार विवरण

| | |
|---|---|
| मोपला-विद्रोह .. . .. .. .. | १९२१ ई० |
| महात्मा गान्धी का मुक़दमा . .. .. | १९२२ ,, |
| इन्चकेप कमेटी .. . . .. . | १९२२ ,, |
| ली कमीशन .. | १९२३ ,, |
| महाराजा नाभा का गद्दी से उतारा जाना .. . | १९२३ ,, |
| मूडीमैन कमेटी . .. . | १९२४ ,, |
| लार्ड रीडिङ्ग का इस्तीफा . .. .. | १९२४ ,, |
| साइमन कमीशन .. . .. . | १९२७ ,, |
| कृपिकमीशन .. . .. . | १९२७ ,, |
| प्रथम गोलमेज परिषद् . .. . | १९३० ,, |
| लार्ड अरविन का इस्तीफा . . .. . | १९३१ ,, |
| ह्वाइट पेपर का छपना .. .. . | १९३३ ,, |
| गवर्नमेंट आफ़ इंडिया ऐक्ट . .. .. | १९३५ ,, |
| लार्ड विलिंगडन का इस्तीफा . .. | १९३६ ,, |
| लार्ड लिन्लिथगो का वायसराय होना .. .. | १९३६ ,, |

# अध्याय ३८

## गदर के बाद का जीवन और साहित्य

### (सन् १८५८-१९३५ ई०)

**आधुनिक युग की विशेषतायें**—भारतवर्ष में अँगरेजो के आगमन और पाश्चात्य सभ्यता के प्रचार ने मनुष्यो के दृष्टिकोण को वदल दिया। ईसाई-धर्म का प्रभाव भी मालूम पडने लगा। राजा राममोहन राय ने वर्ण-व्यवस्था और मूर्तिपूजा का परित्याग कर दिया और हिन्दू-धर्म के आदर्शों के विरुद्ध ब्रह्मसमाज की स्थापना की। उनके कार्य्य को केशवचन्द्र सेन ने आगे वढाया। इनके उत्साह, वाक्पटुता और भक्ति ने सवको प्रभावित किया। एक ऐसा ही अद्वैतवादी आन्दोलन महाराष्ट्र में आरम्भ हुआ और उसके फलस्वरूप वहाँ प्रार्थना-समाज की स्थापना हुई। इसका उद्देश्य बौद्धिक उपासना और समाज-सुधार था। इसने जनता में शिक्षा-प्रचार और दलित जातियो का उद्धार करने का प्रयत्न किया। सर आर० एस० भाडारकर और एम० जी० रानाडे इसके सर्वश्रेष्ठ नेता थे। रानाडे हाईकोर्ट के जज थे और वडे ही योग्य, देशभक्त तथा चरित्रवान् पुरुष थे। उन्होने इन्डियन नेशनल कांग्रेस के साथ एक सोशल कान्फ्रेन्स करने का प्रस्ताव किया और अपने भाषण में सामाजिक सुधारो का विशद विवेचन किया। शिक्षा में वे वडा विश्वास रखते थे और 'डकन एज्यूकेशन सोसायटी' (सन् १८८४ ई०) के मुख्य कार्यकर्ताओ में से एक थे। इस सस्था के सदस्यो में गोखले, तिलक और आगरकर जैसे लोग थे। इस सोसायटी ने एक पाठशाला खोली थी जो अब पूना में 'फरगुसन कालेज'

के नाम से विख्यात है और जिसकी सफलता का श्रेय एज्यूकेशन सोसायटी के सदस्यो के आत्मबलिदान और भक्ति-भाव को है। सन् १९०५ ई० मे मिस्टर गोखले ने 'सर्वेन्ट्स आफ इडिया सोसायटी' की स्थापना की जो कि राजनीतिक और सामाजिक उद्धार के क्षेत्र में कार्यकर्ताओ का एक सघ है। सार्वजनिक जीवन मे आध्यात्मिकता का सचार और मातृभूमि की सेवा के लिए अपने देशवासियो के सर्वोच्च गुणो का आह्वान करना उनका उद्देश्य था।

थियोसोफिकल सोसायटी (सन् १८७५ ई०), आर्यसमाज (सन् १८७५) और रामकृष्ण मिशन ने भी जनता की राष्ट्रीय भावना को जगाने के लिए बहुत कुछ किया है। श्रीमती एनीबेसेंट (Annie Besant) ने हिन्दू-आदर्शों को एक नवीन चोला पहनाया और स्वामी विवेकानन्द और रामतीर्थ ने अपनी आध्यात्मिकता और धार्मिक उत्साह से सबको प्रभावित किया। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने सत्यार्थप्रकाश में वैदिक धर्म का एक नवीन अर्थ उपस्थित किया और अन्धविश्वासमय धार्मिक अनुष्ठानो की निन्दा की। उनके अनुयायियों ने वर्णव्यवस्था की कठोरता तोडने, स्त्रियो को शिक्षित करने और दलित जातियो की स्थिति सुधारने के लिए बडे उत्साह से कार्य किया। अन्य शक्तियो ने भी उसी लक्ष्य की ओर ध्यान किया। वैज्ञानिक शिक्षा, विदेश-यात्रा और पाश्चात्य विचारों के सम्पर्क आदि ने मनुष्यो के दृष्टिकोण को बदल दिया और रीति या शास्त्रीय मत की अपेक्षा तर्क अधिक महत्त्वपूर्ण समझा जाने लगा।

**सामाजिक स्थिति**—१९वी शताब्दी के प्रथमार्द्ध तक वर्ण-धर्म प्रबल रहा। सन् १८५७ ई० के गदर का कारण ही यह था कि वर्ण-धर्म खतरे में है। परन्तु पाश्चात्य शिक्षा के कारण वर्ण-धर्म के बन्धन ढीले होने आरम्भ हुए। जाति-भेद को कम करने में रेलो ने भी बडा योग दिया। ब्राह्मण, मुसलमान, ईसाई सब रेल के डिब्बो में एक साथ यात्रा करने लगे और जातिभ्रष्ट होने का भय जाता रहा। इडियन सोशल कान्फ्रेन्स ने वर्ष प्रतिवर्ष स्त्रियो और दलित वर्गों की उन्नति, जातियो मे सौहार्दभाव, बाल-

विवाह और बलात् वैधव्य जैसी सामाजिक बुराइयो के निर्वारण के लिए प्रयत्न किया। 'डिप्रेस्ड क्लासेज मिशन सोसायटी' की सन् १९०६ ई० मे स्थापना हुई और उसने दलित वर्गों की उन्नति के लिए बहुत कुछ किया। हिन्दू-महासभा ने अपने अधिवेशन मे जो बनारस मे सन १९२३ ई० में हुआ था, अछूतो को हिन्दू-धर्म की सुविधायें प्रदान करने के पक्ष में एक प्रस्ताव पास किया। महात्मा गाधी के प्रयत्नों से दलित जातियो के विरुद्ध बहुत-से कुसस्कार मिटते चले जा रहे है और सरकार और जनता दोनो उनकी स्थिति सुधारने के लिए यथाशक्ति प्रयत्न कर रहे हैं। देश के बहुत-से भागो में उन्हें अन्य हिन्दुओ के साथ मन्दिरो में पूजा करने की सुविधा मिल गई है। खान-पान के मामले में पुराने बन्धन ढीले पड गये हे और जीवन के सस्कारो मे यथेष्ट परिवर्तन हो गया है। अन्तर्जातीय विवाह भी साधारण हो गये हैं और घृणा की दृष्टि से नही देखे जाते। सारदा ऐक्ट (सन १९३० ई०) के द्वारा बाल-विवाह भी कानूनन वर्जित कर दिया गया है और विवाह की आयु लडको के लिए १६ और लडकियो के लिए १४ वर्ष निश्चित कर दी गई है।

विख्यात बगाली समाज-सुधारक और परोपकारी महापुरुष ईश्वरचन्द्र विद्यासागर विधवा-विवाह-आन्दोलन के प्रबल समर्थक थे। उनके प्रयत्न से एक कानून पास हुआ जिससे विधवाओ के विवाह को कानूनी सुविधा मिल गई। वर्तमान समय में विधवाओ की सहायता करने के लिए बहुत कुछ किया गया है। उन्हें सहायता पहुँचाने के उद्देश्य से समस्त देश में विधवा-आश्रमो और सेवासदनो की स्थापना हुई है। परन्तु उच्च जाति के हिन्दू-परिवारो मे विधवा-विवाह अब भी बिरले ही होते हैं यद्यपि इनका विरोध न गहरा ही होता है और न प्रभावशाली ही।

महात्मा गाधी के आन्दोलन ने सामाजिक जीवन को बहुत कुछ प्रभावित किया है। उनकी सादगी और तपश्चर्या के आदर्शों ने सब वर्गों के लोगो को अत्यधिक आकर्षित किया है। पोशाक में यथेष्ट सादगी आ गई है और व्यवहारो और सस्कारो में भी परिवर्तन हुआ है।

**स्त्रियो की स्थिति**—अब भारतीय स्त्रियो को अपने अधिकारो का ज्ञान हुआ है। सन् १९१७ ई० में स्त्रियो का एक डेपूटेशन मदरास में मिस्टर माटेग्यू से मिला और उन्हें एक ऐड्रेस प्रदान किया जिसमें उन्होने व्यवस्थापिका सभाओ में प्रतिनिधित्व की माँग की थी। सन् १९२६ ई० में प्रथम वार अखिल भारतीय महिला-सम्मेलन हुआ जिसमें स्त्रियो की माँगें और समाज में उनकी स्थिति को सुधारने के उपाय उपस्थित किये गये। लेडी डफरिन फड का स्त्री-डाक्टरो, नर्सों और दाइयो का प्रवन्ध करने में उपयोग किया गया है और उन्हें चिकित्सा-शास्त्र की शिक्षा देने के लिए अस्पताल और मेडिकल कालिज खोले गये है। दिल्ली का लेडी हार्डिज मेडिकल कालिज एक विख्यात सस्था है जो स्त्रियो को एम० वी० वी० एस० की डिग्री के लिए तैयार करता है। और भी वहुत-सी ग़ैर-सरकारी सस्थायें हैं जहाँ स्त्रियाँ सामाजिक सेवा के लिए तैयार की जाती है। इनमें सवसे अधिक उल्लेखनीय कलकत्ता का चितरजन-सेवासदन और पूना का सेवासदन है जिनसे यह प्रकट होता है कि स्त्रियाँ कितना महान् कार्य कर सकती हैं। प्रोफेसर कर्वे के स्त्री-विश्वविद्यालय ने स्त्रियो की एक वडी सख्या को शिक्षित किया है जिन्होने अपनी वहनो के प्रकाश और ज्ञान के प्रसार के लिए वहुत कुछ किया है। पर्दे का शीघ्रता के साथ लोप हो रहा है। सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में पुरुप और स्त्रियाँ साथ साथ कार्य्य करते हुए दिखाई पडते है। स्त्रियो में ऐसी अध्यापिकायें हैं जिन्होने यरोप में शिक्षा प्राप्त की है। शिक्षित लडकियो ने स्वेच्छानुसार विवाह करना आरम्भ किया है और उनमें से कुछ ने रग-मच (Stage) को जीविकोपार्जन का साधन वनाया है। सगीत और नृत्य का वे परिश्रम के साथ अभ्यास कर रही है और कुछ स्त्रियो ने तो विश्व-व्यापी यश प्राप्त किया है।

हाल में मुस्लिम स्त्रियो की स्थिति में भी वहुत कुछ सुधार हो गया है। सन् १९१४ ई० में एक अखिल भारतीय मुस्लिम महिला-सम्मेलन का सगठन हुआ था और सन् १९२४ ई० में उसने एक प्रस्ताव पास

किया जिसमें वहुत-से सुधारो की ओर सकेत था। शिक्षित स्त्रियो में पर्दा बहुत कुछ टूट गया है और बहुत-सी स्त्रियाँ ऐसी है जिन्होंने शिक्षा और समाज-सुधार के कार्य को वडी तत्परता से उठाया है।

धर्म—भारत अब भी वहुत-से धर्मों का देश वना है और बौद्ध-धर्म, जैन-धर्म, इस्लाम और ईसाई-धर्म—सभी के माननेवाले यहाँ हैं। परन्तु प्रधान धर्म हिन्दू-धर्म है। यह सदैव सुधारशील धर्म रहा है। इतिहास के किसी समय में इसने अपनी कठोरता को कम करने से इनकार नही किया। १९वी शताब्दी में इसने ब्रह्म-समाज, आर्य-समाज और ऐसे ही धार्मिक आन्दोलनो के प्रभाव से अपनी व्यवस्थाओ में परिवर्तन किया है। मुख्य धर्मों के अतिरिक्त बहुत-से पन्थ भी है जो आधुनिक युग में आविर्भूत हुए है। इनमें सबसे अधिक उल्लेखनीय राधास्वामी-पन्थ है जिसे आगरा-निवासी स्वामी शिवदयालसिंह ने स्थापित किया था और बाद को उनके शिष्य रायबहादुर शालिगराम जी ने, जो सयुक्त-प्रान्त के एक पोस्टमास्टर जनरल थे, पुष्ट किया। इस पन्थ के अनुसार गुरु सर्वोपरि है और उससे बढकर कोई वस्तु नही है। दयालबाग, जो कि राधास्वामी-पन्थ का केन्द्र है, बढ कर एक औद्योगिक नगर बन गया है और इसमें कारखानो, कृषिक्षेत्रो और डेरीफार्मों के अतिरिक्त शिक्षा-सम्बन्धी सस्थायें भी है। लोकप्रिय हिन्दू-धर्म में ब्रह्मा, विष्णु, शिव, शक्ति और गणेश की पूजा सम्मिलित है। समस्त देश में गौ और ब्राह्मण का आदर किया जाता है। गगा की भी पूजा की जाती है और हजारो लोग अब भी लबी यात्रायें करके उसके पवित्र जल में स्नान करने आते है। आधुनिक शिक्षित हिन्दू सदैव धर्माचरणो का अनुगमन नही करता और धर्म के प्रति उसका बढता हुआ उपेक्षाभाव हमारे समाज का एक स्पष्ट स्वरूप है। परन्तु जनता में धार्मिकता का भाव गहरा है। कर्म और भविष्य जीवन मे उनका पूर्ण विश्वास है।

मुसलमान—आरम्भ में मुसलमानो पर अँगरेजी शासन का जो प्रभाव पडा वह अच्छा नही था। वे बडे ओहदो से पृथक् कर दिये गये

और उनकी जगह यूरोपियन आ गये। इसलिए स्वभावत रईसो और साधारण लोगो में बडा असतोष रहा और मौलवियो ने अंगरेजो द्वारा चलाई गई शिक्षण-पद्धति की बडी निन्दा की। परन्तु सर सैयद अहमद (सन् १८१७-७८ ई०) के उपदेशो-द्वारा मुसलमानो के राजनीतिक और धार्मिक दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ। सर सैयद अहमद बडे ही योग्य और दूरदर्शी मुसलमान नेता थे। उन्होने अपने सहधर्मियो को पाश्चात्य साहित्य और विज्ञान का अध्ययन करने के लिए उत्साहित किया। उन्होने अलीगढ-आन्दोलन प्रारम्भ किया और गालियो और धमकियो की परवा न करते हुए वे अलीगढ में मुहम्मडन ऐंगलो ओरियटल कालिज की स्थापना (सन् १८७५ ई०) करने में सफल हुए। यह अब एक विश्व-विद्यालय के रूप में परिणत हो गया है। उन्होने समाज-सुधार पर जोर दिया और अपनी पत्रिका 'तहजीवे अखलाक' के द्वारा शिक्षा और पर्दा के सम्बन्ध में कट्टर विचारो की समालोचना की। अलीगढ़-आन्दो-लन ने मुस्लिम-सम्प्रदाय के जीवन और विचारो पर गहरा प्रभाव डाला। इसके द्वारा वे अपनी हारो और असफलताओ को भूल गये। भूत काल के खोये हुए वैभव को भूलकर उन्होने भविष्य की ओर ध्यान किया और अन्य सम्प्रदायो की भाँति उन्नति के लिए प्रयत्न किया।

सर सैयद के सहयोगियो में एक मौलवी शिब्लीनुमानी (सन् १८५७-१९१४ ई०) थे। इन्होंने सन् १८९० ई० में लखनऊ मे 'नदवत-उल उलमा' नामक संस्था की स्थापना की। पाँच वर्ष वाद इस सोसायटी ने आजमगढ में दारुलइस्लाम के नाम से विख्यात एक एकेडमी कायम की। इसका मुख्य उपदेश अध्यापको को शिक्षा देना है। इस एकेडेमी ने मुस्लिम विद्या का परिरक्षण करने में प्रशसनीय कार्य किया है।

१९वी शताब्दी के मध्य में भारतवर्ष में एक नवीन आन्दोलन उठ खडा हुआ। यह अहमदिया पन्थ का आन्दोलन था। इसके सस्थापक मिर्ज़ा ग़ुलाम अहमद क़ादियानी (सन् १८३९ -१९०८ ई०) थे जिन्होने पंजाब के एक प्रतिष्ठित मुग़ल-परिवार में जन्म लिया था। वे सर्वथा

धार्मिक सुधारक थे। उन्होंने अनुभव किया कि वे एक दैवी कार्य की सिद्धि के लिए इस ससार में बुलाये गये है। उन्होंने अपने अनुयायियो और शिष्यों को दीक्षित किया। उन्होंने महदी होने का दावा किया, मुल्लाओं की निन्दा की और कहा कि वे लोगो को अन्धकार में रखते है और सन्तो तथा कब्रो की लोकप्रिय उपासना पर खेद प्रकट किया। इन्होंने सच्चे इस्लाम के पुनरुद्धार का बीडा उठाया परन्तु पर्दा, तलाक और वहुविवाह का ज़ोर के साथ समर्थन किया। वहुत-से लोगो ने उन्हे स्वधर्मत्यागी समझ और जाति-वहिष्कृत कर दिया। अहमदिया पन्थ के अनुयायी भारतवर्ष के सव भागो—ब्रह्मा, लका, अफगानिस्तान और अन्य मुस्लिम देशो मे पाये जाते है। मिर्जा गुलाम अहमद सन् १६०८ ई० में मर गये तव से उनके सप्रदाय की देख-भाल एक खलीफा करते है, जो कादियान मे रहते है।

दूसरा आन्दोलन जिसका सक्षिप्त उल्लेख किया जा सकता है वह वहावी पथ है। इसकी स्थापना मुहम्मद अब्दुल वहाव ने १८वी शताब्दी मे अरव में की थी। उन्होंने 'तौहीद' (ईश्वर की एकता) पर ज़ोर दिया, सन्तो की पूजा का विरोध किया और कुरान और हदीस के अर्थ लगाने के सम्वन्ध में व्यक्तिगत अधिकार को स्वीकार करने से नकार कर दिया। ये विचार भारतवर्ष मे पहले सन् १८०४ ई० में आये। इस न्थ के अनुयायियो की सख्या वहुत कम है।

सर सैयद अहमद के समकालीन मौलवी चिराग़अली और सैयद अमीरअली की भी गिनती उदार मुसलमानो में है जिन्होंने इस्लाम के आदर्शों पर एक नवीन प्रकाश डालने की चेष्टा की है। इस्लामी विचारो के नये प्रचारक प्रसिद्ध पजावी कवि और दार्शनिक सर मुहम्मद इकवाल है।

महान् यूरोपीय यूद्ध के दिनो में खिलाफत के दुर्भाग्य ने भारतीय मुसलमानो मे वडा असन्तोष उत्पन्न किया। वम्वई में एक खिलाफ़त-कमेटी स्थापित की गई और चन्दा जमा किया गया जिससे एक राष्ट्रीय

विश्वविद्यालय चलाया गया। इस आन्दोलन के मुख्य सचालक प्रसिद्ध विद्वान् और नेता मौलाना मुहम्मदअली और अब्दुल मजीद ख्वाजा थे। सन् १९२४ ई० मे जब टर्की में खलीफा का पद तोड दिया गया तब यहाँ खिलाफत कमेटी का भी वास्तविक कार्य समाप्त हो गया।

भारतवर्ष के मुसलमान दो मुख्य जातियो में बँटे है। सुन्नी और शिया। सर्वसाधारण मुसलमान अपने हिन्दू पडोसियो की भाँति जीवन व्यतीत करते हैं। देहातो में मुसलमान भी होली और दिवाली का त्यौहार मनाते है। अवध के मुसलमान शासक वसन्तपचमी के दिन नौ रोज़ का उत्सव मनाते थे। आज भी देहातो में सम्मिलित कुटुम्ब की प्रथा प्रचलित है। और पर्दे का पालन कडाई के साथ नही किया जाता। वर्णव्यवस्था ने मुसलिम समाज को भी प्रभावित किया है और देश के कुछ भागो में शेख, सैयद, मुगल और पठान का भेद माना जाता है। परन्तु इस्लाम का महत्व एकता और उसके अनुयायियो के भ्रातृ-भाव में है। मसजिद के भीतर जन्म, पद और धन के समस्त भेद अदृश्य हो जाते है और भिखारी, मेहतर और राजा एक साथ अपने ईश्वर की उपासना करते हुए देखने में आते है।

राजनीतिक मामलो में मत-भेद होने के कारण मुस्लिम लीग की सस्था शक्तिशाली हो गई है। इसका मुसलमान जनता पर बडा प्रभाव है। मि० मुहम्मदअली जिन्ना लीग के सभापति हैं और बडे उत्साह से उसका काम कर रहे है। लीग का लक्ष्य मुसलमानो के स्वत्वो की रक्षा करना है।

कृषि—भारतवर्ष मुख्यतया कृषि-प्रधान देश है। उसकी जन-सख्या का लगभग ३/४ भाग इसी व्यवसाय पर निर्भर रहता है। विदेशो की मशीन से बनी सस्ती वस्तुओ की प्रतिद्वन्द्विता के कारण हमारे घरेलू उद्योगधन्धो के नष्ट हो जाने से भूमि पर भार अधिक बढ गया है। बन्दरगाहो को आन्तरिक प्रदेश से जोडने के लिए रेल-पथ खोले गये। इसका परिणाम यह हुआ कि देशी व्यापार अवनत हुआ और विदेशी व्यापार की

वृद्धि हुई। कृषि का क्षेत्रफल विशेष कर उन वस्तुओं का जिनकी विदेशी बाजारो में माँग है जैसे कपास, नील, सन और चाय इत्यादि बढ़ गया।

भारतीय किसान की पैदावार का दर्जा बहुत नीचा है। वह बुद्धिमान्, मितव्ययी और परिश्रमी होता है परन्तु अपनी गरीबी और अज्ञान के कारण आधुनिक विज्ञान से लाभ नही उठा सकता। वह आम तौर से ऋण मे डूबा रहता है यद्यपि महाजनो के चगुल से छुड़ाने के लिए सरकार ने अब कानून पास किया है। सहकारिता-विभाग (Co-operative Department) को अभी सफलता नही मिली है। 'एग्रीकल्चरल कमीशन' (सन् १९२८ ई०) की सिफारिश पर कृषि-सम्बन्धी खोजो के लिए एक इम्पीरियल कौंसिल बनी है जिसने कृषि-सुधार का कार्य अपने हाथ में लिया है। हमारी कृषि मे मुख्य त्रुटि मानसून की सदिग्धता है। किसान को वर्षा का कभी निश्चय नही रहता और सूखा के समय वह सर्वथा असहाय हो जाता है। परन्तु सरकार ने सिंचाई की सुविधायें प्रदान की है और नहरो के द्वारा भूमि के बड़े बड़े भाग उर्वर हो गये हैं। सक्कर का बाँध ससार मे अपने ढग की सर्वश्रेष्ठ कृति है। इसमें २० करोड़ रुपया व्यय हुआ है और यह लगभग साढे सत्तर लाख भूमि पर शासन करता है। कृषि की उन्नति करने के लिए बिजली से भी काम लिया जाने लगा है।

१९वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अकाल बहुत पड़ते थे और उनसे जनता को बहुत कष्ट होता था। मैकडानल कमीशन की रिपोर्ट (सन् १९०१ ई०) मे अकाल-पीडितो को सहायता पहुँचाने के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें बताई गई है और प्रान्तीय फैमिन कोड (अकाल के कानून) बनाये गये है। सयुक्त-प्रान्त मे सबसे अन्तिम बडा अकाल सन् १९०७-८ ई० मे पडा था परन्तु सरकारी और गैर-सरकारी लोगो के प्रयत्न-द्वारा जनता का कष्ट बहुत कम हो गया था।

उद्योग-धधे—१८वी शताब्दी में भारतवर्ष कला-कौशल-प्रधान देश था। परन्तु भारतीय राज्यो के शक्तिहीन होने से चतुर कारीगर

अपने मुख्य ग्राहको से वंचित हो गये। मशीन की बनी सस्ती वस्तुओ ने उनकी स्थिति और भी खराब कर दी। १९वी शताब्दी के आरम्भ तक भारतवर्ष यथेष्ट मात्रा में कपडे बनाता था। इससे वह अपनी ही आवश्यकता नही पूरी करता था बल्कि उसका एक बडा भाग वह विदेशो को भी भेजता था। हमारे निर्यात-व्यापार में मुख्यत निर्मित वस्तुएँ होती थी और ढाका की मलमल और जरी के कपडो की यूरोपीय देशो में अच्छी

कार्दनामल

बिक्री होती थी। परन्तु ईस्ट इंडिया कम्पनी की नीति ने भारतीय उद्योगो के मार्ग में बडी असुविधायें खडी की और क्रमश वैदेशिक प्रतियोगिता के कारण हमारे समस्त कला-कौशल को गहरी क्षति पहुँची।

ग़दर के बाद उद्योग-धधो का स्वरूप बदल गया। उदाहरण के लिए कपास का व्यवसाय जो प्रथम ५० वर्षों में नष्ट हो गया था, देश में फिर से स्थापित हुआ और बीस ही वर्ष मे यह अँगरेजी व्यवसाय से प्रतियोगिता करने लगा। इसकी प्रथम उत्तेजना अमरीका के युद्ध

से मिली। (सन् १८६१-६५ ई०) क्रिमियन युद्ध के समय में हमारा जूट का व्यवसाय आरम्भ हुआ और उसकी क्रमोन्नति हुई। कृषि को व्यापारिक रूप दिया गया। भारतवर्ष में देशी बाजारो के ही लिए नही अन्तर्राष्ट्रीय बाजारो के लिए भी पैदावार होने लगी। कपास, सन, चाय, कहवा, रवड, गेहूँ आदि की ससार के बाजारो के लिए आधिकाधिक मात्रा में उपज होने लगी। तत्पश्चात् विशेपतया सन् १८६६ ई० के बाद जब स्वेज नहर खोली गई तो इस व्यापार में वडा परिवर्तन हुआ। इस समय में देश के उद्योग-धघो को जिन मुख्य बातो ने प्रभावित किया वे ये हैं—

(१) आवागमन के उत्तम साधन और माल ले आने और ले जाने की सुविधायें और उत्पादन और वितरण पर उनका प्रभाव।

(२) फ्री ट्रेड के लिए आन्दोलन।

(३) भारत में ब्रिटिश शासन-द्वारा स्थापित शान्ति और व्यवस्था।

(४) जर्मनी और फ्रास जैसे यूरोपीय देशो का भारत में अपना माल वेचने का प्रयत्न।

२०वी शताब्दी के प्रथम १४ वर्षों में विशेष कर सन् १९०५ ई० के बाद भारतवर्ष के बाहरी व्यापार की उल्लेखनीय वृद्धि हुई। महायुद्ध से हमारी औद्योगिक उन्नति में वडी उत्तेजना मिली। व्यवसायो को कृत्रिम उत्तेजना भी दी गई यहाँ तक कि कपास, सन, चमडा, लोहा, स्टील और नील की खेती भी फिर से होने लगी।

युद्ध वन्द हो जाने पर सब देशो मे माल की कमी के कारण व्यापार में खूब गरमाहट आई (सन् १९१८-२० ई०)। उसके बाद मद्दे का समय आया (सन् १९२१-२३ ई०)। सन् १९२४-२९ ई० के बीच का समय व्यापार के पुनरुद्धार और साधारण उन्नति का समय था।

साहित्य—पाश्चात्य शिक्षा और सभ्यता के प्रचार से भारतवर्ष में साहित्यिक उन्नति काफी हुई है। आधुनिक विश्वविद्यालयो में शिक्षित पुरुपो ने विभिन्न विपयो पर अँगरेजी मे पुस्तकें लिखी है। यहाँ उनका

भारतवर्ष की प्रधान भाषायें
बलोच
मकरानी
पंजाबी
हिन्दुस्तानी
पश्चिमी पहाड़ी
मध्य पहाड़ी
पूर्वी पहाड़ी
मैथिली
भोजपुरी
मगही
अवधी
ब्रजभाषा
मेवाती
जैपुरी
मालवी
बुन्देली
गुजराती
खानदेशी
छत्तीसगढ़ी
म रा ठी
उ ड़ि या
ब ग ला
आ सा मी
मकरानी
ते ल गू
ता मि ल
मलयालम
१—— पशाई
२—— कोहिस्ता
३—— फारसी भाषाये
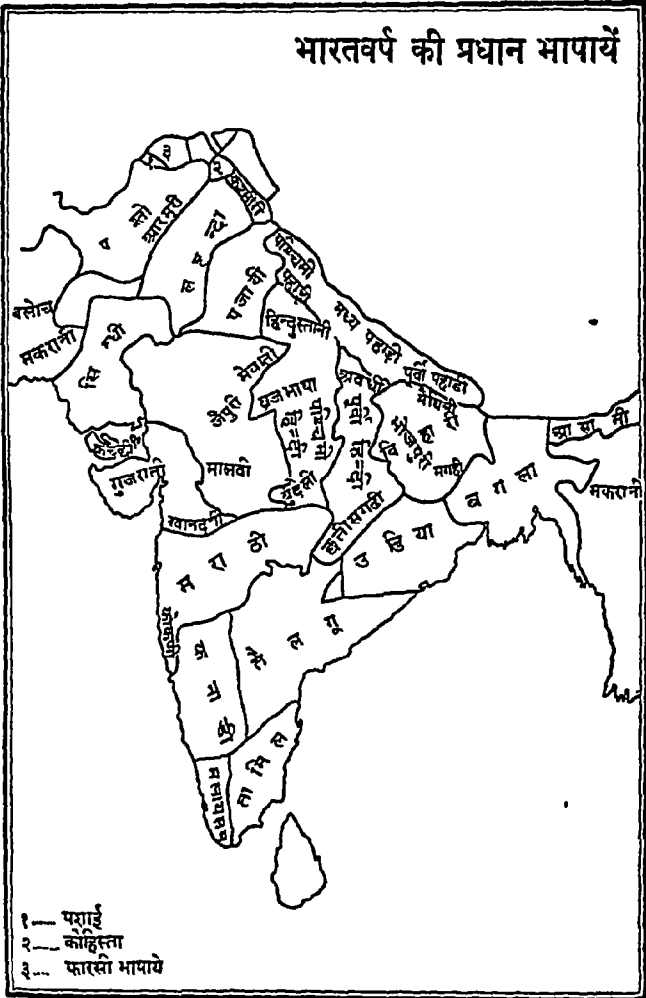
सविस्तर वर्णन करना असम्भव है। वर्त्तमान देशी भाषाओं की उन्नति के कारण संस्कृत और फारसी के अध्ययन में कमी हो गई है।

इस समय हिन्दी और उर्दू दोनो की यथेष्ट उन्नति हुई है। स्वामी दयानन्द ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में इस बात पर जोर दिया था कि प्रत्येक आर्य को हिन्दी का अध्ययन करना चाहिए। राजा शिवप्रसाद और राजा लक्ष्मणसिंह आरम्भिक गद्य के मार्ग-निर्माता थे। राजा लक्ष्मणसिंह न कालिदास के प्रसिद्ध नाटक अभिज्ञान-शाकुन्तल का हिन्दी में अनुवाद किया जो अब भी बडी दिलचस्पी से पढ़ा जाता है। बनारस के भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एक बड़े उच्च कोटि के कवि थे। वे गद्य भी उतनी ही सरलता से लिख सकते थे। उन्होंने हिन्दी-भाषा को मधुर और लालित्य-पूर्ण बनाया। सन १८८५ ई० में उनका स्वर्गवास हो गया परन्तु उनके समकालीन—बदरीनारायण चौधरी, प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट और अन्य विद्वानो ने उनके कार्य को आगे बढाया। सन् १९०३ ई० में प्रसिद्ध हिन्दी के विद्वान् और लेखक बाबू श्यामसुन्दरदास के प्रयत्न से काशी-नागरी-प्रचारणी सभा की स्थापना हुई। इस संस्था ने हिन्दी-भाषा की महान् सेवायें की हैं। आरम्भ में इस सभा नें केवल अनुवाद-कार्य किया परन्तु हाल में इसनें कई मौलिक ग्रन्थ प्रकाशित किये है। आधुनिक युग के अतिविख्यात गद्य-लेखको में 'सरस्वती' के भूतपूर्व सम्पादक स्वर्गीय पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी थे। जिन्होंने बहुत-से लेख और निबन्ध बडी जोरदार शैली में लिखे है। इस काल के अन्य लेखक प० रामचन्द्र शुक्ल और मिश्रबन्धु हैं जिनके हिन्दी-साहित्य के इतिहास प्रसिद्ध ग्रन्थो में से है। पद्मसिंह शर्मा और कृष्णविहारी की साहित्यिक समालोचनायें उच्च कोटि की है।

आधुनिक हिन्दी के कवि दो स्कूलो मे विभक्त है।—एक खडी बोली और दूसरा ब्रजभाषा का समर्थक है। खडी बोली के कवियो में मैथिलीशरण गुप्त, स्वर्गीय रामचरित उपाध्याय, ठाकुर गोपालशरणसिंह और बहुत-से हैं। ब्रजभाषा के प्रमुख कवि स्वर्गीय बाबू जगन्नाथदास

रत्नाकर ग़े जिनका उद्धवशतक और गगावतरण उच्च कोटि की कवितायें हैं। अयोध्यासिंह उपाध्याय खडी बोली और व्रजभाषा दोनो में बराबर सुगमता से लिखते है। उनका प्रियप्रवास ऊँचे दर्जे का काव्य है। हिन्दी की नवीन कविता वर्त्तमान युग और इसके भावो का प्रतिविम्ब है। उपन्यास लिखनेवालो मे प्रेमचन्द अधिक प्रसिद्ध थे।

मुग़ल-साम्राज्य की सरकारी भाषा फारसी थी। इसी के द्वारा सब राज-काज होता था। यह केवल साम्राज्य के अन्तिम दिनो की वात है जब उर्दू-साहित्य ने उन्नति की। लखनऊ दिल्ली, पटना, रामपुर और हैदराबाद में उर्दू-कविता की उन्नति हुई। उस समय के दो प्रसिद्ध कवि ग़ालिब और अनीस है। पहला कवि दार्शनिक था और उसके विचारो और भावो में वडी मौलिकता थी और दूसरा मर्शिया लिखने में वडा सिद्धहस्त था। आधुनिक कवियो मे, अकबर इलाहाबादी और व्रजनारायण चकवस्त की कवितायें बहुत पसन्द की जाती है। सर मुहम्मद इकबाल वर्त्तमान समय के सबसे महान् मुस्लिम कवि है। उन्होने उर्दू-कविता को एक नवीन धारा में प्रवाहित किया है और उनकी कवितायें भारतवर्ष और ससार के अन्य भागो मे भी पढी जाती हैं। मशायरे आजकल के फैशन हो रहे है और ऐसा कोई विषय नही है जिसका आधुनिक कविता में ज़िक्र न आये।

गद्य मे सर सैयद अहमद के साथ एक नवीन शैली का प्रादुर्भाव हुआ। उनका सिद्धान्त था कि भाषा की अपेक्षा भावो का अधिक ख़याल करना चाहिए। अन्य विख्यात लेखको में 'आवे हयात' और 'दरबार अकबर' के रचयिता मौलवी मुहम्मद हुसेन आज़ाद हैं। 'हयात सादी' के रचयिता हाली, गद्य-पद्य दोनो में प्रतिभा दिखानेवाले मौलाना शिवली, मौलाना सुलेमान नदवी और मौलाना जकाउल्ला इन सबने सरल और मधुर शैली में लिखा है। उर्दू के हिन्दू लेखको में सबसे प्रसिद्ध नाम ये है—मनोहरलाल जुत्शी, श्रीराम और दयानारायण

निगम। उपन्यास-लेखकों में रत्ननाथ शरशार और अब्दुल हलीम शरर बहुत प्रसिद्ध हैं।

बंगाल में साहित्य का महान् पुनरुद्धार हुआ है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कृतियों में बंगाली गद्य और पद्य दोनों अपनी चरम सीमा को पहुँच गये हैं। ये पूर्व के 'पोएटलारिएट' कवि-सम्राट् ठीक ही कहे जाते हैं। उन्होंने बहुत-से नाटक, उपन्यास, कहानियाँ, कवितायें और निबन्ध लिखे हैं। उनकी प्रसिद्ध रचना गीतांजलि पर उन्हें नोबल प्राइज़ मिला और उसने उन्हें संसार के कवियों में एक उच्च स्थान दिलाया। परन्तु रवीन्द्रनाथ के पहले वहाँ गद्य और पद्य के बहुत-से प्रसिद्ध लेखक थे। प्रथम महान् उपन्यासकार बंकिमचन्द्र चटर्जी और महाकाव्यों के प्रथम महान् लेखक मधुसूदन दत्त ने अपनी मातृ-भाषा के साहित्य की बड़ी श्रीवृद्धि की। बंकिम प्रसिद्ध राष्ट्रीय गान वन्दे मातरम् के रचयिता हैं। उन्होंने भी गद्य लिखने में बड़ी प्रतिभा दिखाई। श्रीयुत रमेशचन्द्र दत्त एक बड़े विद्वान् थे। उन्होंने अँगरेज़ी और बँगला में बहुत-से ग्रन्थ लिखे और बँगला में लिखे उनके उपन्यास अब भी बड़ी दिलचस्पी के साथ पढ़े जाते हैं। स्त्री-कवियों में तोरुदत्त और सरोजिनी नायडू के नाम बहुत प्रसिद्ध हैं।

महाराष्ट्र में विष्णु शास्त्री चिपलूनकर ने आधुनिक मराठी गद्य की नींव डाली। अण्णा साहिब किरलोस्कर ने नाटक रचे और कृष्णाजी प्रभाकर, वासुदेव शास्त्री और दूसरों ने उनका अनुगमन किया। के० टी० तैलंग और एम० जी० रानाडे जजों ने भी मराठी-साहित्य की उन्नति के लिए बहुत कुछ किया। आधुनिक मराठी-साहित्य में अन्य प्रसिद्ध नाम ये हैं—इतिहास के क्षेत्र में वी० के० राजवाडे, उपन्यास में हरि नारायण आपटे और दर्शन, धर्म तथा राजनीति में तिलक।

ऐसी ही उन्नति गुजराती और दक्षिण-भारत के साहित्य में हुई है। बलराम जी मलाबारी जिन्होंने स्त्रियों की स्थिति सुधारने का बीड़ा उठाया था, प्रसिद्ध लेखक थे और अँगरेज़ी और गुजराती दोनों में लिख सकते थे। दक्षिण-भारत में श्रीयुत चन्दुमेनन ने सन् १८८६ ई० में

अपना प्रसिद्ध उपन्यास इन्दुलेखा मलावार किनारे की वोली में लिखा जो वहुत पसन्द किया जाता है। बीसवी सदी में वहाँ गद्य-पद्य के वहुत-से लेखक हुए हैं जिनका यहाँ विस्तृत उल्लेख करना असम्भव है।

- खोज की प्रगति—पश्चिम के ससर्ग ने भारतवर्ष मे अन्वेषण का नया जोश पैदा किया है। विज्ञान के क्षेत्र में सर जे० सी० वोस, सर पी० सी० राय, सर सी० वी० रमन और डाक्टर मेघनाद साहा आदि ने विश्वव्यापी ख्याति प्राप्त की है। ऐतिहासिक अन्वेषण में सर जदुनाथ सरकार ने प्रशसनीय कार्य किया है। वहुत-से विद्वानो ने ससार के समक्ष भारतीय विचारो को उपस्थित करने की चेष्टा की है और प्राचीन ज्ञान के गुप्त खज़ानो को प्रकट किया है। वगाल की ऐशियाटिक सोसायटी और भाडारकर इन्स्टीटयूट जैसी सस्थायें उपयोगी कार्य कर रही है। ज्ञान और खोज के कार्य को आगे वढाने के लिए अव देश में कई एक विद्यालय स्थापित हो गये हैं।

कला—मुग़ल-साम्राज्य के ह्रास के वाद भारत में कला की वडी अवनति हुई। सस्ती और आकर्षक यूरोपीय वस्तुओ की भरमार के आगे लोग अपनी वस्तुओ के सौन्दर्य और वास्तविक मूल्य को भूल गये। भारतीयो की राजनीतिक परावीनता का प्रभाव उनकी कला में प्रकट हुआ। शिल्पकार, तक्षणकार, और चित्रकार अपनी कला के सिद्धान्तो को भूल गये और विदेशी आदर्शों को जो ब्रिटिश शासन के साथ भारतवर्ष में आये जज्व नहीं कर सके। शुरू में जो यूरोपियन आये वे भारतीय ढग के वने घरो में रहते थे परन्तु जव कलकत्ता, मदरास और वम्वई जैसे शहरो का निर्माण हुआ तव उन्होने अँगरेज़ी फ़ैशन के अनुसार अपने रहने के घर वनाये। उन्हें भारतीय राजाओ और नवावो से प्रोत्साहन मिला और मुर्शिदावाद और लखनऊ में यूरोपियन ढग के महल निर्मित हुए। ईंट और पलस्तर से वना हुआ लखनऊ का छतरमजिल और क़ैसरवाग़ और कलकत्ता में वगाल के ज़मीदारो के महल इस सस्ते अनुकरण के नमूने हैं।

सरकार ने कला की उन्नति की ओर कोई ध्यान नही दिया। पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट की ओर से जो इमारतें बनी उनमें सौंदर्य-बोधक रुचि का बराबर अभाव पाया गया। शिक्षा के प्रचार और राष्ट्रीय भावना के जाग्रत् होने से वर्त्तमान शैलियो में सुधार करने का प्रयत्न किया गया। कलकत्ता का विक्टोरिया मेमोरियल हाल और दिल्ली का ऐसेम्बली हाल
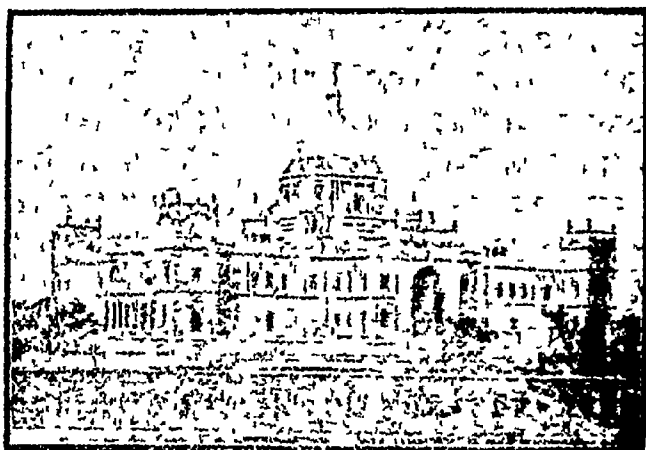
विक्टोरिया मेमोरियल, कलकत्ता

इस बात के उदाहरण है कि सरकार के बिल्डिंग डिपार्टमेंट (महकमा इमारत) में भी क्या परिवर्तन हो गया है। यद्यपि कल्पना और मौलिकता का इनमें भी अभाव है तथापि वे पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट की मनहूस इमारतो की अपेक्षा जो सारे देश में पाई जाती है, अच्छी है।

भारतीय कारीगर ने अपनी कला को सर्वथा नही गँवा दिया है। बनारस के घाट, मथुरा और जयपुर के मन्दिर १९वी शताब्दी में बने। राजपूत राजाओ के महल इसके जीवित प्रमाण है। परन्तु वह अपनी क्षमता खोता जा रहा है क्योकि ईंटो और पत्थरो में वह अपनी भावनाओं
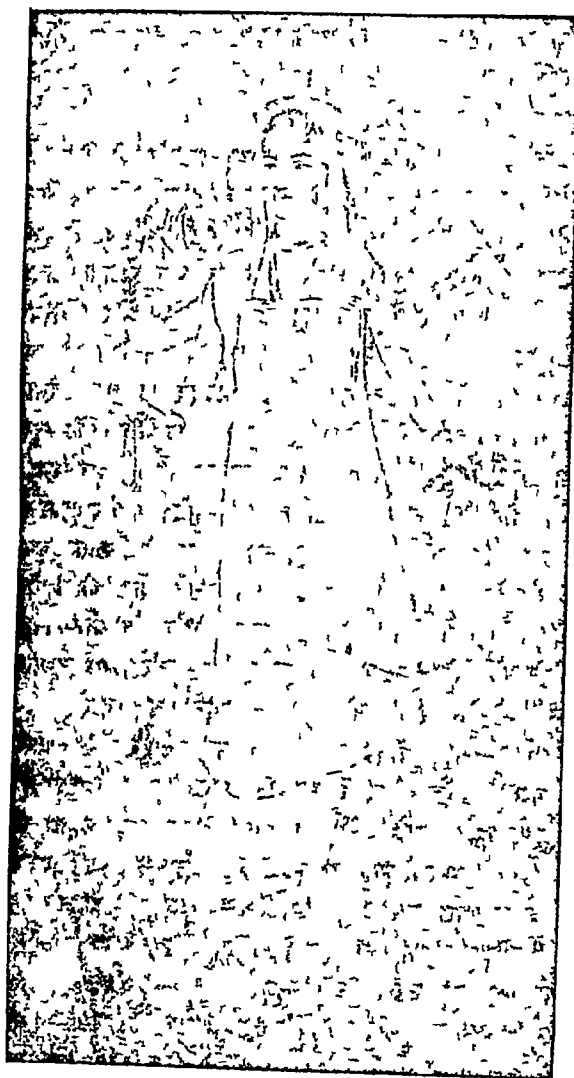
भारतमाता—चित्रकार ए० एन० टागोर

को व्यक्त नही करने पाता। कोई दूसरा व्यक्ति उसके लिए नकशा तैयार कर देता है और उसे उसी के अनुसार कार्य्य करना पडता है। इससे भारतीय कला के आदर्शों का ह्रास हुआ है।

चित्रकला—अन्य कलाओ की भाँति इस अवनति की स्थिति से चित्रकला का भी ह्रास हुआ है। मुग़ल-साम्राज्य के पतन के वाद चित्रकार लोग प्रान्तीय दरबारो में चले गये और वहाँ उन्होने अपनी कला की परम्परा के अनुसार कार्य्य आरम्भ किया। राजपूत और पहाडी कलम जिनका पहले भी उल्लेख किया जा चुका है नष्ट हो गये और यूरोपियन चित्रकला का प्रभाव मालूम पडने लगा। भारतीय कलाविदो की रचनाओ का स्थान यूरोप की सस्ती तसवीरो और पाश्चात्य आदर्शों पर बनाई गई भारतीयो की तसवीरों ने लिया। परन्तु कलकत्ता के गवर्नमेंट स्कूल आफ आर्ट के प्रिन्सिपल ई० वी० हैवेल ने चित्रकला का पुनरुद्धार किया। इन्होने भारतीय चित्रकला के आदर्शों को बडी मौलिकता और दृढता से व्यक्त किया। चित्रकारो का जो स्कूल उनके प्रभाव से विकसित हुआ और जिसके नेता श्री अवनीन्द्रनाथ टैगोर थे, उसने भारत की प्राचीन कला को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न किया और अजन्ता, चीन और जापान के चित्रो से उसे उत्तेजन मिला। इस सिलसिले में उल्लेखनीय दूसरे नाम है बगाल के श्री नदलाल बोस और पजाब के अब्दुर्रहमान चग़ताई।

बम्बई के डाक्टर सुलेमान चित्रकारो के एक दूसरे स्कूल के सस्थापक है। ये भारतीय परिस्थितियो में पाश्चात्य आदर्शों का प्रयोग करते हैं। डाक्टर कुमारस्वामी बहुत वर्षों से भारतीय चित्रकला की महत्ता को बाहरी ससार को समझाने का प्रयत्न कर रहे है। चित्रकला के कई विद्यालय लाहौर, जयपुर, लखनऊ और अन्य स्थानो में स्थापित हुए है जो भारतीय कला के आन्दोलन को सहायता पहुँचाने के लिए बहुत कुछ कर रहे हैं।

सगीत—मुहम्मदशाह अन्तिम मुगल-सम्राट् था जिसने सगीत के सरक्षण के लिए हाथ बढाया था। परन्तु साम्राज्य के ह्रास के बाद अन्य कलाओ की भाँति यह भी उपेक्षित अवस्था में रही। भारतीय

पहाड़ीमिया
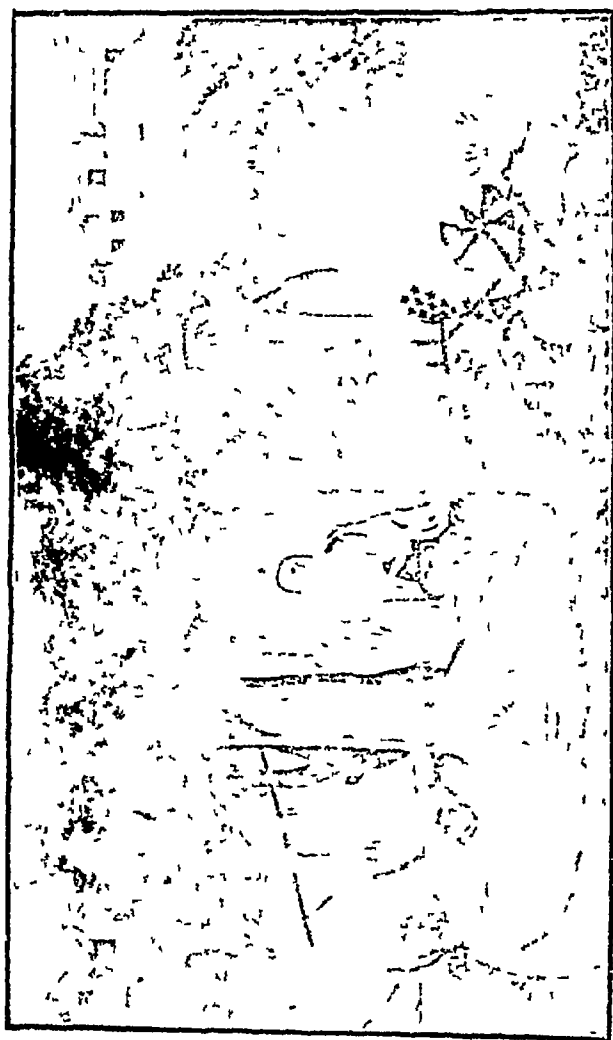
राजो और धनी मनुष्यो ने सगीत-प्रेम जारी रक्खा परन्तु कला के रूप मे इसकी उन्नति करने के लिए कुछ प्रयत्न नही किया गया। केवल अभी हाल में बंगाल में टैगोर-वश ने सगीत को उसका वास्तविक स्थान प्रदान किया हैं और उन्होने इसे समस्त सभ्य स्त्री-पुरुषो के लिए एक गुण की वस्तु बना दिया है। बडे नगरो मे सगीत के विद्यालय स्थापित हुए हैं और भारतीय सगीत के अध्ययन और अभ्यास के लिए स्कूल और कालिज भी बहुत कुछ कर रहे हैं। इस दिशा मे एक नवीन बात यह हुई है कि सम्मानित परिवारो के स्त्री-पुरुष नृत्य का भी अभ्यास करने लगे हैं। शिक्षितवर्ग से इसे बहुत प्रोत्साहन मिल रहा है और स्कूलो तथा कालिजो मे इसके प्रचार के लिए बहुत कुछ प्रयत्न किया जा रहा है। सगीत-सभाओ के अधिवेशन बडी धूमधाम से होते है और इनमे शिक्षित स्त्री-पुरुष बडे उत्साह के साथ भाग लेते हैं।

॥इति॥

---

# मौर्यों से पूर्व मगध के राज-वंश

## नाग-वंश

१—भट्टीय
२—बिम्बिसार श्रेणिक
३—अजातशत्रु
४—उदयिन
५—दासक (दर्शक)

## शिशुनाग-वंश

१—शिशुनाग
२—अशोक
३—नन्दिवर्द्धन

## नन्द-वंश

१—महापद्मनन्द
२—महापद्म के पुत्र

## मौर्य-वंश

चन्द्रगुप्त, ३२२ ई० पू०
|
बिन्दुसार, २९८ ई० पू०
|
अशोकवर्द्धन, २७२ ई० पू०
|
कुणाल | जलौक | महेन्द्र | चारुमती | संघमित्रा

कुणाल
|
दशरथ, २३२ ई० पू | सगत, २२४ ई० पू०

सगत, २२४ ई० पू०
|
सालिशुक, २१६ ई० पू०
|
सोमशर्मण, २०६ ई० पू०
|
सत धनवन्, १९९ ई० पू०
|
बृहद्रथ, १९१ ई० पू०

सुंग-वंश
पुष्यमित्र शुंग, १८५ ई० पू०
अग्निमित्र
वसुज्येष्ठ
वसुमित्र
भगवत
देवभूति
कुशाण-वंश
कदफ प्रथम
कदफ द्वितीय
कनिष्क
हुविष्क
वसुदेव
गुप्त-वंश
गुप्त, २७१ ई०
घटोत्कच, २९० ई०
चन्द्रगुप्त प्रथम, ३२० ई०
समुद्रगुप्त, ३३० ई०
चन्द्रगुप्त द्वितीय (विक्रमादित्य), ३७५ ई०
गोविंद
कुमारगुप्त प्रथम, ४१५ ई०
प्रभावती
स्कन्दगुप्त, ४५५ ई०
पुरुगुप्त, ४६७ ई०
बुद्धगुप्त, ४७६ ई०
नरसिंहगुप्त, ४६९ ई०
तथागतगुप्त
कुमारगुप्त द्वितीय, ४७३ ई०
बालादित्य
वज्र

वर्द्धन-वंश (थानेश्वर अथवा कन्नौज)
नरवर्द्धन
राज्यवर्द्धन प्रथम
आदित्यवर्द्धन
प्रभाकरवर्द्धन
राज्यवर्द्धन द्वितीय
हर्षवर्द्धन
राज्यश्री
पुत्री=ध्रुवसेन द्वितीय (वल्लभी)
धरसेन चतुर्थ (वल्लभी)
गजनी-वंश (लाहौर)
सुबुक्तगीन
महमूद
इस्माइल
मुहम्मद
मसऊद प्रथम
अब्दुररशीद
मादूद
अली
फरुखजाद
इब्राहीम
मसऊद द्वितीय
मसऊद तृतीय
शीरजाद
अरसलान
बहराम शाह
खुसरो शाह
खुसरो मलिक

गहरवार-वंश (कन्नौज)
यशविग्रह
महीश्चन्द्र
चन्द्रदेव (कन्नौज एव बनारस)
मदनपाल
गोविन्दचन्द्र
विजयचन्द्र
जयचन्द्र
हरिश्चन्द्र
सयुक्ता

गुलाम वंश
कुतुबुद्दीन एबक
आरामशाह
पुत्री=शमसुद्दीन इल्तुत्मिश
नासिरुद्दीन महमूद (बंगाल)
फीरोज़
मसऊद
रज़िया
बहराम
नासिरुद्दीन महमूद
पुत्री=गयासुद्दीन बलबन
मुहम्मद
कैखुसरो
नासिरुद्दीन मुहम्मद शाह बुग़राखाँ (बंगाल १२८२-९१)
मुईजुद्दीन कैकुबाद
रुकुनुद्दीन कैकाउस (बंगाल १२९१-१३०२)
शमसुद्दीन फीरोज़ (बंगाल १३०२-१८)
शहाबुद्दीन बुगरा (बंगाल १३१८)
नासिरुद्दीन (बंगाल १३२३-२५)
ग़यासुद्दीन बहादुर (बंगाल १३१९-२२)
हातिमखाँ
कतलूखाँ

खिलजी-वंश
तुलुकखाँ कन्दुजी
नासिरुद्दीन (मालवा)
शहाबुद्दीन
जलालुद्दीन फीरोज़
यगरूशखाँ
असुदद्दीन
अलाउद्दीन मुहम्मद
अलमास बेग
उलगखाँ
महमूद
रुकुनुद्दीन
इब्राहीम
कद्रखाँ
खिज्रखाँ
शादीखाँ
कुतुबुद्दीन मुबारकशाह
शहाबुद्दीन उमर

तुगलक़-वंश
गयासुद्दीन तुग़लक प्रथम
सिपहसालार रजब
मुहम्मद तुगलक
पुत्री=खुसरो मलिक
फ़ीरोज़
कुतुबुद्दीन
इब्राहीम
महमूद
दावर मलिक
फ़तहख़ाँ
ज़फ़रख़ाँ
मुहम्मद
अबूबकर
ग़यासुद्दीन तुगलक द्वितीय
नुसरतशाह
अलाउद्दीन सिकन्दर
नासिरुद्दीन मुहम्मद
सैय्यद-वंश
मलिक सुलेमान
खिज्रख़ाँ
मुबारकशाह
फ़रीद
मुहम्मद
अलाउद्दीन आलमशाह

लोदी-वंश
मलिक बहराम लोदी
सुलतानशाह
काला
फीरोज़
मुहम्मद
मलिक ख्वाजा
बहलोल (१)
शाहिनखाँ
कुतुबखाँ
पुत्री
ख्वाजा बायज़ीद
बारबक शाह (जौनपुर)
निज़ामखाँ
(सिकन्दरशाह) (२)
मुबारक
आलम
याकूब
फतेहखाँ
मूसा
जलीलखाँ
इब्राहीम (३)
इस्माइल
हुसेन
महमूद

## बहमनी-राजवंश

| | |
|---|---|
| अलाउद्दीन बहमनशाह | १३४७-५८ |
| मुहम्मद प्रथम | १३५८-७५ |
| मुजाहिद | १३७५-७८ |
| दाऊद | १३७८-७८ |
| मुहम्मद द्वितीय | १३७८-९७ |
| गयासुद्दीन | १३९७-९७ |
| शमसुद्दीन | १३९७-९७ |
| ताजुद्दीन फीरोज़ | १३९७-१४२२ |
| अहमद वली | १४२२-३६ |
| अलाउद्दीन अहमद | १४३६-५८ |
| हुमायूँ ज़ालिम | १४५८-६१ |
| निज़ाम | १४६१-६३ |
| मुहम्मद तृतीय (लश्करी) | १४६३-१४८२ |
| महमूद | १४८२-१५१८ |
| अहमद | १५१८-२१ |
| अलाउद्दीन | १५२१-२२ |
| वली-उल्लाह | १५२२-२५ |
| कलीमुल्लाह | १५२५-२७ |

## सूर-वंश

(१५४०-५५)

मुगल-वंश
(१) ज़हीरुद्दीन बाबर
(१५२६—३०)
मुहम्मद हुमायूँ
(२) नासिरुद्दीन (१५३०-५६)
कामरान
हिन्दाल
अस्करी
(३) अकबर (१५५६-१६०५)
मिर्ज़ा हकीम
(४) जहाँगीर (१६०५-२७)
मुराद
दानियाल
ख़ुसरो
दावरबख़्श
परवेज़
(५) शहाबुद्दीन शाहजहाँ
(१६२८-५८)
शहरयार
दारा
शुजा
(६) मुहीउद्दीन मुहम्मद
औरंगज़ेब आलमगीर
(१६५८-१७०७)
मुराद

औरंगजेब
मुहम्मद सुलतान
शाहआलम प्रथम
(७) बहादुरशाह प्रथम (१७०७-१२)
आज़म
विदारबख्त
अकबर
नेकुसियर
(१७१९)
कामबख्श
मुहिउससुन्नत
शाहजहाँ तृतीय
(८) मुईजुद्दीन जहाँदारशाह (१७१२-१३)
(१२) ऐजुद्दीन आलमगीर द्वितीय
(१७५४-५९)
(१३) अली गौहरशाह आलम द्वितीय
(१७५९ १८०६)
(१४) अक्बरशाह द्वितीय (१८०६-३७)
(१५) बहादुरशाह द्वितीय
(१८३७-५८) मृ० १८६२
अज़ीमुश्शान
(९) मुहम्मद फर्रुखसियर
(१७१२-१९)
रफीउश्शान
मुहम्मद इब्राहीम
(१७२०)
रफीउद्दौला शाहजहाँ द्वितीय
(१७१९)
रफिउद्दाराजात
(१७१९)
खुजिस्ता अख्तर जहानशाह
(१०) मुहम्मदशाह (१७१९-४८)
(११) अहमदशाह (१७४८-५४)
विदारबख्त

मराठा-वंश
मालोजी
जीजीबाई=शाहजी=२ तुकाबाई
इकोजी (तंजौर)
शम्भूजी (बचपन में मरा)
१ सई बाई=शिवाजी (प्रथम)=२ सोइरा बाई
शम्भू जी प्रथम
१ तारा बाई=राजाराम=२ राजस बाई
शाहू प्रथम (शिवाजी द्वितीय)
शिवाजी तृतीय
शम्भूजी द्वितीय (कोल्हापुर)
रामराजा (दत्तक पुत्र)
रामराजा (शाहू का दत्तक पुत्र)
शाहू द्वितीय
प्रतापसिंह
शाहूजी राजा
पेशवा-वंश
(पूना)
विश्वनाथ
बालाजी विश्वनाथ (१७१४-२०)
बाजीराव प्रथम (१७२०-४०)
चिमनाजी अप्पा
सदाशिवराव भाऊ
बालाजी बाजीराव (१७४०-६१)
रघुनाथराव राघोबा (१७७३)
विश्वासराव
माधोराव (१७६१-७२)
नारायणराव (१७७२)
माधोराव नारायण (१७७४-९६)
अमृतराव (दत्तक पुत्र)
बाजीराव द्वितीय (१७९६-१८१८)
चिमनाजी अप्पा
विनायक राव
नाना साहिब (दत्तक पुत्र)

## APPENDIX A

# QUEEN'S PROCLAMATIONS

*Proclamation by the Queen in Council to the Princes, Chiefs, and People of India*

VICTORIA, by the Grace of God, of the United Kingdom of Great Britain and Ireland, and of the Colonies and Dependencies thereof in Europe, Asia, Africa, America, and Australasia, Queen, Defender of the Faith

Whereas, for divers weighty reasons, we have resolved, by and with the advice and consent of the Lords Spiritual and Temporal, and Commons in Parliament assembled, to take upon ourselves the government of the territories in India, heretofore administered in trust for us by the Honourable East India Company

Now, therefore, we do, by these presents, notify and declare that by the advice and consent aforesaid, we have taken upon ourselves the said government, and we hereby call upon all our subjects within the said territories to be faithful, and to bear true allegiance to us, our heirs and successors, and to submit themselves to the authority of those whom we may hereafter, from time to time, see fit to appoint to administer the Government of our said territories, in our name and on our behalf

And we, reposing especial trust and confidence in the loyalty, ability and judgment of our right trusty and well-beloved cousin, Charles John Viscount Canning, do hereby constitute and appoint him, the said Viscount Canning, to be our first Viceroy and Governor-General in and over our said territories and to administer the government thereof in our name, and generally to act in our name and on our behalf, subject to such orders and regulations as he shall, from time to time, receive through one of our Principal Secretaries of State

And we do hereby confirm in their several offices, civil and military, all persons now employed in the service of the

Honourable East India Company, subject to our future pleasure, and to such laws and regulations as may hereafter be enacted

We hereby announce to the native princes of India that all treaties and engagements made with them by or under the authority of the East India Company are by us accepted, and will be scrupulously maintained, and we look for the like observance on their part

We desire no extension of our present territorial possessions, and while we will permit no aggression upon our dominions or our rights to be attempted with impunity, we shall sanction no encroachment on those of others

We shall respect the rights, dignity and honour of native princes as our own, and we desire that they as well as our own subjects should enjoy that prosperity and that social advancement which can only be secured by internal peace and good government

We hold ourselves bound to the natives of our Indian territories by the same obligations of the duty which bind us to all our other subjects, and those obligations, by the blessing of Almighty God, we shall faithfully and conscientiously fill

Firmly relying ourselves on the truth of Christianity, and acknowledging with gratitude the solace of religion, we disclaim alike the right and the desire to impose our convictions on any of our subjects We declare it to be our royal will and pleasure that none be anywise favoured, none molested or disquieted, by reason of their religious faith or observances, but that all shall alike enjoy the equal and impartial protection of the law, and we do strictly charge and enjoin all those who may be in authority under us that they abstain from all interference with the religious belief or worship of any of our subjects on pain of our highest displeasure

And it is our further will that, so far as may be, our subjects, of whatever race or creed, be freely and impartially admitted to office in our service, the duties of which they may be qualified by their education, ability, and integrity duly to discharge

We know, and respect, the feelings of attachment with which the natives of India regard the lands inherited by them from their ancestors and we desire to protect them in all

rights connected therewith, subject to the equitable demands of the State, and we will that generally, in framing and administering the law, due regard be paid to the ancient rights, usages, and customs of India

We deeply lament the evils and misery which have been brought upon India by the act of ambitious men, who have deceived their countrymen by false reports, and let them into open rebellion Our power has been shown by the suppression of that rebellion in the field, we desire to show our mercy by pardoning the offences of those who have been misled, but who desire to return to the path of duty

Already, in one province, with a desire to stop the further effusion of blood, and, to hasten the pacification of our Indian dominions, our Viceroy and Governor General has held out the expectation of pardon, on certain terms, to the great majority of those who, in the late unhappy disturbances, have been guilty of offences against our Government, and has declared the punishment which will be inflicted on those whose crimes place them beyond the reach of forgiveness We approve and confirm the said act of our Viceroy and Governor-General, and do further announce and proclaim as follows —

Our clemency will be extended to all offenders, save and except those who have been, or shall be convicted of having directly taken part in the murder of British subjects With regard to such, the demands of justice forbid the exercise of mercy

To those who have willingly given asylum to murderers knowing them to be such, or who may have acted as leaders or instigators of revolt, their lives alone can be guaranteed, but in apportioning the penalty due to such persons, full consideration will be given to the circumstances under which they have been induced to throw off their allegiance, and large indulgence will be shown to those whose crimes may appear to have originated in too credulous acceptance of the false reports circulated by designing men

To all others in arms against the Government, we hereby promise unconditional pardon, amnesty, and oblivion of all offences against ourselves, our Crown and dignity, on their return to their homes and peaceful pursuits

It is our royal pleasure that these terms of grace and

amnesty should be extended to all those who comply with these conditions before the 1st day of January next

When, by the blessing of Providence, internal tranquillity shall be restored, it is our earnest desire to stimulate the peaceful industry of India, to promote works of Public utility and improvement, and to administer the government for the benefit of all our subjects resident therein In their prosperity will be our strength, in their contentment our security, and in their gratitude our best reward And may the God of all power grant to us, and to those in authority under us, strength to carry out these our wishes for the good of our people

---

APPENDIX B

## IMPERIAL MESSAGE OF KING EDWARD VII TO PRINCES AND PEOPLES OF INDIA

*November 2*, 1908

It is now fifty years since Queen Victoria, my beloved Mother and my August Predecessor on the Throne of these realms, for divers weighty reasons, with the advice and consent of Parliament, took upon herself the government of the territories there-to-fore administered by the East India Company I deem this a fitting anniversary on which to greet the Princes and Peoples of India, in commemoration of the exalted task then solemnly undertaken Half-a-century is but a brief span in your long annals, yet this half-century, that ends today, will stand amid the floods of your historic ages, a far-shining landmark The Proclamation of the direct supremacy of the Crown sealed the unity of the Indian Government and opened a new era The journey was arduous, and the advance may have sometimes seemed slow, but the incorporation of many strangely diversified communities, and of some three hundred millions of the human race, under British guidance and control, has proceeded steadfastly and without pause We survey our labours of the past half-century with clear gaze and good conscience

Difficulties such as attend all human rule, in every age and place, have risen up from day to day They have been faced by the servants of the British Crown with toil and courage and patience, with deep counsel and a resolution that has never faltered nor shaken If errors have occurred, the agents of my Government have spared no pains and no self-sacrifice to correct them, if abuses have been proved, vigorous hands have laboured to apply a remedy

No secret of Empire can avert the scourge of drought and plague, but experienced administrators have done all that skill and devotion are capable of doing to mitigate those dire calamities of nature For a longer period than was ever known in your land before you have escaped the dire calamities of war within your borders internal peace has been unbroken

In the great Charter of 1858, Queen Victoria gave you noble assurance of her earnest desire to stimulate the peaceful industry of India, to promote works of public utility and improvement, and to administer the government for the benefit of all resident therein The schemes that have been diligently framed and executed for promoting your material convenience and advance—schemes unsurpassed in their magnitude and their boldness—bear witness before the world to the zeal with which that benignant promise has been fulfilled

The rights and privileges of the Feudatory Princes and Ruling Chiefs have been respected, preserved, and guarded, and the loyalty of their allegiance has been unswerving No man, among my subjects, has been favoured, molested, or disquieted by reason of his religious belief or worship All men have enjoyed protection of the law The law itself has been administered without disrespect to creed or caste, or to usages and ideas rooted in your civilization, it has been simplified in form, and its machinery adjusted to the requirements of ancient communities slowly entering a new world

The charge confided to my Government concerns the destinies of countless multitudes of men, now and for ages to come, and it is a paramount duty to repress with a stern arm guilty conspiracies that have no just cause and no serious aim These conspiracies I know to be abhorrent to the loyal

and faithful character of the vast hosts of my Indian subjects, and I will not suffer them to turn me aside from my task of building up the fabric of security and order.

Unwilling that this historic anniversary should pass without some signal mark of Royal clemency and grace I have directed that, as was ordered on the memorable occasion of the Coronation Durbar in 1903, the sentences of persons whom our courts have duly punished for offences against the law, should be remitted, or in various degrees reduced, and it is my wish that such wrong-doers may remain mindful of this act of mercy, and may conduct themselves without o ffence henceforth

Steps are being continuously taken towards obliterating ditisnctions of race as the test for access to posts of public authority and power In this path I confidently expect and intend the progress henceforward to be steadfast and sure, as education spreads, experience ripens, and the lessons of responsibility are well learned by the keen intelligence and apt capabilities of India

From the first, the principle of representative institutions began to be gradually introduced, and the time has come when, in the judgment of my Viceroy and Governor-General and others of my counsellors, that principle may be prudently extended Important classes among you, representing ideas that have been fostered and encouraged by British rule, claim equality of citizenship, and a greater share in legislation and government The politic satisfaction of such a claim will strengthen, not impair, existing authority and power Administration will be all the more efficient if the officers who conduct it have greater opportunities of regular contact with those whom it affects, and with those who influence and reflect common opinion about it I will not speak of the measures that are now being diligently framed for these objects They will speedily be made known to you, and will, I am very confident, mark a notable stage in the beneficent progress of our affairs

I recognise the valour and fidelity of my Indian troops, and at the New Year I have ordered that opportunity should be taken to show insubstantial form this, my high appreciation of their martial instincts, their splendid discipline, and their faithful readiness of service

The welfare of India was one of the objects dearest to the heart of Queen Victoria By me, ever since my visit in 1875, the interests of India, its Princes and Peoples, have been watched with an affectionate solicitude that time cannot weaken My dear son, the Prince of Wales, and the Princess of Wales returned from their sojourn among you with warm attachment to your land and true and earnest interest in its well-being and content These sincere feelings of active sympathy and hope for India on the part of my Royal House and Line only represent, and they do most truly represent, the deep and united will and purpose of the people of this Kingdom

May divine protection and favour strengthen the wisdom and mutual goodwill that are needed for the achievement of a task as glorious as was ever committed to rulers and subjects in any State or Empire of recorded time

[*A message read by His Excellency the Viceroy in Durbar at Jodhpur, November 2, 1908*]

---

APPENDIX C

## THE KING'S PROCLAMATION

*December* 25, 1919

GEORGE V, by the Grace of God, of the United Kingdom of Great Britain and Ireland and of the British Dominions beyond the Seas, King, Defender of the Faith, Emperor of India, to my Viceroy and Governor-General, to the Princes of Indian States and to all my subjects in India of whatsoever race or creed Greeting —

1 Another epoch has been reached to-day in the annals of India I have given my Royal assent to an Act which will take its place among the great historic measures passed by the Parliament of this Realm for the better Government of India and for the greater contentment of her people The Acts of 1773 and 1784 were designed to establish a regular system of administration and justice under the Honourable

East India Company The Act of 1833 opened the door for Indians to public office and employment The Act of 1853 transferred the Administration from the Company to the Crown and laid the foundation of public life which exists in India today The Act of 1861 sowed the seed of representative institutions and the seed was quickened into life by the Act of 1909 The Act which has now become law, entrusts the elected representatives of the people with a definite share in the government and points the way to full responsible government hereafter If, as I confidently hope, the policy which this act inaugurates should achieve its purpose, the results will be momentous in the story of human progress, and it is timely and fitting that I should invite you to-day to consider the past and to join me in my hopes of the future

2 Ever since the welfare of India was confided to us it has been held as a sacred trust by our Royal House and Line In 1858, Queen Victoria, of revered memory, solemnly declared herself bound to her Indian subjects by the same obligations of duty as to all her other subjects, and she assured to them religious freedom and the equal and impartial protection of the law In his message to the Indian people in 1903, my dear father, King Edward VII, announced his determination to maintain unimpaired the same principles of humane and equitable administration Again in his Proclamation of 1908 he renewed the assurances which had been given fifty years before and surveyed the progress which they had inspired On my accession to the Throne in 1910, I sent a message to the Princes and Peoples of India acknowledging their loyalty and homage and promising that the prosperity and happiness of India should always be to me of the highest interest and concern In the following year, I visited India with the Queen-Empress and testified my sympathy for her people and my desire for their well-being

3 While these are the sentiments of affection and devotion by which I and my Predecessors have been animated, the Parliament and the People of this Realm and my officers in India have been equally zealous for the moral and material advancement of India We have endeavoured to give to her people the many blessings which Providence has bestowed upon ourselves But there is one gift which yet remains and without which the progress of a country cannot be con-

summated the right of her people to direct her affairs and safeguard her interests The defence of India against Foreign aggression is a duty of common imperial interest and pride The control of her domestic concerns is a burden which India may legitimately aspire to take upon her own shoulders The burden is too heavy to be borne in full until time and experience have brought the necessary strength, but opportunity will now be given for experience to grow and for responsibility to increase with the capacity for its fulfilment

4. I have watched with understanding and sympathy the growing desire of my Indian people for representative institutions Starting from small beginnings, this ambition has steadily strengthened its hold upon the intelligence of the country It has pursued its course along constitutional channels with sincerity and courage It has survived the discredit which at times and in places lawless men sought to cast upon it by acts of violence committed under the guise of patriotism It has been stirred up to more vigorous life by the ideals for which the British Commonwealth fought in the Great War, and it claims support in the part which India has taken in our common struggles, anxiety, and victories In truth, the desire after political responsibility, has its source at the roots of the British connexion with India It has sprung inevitably from the deeper and wider studies of human thought and history which that connexion has opened to the Indian people Without it the work of the British in India would have been incomplete It was, therefore, with a wise judgment that the beginnings of representative institutions were laid many years ago Their scope has been extended stage by stage until there now lies before us a definite step on the road to responsible government

5 With the same sympathy and with redoubled interest I shall watch the progress along this road The path will not be easy, and in the march towards the goal, there will be need of perseverance and of mutual forbearance between all sections and races of my people in India I am confident that these high qualities will be forthcoming I rely on the new popular assemblies to interpret wisely the wishes of those whom they represent and not to forget the interests of the masses who cannot yet be admitted to franchise I rely on the leaders of the people, the Ministers of the future, to

face responsibility and endure misrepresentation, to sacrifice much for the common interest of the state remembering that true patriotism transcends party and communal boundaries, and, while retaining the confidence of the Legislatures to co-operate with my Officers for the common good in sinking unessential differences and in maintaining the essential standards of a just and generous Government Equally do I rely upon my Officers to respect their new colleagues and to work with them in harmony and kindliness, to assist the people and their representatives in an orderly advance towards free institutions, and to find in these new tasks a fresh opportunity to fulfil as in the past their highest purpose of faithful service to my people

6 It is my earnest desire at this time that so far as possible any trace of bitterness between my people and those who are responsible for my Government should be obliterated. Let those who in their eagerness for political progress have broken the law in the past respect it in the future Let it become possible for those who are charged with the maintenance of peaceful and orderly government to forget the extravagances which they have had to curb A new era is opening Let it begin with a common determination among my people and my Officers to work together for a common purpose I, therefore, direct my Viceroy to exercise in my name and on my behalf my Royal clemency to political offenders in the fullest measures which in his judgment are compatible with the public safety I desire him to extend it on this condition to persons who for offences against the State or under any special or emergency legislation are suffering imprisonment or restrictions upon their liberty I trust that this leniency will be justified by the future conduct of those whom it benefits and that all my subjects will so demean themselves as to render it unnecessary to enforce the laws for such offences hereafter

7 Simultaneously with the new constitutions in British India I have gladly assented to the establishment of a Chamber of Princes I trust that its counsel may be fruitful of lasting good to the Princes and the States themselves may advance the interests which are common to their territories and to British India and may be to advantage of the Empire as a whole I take the occasion again to assure the Princes of

India of my determination ever to maintain unimpaired their privileges rights, and dignities

8 It is my intention to send my dear son, the Prince of Wales, to India next winter to inaugurate on my behalf the New Chamber of Princes and the new constitutions in British India May he find mutual goodwill and confidence prevailing among those on whom will rest the future service of the country so that success may crown their labours and progressive enlightenment attend their administration

And with all my people I pray to Almighty God that by His wisdom and under His guidance India may be led to greater prosperity and contentment, and may grow to the fullness of political freedom.

---

APPENDIX D

## GOVERNORS-GENERAL

Governors-General of Bengal (British India)
Warren Hastings—1773—85
Sir John Macpherson—1785
Lord Cornwallis—1785—93
Sir John Shore—1793—98
Sir Alured Clarke—1798
Lord Wellesley—1798—1805
Lord Cornwallis (Second Time)—1805.
Sir George Barlow—1805—07
Lord Minto (First)—1807—13
Lord Hastings—1813—23
John Adam—1823
Lord Amherst—1823—28
William Butterworth Bayley—1828.
Lord William Bentinck—1828—35.

## GOVERNORS-GENERAL OF INDIA

Lord William Bentinck—1833—35.
Sir Charles Metcalfe—1835—36.

Lord Auckland—1836—42
Lord Ellenborough—1842—44
Lord Hardinge (First)—1844—48.
Lord Dalhousie—1848—56
Lord Canning—1856—58

GOVERNORS-GENERAL AND VICEROYS OF INDIA

Lord Cannin—1858—62
Lord Elgin (Figrst)—1862—63
Sir John Lawrence—1864—69.
Lord Mayo—1869—72
Lord Northbrook—1872—76
Lord Lytton—1876—80
Lord Ripon—1880—84
Lord Dufferin—1884—88
Lord Lansdowne—1888—94
Lord Elgin (Second)—1894—99
Lord Curzon—1899—1905
Lord Minto (Second)—1905—10
Lord Hardinge (Second)—1910—16
Lord Chelmsford—1916—21
Lord Reading—1921—26
Lord Irwin—1926—31
Lord Willingdon—1931—36.
Lord Linlithgow—1936

---

## Books recommended for the use of teachers

### HINDU PERIOD

1 R D Banerjee, Pre-historic and Ancient India
2 Regozin, Vedic India
3 Rhys David's Buddhist India
4 Rapson, Ancient India
5 Mazumdar, Outlines of Ancient Indian History and Culture
6 Beal, Life of Hiuen Tsang
7 Bhandarkar, D R Carmichæl Lectures
8 Bhandarkar, Asoka
9 R K Bhandarkar, Peeps into the Early History of the Deccan
10 Radha Kumud, Men and Thought in Ancient India
11 Mukerjee Radha Kumud, Asoka
12 Mukerjee Radha Kumud, Harsha (Rulers of India Series)
13 V Smith, Early History of India
14 V Smith, Asoka
15 Mukerjee, Radhakumud, Hindu Civilisation
16 A Coomarswamy, Indian and Indonesian Art.

### EARLY MUHAMMADAN PERIOD

1 Lane-Poole Mediæval India
2. C V Vaidya, Mediæval Hindu India, 3 Vols
3 Elphinstone, History of India
4 Elliot, History of India as Told by *Its* Own Historians, 8 Vols
5 Briggs, Rise of Muhammadan Power, 4 Vols
6 Lee, Translation of Ibna Batuta's Travels
7 K S Aiyengar, South India and Her Muhammadan Invaders
8 Ishwari Prasad, History of Mediæval India
9 Smith, Oxford History of India
10 Bayley, Local Muhammadan Dynasties of Gujarat
11 Stewart, History of Bengal
12 Ghulam Husain, Riyaz us Salatin

13 Ishwari Prasad, History of the Qarauna Turks
14 Tod, Annals and Antiquities of Rajasthan, edited by Crooke, 3 Vols
15 Malet, History of Sindh
16 King, History of the Deccan
17 Gribble, History of the Deccan, 2 Vols
18 Commissariat, History of the Gujarat Saltanat
19 Meadows Taylor, History of India
20 Sewell, A Forgotten Empire
21 Cambridge History of India III
22 Havell, A Hand-Book of Indian Art

## MUGHAL PERIOD

1 Rushbrook-Williams, An Empire Builder of the 16th Century
2 Erskine, History of India under Babar and Humayun, Pts I and II
3 Qanungo, Shershah
4 Smith, Akbar the Great Moghul
5 Count Von Noer, The Emperor Akbar, two parts
6 Blochmann, Ain-i-Akbari, Vol I
7 Jarrett, Ain-i-Akbari, Vols II and III
8 Ranking and Lowe, Al-Badaoni, Vols I and II
9 Beni Prasad, History of Jahangir
10 J N Sarkar, History of Aurangzeb, 5 Vols
11 „ Mughal Administration of Mahrattas
12 Kanungo, History of the Jats
13 Sarkar, Shivaji, Life and Times
14 Rawlinson, Shivaji
15 Surendra Nath Sen, Maratha Administration
16 Ranade, Rise of the Mahratta Power
17 Ishwari Prasad, A Short History of Muslim Rule in India
18 B P Saxena, History of Shahjahan
19 Grant Duff, History of the Mahrattas, edited by Edwards, 3 Vols
20 Owen, Fall of the Mughal Empire
21 Kincaid and Parasanis, History of the Maratha People, 3 Vols
22 Irvine, Later Mughals, 2 Vols

23 Cambridge History of India IV
24 S R Sharma History of Mughal India I, II and III
25 B P Saxena, History of Shahjahan
26 Irvine, The Army of the Mughals
27 Bernier, Travels in the Mughal Empire, Constable edition
28 Smith, Travels in the Mughal Empire
29 Garrett and Edwards, India under Mughal Rule
30 Moreland, Agrarian Systems of Moslem India
31 Sen, Maratha Administration
32 Sarkar, Fall of the Mughal Empire I and II
33 Percy Brown, Mughal Painting (Heritage of India Series)

## BRITISH PERIOD

1 Elphinstone, The Rise of British Power in the East
2 Keene, History of India, 2 Vols
3 Roberts, Historical Geography
4 Ramsay Muir, Making of British India
5 Dodwell, Dupleix and Clive
6 Smith, Oxford History of India
7 Lyall, Rise of British Dominion in India
8 Yusuf Ali, Making of India
9 Anderson, Indian Administration
10 Garner and Marris, Civil Government for Indian students
11 Kale, an Administration
12 Keith, Documents of Indian Constitutional Reform, 2 Pts
13 Smith, Indian Constitutional Reform
14 Sir H G Cotton, Spirit in India
15 Annie Besant, How India Wrought for Freedom!
16 Thakore, Dawn of Responsible Government in India
17 Ilbert, Government of India
18 Anderson and Subedar, Expansion of British India, 1818 to 1858
19 Owen, Wellesley's Despatches
20 Holdich, The Gates of India
21 Montagu-Chelmsford Report
22 Keene, Mahadaji Sindhia

23 Dodwell, History of India
24 Shorter Cambridge History
25 Davis, Administration of Warren Hastings
26 Roberts, Wellesley
27 Keith, Constitutional History of India
28 Alfred Lyall, Rise of British Dominions in India
29 Joshi, Indian Administration

---